राष्ट्रीय जागरण और सूर्यकांत त्रिपाठी निराला का साहित्य

(हैदराबाद विश्वविद्यालय की पीएच.डी.,{हिन्दी} उपाधि हेतु प्रस्तुत शोध-प्रबंध)

2008

प्रस्तुतकर्ता

दंडिभोट्ला नागेश्वर राव

03HHPH03

विभागाध्यक्ष

डॉ.शशि मुदीराज डी.लिट्

प्रोफ़ेसर, हिन्दी विभाग

हैदराबाद विश्वविद्यालय

हैदराबाद-500046.

निर्देशक

डॉ.आर.एस.सर्राजु पीएच.डी

रीडर, हिन्दी विभाग

हैदराबाद विश्वविद्यालय

हैदराबाद-500046.

SCHOOL OF HUMANITIES
University of Hyderabad,
Hyderabad – 500 046.

This is to certify that I, **DANDIBHOTLA NAGESWARA RAO** have carried out the research embodied in the present thesis entitled **" Rāṣṭrīya Jāgaraṇ Aur Sūryakānt Tripāṭhī Nirālā Kā Sāhitya"** for the full period prescribed under Ph.D., ordinances of the University of Hyderabad.

I declare to the best of my knowledge that no part of this thesis was earlier submitted, for the award of research degree of any University

Signature of the Candidate
DANDIBHOTLA NAGESWARA RAO
03HHPH03
Date : _____________

Signature of the Supervisor
DR.R.S.SARRAJU
Department of Hindi
Date : _____________

Signature
Head of the Department
Date : _____________

Signature
Dean of the School
Date : _____________

अनुक्रमणिका

अनुक्रमणिका

प्राक्कथन **i-iv**

1. राष्ट्र और राष्ट्रीयता **1-27**

1.1 राष्ट्र की अवधारणा
1.1.1 राष्ट्र की अवधारणा : भारतीय संदर्भ
1.1.2 राष्ट्र की अवधारणा : पाश्चात्य संदर्भ
1.2 राष्ट्रीयता की अवधारणा
1.2.1 राष्ट्रीयता की अवधारणा : भारतीय संदर्भ
1.2.2 राष्ट्रीयता की अवधारणा : पाश्चात्य संदर्भ
1.3 राष्ट्रीयता के नियामक तत्त्व
1.3.1 निश्चित भूभाग
1.3.2 संस्कृति
1.3.3 इतिहास-बोध
1.3.4 धर्म
1.3.5 भाषा और साहित्य
1.3.6 आर्थिक स्थिति
1.3.7 राजनैतिक चेतना
1.4 एक राष्ट्र के रूप में भारत की परिकल्पना :
सांस्कृतिक राष्ट्र से राजनैतिक राष्ट्र तक

2. राष्ट्रीय जागरण : प्रकृति और विकास **28-102**

2.1 राष्ट्रीय जागरण से तात्पर्य
2.2 राष्ट्रीय जागरण और नवजागरण
2.3 राष्ट्रीय जागरण की पृष्ठभूमि
2.4 राष्ट्रीय जागरण के प्रेरक तत्त्व
2.4.1 अंग्रेज़ शासन में भारत का आर्थिक शोषण
2.4.2 यातायात के साधन
2.4.3 प्रेस और पत्र-पत्रिकाएँ

2.4.4 सामाजिक-धार्मिक-सुधारवादी आंदोलन
2.4.4.1 राजा राममोहन राय - ब्रह्म समाज
2.4.4.2 स्वामी दयानंद सरस्वती - आर्य समाज
2.4.4.3 श्रीमती एनीबेसेंट - थियोसॉफिकल सोसाइटी
2.4.4.4 रामकृष्ण परमहंस
2.4.4.5 स्वामी विवेकानंद
2.5 राष्ट्रीय जागरण की क्रियात्मक अभिव्यक्ति : स्वतंत्रता संग्राम
2.5.1 सन् 1857 ई. का विद्रोह
2.5.2 भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस की स्थापना
2.5.3 राष्ट्रीय जागरण तथा लाल-बाल-पाल
2.5.4 बंग-भंग आंदोलन
2.5.5 महात्मा गांधी का युग
2.5.6 क्रांतिकारी संघर्ष-काल
2.5.7 भारत छोड़ो आंदोलन
2.5.8 आज़ाद हिन्द फौज़
2.5.9 स्वतंत्रता-प्राप्ति
2.6 राष्ट्रीय जागरण और रिनेसाँ
2.6.1 रिनेसाँ : एक परिचय
2.6.2 रिनेसाँ और मानववाद
2.6.3 राष्ट्रीय जागरण और रिनेसाँ

3. निराला की साहित्यिक चेतना और राष्ट्रीय जागरण 103-151

3.1 निराला का जीवन : एक सामान्य परिचय
3.2 निराला के साहित्य में राष्ट्रीय जागरण के अनुसंधान की प्रासंगिकता और शोध-प्रविधि

4. राष्ट्रीय जागरण और निराला का काव्य 152-226

4.1 निराला का काव्य : एक सामान्य परिचय
4.1.1 निराला-काव्य का प्रथम चरण
4.1.2 निराला-काव्य का द्वितीय चरण
4.1.3 निराला-काव्य का तृतीय चरण

4.2 निराला के काव्य में जागरण की अभिव्यक्ति
4.3 निराला के गीतों में राष्ट्रीय जागरण की अभिव्यक्ति
4.4 'तुलसीदास' काव्य में राष्ट्रीय जागरण की अभिव्यक्ति

5. राष्ट्रीय जागरण और निराला का गद्य 227-310

5.1 निराला का उपन्यास-साहित्य : एक सामान्य परिचय
5.2 निराला का कहानी-साहित्य : एक सामान्य परिचय
5.3 निराला के कथा-साहित्य में राष्ट्रीय जागरण की अभिव्यक्ति
5.4 निराला का आलोचनात्मक साहित्य : एक सामान्य परिचय
5.5 निराला के निबंध, सम्पादकीय टिप्पणियाँ : एक सामान्य परिचय
5.6 निराला के आलोचनात्मक साहित्य-निबंधों और संपादकीय टिप्पणियों में राष्ट्रीय जागरण की अभिव्यक्ति

6. सूर्यकांत त्रिपाठी निराला के साहित्य में राष्ट्रीय जागरण का स्वरूप 311-321

आधार ग्रंथ
सहायक ग्रंथ-सूची
अप्रकाशित शोध-प्रबंध
पत्र-पत्रिकाएँ
अंग्रेज़ी ग्रंथ
तेलुगु ग्रंथ

प्राक्कथन

प्राक्कथन

'राष्ट्रीय जागरण' एक व्यापक अर्थ की ओर संकेत करने वाला शब्द है। 'जागरण' का अर्थ है जागना। स्थूल दृष्टि से 'राष्ट्रीय जागरण' का अर्थ किसी राष्ट्र का जागना। संपूर्ण विश्व का अस्तित्व चेतना पर ही आधारित होता है और जागरण एक दृष्टि से इस इस चेतना का ही पर्याय है और निष्क्रियता या जड़ता सामाजिक शिथिलता का सूचक है। इस दृष्टि से किसी भी राष्ट्र का उन्नति के पथ पर अग्रसर होने के लिए किया जानेवाला प्रयास ही 'राष्ट्रीय जागरण' कहा जा सकता है।

किसी भी राष्ट्र या किसी भी जाति का सांस्कृतिक धरातल पर आंतरिक पतन पहले होता है और बाद में राजनैतिक स्तर पर। अनेक कारणों के चलते जहाँ एक ओर अंग्रेज़ भारत को गुलामी की जंजीरों में बांधने वाले हुए, वहाँ दूसरी ओर वैज्ञानिक प्रगति के कारण विश्व में औद्योगिक क्रान्ति के सारथी भी वे ही हुए। औद्योगिक प्रगति ने शोषण के नये मार्गों की माँग की .... तब भारतवर्ष अंग्रेज़ों के लिए बड़ा ही लाभदायक उपनिवेश सिद्ध हुआ। यहाँ का सस्ता माल विलायत ले जाकर वहाँ का तैयार माल यहाँ महँगे दामों बेचने के द्वारा अंग्रेज़ों ने शोषण की नयी परिभाषा ही रच डाली। शोषण के इस भयानक चक्र में समस्त भारतवासियों को पिसना पड़ा। सारे देश को मुट्ठी में कसकर बाँधने के लिए ब्रिटिश सरकार ने रेल और तार-डाक की व्यवस्था की। इसके पीछे अंग्रेज़ों का उद्देश्य जो भी हो लेकिन इसके कारण सारे देश को एक सूत्र में बांधने का काम धीरे-धीरे होता गया।

इस प्रकार अंग्रेज़ों के स्वार्थ चिंतन के कारण ही राजनैतिक राष्ट्र और राष्ट्रीयता की भावना भारत की जनता में पनपने लगी। जो काम शताब्दियों के पहले अशोक ने किया था और जो काम मुगल शासकों के समय कुछ सौ वर्ष पहले बहुत कम समय के लिए संभव हुआ - इतने विशाल राष्ट्र को एक छत के नीचे लाने का काम अंग्रेज़ों ने सफलतापूर्वक किया। कहने का आशय यह कदापि नहीं है कि मात्र अंग्रेज़ों के आगमन से ही भारत में राष्ट्रीयता का विकास हुआ था या अंग्रेज़ों के कारण ही भारत के विभिन्न प्रांतों ने एकता का अनुभव किया था। भारत के लोगों में सांस्कृतिक एकता बहुत पहले से ही रही - संपूर्ण भारतीय साहित्य इस बात का प्रमाण है। लेकिन अंग्रेज़ों के कारण भौगोलिक और राजनैतिक स्तर पर भारत के विभिन्न प्रांतों के मध्य भौगोलिक दूरियाँ मिट गयीं और भारत के लोग एक दूसरे के निकट आने लगे। क्योंकि अंग्रेज़ों का शोषण भारत के हर प्रांत में, हर वर्ग में

समान मात्रा में चल रहा था जिसके कारण ये सारे प्रांत अपनी विशेषताओं से दूर वेदना के धरातल पर एक-दूसरे को बहुत नजदीक महसूस करने लगे। इतना ही नहीं, नवीन शिक्षा प्रणाली के कारण स्वतंत्रता, समानता, लोकतंत्र आदि भावनाओं से भारतीयों का साक्षात्कार हुआ और उनमें राष्ट्रीयता की लहर दौडने लगी। सन् 1857 ई. में संपन्न प्रथम स्वतंत्रता संग्राम इस लहर का ही आवेग था। भारतीय कांग्रेस की स्थापना के बाद यह भावात्मक एकता जोर पकडती गयी। अन्य क्षेत्रों की भांति साहित्य भी इस राष्ट्रीय जागरण के संदेश का वहन करने लगा। हिन्दी साहित्य में राष्ट्रीयता की प्रतिध्वनि भारतेन्दु हरिश्चंद्र की कृतियों में सबसे पहले सुनायी पड़ी। ब्रह्मसमाज, आर्य समाज आदि के प्रभाव से समाज में नवीन चेतना उभरने लगी। इसी समय सूर्यकान्त त्रिपाठी निराला का जन्म हुआ।

निराला का सृजन-काल राष्ट्रीय जागरण के चरमोत्कर्ष का काल कहा जा सकता है। राष्ट्रीय जागरण की पताका उठाने का काम हर भारतीय भाषा-साहित्य में बड़े पैमाने पर होता रहा। बंकिम चन्द्र चटोपाध्याय, विश्वकवि रवींद्रनाथ ठाकुर (बंगला), आनंदराम फुकन (असमिया), फकीर मोहन सेनापति (उडिया), सावरकर (मराठी), सुब्रह्मण्यम् भारती (तमिल), वीरेशलिंगम् पन्तुलु एवं गुरजाड अप्पाराव (तेलुगु), गोपालकृष्ण अडिग (कन्नड), रामराजवर्मा (मलयालम), इत्यादि कवियों की वाणी को स्फूर्ति प्रदान करनेवाली चेतना राष्ट्रीय जागरण का ही परिणाम है।

निराला अपने समय के सबसे अधिक जागरूक साहित्यकार थे। उनके साहित्य-सृजन का काल वह समय था जब सारे देश को राष्ट्रीय जागरण की लहर तरंगोमंगित कर रही थी। निराला जैसे संवेदनशील साहित्यकार को इन परिस्थितियों से बचकर साहित्य-सर्जना करना असंभव है। सहज ही वे इन परिस्थितियों से प्रभावित हुए। निराला अपने समय के समाज से और उसकी कठोर वास्तविकता से लगातार जुड़ते आये। उनके काव्य में ही नहीं कहानी-उपन्यास, निबंध और संपादकीय टिप्पणियों में भी उनकी राष्ट्रीय चेतना की अभिव्यक्ति हुई। उन्होंने न केवल काव्य को छंद - बंधनों से विमुक्त किया बल्कि मानव-समुदाय को भी हर प्रकार के बंधनों से मुक्ति दिलाने की कामना की थी। अपने राष्ट्र के प्रति निराला के क्या विचार थे? और राष्ट्रीय जागरण की दृष्टि से उनके साहित्य का क्या महत्त्व है? - इन प्रश्नों पर गंभीरतापूर्वक विचार करना और निराला के राष्ट्रीय जागरण के स्वरूप का मूल्यांकन करना इस शोध-प्रबंध का आशय है। निराला की साहित्य-साधना के द्वितीय भाग में रामविलास शर्मा जी ने लिखा कि ‘‘राष्ट्रीय स्वाधीनता-आंदोलन कुछ लोगों के लिए अंग्रेज़ों को हटाने भर का था, अंग्रेज़ों को हटाने के लिए समाज-व्यवस्था को बदलना आवश्यक न

था। निराला का विचार इनके मत से भिन्न था। उनकी समझ में एक व्यापक सामाजिक क्रान्ति न केवल इसलिए आवश्यक थी कि पुरानी व्यवस्था सदियों पहले जर्जर हो चुकी है, वरन् इसलिए भी कि उसके बिना देश का राजनीतिक आंदोलन शक्तिशाली न हो सकता था। इस राजनीतिक आंदोलन का लक्ष्य क्या हो, उसे शक्तिशाली कैसे बनाया जाए, शिक्षित युवकों को सामाजिक क्रान्ति के लिए कौन-से कदम उठाने चाहिए- इन सब समस्याओं को लेकर निराला ने जो कुछ लिखा था, वह राजनीतिज्ञों के दाँवपेंच से बहुत आगे की बात थी।''

सूर्यकांत त्रिपाठी निराला आलोचकों एवं शोधार्थियों के प्रिय कवि एवं लेखक रहे हैं। उन पर कई दृष्टियों से विश्लेषणात्मक एवं आलोचनात्मक ग्रंथों का प्रणयन हुआ। लेकिन निराला को राष्ट्रीय जागरण की दृष्टि से विशेष रूप से परखने का गंभीर प्रयास नहीं हुआ। अतः मैंने **''राष्ट्रीय जागरण तथा निराला का साहित्य''** विषय को मैंने अपने शोध-कार्य के लिए चुना है।

प्रस्तुत शोध-प्रबंध को छः अध्यायों में विभाजित किया गया है।

प्रथम अध्याय में राष्ट्र एवं राष्ट्रीयता की परिभाषा देते हुए राष्ट्रीयता के नियामक तत्वों को लेकर विश्लेषण किया गया है। इसी अध्याय में सांस्कृतिक राष्ट्र से राजनैतिक राष्ट्र तक भारत के निर्माण का अवलोकन किया गया है।

द्वितीय अध्याय में राष्ट्रीय जागरण के स्वरूप और प्रकृति का विश्लेषण किया गया है तथा अंग्रेज़ शासन के अधीन भारत के आर्थिक, सामाजिक, राजनैतिक, धार्मिक एवं सांस्कृतिक पक्षों का संस्पर्श करते हुए राष्ट्रीय जागरण के विकास की प्रक्रिया का प्रस्तुतीकरण किया गया है। इसी अध्याय में राष्ट्रीय जागरण के विभिन्न आयामों की क्रियात्मक अभिव्यक्ति को भी समावेश किया गया है तथा राष्ट्रीय जागरण कालीन सांस्कृतिक नवोत्थान को यूरोप के रिनेसाँ के परिप्रेक्ष्य में देखने का प्रयत्न किया गया है।

तृतीय अध्याय में सूर्यकान्त त्रिपाठी निराला के जीवन का परिचय देते हुए निराला की साहित्यिक चेतना के निर्माण में राष्ट्रीय जागरण की भूमिका का व्यापक विश्लेषण किया गया है। साथ ही साथ निराला के साहित्य में राष्ट्रीय जागरण के अनुसंधान की प्रासंगिकता का विश्लेषण करते हुए शोध-प्रविधि का परिचय दिया गया।

चतुर्थ अध्याय में निराला की काव्य-कृतियों का विश्लेषणात्मक परिचय देते हुए उनके काव्य के विकास पर विस्तारपूर्वक विचार किया गया है। इसी अध्याय में उनकी कविताओं (विशेषकर तुलसीदास काव्य में) तथा गीतों में राष्ट्रीय जागरण की अभिव्यक्ति का विश्लेषण किया गया है।

पाँचवा अध्याय पूर्णतः निराला के गद्य साहित्य पर आधारित है जिसमें उनके उपन्यास, कहानी एवं अन्य कथात्मक कृतियाँ, निबंध एवं समय-समय पर लिखी उनकी संपादकीय टिप्पणियों का अनुशीलन करते हुए इन रचनाओं में राष्ट्रीय जागरण की अभिव्यक्ति का विश्लेषण किया गया है।

अंतिम अध्याय सूर्यकांत त्रिपाठी निराला के साहित्य में राष्ट्रीय जागरण के स्वरूप का निर्धारण किया गया।

सूर्यकान्त त्रिपाठी निराला किसी शोध-प्रबंध या परिचयात्मक ग्रंथों के मोहताज नहीं रहे। फिर भी उनकी साहित्यिक चेतना को व्यक्तिगत अनुभूतियों एवं वैयक्तिक भावोद्वेलनों की सीमा से परे राष्ट्रीय चेतना के विशाल दृष्टिकोण से देखने एवं राष्ट्रीय प्रयोजनों से उनके साहित्य की संबद्धता का सही मूल्यांकन करने में यह शोध-प्रबंध सहायक होगा - ऐसा मेरा विश्वास है।

सर्वप्रथम इस शोध-कार्य का अवसर मुझे प्रदान करनेवाले हैदराबाद केन्द्रीय विश्वविद्यालय के हिन्दी विभाग को धन्यवाद देना चाहता हूँ। विभागाध्यक्षा प्रो.शशि मुदीराज एवं मेरे शोध-निर्देशक डॉ.आर.एस.सर्राजु जी का हृदय से धन्यवाद अर्पित करना चाहता हूँ। मुख्यतः सर्राजु जी को तहे दिल से अपना आभार प्रकट करता हूँ जिन्होंने समय-समय पर मुझे शोध-कार्य में प्रोत्साहन दिया। उनके मार्ग-दर्शन के अभाव में यह शोध-कार्य संभव नहीं हो सकता। विभाग के छात्र मित्र सतीश, पवन, अनुज एवं थॉमस को भी धन्यवाद ज्ञापित करना चाहता हूँ। सतीश और पवन ने इस शोध-कार्य के लेखन में हमेशा मेरा साथ दिया। आंध्र लोयोला कॉलेज, विजयवाडा के हिन्दी विभागाध्यक्ष डॉ.वेन्ना वल्लभराव एवं तेलुगु विभागाध्यक्ष डॉ.गुम्मा सांबशिव राव जी को भी इस संदर्भ में धन्यवाद देता हूँ।

- दंडिभोट्ला नागेश्वर राव

प्रथम अध्याय
राष्ट्र और राष्ट्रीयता

प्रथम अध्याय
राष्ट्र और राष्ट्रीयता

1.1 राष्ट्र की अवधारणा

आधुनिक समाज में 'राष्ट्र' एक सर्वव्यापी शब्द है। इस शब्द के संबंध में कई भारतीय तथा पाश्चात्य विद्वानों ने अपने मत प्रकट किए।

1.1.1 राष्ट्र की अवधारणा : भारतीय संदर्भ

राष्ट्र शब्द एक प्राचीन शब्द है जिसका आधार संस्कृत की दीप्त्यर्थक धातु 'राज्' है इसमें औणादिक 'ष्ट्न' प्रत्यय जोड़ा गया है। राष्ट्र शब्द का सामान्य अर्थ है देश, मुल्क, प्रजा, जाति आदि। यह शब्द हमारे प्राचीन इतिहास और परंपरा के साथ बहुत गहरे रूप से जुड़ा हुआ है।

राष्ट्र शब्द का प्रयोग यजुर्वेद के तृतीय अध्याय के तीसरे मंत्र में किया गया है - 'राष्ट्रदा राष्ट्रम्ये दत्त'। अथर्व वेद में भी राष्ट्र का उल्लेख मिलता है -

> ''तेनास्मान् ब्राह्मणस्मतेऽमि राष्ट्राय वर्धय ।
> राष्ट्रीय महत्वम् बध्यतां''[1]

शतपथ ब्राह्मण में राष्ट्र शब्द का अर्थ इस प्रकार दिया गया है कि - 'श्री वै राष्ट्रम्' अर्थात् समृद्धियुक्त ओजस्वी जनसमूह ही राष्ट्र है। राष्ट्र तथा राष्ट्र-निर्माण को लेकर अथर्ववेद में एक और मंत्र मिलता है -

> ''भद्रमिच्छन्ति कृषयः स्वर्विदस्तपो दीक्षामुपनिषेदुरग्रे।
> ततो राष्ट्रं बलमोजश्च जातं तदस्मै देवा उपसंनमन्तु।।''[2]

अर्थात् सबके कल्याण को चाहनेवाले तथा आत्मिक सुख को प्राप्त करनेवाले ऋषि, जब तप और दीक्षा से प्रयत्न करते हैं, तब राष्ट्र और उसके भौतिक बल तथा आत्मिक ओज उत्पन्न होते हैं। उस राष्ट्र के लिए ज्ञान से प्रकाशमान ब्राह्मण, विजयशील क्षत्रिय, व्यवहार कुशल वैश्य और शूद्र लोग समर्पित रहें, नमस्कार करते रहें, उसकी व्यवस्था को मानते रहें।

स्पष्ट है कि दूसरों का मंगल चाहनेवाले आत्मदर्शी, तपस्वी और दीक्षाशील ऋषि, राष्ट्र और उसके बल और ओज को उत्पन्न करते हैं। बल का मतलब है - राष्ट्र की भौतिक

शक्ति और ओज का मतलब है - राष्ट्र की आत्मिक शक्ति। इस मंत्र में स्पष्टतः कहा गया है कि राष्ट्र तभी निर्मित होता है जब राष्ट्र के लोगों में बल और ओज का प्रादुर्भाव होता हो। ऐसा बलशाली और ओजस्वी जन समुदाय तभी उत्पन्न होता है जब उसे ऋषि-कोटि का नेतृत्व मिल जाता है। ऐसे राष्ट्र-शक्ति के सामने सब नतमस्तक हो जाते हैं, अर्थात् प्राचीन भारत में बताया गया कि राष्ट्र का निर्माण ऋषितुल्य नेताओं द्वारा ही हो सकता है। ऋषि का सामान्य अर्थ है - द्रष्टा या देखनेवाला। देखते तो हम सभी हैं। मगर ऋषि घटनाओं की तह में जाकर उसके असली रूप को देखते हैं। नेताओं में यह गुण यानि - गहरी एवं पैनी दूर दृष्टि की आवश्यकता होती है। राष्ट्र का निर्माण ऐसे नेताओं की भद्र-भावना पर आधारित होता है। भद्र का मतलब होता है - मंगल, शुभ और कल्याण। अर्थात् राष्ट्र के निर्माण में कार्यशील नेताओं को अपने वैयक्तिक स्वार्थ त्याग कर केवल दूसरों का कल्याण ही ध्येय बनाना चाहिए।

राष्ट्र के निर्माण से संबंधित भारतीय अवधारणा आध्यात्मिकता से भी भरी पड़ी है। इसलिए कहा गया है कि राष्ट्र का निर्माण और उसमें ओज की अस्मिता तभी संभव होती हैं जब उसके नेता स्वर्विद हो। अर्थात् जो आत्मा और परमात्मा के साक्षात्कार से अपने भीतर ही परम सुख का अनुभव करते हो। क्योंकि जो अपने आत्मसुख में आनंद पाता हो, उसे सांसारिक सुख भोगों की ओर देखने की जरूरत नहीं है। इसके अलावा उन्हें तप भी करना चाहिए। अर्थात् विविध प्रकार की यातनाओं को सहने की क्षमता राष्ट्र निर्माताओं के लिए अपेक्षित है। वेदों में कहा गया है कि प्रजा के सब वर्णों के लोगों को ऐसे ऋषि-कोटि के नेताओं द्वारा संचालित राष्ट्र की आज्ञाओं का आदर के साथ, नतमस्तक होकर पालन करना चाहिए। तभी राष्ट्र आदर्श के पथ पर उन्नति कर सकता है। मंत्र में प्रार्थना की गयी है कि 'प्रभो .... हमारे राष्ट्र को ऐसे ऋषि-कोटि के पथ-प्रदर्शक सदा मिलते रहें'।

राष्ट्र शब्द का अर्थ नालन्दा विशाल शब्द सागर में इस प्रकार दिया गया है कि ''राष्ट्र वह लोक-समुदाय है, जो एक ही देश में बसता हो या जो एक ही राज्य या शासन में रहता हुआ एकताबद्ध हो।''[3]

आचार्य नंददुलारे वाजपेयी के शब्दों में ''राष्ट्र केवल सीमाओं और जनसंख्या के समुच्चय का नाम ही नहीं है, उसके साथ परिस्थितियों के एक विशिष्ट आपात और एक

विशिष्ट इतिहास का भी योग होता है। राष्ट्र एक व्यक्ति के सदृश ही है।''[4]

श्री नर्मदेश्वर प्रसाद चतुर्वेदी के अनुसार - ''राष्ट्र के लिए एक निश्चित भूखण्ड का होना अनिवार्य है जिसके आधार पर वह अपने राजनैतिक अस्तित्व का बोध करता है। उससे अपना आंतरिक लगाव का अनुभव करता है। इसी को केंद्र मानकर भाषा, धर्म, संस्कृति तथा आर्थिक, सामाजिक और शासकीय व्यवस्था का राष्ट्रीय स्तर पर निर्माण होता है। इन सबके मूल में एकीकरण की भावना प्रधान होती है। इस प्रकार प्राकृतिक भौगोलिकता, एक इतिहास, एक भाषा, समान साहित्य और संस्कृति एवं समान मैत्री अथवा शत्रुता- इन पाँच सिद्धांतों पर एकमत रहने की इच्छा से संगठित जनसमूह को राष्ट्र कह सकते हैं।''[5]

डॉ. सुधींद्र का मानना है कि ''भूमि अर्थात् भौगोलिक एकता, जन अर्थात् जनगण की राजनैतिक एकता एवं जन संस्कृति अर्थात् सांस्कृतिक एकता - तीनों की एकता के समुच्चय का नाम राष्ट्र है।''[6]

डॉ. विनयमोहन शर्मा ने राष्ट्र की परिभाषा देते हुए लिखा है कि ''राष्ट्र जाति, धर्म एवं भाषा की एकता का नाम नहीं है .... वह भावना की एकता का नाम है।''[7]

श्री उमाकान्त आप्टे ने राष्ट्र की परिभाषा देते हुए लिखा है कि ''उस देश को अपना कहनेवाले, उस पर परायों की ओर से आक्रमण होने पर, परम्परागत आदर्शों का अखण्ड परिपालन करने के हेतु अपनी संपूर्ण शक्ति को जुटाकर प्रयत्न करनेवाले, अपनी संस्कृति एवं परंपरा का अभिमान रखनेवाले तथा इस प्रकार की प्रेम-रज्जु से आबद्ध होने के कारण एक दूसरे के उत्कर्ष एवं सुख के हेतु सहयोग की भावना से कार्य प्रवृत्त होनेवाले लोगों का समुदाय ही तो राष्ट्र है।''[8]

1.1.2 राष्ट्र की अवधारणा : पाश्चात्य संदर्भ

प्रायः अंग्रेज़ी 'Nation' शब्द के समानार्थी शब्द के रूप में हिन्दी में 'राष्ट्र' शब्द का प्रयोग किया जा रहा है। 'Nation' शब्द का उद्‍भव लैटिन शब्द 'Natio' से माना जाता है। प्रसिद्ध अंग्रेज़ी शब्द-कोश Websters Dictionary के अनुसार 'Nation' शब्द का अर्थ है - "A people inhabiting a certain territory and united by common political institutions / an aggregation of persons speaking the same or a cognate language and usually sharing a common ethnic origin"[9]

प्रसिद्ध अंग्रेज़ी शब्दकोश ऑक्सफोर्ड शब्दकोश में इसी शब्द का अर्थ इस प्रकार दिया गया है - "A large number of people of mainly common descent, language, history etc. usully inhabiting a territory bounded by defined limits and forming a society under one government."[10]

इन परिभाषाओं को सार रूप में इस प्रकार कहा जा सकता है कि एक विशेष भू-भाग में निवास करते हुए तथा एक ही राजनैतिक संस्था के द्वारा एकीकृत जनसमुदाय ही राष्ट्र है जो एक ही प्रकार की सामाजिक एवं सांस्कृतिक परंपराएँ रखता हो।

प्रसिद्ध लेखक जान स्टुअर्ट मिल ने लिखा कि ''राष्ट्र शब्द उस जनसमुदाय को सूचित करता है जो आपस में सामूहिक ऐक्य एवं पारस्परिक निर्भरता से जुड़ा हुआ हो।''[11]

इस परिभाषा से स्पष्ट होता है कि राष्ट्र के लिए पारस्परिक निर्भरता एवं सामूहिक एकता की नितांत आवश्यकता होती है। स्टालिन ने राष्ट्र की परिभाषा इस प्रकार प्रस्तुत की कि ''राष्ट्र वह समुदाय है, जो ऐतिहासिक रूप से विकसित हो और भाषा, भूभाग, आर्थिक जीवन और संस्कृति के द्वारा संचालित होनेवाली मनोरचना से युक्त हो।''[12]

1.2 राष्ट्रीयता की अवधारणा

'राष्ट्रीयता' हर नागरिक का आवश्यक लक्षण है। भारत एवं पाश्चात्य देशों में बहुत विस्तार से इसका विवेचन किया गया है, जो निम्न प्रकार से है -

1.2.1 राष्ट्रीयता की अवधारणा : भारतीय संदर्भ

राष्ट्र शब्द से ही राष्ट्रीयता शब्द का उद्‍भव हुआ है। यह कहना उचित होगा कि राष्ट्रीयता का संबंध पूरी तरह से मानव मन की भावुकता एवं गंभीर मनोनुभूतियों से है। राष्ट्रीयता तर्क एवं वैज्ञानिक परीक्षण के पश्चात् जन्म लेनेवाले विचारोत्पन्न सिद्धान्त की जगह भावोद्वेलित प्रबल मानसिक अनुभूति ही ज़्यादा है। वैसे तो भारत में भावोद्वेलन तथा प्रबल मानसिक अनुभूतियों के अभिव्यक्तीकरण की एक लंबी परंपरा रही है। अतः राष्ट्रीयता को लेकर भी यहाँ प्राचीनकाल से कई परिभाषाएँ एवं व्याख्याएँ मिलती हैं।

राष्ट्रीयता की परिभाषा नालंदा विशाल शब्दसागर में इस प्रकार दी गई है - ''अपने देश या राष्ट्र के प्रति उत्कट प्रेम की भावना ही राष्ट्रीयता है।''[13]

आचार्य नंददुलारे वाजपेयी ने राष्ट्रीयता को इस प्रकार परिभाषित किया - ''राष्ट्रीयता से मेरा मतलब स्वदेश-प्रेम की व्यापक भावना से है।''[14]

बाबू गुलाबराय ने भी राष्ट्रीयता को एक भावात्मक धारणा मानते हुए लिखा है - ''एक सम्मिलित राजनैतिक ध्येय में बंधे हुए किसी विशिष्ट भौगोलिक इकाई के जन-समुदाय के परस्पर सहयोग और उन्नति की अभिलाषा से प्रेरित उस भू-भाग के लिए प्रेम, गर्व की भावना को ही राष्ट्रीयता कहते हैं।''[15]

डॉ.जी.डी.तिवारी ने भी इसे जनसमुदाय की सामूहिक चेतना मानते हुए लिखा कि ''इसके अंतर्गत कई तत्व शामिल हैं, यथा- एक जनसमूह का होना, उस जनसमूह के मध्य भौगोलिक एकता तथा सामूहिक सुरक्षा की भावना का होना तथा समूह के सभी व्यक्तियों में विचार साम्य होना। इस प्रकार की एकता की भावना से युक्त जनसमुदाय की सामूहिक चेतना ही राष्ट्रीयता कहलाती है।''[16]

डॉ.राजमल बोरा ने राष्ट्रीयता के बारे में लिखा है कि ''राष्ट्रीयता राजनैतिक शब्द है। इसका संबंध राष्ट्र के इतिहास से है। प्रत्येक राष्ट्र का इतिहास अलग-अलग है, अतः प्रत्येक राष्ट्र की राष्ट्रीयता की कल्पना, राष्ट्रीयता की व्याख्या या राष्ट्रीयता की रूपरेखा अलग-अलग हैं। राष्ट्रीयता किसी राष्ट्र के सांस्कृतिक मानदण्डों को भाव रूप में किसी राष्ट्र विशेष के नागरिकों को जगाए रखने का काम करती है। इस आधार पर राष्ट्र विशेष के नागरिक अपने सांस्कृतिक मानदण्डों की रक्षा-हेतु राजनैतिक शक्ति का सहारा लेकर एक होते हैं। इस आधार पर युद्ध होते हैं और ऐसे समय में राष्ट्रीयता की व्याख्या सामयिक (समय विशेष में) परिस्थितियों के अनुसार (राष्ट्र विशेष के ऐतिहासिक संदर्भ को ध्यान में रखकर) की जाने लगती है। यह सब होने पर भी राष्ट्रीयता शब्द का प्रयोग सभी राष्ट्रों की राष्ट्रीयता के लिए समान रूप से किया जाता है। शब्द का प्रयोग समान होने पर भी राष्ट्रीयता का अर्थ अलग अलग होने के कारण राष्ट्रों में संघर्ष होता है। इस संघर्ष को टालने का प्रयास किया जा सकता है, यदि विभिन्न राष्ट्र अपनी अपनी राष्ट्रीय मान्यताओं को दूसरे राष्ट्र की राष्ट्रीय मान्यताओं के संदर्भ में विचार करने का प्रयत्न करें। अर्थात् राष्ट्रीयता की धारणा विश्व में विभिन्न राष्ट्रों में जैसे-जैसे एक अर्थ में प्रयुक्त होने की दिशा में आगे बढ़ेगी वैसे वैसे संघर्ष की भावना कम होगी।''[17]

इन परिभाषाओं से स्पष्ट हो रहा है कि राष्ट्रीयता एक वैयक्तिक भावना न होकर सामूहिक चेतना है तथा इसके लिए एवं भावात्मक एकता की नितांत आवश्यकता है।

1.2.2 राष्ट्रीयता की अवधारणा : पाश्चात्य संदर्भ

यद्यपि भारत में राष्ट्रीय भावना पहले से ही कई रूपों में विद्यमान है, तथापि आजकल जिस अर्थ में हम राष्ट्रीयता को ले रहे हैं, वह बिलकुल आधुनिक युग की धारणा है। यह धारणा भी हमें पाश्चात्य जगत् से ही प्राप्त हुई। आधुनिक युग में राष्ट्रीयता की अवधारणा कहाँ से शुरू होती है, उसने राष्ट्रवाद का रूप कैसे लिया - इसके बारे में बर्ट्रेंड रसेल ने लिखा कि " राष्ट्रवाद का प्रारंभ जॉन ऑफ आर्क के समय से माना जा सकता है जब फ्राँसीसियों में अंग्रेज़ों की विजय के विरुद्ध सामूहिक प्रतिरोधात्मक भावना जाग उठी थी। अंगरेजी राष्ट्रवाद स्पेनी बेडे के प्रतिरोध के फलस्वरूप पैदा हुआ और कुछ ही वर्षों बाद इसकी ऐतिहासिक अभिव्यक्ति शेक्सपियर में हुई। जर्मन और रूसी राष्ट्रवाद का जन्म नैपोलियन के प्रति विरोध से हुआ। अमरीकी राष्ट्रवाद ब्रिटिश फौजियों के प्रतिरोध स्वरूप जन्मा। दुर्भाग्यवर्श, एक यह ऐसी मनोवैज्ञानिक प्राकृतिक गत्यात्मकता है जिसने प्रत्येक दशा में राष्ट्रवाद के विकास को अनुशासित किया है।"[18]

प्रसिद्ध राजनैतिक विद्वान आर.एन. गिलक्राइस्ट ने राष्ट्रीयता की व्याख्या इस प्रकार की कि "राष्ट्रीयता एक आध्यात्मिक मनोभावना है तथा यह भावना एक ही भूभाग में निवास करनेवाली एक ही जाति के लोगों के मध्य पैदा होती है जिनकी भाषा, ऐतिहासिक परंपराएँ तथा धार्मिक रीतियाँ भी एक समान होती हैं। इनके अलावा इन लोगों की राजनैतिक संस्थाएँ तथा राजनैतिक एकता भी समान होती हैं।"[19]

The Encyclopedia of America ग्रंथ में भी गिलक्राइस्ट की तरह भाषा, धर्म एवं संस्कृति को राष्ट्रीयता के निर्माण में प्रमुख माना गया है। ग्रंथ में राष्ट्रीयता के लिए प्रयुक्त व्याख्यान इस प्रकार है कि "राष्ट्रीयता के लिए व्यक्तियों के राजनैतिक, जातिगत, धार्मिक, सांस्कृतिक एवं ऐतिहासिक तत्वों का एक उद्गम स्थान का होना जरूरी होता है और उन व्यक्तियों में एक साथ रहने की प्रबल आकांक्षा हो।"[20]

न्यू वेबस्टर शब्दकोश में Nationality की परिभाषा इस प्रकार दी गयी है कि "किसी की एक राष्ट्र से संबद्ध होने की गौरवपूर्ण भावना तथा उस राष्ट्र के साथ किसी के श्रद्धायुक्त संबंध को राष्ट्रीयता कहा जा सकता है।"[21]

1.3 राष्ट्रीयता के नियामक तत्व

किसी राष्ट्र के प्रति श्रद्धा, भक्ति, प्रेम या उद्वेग जैसी भावनाएँ कैसे पैदा होती हैं? जनसमुदाय के किसी निर्धारित भूभाग में निर्धारित कालावधि तक निवास करने से उस भूभाग के प्रति उस जनसमुदाय में ममत्व का पैदा होना भी एक साधारण बात है, जिसको राष्ट्रीयता का उन्मेष स्थान कहा जा सकता है। इसके अलावा एक ही जाति के लोगों के बीच जो एकता की भावना उदित होती है, वही भावना व्यापक धरातल पर राष्ट्रीयता का रूप लेती है। अन्य संदर्भों में धर्म, संस्कृति, राजनैतिक व्यवस्था इत्यादि भी राष्ट्रीयता के प्रेरक तत्व कहलाये जा सकते हैं। इतिहास में देखा गया है कि किसी देश में धर्म के कारण राष्ट्रीयता का विकास हुआ है तो किसी अन्य देश में भाषा या सांस्कृतिक परंपरा के कारण। कभी-कभी इनमें से कुछ तत्व प्रधान रूप में और कुछ गौण रूप में राष्ट्रीयता के उन्मेष के सहायक सिद्ध होते हैं। स्थूल रूप से राष्ट्रीयता के नियामक तत्व इस प्रकार हैं - निश्चित भूभाग, संस्कृति, इतिहास व परंपरा, धर्म, भाषा और साहित्य, आर्थिक स्थिति, राजनैतिक स्थिति।

1.3.1 निश्चित भूभाग

किसी निर्धारित भूभाग में कुछ समय तक रहने के कारण, जनसमुदाय के मन में उस भूभाग के प्रति उत्कट प्रेम की भावना सहज ही पैदा हो जाती है। राष्ट्रीयता के विकास में यही उत्कट भावना सहायक होती है। किसी भी प्रदेश को बाह्य जगत् से अलग करके उसे एक राष्ट्र का रूप देने वाला प्रथम तत्व है भौगोलिक सीमाएँ। इन भौगोलिक सीमाओं के ही कारण किसी भी राष्ट्र का नक्शा बनता है और उस राष्ट्र का जन समुदाय सर्वप्रथम भौगोलिक दूरियों के ही कारण बाह्य जगत् से स्वयं को अलग तथा स्वतंत्र महसूस करता है। इतना ही नहीं राष्ट्रीयता के सभी नियामक तत्वों में मूर्तिमान एवं सबसे प्रथम तत्व भौगोलिक सीमाएँ ही है। क्योंकि भूभाग के अभाव में किसी भी राष्ट्र के अस्तित्व का सवाल ही पैदा नहीं होता। यही कारण है कि संचार व घुमक्कड़ जातियों का कोई निर्धारित राष्ट्र नहीं बना पाया।

भूमण्डल प्राकृतिक बाहुल्य का सुंदर उदाहरण ही है। समुद्र, नदियाँ, पर्वत, मरुस्थल, पठार, मैदान एवं सरोवर प्रत्येक प्रदेश को दूसरे प्रदेश से भिन्न बनाते हैं। ज़ाहिर है कि प्राकृतिक वातावरण, जल-वायु आदि के ही कारण उन प्रदेशों में निवास करनेवाली जनता के

रहन-सहन, आहार-विहार, वेष-भूषा आदि तय होते हैं। उस जनसमुदाय की संस्कृति, जीवन-शैली, भाषिक अभिव्यक्तियाँ, साहित्य सहित अन्य कलाओं की संरचना में उस प्रदेश की प्राकृतिक परिस्थितियों के प्रभाव को नकारा नहीं जा सकता। राष्ट्रीयता संबंधी उपरोक्त परिभाषाओं से स्पष्ट होता है कि राष्ट्रीयता एक प्रबल रागात्मक मनोनुभूति (sentiment) की उपज होती है। इस मानसिक अनुभूति के ही चलते लोग अपने भूभाग को अधिकतर मातृभूमि के रूप में ही अभिहित करते हैं। (जर्मनी देश के लोग अपने देश को पितृभूमि कहते हैं) भूभाग विशेष के अभाव में अपने राष्ट्र के प्रति इस प्रकार के रागात्मक संबंध का निर्माण हो ही नहीं सकता। भारतवर्ष की यह स्वस्थ परंपरा रही कि यहाँ की जनता पृथ्वी को माता तथा स्वयं को उसकी संतान मानकर धन्यता का अनुभव करती है। यजुर्वेद की उक्ति 'माता पृथ्वी पुत्रोहं पृथिव्यां' इसका प्रमाण है। यजुर्वेद में कई मंत्र इस भूभाग को माता के रूप में मानकर उसकी प्रार्थना करते हैं तथा उन मंत्रों का एक संकलन ही 'भूमिसूक्तम' तथा 'भूसूक्तम' के नाम से स्थिर हुआ। इस प्रकार भूभाग राष्ट्रीयता के विकास-पोषण में बहुत सहायक तत्व सिद्ध होता है। अथर्ववेद (12-1-60) में मातृभूमि की अवधारणा पर एक मंत्र मिलता है -

यामन्वैच्छद्धविषा विश्वकर्मान्तरर्णवे रजसि प्रविष्टाम्।
भुजिष्यं पात्रं निहितं गुहा यदाविर्भोगे अभवन्मातृमद्भ्यः।।[22]

अर्थात् जल और मिट्टी में घुसी हुई, छिपी हुई जिस भूमि को बहुविध-कर्मशील पुरुष आत्मत्याग पूर्वक मातृभूमि के रूप में चाहता है, उसे माता समझनेवालों के लिए जो रक्षण गुफा में रखे हुए पदार्थ की तरह छिपा रहता है वह उपभोग के लिए प्रकट हो जाता है।

यहाँ विचार करना चाहिए कि जिसे हम मातृभूमि और पितृभूमि आदि सम्मान सूचक और प्रेम भरे शब्दों से स्मरण करते हैं वह वास्तव में क्या वस्तु है? यदि एक दृष्टि से देखें तो वह पानी और मिट्टी या इनके आधार पर बने पहाड-जंगल आदि के अतिरिक्त और कुछ भी नहीं है। हमारी मातृभूमि पानी और मिट्टी का एक महान ढ़ेर भर रह जाती है। मिट्टी और पानी के समुदाय में क्या मातृत्व और क्या पितृत्व? मिट्टी और पानी के समुदाय में न पाया जानेवाला यह मातृत्व हममें मानसिक स्तर पर विद्यमान होता है। भौतिक तत्त्व के साथ मानसिक भावना का भी जुड़ा रहना आवश्यक सिद्ध होता है। तब हमें मातृभूमि प्राप्त होती है। मंत्र का पूर्वार्द्ध इसी तत्व की ओर संकेत करता है कि विश्वकर्मा जिस स्वरूप को माता

चाहने लग जाता है वही मातृभूमि है। आखिर मनुष्य को ऐसा करने की आवश्यकता ही क्या? मंत्र का उत्तरार्द्ध इसका उत्तर देता है कि इस प्रकार की मातृ भावना से ही मनुष्य को भोग और रक्षा मिल सकती हैं। किसी भूखण्ड को माता समझने का क्या अभिप्राय है? जब एक व्यक्ति अपनी माता को अपना समझता है, उसके मान-अपमान को अपना मान-अपमान, उसके सुख-दुःख को अपना सुख-दुःख और उसके मंगल-अमंगल को अपना मंगल-अमंगल मानता है। वैसे ही जब वह किसी प्रदेश को अपना समझने लगेगा तो उसके निवासियों के मान-अपमान को अपना मान-अपमान, उनके सुख-दुःख को अपना सुख-दुःख और उनके मंगल-अमंगल को अपना मंगल-अमंगल मानता है। तब यह कहना होगा वह उस भूभाग को अपनी मातृभूमि समझता है। जब किसी देश में रहनेवाले लोगों के अंदर उसके और उसके निवासियों के प्रति इतने गहरे आत्मीय भाव पैदा हो जाते हैं, तब पारस्परिक सहयोग से उनको वे सारे भोग और सुख प्राप्त होने लगते हैं जिनकी कभी पहले कल्पना भी नहीं की जा सकती थी। पर इसके लिए व्यक्ति को आत्मत्याग करना पड़ता है। वेद के जिस सूक्त का यह मंत्र है वह अंततोगत्वा हमें मातृभूमि के इतने ऊँचे आदर्श पर ले जाना चाहता है। क्या मातृभूमि की भावना से ही सुख-भोग मिल जायेंगे? वेद उत्तर देता है कि विश्वकर्मा। जो नाना प्रकार के कर्म करने में प्रवीण हैं वे ही मातृभूमि से सुख पा सकते हैं। अकर्मण्य लोग तो मातृभूमि का दूध नहीं पी सकते। माता का दूध भी वही बच्चा पी सकता है जो हाथ, पाँव, मुँह हिला सकता हो। क्रिया-हीन को कोई भी माता दूध नहीं पिला सकती। अतः जिस देश में लोग जितने ही अधिक विश्वकर्मा होंगे उस देश की सुख-संपत्ति उतनी ही अधिक वृद्धि प्राप्त करेगी। इसलिए उपर्युक्त वेदमंत्र कहता है कि ''हे मनुष्य..भूमि को माता समझना और विश्वकर्मा बनना सीख, तेरे लिए सुख के भण्डार खुल पड़ेंगे।''

1.3.2 संस्कृति

भूभाग के बाद संस्कृति किसी जनसमुदाय के मध्य राष्ट्रीयता की भावना को उत्पन्न करनेवाला शक्तिशाली तत्व होता है। पंडित जवाहरलाल नेहरू के अनुसार ''संसार भर में जो भी सर्वोत्तम बातें जानी या कही गयी हैं, उनसे अपने आपको परिचित करना ही संस्कृति है।''[23]

किसी राष्ट्र की सभ्यता की आधारशिला उस राष्ट्र की संस्कृति होती है। हर एक राष्ट्र की अपनी संस्कृति होती है जिसके आधार पर वहाँ की जनता अपने आचार-विचार, संप्रदाय,

रीति-रिवाज, त्योहार आदि का निर्माण करती है। इनके साथ-साथ संगीत, साहित्य, शिल्प एवं स्थापत्य कला, चित्रकला, वास्तु तथा भवन निर्माण आदि अनेक कलाएँ संस्कृति के ही प्रतिफलित रूप होती हैं। जन समुदाय को इन सबके माध्यम से राष्ट्रीयता का स्पष्ट संदेश मिलने की हर संभावना होती है। इतिहास साक्षी है कि कई देशों की राष्ट्रीयता की निर्माण-प्रक्रिया में उन देशों के सांस्कृतिक महानुभावों ने स्तुत्य प्रयास किया है तथा जनता में राष्ट्रीयता की लहर दौड़ायी है। ऐसे महान व्यक्तियों को सांस्कृतिक चेताओं के रूप में जनता ने अपार सम्मान दिया।

श्री रामधारी सिंह दिनकर जी ने संस्कृति को राष्ट्रीयता के निर्माण में सर्वोपरि माना तथा राष्ट्रकवि को उस देश की संस्कृति से नाभिनालबद्ध घोषित किया। उनके शब्दों में ''राष्ट्रकवि उसे कहना चाहिए जो अपने देश की प्रत्येक संस्कृति को अपने में समेट लेता है तथा सभी संप्रदायों के बीच जो देशगत ऐक्य है उसे मुखर बनाता है .... राष्ट्र पुरुष या राष्ट्र कवि बनना समान रूप से कठिन कार्य होता है। दोनों के लिए असीम धैर्य और अपरिमित उदारता की आवश्यकता है।''[24] चाहे साहित्य हो या अन्य कला, मूलतः कलाकार अपने समय के अन्य प्राणियों से अपेक्षाकृत अधिक संवेदनशील, जागृत एवं चैतन्य होता है तथा वह अपने राष्ट्र में परिव्याप्त उच्च एवं कल्याणकारी सांस्कृतिक उद्‌भावनाओं का सफल संवाहक रहता है। यही कारण है कि एक सफल कलाकर अपने समय में ही नहीं बल्कि भविष्य में भी अपनी कलाकृतियों के माध्यम से जीवित रहता है। जब-जब उस राष्ट्र की जनता उन कलाकृतियों से साक्षात्कार प्राप्त करती है, तब-तब अपने राष्ट्र विशेष की महानता का अनायास ही स्मरण हो आता है और इसी बिन्दु पर राष्ट्रीयता का प्रसार होता है। इस प्रकार संस्कृति भी राष्ट्रीयता के निर्माण में प्रमुख तत्व सिद्ध होती है। आधुनिक युग में भारत को संस्कृति से जोड़कर राष्ट्रीयता का नवीन पाठ पढ़ानेवाले महान सांस्कृतिक नेता स्वामी विवेकानंद हुए।

1.3.3 इतिहास-बोध

कई संदर्भों में किसी राष्ट्र का इतिहास भी लोगों में राष्ट्रीयता का प्रसार करता है। एक देश का जितना लम्बा और प्राचीन इतिहास हो, वह देश अपनी जनता को एकसूत्र में बांधने में उतना ही सक्षम सिद्ध होता है। पर जनता को इस महान इतिहास से परिचित कराना

ही इतिहास-बोध है। डॉ. राजमल बोरा ने इतिहास-बोध को राष्ट्रीयता के प्रमुख तत्वों में से एक माना है। उनके शब्दों में - "राष्ट्रीयता अमुक राष्ट्र के नागरिकों के अपने बोध से संबंधित है। यह बोध ऐतिहासिक बोध है। राष्ट्र के नागरिक अपने आप को पहचानें। अपने आपको पहचानने में उन्हें अपनी उपलब्धियों का ज्ञान होगा। उन्हें अपने भूभाग की सीमाओं का ज्ञान हो। उन्हें अपने भूभाग के इतिहास-भूगोल मालूम हो और इस आधार पर राष्ट्र के नागरिक अपने समान सामाजिक, आर्थिक और राजनैतिक हित को समझें।"[25] इतिहास और परंपरागत मूल्यों को देखकर लोग अपने राष्ट्र के प्रति गर्व का अनुभव कर सकते हैं और आपस में एकता क़ायम कर सकते हैं। ठीक इसी स्थान पर साहित्यकार और कलाकारों की भूमिका अहम् बन जाती है। वे ही ऐसे लोग हैं जो अपने राष्ट्र के इतिहास-पन्नों में झाँककर अतीत के भव्यस्वरूप को आत्मसात् करते हैं और उस भव्यता को कलात्मक ढ़ंग से अभिव्यक्त भी करते हैं। इतिहास व गौरवशाली अतीत की परंपरागत विचारधारा राष्ट्रीयता का प्रेरणा स्रोत बनने का संदर्भ यूरोप में सबसे प्रभावशाली ढ़ंग में देखा जा सकता है। वहाँ मध्ययुगीन सामन्तवादी मान्यताओं के कारण सारे यूरोपीय देशों में सामाजिक और आर्थिक परिवर्तन हो रहे थे। जन-शोषण करनेवाले पूँजीपतियों का आविर्भाव हो रहा था। सामाजिक एवं आर्थिक असमानताओं के कारण मध्ययुगीन यूरोप होशिये पर खड़ा था। ठीक उसी समय मानववादी शिक्षाओं ने प्राचीन ग्रीक इतिहास एवं परंपरा की ओर लोगों का ध्यान आकृष्ट किया और उन्हें अपनी प्रेरणा का स्रोत बनाया। इस प्रकार इतिहास और परंपरा से प्रेरित जनचेतना के कारण मध्ययुगीन सामाजिक एवं सांस्कृतिक जीवन में एक महान क्रांति का सूत्रपात हुआ।

भारत के संदर्भ में भी हमारे साहित्यिक मनीषियों ने प्राचीन इतिहास व परंपराओं के ही मूल्यों पर जनता में राष्ट्रीयता की पावनधारा प्रवाहित की। महाराणा प्रताप, झाँसी की लक्ष्मी, छत्रपति शिवाजी, वीर हम्मीर, गुरु गोविंद सिंह जी, छत्रसाल, मंगलपाण्डेय, चंद्रशेखर आज़ाद, भगतसिंह इत्यादि लोग इतिहास के पन्नों की अपेक्षा जनमानस में ज़्यादा जीवंतरूप में निवास करते हैं। कोई संदेह नहीं कि इतिहास के ये व्यक्तित्व भारत की राष्ट्रीयता के लिए हमेशा प्रेरणादायक हैं। इतना ही नहीं, इतिहास किसी भी राष्ट्र के महानतम प्रसंगों का साक्षी होता है। किसी राष्ट्र के उच्चतम अध्याय में बने निर्माण और शिल्प आदि इतिहास के ही

द्वारा प्रकट होते हैं और आगामी पीढ़ियों में नयी चेतना और उत्साह के निर्माण में सफल सिद्ध होते हैं। वर्तमान पीढ़ी इतिहास और परंपरा के द्वारा गौरवशाली अतीत के स्मृति चिह्नों में अपनी आत्मा की प्रतिच्छायो के दर्शन कर सकती है।

1.3.4 धर्म

राष्ट्रीयता के निमायक तत्वों में धर्म की भी प्रधान भूमिका होती है। धर्मावेग के कारण जनता में एकता का सूत्रपात होता है तथा वही एकता राष्ट्रीयता का विस्तार पाती है। धार्मिक एकता में आध्यात्मिकता का विशेष योगदान रहता है। अस्मिता खोकर बिखरी पड़ी जाति में प्राणशक्ति फूँककर उसे एकत्र करके पुनः चेतनायुक्त बनाने में धर्म कई बार सफल सिद्ध हुआ है। जब-जब राष्ट्र पर संकट के बादल छाये तब-तब प्रतापी धार्मिक व्यक्तियों ने आध्यात्मिकता का पाठ पढ़ाकर लोगों को पुनः जागृत किया। कभी-कभी धर्म का प्रताप राष्ट्र की सीमाओं को भी लाँघ कर अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर प्रभाव दिखाता है। हज़रत मुहम्मद के प्रभावशाली व्यक्तित्व के कारण धर्म के नाम पर कई राष्ट्रों में एकता का निर्माण हुआ तथा उन राष्ट्रों की उन्नति हो सकी।

भारत में धर्म और आध्यात्मिकता के बल पर जनता में चेतना का संदेश पहुँचानेवाले मनीषियों की परंपरा बहुत प्राचीन है। प्राचीन काल में भारत की एकता का प्रधान आधार धर्म ही रहा। बाद में जगद्गुरू आद्यशंकराचार्य से लेकर राजा राममोहन राय, स्वामी दयानंद सरस्वती, रामकृष्ण परमहंस एवं स्वामी विवेकानंद तक भारतीय धार्मिक एवं सांस्कृतिक पटल पर अनेक महानुभावों ने अपने उपदेशों के द्वारा जनता को एक बनाया। विशेषकर मध्ययुग में (जब भारत की राष्ट्रीयता का अर्थ आधुनिक राष्ट्रीयता के अर्थ से भिन्न था) धर्म के आधार पर छत्रपति शिवाजी एवं गुरु गोविंदसिंह जैसे नेताओं ने राष्ट्रीयता की रक्षा की। शिवाजी के साथ छत्रसाल जैसे कई राजा भी इस कोटि में आते हैं। यह ठीक है कि रामकृष्ण परमहंस एवं विवेकानांद जैसे महान धार्मिक नेताओं का कार्यक्षेत्र राजनीति नहीं था फिर भी उनके उपदेशों के प्रभाव से देशभक्ति की भावना का भी प्रसार हो रहा था। उधर पंजाब में सिक्ख धर्म का प्रवर्तन ही उस जाति की एकता के लिए हुआ था। गुरु गोविंदसिंह जी, गुरु तेग़बहादुर सिंह जी आदि धर्म के माध्यम से सिक्ख जाति को एकत्र करने में सफल हुए थे। ये सारे प्रयास राष्ट्रीयता का वर्धन करने में बड़े सहायक सिद्ध हुए। धर्म राष्ट्रीयता को किस हद तक

प्रभावित करना चाहिए, इसके बारे में डॉ. राजमल बोरा ने लिखा कि ''राष्ट्रीय मूल्य किसी व्यक्ति को किसी राष्ट्र में उसी समय प्राप्त हो सकते हैं, जब कि वह उस राष्ट्र का नागरिक है। राष्ट्रीय मूल्यों की राजनैतिक सीमाएँ हैं। इन सीमाओं के कारण मानवीय मूल्यों की हानि होती है। राजनैतिक सीमाओं को त्यागने के बाद मनुष्य के साथ जो मूल्य रह जाते हैं, वे धार्मिक मूल्य होते हैं और इस धर्म में सामान्य रूप से पाये जानेवाले मानवीय मूल्य ही प्रबल होते हैं। इन मानवीय मूल्यों की रक्षा अंतर्राष्ट्रीय विधान के अनुसार भले ही होती हों, किन्तु सच्चाई यह है कि व्यावहारिक धरातल पर धार्मिक मूल्य ही अधिक सहायक होते हैं। राष्ट्रीय मूल्य का संबंध राजनैतिक अधिकारों से है। इस अधिकार का बोध इतिहास बोध के आधार पर होता है। यह बोध आज आवश्यक ही नहीं अनिवार्य-सा हो गया है। अब आवश्यकता इस बात की है कि इस बोध में आस्था के निर्माण के लिए प्रयत्न हो। राष्ट्रीयता धर्म से बद्ध होते हुए अपने साथ किसी विशेषण को नहीं जोड़ सकती। धर्म के सामान्य तत्वों को जिनका संबंध मानवीय मूल्यों से है, उनसे संबद्ध होकर ही राष्ट्रीयता जनजीवन में आस्था का निर्माण कर सकती है।''[26]

1.3.5 भाषा और साहित्य

किसी भी जनसमुदाय को एकता-सूत्र में बांधने के लिए भाषा और साहित्य भी महान योगदान देते हैं। एक ही भाषा बोलनेवाले लोगों के बीच एकता का भाव सत्वर पैदा होता है। राष्ट्रीयता का विकास परस्पर भावोद्वेगों के आदान-प्रदान से ही होता है। यह काम करने के लिए भाषा एवं साहित्य से बढ़कर सक्षम वस्तु दूसरी कोई नहीं है। राष्ट्रीयता की व्याप्ति के लिए राष्ट्रभाषा की नितांत आवश्यकता होती है। एकानुभूति के प्रसारण में भाषा और साहित्य किस हद तक सहायक होते हैं, इसकी व्याख्या करते हुए श्री गुरुमुख निहाल सिंह ने लिखा कि ''आधुनिक युग में भाषा एवं साहित्य ही एक ऐसा तत्व है जिसने मानव समुदाय को आपस में संगठित किया है और उनमें राष्ट्रीयता की भावना को उजागर किया है।''[27]

कभी-कभी साहित्यकार राष्ट्रीयता के निर्माण में इतने प्रभावशाली होते हैं कि वे अपनी रचनाओं के माध्यम से सारे राष्ट्र को आबद्ध कर देते हैं और सारी जनता उन्हें अपने राष्ट्रकवि या राष्ट्रलेखक के रूप में सगर्व स्वीकार कर लेती है। यही कारण है कि अंग्रेज़ी के महान लेखक विलियम शेक्सपियर को इंग्लैण्ड के लोग अपनी सर्वोत्तम सांस्कृतिक धरोहर के

रूप में देखते हैं। यूरोप में पुनर्जागरण काल में ग्रीक भाषा-साहित्य तथा दक्षिण अमेरिका में लैटिन भाषा-साहित्य ने ही उन देशों की राष्ट्रीयता के विकास में प्रमुख भूमिका निभायी थी। आज श्रीलंका में स्थित तमिल लोगों के बीच में राष्ट्रीयता के उद्वेग का सबसे बलवती आधार उनकी मातृभाषा तमिल ही है।

इस प्रसंग में जहाँ तक भारत का सवाल है, इस देश में अनेक भाषाएँ हैं और सारी भाषाओं में समृद्ध साहित्य भी है। लेकिन परतंत्रता के समय उन सारी भाषाओं का निराकरण सरकार के द्वारा एक ही मात्रा में हुआ इसलिए राष्ट्रीयता के प्रचार-प्रसार में सभी भारतीय भाषाओं ने एक ही जैसा कार्य निभाया। अंग्रेज़ी शासन के विरुद्ध लोगों में राष्ट्रीय चेतना का विकास करने में हर एक भारतीय भाषा और साहित्य का बहुत बड़ा योगदान रहा। स्वतंत्रता संग्राम के समय भारतीय भाषाओं ने राष्ट्रयीता के प्रसारण में जो स्तुत्य कार्य किया उससे दुनिया परिचित हो चुकी है। इस संदर्भ में हिन्दी को अधिकांश भारतीय जनता ने राष्ट्रीयता की स्फूर्तिप्रदात्री के रूप में स्वीकार किया तथा अंग्रेज़ी की जगह हिन्दी एवं अन्य भारतीय भाषाओं का प्रयोग राष्ट्रीयता का गौरवशाली चिह्न माना जाता था। भारत में असंख्य भाषाएँ और अनगिनत बोलियाँ हैं, पर उन सारी भाषाओं की मूलभूत विचारधारा एक है। इसीलिए सर्वेपल्लि राधाकृष्णन के अनुसार 'भारतीय साहित्य एक ही है जो विविध भाषाओं के माध्यम से मुखरित होता है।' अर्थात् एक ही तात्विक-चिंतन और एक ही प्रकार की विचारधारा भिन्न-भिन्न भाषाओं के द्वारा प्रकट होती है और वही भारतीय साहित्य है। इससे स्पष्ट होता है कि भाषा एवं साहित्य भी किसी राष्ट्र के जनसमुदाय में राष्ट्रीयता की भावना का बीजावापन करने में सक्षम हैं।

1.3.6 आर्थिक स्थिति

राष्ट्रीयता के नियामक तत्वों में आर्थिक स्थिति का योगदान नगण्य नहीं है। निस्संदेह कहा जा सकता है कि आज तक दुनिया भर के अधिकांश देशों में जो राष्ट्रीयता की उज्वल भावना देखने को मिली, उस राष्ट्रीयता का नियामक तत्व कई संदर्भों में उन देशों की आर्थिक स्थिति ही था। औद्योगिक क्रांति के पूर्व तथा पश्चात् दुनिया पर साम्राज्यवादियों का बोलबाला था और इंग्लैण्ड, फ्रॉन्स, हॉलैण्ड जैसे देश विश्वभर में अपने-अपने उपनिवेश बनाकर अनेक देशों का शोषण करते थे। उनके शोषण का मुख्य आशय अपने देश की आर्थिक स्थिति को

और मज़बूत बनाना था। फलस्वरूप भारत समेत अनगिनत देश उस आर्थिक शोषण का शिकार बन चुके थे। इन साम्राज्यवादी शक्तियों के आर्थिक उत्पीड़न के ही कारण कई देशों में राष्ट्रीयता का प्रादुर्भाव हुआ। यहाँ एक बात पर ध्यान देने की आवश्यकता है कि जब तक सामान्य जनता के लिए आर्थिक कष्ट उत्पन्न नहीं होते, जब तक जीना दूभर नहीं बन जाता, तब तक समूचे देश में राष्ट्रीयता की भावना उतनी प्रखर नहीं होती। विद्वानों का मत है कि लोगों में सुख-संतोष के स्तर अलग अलग हो सकते हैं पर दुःख सबका एक ही होता है। अर्थात् विपन्नता एवं आर्थिक दुःस्थिति ही जनसमुदाय को परस्पर नज़दीक लाती हैं तथा उनमें एकता की भावना का कारण बनती हैं। स्वयं भारत ही इस बात का उदाहरण है कि ब्रिटिश साम्राज्यवादियों के आर्थिक शोषण से तंग आयी भारतीय जनता अपने प्रादेशिक, प्रांतीय, भाषागत एवं धार्मिक भेदभावों को भुलाकर एक हो गयी तथा अंग्रेज़ों को देश से बाहर करने में सफल हो सकी। उसी प्रकार द्वितीय विश्वयुद्ध के पश्चात् जापान देश की अर्थ-व्यवस्था तहस नहस हो गयी और जनता आर्थिक रूप से पतन की बहुत गहरी खाई में डूब गयी। अपने देश की खराब आर्थिक स्थिति ने ही जापानियों को राष्ट्रीय स्तर पर एकत्र किया था और देश की कंगाली से ही उनमें पसीना बहाने की प्रवृत्ति बढ़ी।

राष्ट्रीयता के निर्माण में आर्थिक तत्व की प्रधानता के संदर्भ में कार्ल मार्क्स का ज़िक्र किए बिना पूर्णतः स्पष्ट नहीं किया सकता। क्योंकि कार्ल मार्क्स ने दुनिया को सिखाया कि हर देश के इतिहास एवं सामाजिक ढाँचे को उस देश की आर्थिक व्यवस्था की दृष्टि से ही परखना चाहिए। 'दास कैपिटल' एवं 'कम्युनिस्ट मैनिफेस्टो' जैसे ग्रंथों के द्वारा उन्होंने संसार की हर विकसित, विकासशील एवं अविकसित आर्थिक व्यवस्था का विस्तार से व्याख्यान प्रस्तुत किया और शोषण को देश-काल-परिस्थितियों से परे निरूपित किया। उन्होंने विश्वभर के मज़दूर वर्ग को एक होने का नारा दिया जिसके फलस्वरूप अनेक देशों में राष्ट्रीयता मज़दूर वर्ग की एकता का रूप धारण करके प्रतिफलित हुई। कई प्रसंगों में मज़दूर वर्ग की यह एकता राष्ट्रीयता की सीमाओं को भी तोड़कर अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर पहुँच गयी।

1.3.7 राजनैतिक एकता

राजनैतिक एकता भी राष्ट्रीयता के उद्भव-विकास में परम अनिवार्य तत्व है। क्योंकि कई राज्य, कई भाषाएँ, अनेक धर्म, जाति-पाँति की विभिन्नता आदि के बावजूद भी लोग

राजनैतिक सत्ता के ही कारण एक शासन की छत्र-छाया में एक राष्ट्र के रूप में एकत्रित होते हैं। कुछ विद्वान तो राजनैतिक एकता को राष्ट्र का पर्यायवाची शब्द तक मानते हैं। जान स्टूअर्ट मिल ने लिखा कि "यदि किसी जनसमुदाय की इच्छा यह हो कि वे सब एक ही सरकार की छत्रछाया में रहें और उन सब पर एक ही सरकार का प्रभुत्व संपन्न हो और वह सरकार खुद वे ही हो या उन्हींका कुछ अंश हो तो वह स्थिति भी उनमें राष्ट्रीयता का प्रेरक तत्व हो सकती है।"[28] मिल की परिभाषा से यह स्पष्ट होता है कि राष्ट्रीयता की प्रेरणा राजनैतिक एकता से भी मिल सकती है और उस राजनैतिक एकता का प्राणाधार स्वयं शासन ही होता है।

सामान्य अर्थ में भी किसी राष्ट्र का शासक वही होता है जो राजनैतिक दृष्टि से उस राष्ट्र पर अपना प्रभुत्व स्थापित करता हो। यदि हम कहते कि किसी राष्ट्र की जनता स्वतंत्र नहीं है, तो हमारा आशय उनकी राजनैतिक स्वतंत्रता को लेकर ही है। अतः किसी जनसमुदाय में राष्ट्रीयता की व्याप्ति उस जनसमुदाय की राजनैतिक स्थिति को दृष्टि में रखकर ही होती है। दुनिया भर के देशों में अब तक जितनी भी आज़ादी की लड़ाइयाँ लड़ी गयीं, उन सबका अंतिम आशय विदेशी शासन से मुक्त होकर स्वशासन स्थापित करना ही था। मोटे तौर पर कहा जा सकता है राजनैतिक रूप से सत्ता प्राप्त करना ही किसी राष्ट्र की स्वतंत्रता का सामान्य अर्थ है।

भारत के साथ-साथ अनेक देशों में पराये शासन से मुक्त होकर राजनैतिक स्वतंत्रता प्राप्त करने की दृष्टि से कई स्वतंत्रता-संघर्ष हुए और हो रहे हैं। द्वितीय विश्व-युद्ध के पश्चात् कई राष्ट्र जर्मनी तथा इटली के कब्ज़े से मुक्त हुए तथा अंग्रेज़ों के शासन से भारत की मुक्ति भी राजनैतिक स्तर पर ही हुई। विशेषकर भारत के विषय में यह संयोग की बात है कि ब्रिटिश साम्राज्यवाद ने ही विशाल भारत में राजनैतिक एकता की पृष्ठभूमि तैयार की थी और उसी राजनैतिक एकता के कारण देश भर में राष्ट्रीयता का प्रादुर्भाव हुआ जिसके परिणामस्वरूप स्वयं अंग्रेज़ों को ही इस देश को छोड़कर जाना पड़ा। वास्तव में अंग्रेज़ों के पहले भी यहाँ बड़े बड़े साम्राज्यों की स्थापना हुई तथा समूचे भारत को एक ढाँचे में बांधने के प्रयास भी बराबर होते रहे। पर इस प्रयास में किसी किसी को ही सफलता प्राप्त हुई तथा वह भी मात्र कुछ समय के लिए। लेकिन अंग्रेज़ों के शासन में समस्त भारतीय जनता एक ही

राजनैतिक सत्ता के अधीन रखी गयी। इसका कारण स्पष्ट है कि भारत में प्राचीनकाल से लेकर मूलभूत भावात्मक एकता एवं सांस्कृतिक एकता तो हमेशा थीं, पर यातायात-साधनों की कमी के कारण राजनैतिक एकता का अभाव भी हमेशा रहा। यातायात-साधनों की कमी तथा सूचना एवं प्रसारण व्यवस्था की कमजोरी के ही कारण इतने विशाल देश में राजनैतिक एकता पहले कभी क़ायम न हो सकी।

उपरोक्त सभी देशों में जिस राष्ट्रीयता की लहर उठी, वह अपने देश के राजनैतिक रूप से स्वतंत्र होने तक सक्रिय रही और आज़ादी के बाद ही शांत हुई। जब-जब अपने देश पर विदेश शासन के डरावने बादल छा जाते हैं तब-तब जनता में राष्ट्रीयता की लहर जागृत हो उठती है। उदाहरणार्थ भारत की स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद पाकिस्तान तथा चीन से युद्धों के समय और कार्गिल युद्ध के समय देश भर में राष्ट्रीयता की ज्वाला पुनः धधकती नज़र आयी।

इस प्रकार हम सिद्ध कर सकते हैं कि उपरोक्त तत्व राष्ट्रीयता के उद्‌भव-विकास में अत्यंत आवश्यक हैं। लेकिन यहाँ एक बात को विस्मृत नहीं किया जा सकता कि राष्ट्रीयता का हर संदर्भ में एक ही अर्थ नहीं लगाया जा सकता। अर्थात् समय की माँग के अनुसार राष्ट्रीयता का स्वरूप तय होता रहता है। उदाहरण के लिए छत्रसाल एवं शिवाजी जैसे राजाओं के समय में जो राष्ट्रीयता थी उसे 19 वीं शती के उत्तरार्थ की राष्ट्रीयता के साथ जोड़कर देखा नहीं जा सकता। क्योंकि तब तक राष्ट्रीयता की भावना हिन्दुत्व से आगे नहीं बढ़ सकी। अतः उस समय की राष्ट्र-भावना की अवधारणा आधुनिक संदर्भों से अलग अर्थ-छवि रखती है। जिस राष्ट्रीयता एवं राष्ट्रीय जागरण का अध्ययन हम आगे करेंगे, वह सन् 1857 ई. के महान विद्रोह के बाद उत्पन्न राष्ट्र-भावना के साथ ही जुड़ी हुई है। भारत के संदर्भ में राष्ट्रीयता का अर्थ, प्राचीन काल से लेकर आज तक भारत में राष्ट्र-भावना का विकास, इस विकास की पृष्ठभूमि में काम करनेवाले तत्वों का अध्ययन एवं विश्लेषण करना आवश्यक है।

1.4 एक राष्ट्र के रूप में भारत की परिकल्पना : सांस्कृतिक राष्ट्र से राजनैतिक राष्ट्र तक

भारत आज एक विकासशील राष्ट्र है और विश्व में सबसे समृद्ध एवं विशाल जन-राष्ट्रों में से एक है। दुनिया का सबसे बड़ा लोकतंत्र भी भारत में ही उपस्थित है। भारत के कई विषयों की तरह इस विशाल राष्ट्र की राष्ट्रीयता की संकल्पना भी संक्षिप्त न होकर बहुत

विशाल है। भारत की राष्ट्रीयता की व्याख्या करना उतना आसान नहीं है जितना समझा जाता है। क्योंकि राष्ट्रीयता के जिस अर्थ से आज हम परिचित हैं उस अर्थ से प्राचीन भारत की राष्ट्रीयता बहुत भिन्न थी। कहने का अभिप्राय यह है कि आधुनिक काल में राष्ट्र शब्द की उद्‌भावना बिलकुल नयी है और प्राचीन एवं मध्ययुगीन भारत के राष्ट्र और राष्ट्रीयता की उद्‌भावना से कोसों दूर है। इस भिन्नता का कारण है कि किसी भी राष्ट्र की राष्ट्रीयता के देशकाल-सापेक्ष होने की अनिवार्य स्थिति। इस दृष्टि से देखा जाय तो प्राचीन, मध्य एवं आधुनिक कालों में भारत की राष्ट्रीयता के निर्माण एवं विकास में क्रमशः संस्कृति, धार्मिक व सांप्रदायिक वैरुध्य तथा राजनीति - ये तीन मुख्य तत्व दिखायी पड़ते हैं।

प्राचीन भारत में राष्ट्रीयता का आधार मुख्यतः संस्कृति था। उस समय भारत में कई छोटे-बड़े राज्य या जनपद थे जो अलग-अलग थे और खुद को महान मानते थे। इन राज्यों के बीच कलह भी बहुत सहजरूप से होते थे। इसका मतलब यह हुआ कि भारत में तब राजनैतिक एकता नहीं थी। इस राजनैतिक एकता के अभाव का कारण हो सकता है - लोग सांस्कृतिक एकता जुटाने के लिए जितने व्याकुल थे उतने राजनैतिक एकता क़ायम करने के लिए नहीं। भिन्न- भिन्न जातियों के आगमन के कारण भारत अनेक संप्रदायों का निलय भी रहा। इस संबंध में डॉ. रामविलास शर्मा के शब्द उल्लेखनीय हैं - ‘‘महाभारत का युद्ध आरंभ होने से पहले धृतराष्ट्र ने संजय से कहा- तुम इस भारतवर्ष का वर्णन करो, जिसके लिए कौरव और पाण्डव युद्ध करने को तत्पर हैं। संजय ने कहा- इस भारतवर्ष में गंगा, सिंधु, सरस्वती, गोदावरी, नर्मदा, कावेरी आदि नदियाँ बहती हैं। इसमें कश्मीर, गंधार, आंध्र, केरल, कर्णाटक, द्रविड़,कोंकण, मालवा, उत्कल, अंग, बंग, कलिंग आदि जनपद हैं। इस भारतवर्ष में आर्य, म्लेच्छ और दोनों के मिश्रण से उत्पन्न होनेवाले लोग रहते हैं। अपने गुण और बल के अनुसार यहाँ की धरती की सेवा की जाय तो वह कामधेनु के समान सब कामनाओं की पूर्ति करे किन्तु जैसे कुत्ते मांस के टुकड़े के लिए परस्पर लड़ते और एक दूसरे को नोचते हैं, उसी प्रकार राजा लोग इस वसुधा को भोगने की इच्छा रखकर आपस में लड़ते और लूटपाट करते हैं।’’[29]

यद्यपि कई राज्यों के नाम पर भारत बँटा हुआ था तथापि सारे भारत में एक ही प्रकार के सांस्कृतिक मूल्यों के दर्शन होते थे। उपर्युक्त वाक्यों से स्पष्ट होता है कि गंगा से लेकर

कावेरी तक भारत सांस्कृतिक रूप से तो एक था लेकिन राजनैतिक रूप से आपसी कलहों में बँटा हुआ था। लेकिन एक बात ज़ाहिर है कि भले ही भारत कई टुकड़ों में विभक्त हो तथा राजनैतिक रूप से एक न हो, तथापि सांस्कृतिक धरातल पर भारत हमेशा एक था। महाभारत और रामयाण से लेकर अनेक पुराणों एवं शास्त्रों में इस बात के कई प्रमाण आसानी से मिल जाते हैं। भारतीय जनता की सांस्कृतिक एकता का बोध इस राष्ट्र की भौगोलिक सीमाओं के परे हो जाता था। इसीलिए ''गंगे च यमुने कृष्णे, गोदावरी, सरस्वती / नर्मदा सिंधु कावेरी जलेस्मिन् सन्निधिं कुरू।।'' आदि कई मंत्र प्रचार में थे और अब भी हैं। सांस्कृतिक एकता क़ायम रखने में एक और प्रमुख संस्था थी - तीर्थयात्रओं की संकल्पना। प्राचीन भारत में हर एक व्यक्ति के लिए तीर्थयात्रा करना जीवन का एक पवित्र एवं मधुर प्रसंग था। तीर्थयात्राओं के साथ आत्मकल्याण, दैविक अनुभूति का मूर्तिमान अभिव्यक्तीकरण, देशानुराग और राष्ट्र की भौगोलिक एकता का बोध आदि अनेक लक्ष्य जुड़े हुए होते थे। इसलिए आज भी हम देखते हैं कि हिन्दू धर्म के निष्ठावान दक्षिण भारतीय लोगों के लिए उत्तर भारत का सांस्कृतिक केंद्र काशी तथा अन्य तीर्थस्थानों की यात्रा करना बहुत ही पुण्यप्रद है। संपूर्ण काशी यात्रा वही मानी जायेगी जिस यात्रा के दौरान काशी स्थित गंगाजल को साथ लेकर दक्षिण स्थित रामेश्वरम् के सैकतलिंग का अभिषेक किया जाय और रामेश्वरम् के सैकत (रेत) को ले जाकर पुनः काशी के गंगाजल में मिला दिया जाय। इस प्रकार के धार्मिक विश्वासों का जन्म राष्ट्र की भौगोलिक सीमाओं को दृष्टि में रखकर ही हुआ होगा। आद्यशंकराचार्य यद्यपि केरल में जन्मे थे तथापि उनका अद्वैत मत समूचे भारत में व्याप्त है। उन्होंने संपूर्ण भारत की यात्रा करके अपने सिद्धांत का प्रतिपादन किया था। इस संबंध में भारत में स्थित देवी माँ के अष्टादश शक्तिपीठों का वर्णन भी ध्यातव्य है -

लंकायाम् शांकरी देवी, कामाक्षी कंचिकापुरे
प्रद्युम्ने श्रृंगलादेवी, चामुण्डी क्रौंच पट्टणे
अलंपुरे जोगुलांबा, श्रीशैले भ्रमराम्बिका
कोल्हापुरे महालक्ष्मी, माहुर्ये एकवीरिका ।।
उज्जयिन्याम् महंकालीम्, पीठिकायां पुरुहूतिका
ओढ्यायाम् गिरिजा देवी, माणिक्या दक्षवाटिके

हरिक्षेत्रे कामरूपी, प्रयागे माधवेश्वरी
ज्वालायाम् वैष्णवी देवी, गया मांगल्यगौरिका
वाराणस्यां विशालाक्षी, काश्मीरे तु सरस्वती ।।

उपर्युक्त श्लोक में समूचे भारत का भूभाग अंकित हो चुका है। हिन्दू संस्कृति में ऐसे कई श्लोक मिल जाते हैं जिनका उद्देश्य भारत के कोने-कोने में स्थित देवी-देवताओं के परिचय द्वारा भारतीय भौगोलिक एकता को क़ायम रखना था। प्राचीन भारतीय जन 'अयोध्या मधुरा माया काशी कांची अवंतिका' कहकर उक्त नगरों के दर्शन से पुण्य-प्राप्ति का अनुभव करता था। पुराणों में ऐसे कई उदाहरण मिलते हैं कि तीर्थ यात्राओं की संख्या अगणित है और ये पवित्रस्थल भारत भर में उत्तर, दक्षिण, पूर्व और पश्चिम चारों ओर फैले हुए हैं।

ये सभी नगर भारतीय विशाल भूभाग के हर एक कोने का प्रतिनिधित्व करते हैं। उस समय राष्ट्रीय दृष्टि से धर्म एवं संस्कृति का स्थान राजनीति से कई गुना ज़्यादा शक्तिशाली और ऊँचा था। राजा तो इन तीर्थस्थलों की रक्षा करनेवाले मात्र था। यह निर्विवाद है कि किसी भी देश की राष्ट्रीय भावना के संरक्षण में उस देश की भाषा का महत्वपूर्ण योगदान रहता है। प्राचीन भारत में भी राष्ट्रीयता के परिरक्षण में संस्कृत भाषा-साहित्य की भूमिका अत्यंत महत्वपूर्ण रही। प्राचीन भारत की प्रधान भाषा संस्कृत थी और संस्कृत ही धर्म एवं संस्कृति से संबंधित सभी व्यवहारों में उपयुक्त भाषा थी। फिर भी यह मात्र धार्मिक भाषा न होकर वाणिज्य और व्यापार जैसे क्षेत्रों में भी प्रयुक्त थी। संस्कृत में जो कुछ भी लिखा गया, वह सारे देश में प्रामाणिक था। संस्कृत के कवि भी एक प्रदेश के न होकर समूचे भारतीय भूभाग का प्रतिनिधित्व करनेवाले हुए। संस्कृत का महत्व इस बात से भी स्पष्ट हो जाता है कि आधुनिक भारत की सभी भाषाओं की जड़ें संस्कृत भाषा से सींची हुई हैं। संस्कृत के पश्चात् प्राकृत, अपभ्रंश तथा देशी भाषाओं ने भी राष्ट्रीयता की परंपरा की रक्षा करती आयी हैं। इस प्रकार की सांस्कृतिक एकता के कारण भारत प्राचीन समय में एक ही राष्ट्र के रूप में भासित होता था। दक्षिण भारतीय यह कभी नहीं समझते थे कि काशी किसी दूसरे राष्ट्र में है और बनारस के लोग यह नहीं समझते थे कि श्रीशैलम् पार करके कांचीपुरम् जाना कोई विदेश जाना है। ध्यान देने की बात है कि इन नगरों के राज्य अलग-अलग थे पर राष्ट्र कभी अलग नहीं रहा। हर्षवर्धन की मृत्यु के समय तक इस प्रकार की एकता भारत में बनी हुई थी।

सन् सातवीं-आठवीं सदी से आरंभ हुए अरबों के आक्रमणों से धीरे-धीरे भारत की राष्ट्रीयता पर धार्मिक भेद का रंग चढ़ने लगा। क्योंकि अब तक भारत ने उन सारे धर्मों को आत्मसात् कर लिया जो बाहर से आये हुए थे या अपने ही भीतर कई कारणों से उपजे थे यथा - जैन धर्म, बौद्ध धर्म आदि। लेकिन इस्लाम धर्म भारत के लिए बिलकुल नया था और इस्लाम को माननेवाले लोग इतनी जल्दी भारत में घुल-मिल नहीं गये। इस्लाम को भारत का धर्म बनने के लिए कुछ ज़्यादा ही समय लग गया और यही समय भारत का मध्ययुग कहलाता है। इस समय इस्लाम का प्रतिनिधित्व करनेवाले लोगों में अधिकतर आक्रमणकारी, विध्वंसक, उत्पीड़क या शोषक ही रहे इसलिए उन लोगों के विरुद्ध संघर्ष करना मध्ययुग में राष्ट्रीयता कहलाने लगा। यहाँ स्पष्ट हो जाता है कि मध्ययुग में भारत की राष्ट्रीयता का आधार धार्मिक या सांप्रदायिक रहा। क्योंकि उस समय तक इस्लाम धर्म विदेशों से आया हुआ धर्म ही था। कई लोग उत्साह में आकर इस प्रवृत्ति को हिन्दू राष्ट्रवाद का नाम दे देते हैं। उस समय राष्ट्रीयता की इस धार्मिक प्रतिक्रिया का कारण उस समय इस देश में अधिकांश संख्या में रहे हिन्दू लोगों पर किये गये अत्याचार ही थे जिनका लक्ष्य इस राष्ट्र की सांस्कृतिक विरासत एवं धार्मिक संस्थाओं को तहस-नहस करके तत्कालीन राष्ट्रीय भावना के मूलभूत तत्वों को हानि पहुँचाना ही था।

मध्ययुग में भारत के छोटे-बड़े राज्य आपसी कलहों से अलग हुए थे और ऐसी स्थिति में दिल्ली पर सल्तनत का आधिपत्य हो जाना कोई आश्चर्यजनक विषय नहीं था। दिल्ली बादशाहों में अल्लाउद्दीन खिलज़ी, बाद में मुगल बादशाह औरंगज़ेब जैसे राजाओं के समय में उपर्युक्त धार्मिक अत्याचारों का सिलसिला बढ़ गया। बीच में कुछ वर्षों के लिए सम्राट अकबर के काल में धार्मिक भेदभाव कुछ कम ज़रूर हुए लेकिन बाद में औरंगज़ेब का समय तो इस्लामेतर धर्मावलंबियों के लिए दुःस्वप्न ही साबित हुआ। उसकी प्रतिक्रिया में छत्रपति शिवाजी जैसे लोगों का उद्‌भव सहज ही था। धर्म के आधार पर दिल्ली से सदैव संघर्षरत राजपूतों का इतिहास इसी राष्ट्रीयता से अनुप्राणित रहा और बुंदेले, जाट, सिक्ख आदि छत्रपति शिवाजी से आरंभ नये राष्ट्रवाद के समर्थक हुए। छत्रपति शिवाजी महाराज तो हिन्दूपद पादशाही का निर्माण करना चाहते थे और बुंदेलखण्ड के वीर छत्रसाल को उन्होंने सूचित किया कि उत्तर में ही रहकर मुग़लों का सामना करते रहे जिससे हिन्दूराज्य की

स्थापना का कार्य आसान हो सके। इससे मालूम होता है कि मध्ययुग में धर्म का पलड़ा राजनीति से भारी था। मध्ययुगीन भारत में राष्ट्रीयता की स्थिति इन शब्दों से स्पष्ट होती है कि ''.... इस समय मध्यकालीन राजनैतिक व्यवस्था का आधार था व्यक्तिवादी निरंकुश राजतंत्र। इस प्रकार की व्यवस्था में शासक ही राष्ट्र के भाग्य का विधाता, युगचेतना का नियामक तथा कुछ सीमा तक एक विशिष्ट जीवन-दर्शन का प्रतिपादक भी होता है। उसके सार्वभौम व्यक्तित्व के समस्त अधिकार केंद्रित रहते हैं। जब शासक विजातीय हो तो इस वैयक्तिक तत्व की निरंकुशता और भी बढ़ जाती है। उसकी दृष्टि यदि समन्वयवादी न हुई तो शासक तथा शासित का संबंध केवल शोषक और शोषित का ही रह जाता है। वास्तव में औरंगजेब का यही हाल था। व्यक्तिवादी राजतंत्र पर भारत की जनता का विश्वास था ही साथ ही दिल्ली का बादशाह ईश्वर के रूप में भी पूजा जाता था। वही भारत का सम्राट भी कहलाता था। जनता की इस भावना की अभिव्यक्ति पण्डितराज जगन्नाथ द्वारा हुई है। उन्होंने अपनी पुस्तक भामिनी विलास में लिखा है : दिल्लीश्वरो वा जगदीश्वरो वा। ऐसी बड़ी शक्ति ने जब भारत की राष्ट्रीय भावना को हानि पहुँचायी तो उसकी प्रतिक्रिया निम्न रूप में हुई।

औरंगजेब के पूर्व अकबर के शासनकाल से ही या उससे कुछ पूर्व ही भक्ति की लहर देश के कोने-कोने में फैल गयी थी। संतों, साधुओं, आचार्यों और भक्तों ने देश को मध्यकाल में यह समझाने का प्रयत्न किया कि भारत सांस्कृतिक दृष्टि से एक है। शंकराचार्य का नाम इनमें प्रमुख रूप से लिया जा सकता है। बाद में भक्तों ने -केवल उत्तर में ही नहीं, महाराष्ट्र, कर्नाटक, आंध्र आदि दक्षिणी भागों में भी आचार्यों के इन विचारों को काव्य के माध्यम से जनता तक पहुँचाया। ज्ञान और भक्ति की तुलना में भक्ति को श्रेष्ठता का पद मिला। मानस के उत्तरकाण्ड और विनयपत्रिका में तुलसी ने इस पर विशेष प्रकाश डाला है। इसी तरह सूर का भ्रमरगीत सार भी भक्ति को महत्व देता है। इस काल में आते-आते औरंगजेब ने देश में जागी हुई भगवद्भक्ति की दृष्टि से- जनता की भावनाओं पर कुठाराघात किया तो जनता पर तो इसकी प्रतिक्रिया हुई ही, संत समाज पर भी इसकी प्रतिक्रिया हुई। उन्होंने भी यह अनुभव किया कि अब 'हरिस्मरण' से कुछ नहीं होगा। महाराष्ट्र में समर्थ रामदास ने दासबोध की रचना नये आलोक में युग की परिस्थितियों के अनुरूप की। पंजाब में भी गुरु गोविंदसिंह ने नानक के दर्शन की व्याख्या इसी दृष्टिकोण से की। उन्होंने राजनैतिक जागृति को महत्व दिया।''[30]

औरंगजेब जैसे राजाओं के कुकृत्यों के खिलाफ़ शिवाजी जैसे लोगों ने तलवार उठायी तो तत्कालीन परिस्थितियों में वह राष्ट्रीयता का सबसे बड़ा उदाहरण था। पर हिन्दू एवं इस्लाम धर्मों की टकराहट से केवल इन दोनों के बीच संघर्ष ही होते रहे, ऐसी बात नहीं। सांस्कृतिक एवं सामाजिक धरातल पर कई लोगों ने दोनों धर्मों के बीच तनाव कम करने का भी प्रयास किया और दोनों धर्मों के बीच समन्वय स्थापित करने का स्तुत्य कार्य भी किया। हिन्दी साहित्य का भक्तिकाव्य इस समन्वयकार्य की विराट् चेष्टा कहा जा सकता है। इस काल में कबीरदास और जायसी जैसे कवियों ने इस्लाम को भारतीय धर्म निरूपित किया और गोस्वामी तुलसीदास ने तो प्राचीनकाल के संस्कृतगर्भित रामायण सार को लोकभाषा अवधी में उतारकर सांस्कृतिक मूल्यों का पुनःस्थापन किया।

इस प्रकार मध्ययुग में भारत की राष्ट्रीयता का अर्थ बिलकुल भिन्न है और यह तत्कालीन धार्मिक विरोधों का प्रतिनिधित्व करनेवाला भी है। लेकिन आधुनिक युग में ऐसी राष्ट्रीयता की कल्पना भी नहीं की जा सकती क्योंकि अब भारत पर किसी एक धर्म के लोग दावा नहीं कर सकते कि यह सिर्फ उन्हीं का देश है। युगों से इस धरती की संस्कृति ने अनेक धर्म और संप्रदायों को आत्मसात् कर लिया उसी प्रकार हिन्दुवेतर धर्म भी इस देश के अपने बन चुके और उन्हें अलग करके देखने की चेष्टा आज के संदर्भ में राष्ट्रीयता के खिलाफ़ ही होगी।

आधुनिक युग में आकर भारत की राष्ट्रीयता का आधार राजनीति हो गया। यह परिणाम आधुनिक युग की देन ही है। क्योंकि राष्ट्र शब्द को जिस अर्थ में हम आज ले रहे हैं, उस अर्थ में राष्ट्र की भावना का उदय सर्वप्रथम फ्राँन्स की राज्यक्रांति के समय से माना जाता है। इसी क्रांति ने स्वतंत्रता, सामानता और बंधुत्व का पाठ विश्व के सामने रखा। फ्राँन्स की राज्यक्रांति का यूरोप के सभी देशों पर फलद प्रभाव पड़ा। आधुनिक राष्ट्रीयता की भावना के बारे में बर्ट्रेंड रसेल ने लिखा कि ‘‘राष्ट्रवाद का प्रारंभ जॉन ऑफ आर्क के समय से माना जा सकता है जब फांसीसियों में अंग्रेज़ों की विजय के विरुद्ध सामूहिक प्रतिरोधात्मक भावना जाग उठी थी। अंगरेजी राष्ट्रवाद स्पेनी बेडे के प्रतिरोध के फलस्वरूप पैदा हुआ और कुछ ही वर्षों बाद इसकी ऐतिहासिक अभिव्यक्ति शेक्सपियर में हुई। जर्मन और रूसी राष्ट्रवाद का जन्म नैपोलियन के प्रति विरोध से हुआ। अमरीकी राष्ट्रवाद ब्रिटिश फौज़ियों के प्रतिरोध

स्वरूप जन्मा। दुर्भाग्यवर्श, एक यह ऐसी मनोवैज्ञानिक प्राकृतिक गत्यात्मकता है जिसने प्रत्येक दशा में राष्ट्रवाद के विकास को अनुशासित किया है।''[31]

फ्रान्स की क्रान्ति से अनुप्राणित कई देशों में ब्रिटेन भी एक था और ब्रिटेन के ज़रिये उस विचारधारा का विकास भारत में भी होने लगा। संसार के अन्य देशों की भांति भारत में भी राष्ट्रीयता का उदय विदेशी साम्राज्यवाद के दमनकारी शासन के फलस्वरूप ही हुआ। अंग्रेज़ी पढ़ाई के कारण भारतीय जनमानस ने यूरोप के इस विशेष चिंतन को आत्मसात् किया और उसका प्रतिफलन सर्वप्रथम सन् 1857 के स्वतंत्रता संग्राम में दिखायी दिया। इस प्रकार आधुनिक काल में आकर अंग्रेज़ों के साम्राज्यवाद के विरोध में ही भारत की राष्ट्रीयता का उदय हुआ। ध्यान देने की बात है कि इस समय तक हिन्दू और मुसलमान आपस में जीना सीख चुके और मध्ययुगीन सामाजिक समन्वय के कारण आपसी भेदभाव मिटने लगे। जब मुग़ल बादशाहों की शक्ति समाप्त हो गयी तब भारत में पुनः प्राचीन काल का राजनैतिक वातावरण छा गया और कई छोटे-छोटे राज्यों में राष्ट्र की शक्ति बिखर गयी। ऐसी स्थिति में कई यूरोपीय जातियों ने भारत पर आधिपत्य पाने का प्रयास किया और अंततः अंग्रेज़ों ने भारत की गद्दी अपना ली।

जब अंग्रेज़ नहीं थे, केवल देश में हिन्दू अधिक थे, तब मुसलमान लोग इस देश के लिए विदेशी बने और हिन्दूराज्य की स्थापना तत्कालीन राष्ट्रीय चेतना का परम लक्ष्य बना। पर जब ये दोनों जातियाँ घुलमिल कर भारतीय बनकर सहजीवन करने का समझौता कर चुकीं तब भारत में यूरोपीय लोगों का आगमन हुआ और अंग्रेज़ इस देश के नेता बन बैठे। ऐसी स्थिति में हिन्दू और मुसलमान दोनों के लिए अंग्रेज़ पराये हो गये और अंग्रेज़ों की दमननीति के खिलाफ़ कदम उठाना राष्ट्रीयता का पर्यायवाची शब्द-सा बन गया। यदि अंग्रेज़ भी मुग़लों की तरह भारत को अपनी मातृभूमि के रूप में स्वीकार करते तो इस देश का इतिहास कुछ दूसरे ढ़ंग से लिखा जाता। लेकिन यहाँ ध्यान देने की बात है कि अंग्रेज़ों ने कभी भारतीय बनने में रुचि नहीं दिखायी और उनका आशय भी मुग़लों की तरह इस देश में अपना साम्राज्य स्थापित करना या इस भूमि को अपनी मातृभूमि मानना कभी नहीं था। उन्होंने भारत को हमेशा ब्रिटिश महारानी के साम्राज्य का सबसे उपजाऊ उपनिवेश के रूप में ही देखा।

आधुनिक युग में भारत की राष्ट्रीयता का आधार इस प्रकार राजनैतिक परिस्थितियाँ रहीं और इस भावना के विकास में अंग्रेज़ों की दमननीति और आर्थिक शोषण के साथ-साथ, सांस्कृतिक सुधारवादी आंदोलन, यातायात-साधन, साहित्य एवं महान सांस्कृतिक नेताओं की भूमिका भी थी। अंग्रेज़ों के समय में भारत राजनैतिक रूप से एक होता गया क्योंकि अंग्रेज़ों के समय में ही आधुनिक वैज्ञानिक प्रगति के कारण रेल-तार-डाक की व्यवस्था की गयी। समूचे भारत को एक बनाने में रेल-व्यवस्था ने अभूतपूर्व काम किया जिसके फलस्वरूप सारा राष्ट्र एक ही राजनैतिक शासन की छत्रछाया में आ गया। इससे राष्ट्र के निर्माण में अपूर्व परिणाम हासिल हुए। प्राचीन भारत में, सांस्कृतिक रूप से तो भारत एक था लेकिन राजनैतिक रूप से नहीं। लेकिन आधुनिक युग में यह स्थिति समाप्त हो गयी। अंग्रेज़ों की शासन-व्यवस्था के कारण विशाल भारत के प्रधान शहरों के बीच दूरियाँ कम होती गयीं। इस प्रकार आधुनिक युग में राजनैतिक परिस्थितियों ने भारतीय राष्ट्र की परिकल्पना में अहम् भूमिका निभायी।

मध्ययुगीन धार्मिक वैरुध्य ने जाते-जाते भारत को दो राष्ट्रों में खण्डित कर दिया तो तीन दशकों से कम अवधि में भाषिक वैरुध्य ने इस उपमहाद्वीप में एक और राष्ट्र को जन्म दिया।

संक्षेप में कहा जा सकता है कि प्राचीन भारत की राष्ट्रयीता का संबंध संस्कृति से, मध्ययुगीन राष्ट्रीयता का संबंध धार्मिक या सांप्रदायिक वैरुध्य से तथा आधुनिक भारत की राष्ट्रीयता का संबंध राजनैतिक परिस्थितियों से है। फिर भी आधुनिक भारत में राष्ट्रीय जागरण के विकास की पृष्ठभूमि में भारत की पूर्ववर्ती सांस्कृतिक एवं धार्मिक परंपराओं का विशेष महत्त्व रहा।

संदर्भ-सूची

1. अथर्व वेद, प्रथम काण्ड, सू. 2911, 4
2. अथर्ववेद : 19।।41।।1
3. नालंदा विशाल शब्दसागर, सं.डॉ.नवल, पृ.1177
4. आधुनिक साहित्य, आचार्य नंददुलारे वाजपेयी, पृ.97
5. आधुनिकता और राष्ट्रीयता, डॉ.राजमल बोरा, पृ.83
6. हिन्दी कविता में युगान्तर, डॉ.सुधीन्द्र, पृ.43
7. साहित्य-शोध-समीक्षा, डॉ.विनय मोहन शर्मा, पृ.4
8. हमारे राष्ट्र जीवन की परंपरा, डॉ.उमाकांत आप्टे, पृ.3-4
9. New Webster's Dictionary, P..993
10. Oxford English Dictionary, P.789
11. "Nation denotes a human group bound together by common solidarity- a group whose members place loyalty to the group as a whole over any conflicting loyalties" - John stuart mill

    -International Encyclopedia of the social sciences --Volume ii).
12. "A Nation is historically evolved, stable community of language, territory,economic life and psycological make-up manifested in a community of culture." Marxism and the question of Nationalities, Stallin.j, P..6)
13. नालंदा विशाल शब्दसागर, सं.डॉ.नवल, पृ.1177
14. आधुनिक साहित्य, आचार्य नंददुलारे वाजपेयी, पृ.97
15. राष्ट्रीयता, गुलाबराय पृ.2
16. आधुनिक राजनीतिक विचारधाराएँ, डॉ.जी.डी.तिवारी, पृ.117
17. आधुनिकता और राष्ट्रीयता, डॉ.राजमल बोरा, पृ.44
18. आधुनिकता और राष्ट्रीयता, डॉ.राजमल बोरा, पृ.84 पर उद्धृत
19. "Nationality is a spiritual sentiment of principle arising among a number of people usually of the same race, recident on the same territory, sharing a common language, the same religion, similar history and traditions, common interests, with common political associations and common ideas of political unity." - Principles of Political Science, P. 26-27
20. "The Nation is an aggregate of individuals united by certainties political, racial,

religious, culture (including language) and historical notably a common origin or at least a belief there in ..... The most important consideration in this matter is a corporate will, a sufficiantly powerful determination to live and to work together.'' The Encyclopedia of America, P.749

21. "National quality or character; the fact or relation of belonging to a particular nation or country, or origin with respect to a nation; devotion to one's own nation;national integrity" - New Webster's Dictionary, P.993
22. 'वेदोद्यान के चुने हुए फूल', आचार्य प्रियव्रत वेद वाचस्पति, पृ.192 पर उद्धृत,
23. 'संस्कृति के चार अध्याय', रामधारीसिंह दिनकर, प्रस्तावना, पृ.5
24. ऊर्वशी, रामधारी सिंह दिनकर, ब्लर्ब पर उद्धृत
25. आधुनिकता और राष्ट्रीयता, डॉ.राजमल बोरा, पृ.46
26. आधुनिकता और राष्ट्रीयता, डॉ.राजमल बोरा, पृ.60-61
27. In modern time it is language and literature which have knit several people together and inspired in them the sentiment of nationality. - हिन्दी और तेलुगु काव्य में राष्ट्रीय चेतना, डॉ.एन.वी.एस.प्रसाद, पृ.5 पर उद्धृत
28. "If they are united among themselves by common sympathies, which do not exist between them and others - which make them co operate with each other more willingly than with other people, desire to be under the same government, and desire that it should be government by thenselves or aportion of themselves." John stuart mill, International Encyclopedia of the social sciences Volume-II
29. निराला की साहित्य-साधना, भाग-2, डॉ.रामविलास शर्मा पृ.60
30. आधुनिकता और राष्ट्रीयता, डॉ.राजमल बोरा, पृ.79
31. आधुनिकता और राष्ट्रीयता, डॉ.राजमल बोरा, पृ.84

द्वितीय अध्याय

राष्ट्रीय जागरण : प्रकृति और विकास

द्वितीय अध्याय
राष्ट्रीय जागरण : प्रकृति और विकास

2.1 राष्ट्रीय जागरण से तात्पर्य

राष्ट्रीय जागरण का अर्थ बड़ा ही विस्तृत है। सामान्य तौर पर कहा जा सकता है कि जागरण का अर्थ - जागना है, अतः किसी राष्ट्र के जागरण का अर्थ उस राष्ट्र की जागृति है।

जब राष्ट्र की परंपराएँ किसी भी वर्तमान समय के लिए अप्रासंगिक हो जाती हैं, तब भविष्यद्रष्टा नेताओं- सुधारकों द्वारा जनता को जागृत करके वर्तमान के लिए आवश्यक नई व्यवस्था की स्थापना का प्रयास किया जाता है। ऐसी स्थिति में जनता को जागृत किया जाता है और महान् लक्ष्यों की ओर उन्मुख किया जाता है। यह जागरण किसी राष्ट्रीय समाज की जीवंतता या चेतना का सूचक बन जाता है।

भारत में भी 19 वी शती के उत्तरार्थ में एक क्रांतिकारी चेतना का समारंभ हुआ जिसने निष्क्रियता एवं शैथिल्य में सोयी जाति को जगाया तथा कुछ महान लक्ष्यों की ओर राष्ट्र को उन्मुख किया। वैकल्पिक और उन्नत समाज के निर्माण की ओर पथ-प्रदर्शन करने वाली यह चेतना ही राष्ट्रीय जागरण है। राष्ट्रीय जागरण का तात्पर्य मात्र स्वतंत्रता प्राप्ति के लिए संघर्ष नहीं है वह उससे भी उच्चकोटि की परिकल्पना है जो राष्ट्र की राजनैतिक मुक्ति के साथ-साथ सामाजिक, आर्थिकमुक्ति की कामना करती है। शिवदान सिंह चौहान के अनुसार ''राष्ट्रीय जागरण से तात्पर्य अपने राष्ट्रीय अस्तित्व और एकता की साम्राज्य विरोधी राजनीतिक चेतना या भावना का उत्पन्न हो जाना मात्र नहीं है। इससे केवल इतना ही समझ लेना इसके अर्थ को अत्यन्त संकुचित कर देना है।''[1] अतः राष्ट्रीय जागरण मात्र राजनैतिक स्वाधीनता को दृष्टि में रखकर देश से अंग्रेज़ों को हटाने भर का आंदोलन नहीं था बल्कि हर क्षेत्र में जाति को नींद से झकझोर कर, वर्तमान स्थितिगतियों से अवगत कराकर भविष्य-निर्माण के लिए उद्यमी बनाना ही राष्ट्रीय जागरण का सही अर्थ है। राष्ट्रीय जागरण का सबसे पहला फल यह है कि तब तक कई कारणों से अलग-अलग पड़े हुए भारतीयों में 'हम सब एक राष्ट्र के हैं' वाली भावना का प्रादुर्भाव हुआ।

2.2 राष्ट्रीय जागरण और नवजागरण

राष्ट्रीय जागरण और नवजागरण का संबंध बहुमुखी और संकीर्ण है। नवागत परिस्थितियों में भारत की सांस्कृतिक एकता को पुनः अनुभूत करते हुए जब फिर से नये सिरे से राष्ट्रीय जागरण का नारा दिया गया, तब इस प्रक्रिया को नवजागरण की संज्ञा दी गई। कुल मिलाकर जिस सांस्कृतिक चेतना के कारण भारत में आधुनिक काल का समारंभ और राष्ट्रीय जागरण का उदय माना जाता है, उस राष्ट्रीय सांस्कृतिक चेतना को विद्वानों ने नवजागरण नाम दिया है। इस नवजागरण के अंतर्गत उन सारे महान सांस्कृतिक नेताओं का प्रस्ताव आता है जिनके कारण पराधीनता में खोए हुए भारत की सांस्कृतिक भव्यता का नवजागरण हुआ। नवजागरण का समय 19 वीं सदी से माना जाता है जब देश पर साम्राज्यवाद के बादल छाये हुए थे। नवजागरण के सांस्कृतिक नेताओं में पहले राजा राममोहन राय का नाम लिया जाता है। उनके बाद स्वामी दयानंद सरस्वती, रामकृष्ण परमहंस, स्वामी विवेकानंद, एनीबेसेंट, सर्वेपल्लि राधाकृष्णन आदि महानुभावों के नाम आते हैं। इनके प्रयासों के ही कारण भारत को अपनी प्राचीन सांस्कृतिक विरासत का पुनः ज्ञान प्राप्त हुआ और आगे चलकर स्वतंत्रता आंदोलन के समय उसका प्रभाव राष्ट्रीय जागरण पर भी पड़ा।

नवजागरण को स्वतंत्रता आंदोलन के दौरान व्यापक रूप मिला। जब नवजागरण की चेतना स्वतंत्र राष्ट्र की संकल्पना से घुल-मिल गई, तब उसे राष्ट्रीय जागरण कहलाया गया। यह राष्ट्रीय जागरण इस देश के सांस्कृतिक मूल्यों के पुनर्जागरण से आरंभ होकर समस्त भारत को एक राष्ट्र के रूप में देखते हुए अंग्रेज़ों की दासता से उसे मुक्ति दिलाने की ओर आगे बढ़ा। लेकिन राष्ट्रीय जागरण का परमलक्ष्य केवल अंग्रेज़ों को देश से निष्कासित करने से संपूर्ण नहीं होता। राष्ट्र की जड़ता व निष्क्रियता को हर क्षेत्र से दूर करना इसका लक्ष्य रहा। इस दृष्टि से राष्ट्रीय जागरण के अंतर्गत भारत का स्वतंत्रता संग्राम ही नहीं स्वातंत्र्योत्तर भारतीय जनता की मुक्ति ही शामिल हो जाती है। राष्ट्रीय जागरण के लक्ष्यों में सामाजिक कुरीतियों का अंत ही नहीं आर्थिक असमनातओं का अंत भी जुड़ा हुआ है। स्थूल रूप में कहा जा सकता है कि राष्ट्रीय जागरण का सांस्कृतिक पक्ष नवजागरण से कुछ विशेषताओं को ग्रहण करता है और उसका राजनैतिक पक्ष भारत के स्वतंत्रता संग्राम से।

भारत एक ऐसा देश है, जिसका इतिहास हज़ारों साल पुराना है। इतने लंबे अंतराल में इस देश को कई बार जागृत होना पड़ा। भारत का प्राचीन इतिहास साक्षी है कि भारत में राजनीतिक विचारों एवं संस्थाओं को लेकर, विधि- प्रणालियों को लेकर, दार्शनिक विचार धाराओं को लेकर, धार्मिक सुधारों को लेकर, भाषा एवं साहित्य को लेकर अनेक जागरण हुए थे। उदाहरण के लिए हिन्दी साहित्य के इतिहास में जिस युग को विद्वानों ने भक्तिकाल के नाम से अभिहित किया, उस समय भी सर्वत्र अशांति छायी हुई थी और भारत के सांस्कृतिक पटल पर अंधकार छाया हुआ था। उसी समय तुलसी, कबीर, सूर जैसे कवियों का उदय हुआ और उन्होंने जनता को पुनः सांस्कृतिक मूल्यों की शीतलछाया प्रदान की थी। रामविलास शर्मा जी ने इसीलिए भक्तिकाल को लोकजागरण काल कहा और आधुनिक काल में संपन्न सांस्कृतिक पुनर्जागरण को नवजागरण माना।

2.3 राष्ट्रीय जागरण की पृष्ठभूमि

राष्ट्रीय जागरण की पृष्ठभूमि अंग्रेज़ों के भारत-विजेता होने पर तैयार होती है। अंग्रेज़ों के शासन काल में भारत को कई परिवर्तनों से गुजरना पड़ा। अंग्रेज़ों का भारत पर आधिपत्य प्लासी एवं बक्सर (क्रमशः 1757 ई.,1764 ई.) युद्धों के बाद स्थापित हुआ। 18 वीं शती के प्रारंभ तक उनका शासन संपूर्ण रूप से स्थिर हो चुका। यह समय यूरोप में सांस्कृतिक पुनर्जागरण से उत्पन्न महान जनक्रांतियों तथा आंदोलनों का समय था। फ्रान्सीसी क्रांति जैसे महान लोकतांत्रिक आंदोलन इसी समय के साथ जुड़ा था। इतना ही नहीं लगभग इसी समय औद्योगिक क्रांति का भी सूत्रपात हुआ था। इन सारे विषयों का संबंध प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से भारत में संपन्न राष्ट्रीय जागरण से है। विशेषकर अंग्रेज़ों की नीति औद्योगिक क्रांति के बाद पूर्णतः शोषक बन गई। भारत के प्रति उनके रवैये जनसमुदाय के लिए बहुत ही असह्य सिद्ध हुए। इसके परिणाम कई तरह से निकले।

“जो अंग्रेज़ पहले-पहल भारत में आ बसा, उसका नाम टामस स्टीफेन्स था और वह ईसाइयत का प्रचार करने के उद्देश्य से सन्1579 ई. में गोआ आया था। उसने इस देश में चालीस वर्ष तक रहकर ईसाइयत की सेवा की।”[2] इतिहास कहता है कि सर्वप्रथम तीन अंग्रेज़ लोग महारानी एलिजबेथ का पत्र लेकर पहले पहल सम्राट अकबर के दरबार में उपस्थित हुए थे। स्पष्ट है कि भारत में अंग्रेज़ों का आगमन व्यापार निमित्त हुआ था। पूर्वी

देशों में व्यापार करने की दृष्टि से सन् 1600 ई. में ब्रिटेन में ईस्ट इण्डिया कम्पनी का प्रादुर्भाव हुआ था। इस कम्पनी का आशय 'रत्नगर्भा वसुंधरा' तथा 'सोने की चिड़िया' कहलाने वाले भारत से व्यापारिक संबंध स्थापित करना था और महारानी एलिजबेथ की आर्थिक स्थिति को और मज़बूत बनाना था। इन व्यापारिक कार्यक्रमों का सूत्रपात अकबर के पुत्र जहाँगीर काल में हुआ था और जहाँगीर ने ही सर्वप्रथम अंग्रेज़ों को भारत में व्यापार करने की अनुमति दी थी। "सन् 1608 ई. में जहाँगीर ने कम्पनी को सूरत में तम्बाकू की कोठी खोलने की आज्ञा दी। तभी से तम्बाकू का भारत में एक नाम 'सुरती' प्रचलित हुआ।"[3]

अंग्रेज़ों को भारत में आकर व्यापार करने या यहाँ का धन ले जाने की प्रेरणा यूरोप के कुछ यात्रियों की भारत संबंधी रचनाओं से मिली। क्योंकि तब भारत में मुगलों का शासन अपने चरमोत्कर्ष पर था और भारत सचमुच सोने, हीरे एवं जवहरात से लद गया था। ड्राइन नामक लेखक के नाटक 'औरंगजेब' में इस समय के भारतीय वैभव की गाथा ही प्रस्तुत की गयी थी जिसे पढ़कर यूरोपवासी चकित हो गये थे। दो फ्रान्सीसी यात्री टबर्नियर , बर्नियर ने भी भारत के वैभव-विलास के बारे में प्रचार किया था। इस प्रकार अंग्रेज़ों के भारत में आगमन का प्रथम कारण तो आर्थिक ही रहा। भारत की संपत्ति से ही आकर्षित होकर सर्वप्रथम पुर्तगाल वाले (पंद्रहवी सदी के अंत में) आये। बाद में डचवालों ने आकर उन्हें पराजित किया। सत्रहवी सदी में फ्रान्सीसी लोग तुरंत बाद अंग्रज लोग भारत में आये। इन सबके आगमन का एक मात्र कारण आर्थिक ही रहा था।

भारत में तम्बाकू के व्यापार से आरंभ अंग्रेज़ लोगों की यात्रा क्रमशः सत्ता को अधीन करने तक जारी रही। इस लम्बी यात्रा में उन्होंने कई कूट-नीतियों का प्रयोग किया तथा कई षड्यंत्रों का उपयोग किया, जिनकी व्याख्या करने के लिए पन्नों भर वाक्यों की आवश्यकता नहीं मात्र एक वाक्य ही पर्याप्त है। सत्य तो यह है कि हिन्दुस्तान मक्कारी और षड्यन्त्र से जीता गया।

राबर्ट क्लाइव के नेतृत्व में अंग्रेज़ सेनाओं ने सर्वप्रथम प्लासी (1757 ई.), बाद में बक्सर (1764 ई.)युद्धों में विजय प्राप्त की थी। यही से भारत में अंग्रेज़ों का राज शुरू होता है। इसे हम अंग्रेज़ों की विजय के स्थान पर भारतीयों की पराजय कहें तो ज़्यादा उचित होगा। क्योंकि आपसी कलह, मुसलमान शासकों की विलासी मनोवृत्ति, अनेकता आदि ने ही अंग्रेज़ों

के पाँव भारत-भूमि पर स्थिर होने दिये। "भारत-विजय का काम धर्म और सभ्यता के सिद्धान्त से नहीं, डारविन और नीत्से के सिद्धान्त से जायज था। जिस जाति में अपना शासन आप चलाने की शक्ति नहीं रहती, जो जाति अपने धन-जन का आप विकास नहीं कर सकती और जिस देश का एक प्रान्त दूसरे प्रान्त को तथा एक जाति दूसरी जाति को बराबरी का दर्जा देने को खुद तैयार नहीं होती, वह जाति और देश उन लोगों का गुलाम होकर रहते हैं, जिन्हें लोभ की बीमारी और शक्तिमत्ता का रोग है।"[4]

बाद में भी अंग्रेज़ों ने भेद-भाव की कूटनीति अपनाकर कभी उस नवाब को या कभी इस राजा को धमकी देकर शासन चलाया तथा राजनैतिक रूप से सर्वप्रथम इस देश को मृतक बनाया। सामाजिक धरातल पर भी सारी जाति गहरी नींद में थी। धार्मिक संप्रदायों के नाम पर वर्ण-व्यवस्था के परिणामस्वरूप जात-पाँत और छुआछूत के खर्राटे मारते हुए सच्ची भारतीय आत्मा निश्चिंत सो रही थी।

आर्थिक शोषण की बारी तुरंत बाद शुरू हुई और आर्थिक धरातल पर इस राष्ट्र को मृतप्राय बनाने की प्रक्रिया सन् 1813 ई. के बाद जोर पकड़ती गयी। शोषण - प्रक्रिया को और तेज, और प्रभावशाली बनाने के उद्देश्य से सारे देश में रेल-तार-डाक व्यवस्था का श्री गणेश हुआ। किन्तु अंग्रेज़ों की मन्शा के विपरीत, ऐतिहासिक प्रक्रिया के फलस्वरूप जो कार्य अकबर और औरंगजेब के लिए दुस्साध्य रहा- वह संपन्न हो गया, मतलब देश में राजनैतिक एकता का मार्ग सुगम हुआ तथा लोगों में आपसीमेल हो गया। रेल व्यवस्था के कारण विशाल भारत का जनसमुदाय एक दूसरे के नजदीक आने लगा तथा अंग्रेज़ों के शोषण के विरुद्ध एक ही प्रकार की प्रतिक्रिया हर प्रांत में देखने को मिलने लगी। यही नहीं अपने राजतंत्र को चलाने के लिए क्लर्कों को पैदा करने के उद्देश्य से अंग्रेज़ों ने अंग्रेज़ी शिक्षा का प्रबंध किया। सन् 1835 ई. से अंग्रेज़ी भाषा को राज-भाषा का स्थान दिया गया। इससे भारत के लोगों को अपने देश से बाहर दुनिया में हो रही महान क्रांतियों, आंदोलनों से परिचित होने का अवसर अनायास ही प्राप्त हुआ। यही नहीं भारतीय जनता एक दूसरे के विचारों को मिल्टन, रूसो, वाल्टेयर, बर्कमिल, थामस पेन, मिल, स्पेन्सर आदि की रचनाओं के आलोक में बाँटने लगी। इससे उन्हें अमेरिका और यूरोप में हुई स्वाधीनता-प्राप्ति और राष्ट्रीय आंदोलनों के प्रेरणास्रोतों का ज्ञान होने लगा। "राजनैतिक खलबलियों और आर्थिक अधःपतन

के बावजूद भारत में ब्रिटिश - शासन की पहली सदी कुछ रूपों में उसके इतिहास का एक स्मरणीय युग है। इस काल में भारत में बौद्धिक क्रियाशीलता का अपूर्वस्फोटन हुआ तथा उसके सामाजिक और धार्मिक विचारों में मौलिक परिवर्तन हुआ। इन परिवर्तनों के लिए प्रेरणा अंग्रेज़ी शिक्षा के प्रवेश से ही मिली। इसी मार्ग से पश्चिम के उदार विचार आये, जिन्होंने लोगों को आंदोलित किया तथा उन्हें युग-युगांतर की निद्रा से जगाया।''[5]

इस पाश्चात्य शिक्षा प्रणाली को भारत पर थोपने के फलस्वरूप राष्ट्र के सांस्कृतिक पटल पर अनेक आश्चर्यजनक परिणाम अंकित हुए। एक - अंग्रेज़ी शिक्षा पाकर देश में एक ऐसा वर्ग पैदा हो गया जो तन से तो भारतीय थे, मगर मन से यूरोपवासी थे ! इस वर्ग की युवापीढ़ी को अब भारत के प्राचीन मूल्य एवं धार्मिक आचरण हास्यास्पद लगने लगे तथा वे इन सबका खुली जुबान में भीषण विरोध करते थे। इतना ही नहीं वे यहाँ तक कहने लगे कि सारा हिन्दू धर्म ही एक ढ़कोसला है और वेद, उपनिषदें, पुराण, मंत्र, कर्मकाण्ड, यज्ञोपवीत एवं सारे नैतिक मूल्य सब फालतू चीजें हैं। इस पीढ़ी के कारण एक प्रकार से तत्कालीन समाज की अधिकांश हिन्दू जनता में मानों भूकम्प आ गया क्योंकि यह पीढ़ी तो उन्हीं बातों की धज्जियाँ उड़ाने लगी जिन बातों पर एक सांप्रदायिक हिन्दू गर्व कर सकता है। एक प्रकार से ये शिक्षित लोग वेष-भूषा से अंग्रेज़ हो गये थे तथा भारतीयता छलकने वाली हर चीज इन्हें घृणास्पद लगती थी। एक तरफ से ईसाई मिशनरी भी अपना काम तेजी से करती जा रही थीं तथा चारों तरफ वर्तमान धार्मिक विश्वासों एवं दर्शन की भर्त्सना हो रही थी। श्री रामधारीसिंह दिनकर के शब्दों में इस स्थिति से दूसरा महत्वपूर्ण परिणाम था - 'यूरोप की आधिभौतिकता के साथ प्राचीन भारत की आध्यात्मिकता की टकराहट' होना।

अपने धर्म पर निरंतर होते प्रहारों से भारत के अत्यंत प्राचीन धर्म की नींद टूटने लगी तथा यहाँ ऐसे लोगों का आविर्भाव होने लगा जो यह सोचने लगे कि 'क्या हमारा धर्म और हमारी संस्कृति इतने हेय और नीच हैं?' इस प्रकार सोचने को बाध्य करके अंग्रेज़ों के नयी शिक्षा प्रणाली संबंधी विधान ने एक तरह से इस देश में राष्ट्रीय जागरण की पृष्ठभूमि अपने ही हाथों तैयार कर दी।

संसार में साधारणतया देखा जाता है कि संघर्ष एवं टकराहट से ही उच्चकोटि के फल प्राप्त होते हैं। सोने को बार-बार अंगारों का संस्पर्श करने पर ही तथाकथित स्वर्णिम कांति

प्राप्त होती है। मानसिक रूप से यूरोपवासी बनकर भारत की सर्वथा निंदा-भर्त्सना करनेवालों के कारण ऐसे उद्‌भट विद्वानों का जन्म हुआ जिनका आशय हिन्दू धर्म एवं संस्कृति के असली रूप को पहचानकर उस पर पड़ी गलत धारणाओं का कड़ा जवाब प्रस्तुत करना था। ऐसे महानुभावों में सर्वप्रथम राजा राममोहनराय थे। इन्होंने हिन्दू धर्म की गहराइयों में पैठकर विचार-मंथन किया तथा यह जानकारी प्राप्त की कि हिन्दू धर्म उतना घटिया नहीं है जितना बताया जा रहा है। यह निस्संदेह पाश्चात्य शिक्षा प्रणाली का भारत के साथ किया गया सबसे बड़ा उपकार है।

अंग्रेज़ सरकार के हानिकारक रवैये के कारण भारत की प्राचीन अर्थ-व्यवस्था ठप्प रह गयी। अंग्रेज़ लोग यहाँ का कच्चा माल इंग्लैण्ड ले जाते और वहाँ का तैयार माल अधिक दामों पर यहाँ बेचते। स्वार्थान्ध अंग्रेज़ सरकार ने जनता के कल्याण की ओर तनिक भी ध्यान नहीं दिया अतः ग्रामीण उद्योग - धंधों का सर्वनाश हो गया तथा भारतीय किसानों का तीव्रतम शोषण होने लगा। इससे असंतुष्ट जनता जहाँ - तहाँ विद्रोह कर रही थी पर उन छिट-पुट आंदोलनों को अंग्रेज़ सरकार ने आसानी से दबा दिया। ये सारे विरोध और प्रतिरोध क्षेत्रीय स्तर पर हो रहे थे और किसी धर्म विशेष से ही जुड़कर हो रहे थे। पर इनसे पता चलता है कि सारे भारत की जनता के हृदय असंतोष की ज्वाला में दग्ध हो रहे थे। जनता की इसी असंतुष्टि का सर्वोच्च परिणाम सन् 1857 ई में निकला जिसे अंग्रेज़ सरकार के पिट्ठुओं ने 'सिपाहियों का छोटा-मोटा आंदोलन' का नाम दिया परंतु वास्तव में जो एक महान क्रान्ति का प्रतिफलित रूप है। इसे भारतीय जनता अपने राष्ट्रीय जागरण का सबसे प्रमुख अंग मानती है और ''प्रथम स्वतंत्रता संग्राम'' का नाम देकर निरंतर प्रेरणा ग्रहण करती है। अंग्रेज़ों की दमननीति के शिकार बने सारे जमींदारों, राजाओं एवं नवाबों ने इस जनक्रांति का नेतृत्व किया। भारतीय जन सागर में 'राष्ट्रीय जागरण' की लहर फूट पड़ी। इसी घटना से आधुनिक युग का प्रारंभ माना जाता है। यह जागरण इसके पहले जितने भी राष्ट्रीय स्तर के आंदोलन हुए थे - उन सबसे भिन्न था क्योंकि इसमें पूर्व आंदोलनों की भांति क्षेत्रीय, स्थानीय, धार्मिक तत्वों की अपेक्षा सारे राष्ट्र को एकजुट में जोड़कर देखने की राष्ट्रीयता की प्रवृत्ति काम कर रही थी। स्वतंत्रता संग्राम-बिपिनचन्द्र नामक ग्रंथ में त्रिपाठी जी ने लिखा कि ''संक्षेप में ब्रितानी शासन के मूलभूत उपनिवेशिक चरित्र और भारतवासियों के जीवन पर उसके

हानिकारक प्रभाव ने भारत में एक शक्तिशाली साम्राज्यवाद विरोधी आंदोलन के उद्‌भव और विकास का रूप दिया। यह आन्दोलन एक राष्ट्रीय आन्दोलन था क्योंकि इसने अपने अंक में भारतीय समाज के विभिन्न वर्गों एवं दलों को समेट लिया। इन वर्गों एवं दलों में साम्राज्यवाद को लेकर अपने निजी अंतर्विरोध थे, जिनके कारण वे एक ऐसे राष्ट्रीय आन्दोलन में एक साथ हो लिए जो सभी का था। उनमें आपस में भी अपने हितों को लेकर टक्करें हुईं। लेकिन एक समान शत्रु के विरुद्ध उन्होंने अपने मतभेदों को भुलाकर स्वयं को एकबद्ध किया।''[6]

2.4 राष्ट्रीय जागरण के प्रेरक तत्व

राष्ट्रीय जागरण की पृष्ठभूमि के निर्माण में खुद अंग्रेज़ों का बड़ा हाथ रहा है। भारत में आधुनिक युग का उषोदय अंग्रेज़ों के ही कारण हुआ। फिर भी विद्वानों का मत है कि अंग्रेज़ी राज्य स्थापित होने के कारण ही आधुनिकता का आगमन हुआ, पर एक ऐतिहासिक प्रक्रिया के अंतर्गत ही यह हुआ- अंग्रेज़ इस प्रक्रिया के निमित्त रहे। बच्चन सिंह जी ने लिखा कि ''जिस तरह भक्ति आंदोलन के बारे में प्रश्न उठाया जाता है कि यदि मुसलमान न आए होते तो भक्ति आंदोलन की लहर न उठती उसी प्रकार कहा जाता है, यदि अंग्रेज़ न आए होते तो आधुनिक काल न आता। ऐतिहासिक प्रक्रिया के तहत उसे आना ही था। किन्तु अंग्रेज़ी उपनिवेश ने इस प्रक्रिया को तेज कर दिया। अनजाने ही सही नया परिवर्तन ले आने का श्रेय उसी को दिया जाता है।''[7]

अतः राष्ट्रीय जागरण की शुरूआत यद्यपि आधुनिक काल से जुड़ी हुई है एवं आधुनिक काल के आगमन के जिम्मेदार अंग्रेज़ ही थे, तथापि कुछ अन्य महत्वपूर्ण तत्व भी राष्ट्रीय जागरण के निर्माण में प्रमुख भूमिका निभा चुके हैं। उनके अंतर्गत भारत की तत्कालीन परिस्थितियाँ, उन परिस्थितियों के कारण उत्पन्न सांस्कृतिक-सुधारवादी आंदोलन, कुछ राजनैतिक परिणाम एवं अंग्रेज़ों के द्वारा अपनायी गयी उत्तेजक कार्रवाइयाँ आदि आते हैं। अतः उन प्रेरक तत्वों का कुछ विस्तार से अध्ययन करना राष्ट्रीय जागरण को समझने के लिए अपेक्षित है।

2.4.1 अंग्रेज़ शासन में भारत का आर्थिक शोषण

भारत में ब्रिटिश शासन का प्रारंभ प्लासी युद्ध यानी सन् 1757 ई. से हुआ था। राबर्ट क्लाइव ने बक्सर युद्ध सन् 1764 ई. मं विजय प्राप्त करते ही बंगाल, बिहार और उड़ीसा पर

अपना प्रभुत्व जमा लिया था। इस प्रकार बंगाल, बिहार एवं उड़ीसा पर अपने अधिकार द्वारा अंग्रेज़ों ने शेष भारत पर भी कब्जा करना शुरू किया था। यूरोपीय व्यापारियों के आगमन तक भारत आर्थिक रूप से अत्यंत सुरक्षित था असल में भारत की अतीव आर्थिक उन्नति ने ही पाश्चात्य व्यापारियों को इस देश की तरफ आकृष्ट किया था। इस आर्थिक सुरक्षा का आधार प्राचीन भारत की ग्रामीण जनता थी जो आत्मनिर्भर थी। भारत गुप्तों के स्वर्णयुग को देख चुका था तथा मुगलों के उत्कर्ष काल में भी इस अर्थव्यवस्था को कोई नुकसान नहीं पहुँचा। ग्रामीण आर्थिक व्यवथा मूलतः परस्पराश्रित एवं परस्पर पूरक अर्थव्यवस्था थी। मतलब गाँव में जितने भी लोग थे उन सबके लिए काम थे, मतलब सबके लिए रोटी थी। गाँवों में प्राचीन वर्ण-व्यवस्था का पालन व्यक्ति के पेशे के अनुसार होता था - इसका मतलब समाज में सब के लिए निर्धारित काम थे। पैसा किसी एक वर्ग का कठपुतला न होकर सारे ग्रामीण जनों के मध्य बँटा हुआ था।

भारत की आर्थिक व्यवस्था का सबसे प्रभावशाली अंश लोगों के पारस्परिक समन्वय एवं आपसी सहकार रहे। बढ़ई, सुनार, कुम्हार, तेली, मेहनतकश मज़दूर वर्ग, किसान,जुलाहा, कारीगर इन सबके बीच आर्थिक समन्वय होता था। इन सभी के लिए गाँव ही पोषक था। उदाहरण के लिए बढ़ई से तैयार की गयी वस्तुओं की खपत उसी गाँव की जनता के द्वारा आसानी से हो जाती थी। इनमें किसी भी वर्ग के लिए आर्थिक दुस्थिति का सामना करना नहीं पड़ता था। इसके कारण भूमि पर आधारित लोग कम ही थे फलस्वरूप भूमि पर ज़्यादा दबाव नहीं था। इसलिए जितनी उपजाऊ भूमि थी - उसीसे काम चल जाता था। उस समय आबादी भी बड़ी समस्या नहीं थी। भारतीय हस्तकलाएँ एवं अन्य प्रकार के ग्रामीण लघु उद्योग संसार भर में प्रसिद्ध थे। भारतीय कारीगरी दुनिया में बहुत विख्यात थी। सूती कपड़ों के लिए बंगाल, गुजरात, अहमदाबाद- रेशमी कपड़े के लिए मुर्शिदाबाद, लाहौर और आगरा, कपड़ों के लिए कश्मीर, लाहौर और आगरा बहुत ही प्रख्यात थे। ग्रामीण समाज की इस आर्थिक विजय का सबसे प्रसिद्ध कारण - अभी उद्योगों में यंत्रीकरण का प्रवेश नहीं हुआ था। इससे गाँवों में कृषि एवं उद्योग दोनों के बीच एक सुंदर समन्वय देखने को मिलता था। राजनैतिक स्तर पर जितने भी परिवर्तन हों साधारण जनता सुख-चैन से जीवन यापन करती थी और दो जून रोटी खाती थी।

ऐसे समय भारत में अंग्रेज़ों का राज शुरू हुआ था। उनका शासन मुख्यतः स्वयंविकास के लिए था- यहाँ की जनता का कल्याण उनका आशय कदापि नहीं था। इसका कारण भी बहुत स्पष्ट है- मूलतः वे व्यापारी थे राजा नहीं..इस संदर्भ में महाकवि अकबर इलाहाबादी का लिखा एक शेर बड़ा ही संगत मालूम होता है। उन्होंने अंग्रेज़ों की राजधानी कलकत्ते से दिल्ली ले जाने के संदर्भ में यह शेर लिखा था -

"कदम अँगरेज कलकत्ते से अब दिल्ली में धरते हैं।
तिजारत देख ली, देखें, हुकूमत कैसी करते हैं ।।"

असल में जनता पर राजतंत्र चलाना उनका लक्ष्य नहीं था। आर्थिक लाभ प्राप्त करना ही उनका आशय था। ".... मगर हुकूमत अँगरेजों का उद्देश्य नहीं थी। हुकूमत वे इसलिए कर रहे थे कि इससे उनकी तिजारत को फायदा था। जब तिजारत को फायदा नहीं रहा, वे हुकूमत छोड़ कर चले गये।"[8]

जब शासक का प्रधान लक्ष्य जनता का कल्याण या समाज का हित न होकर अपना खजाना भरना हो तो इसके कितने भयानक परिणाम निकलते हैं - यह अंग्रेज़ शासन के समय भारत की आर्थिक स्थिति को देखने से ही मालूम हो जाता है। आडम स्मिथ जो राजनीतिक अर्थशास्त्र के पिता माने जाते हैं, उन्होंने The wealth of Nations ग्रंथ में ईस्ट इण्डिया कम्पनी वालों के बारे में इस प्रकार लिखा कि "महज़ व्यापारी लोगों का चलाया शासन, चाहे वह किसी भी देश पर क्यों न हो...बहुत ही निचले स्तर का होता है। यदि हम उन्हें (कम्पनी वालों को) सच्चे शासक मान लेंगे, तो उन्हें यूरोप का माल भारत में सबसे सस्ते दामों पर बेचना चाहिए था और भारत से जो माल इंग्लैण्ड लेकर गये वहाँ उसे अधिक से अधिक दामों पर बेचना चाहिए था। ऐसा न होकर हम उन्हें यदि व्यापारी ही मान लेंगे तो वे इसके ठीक विपरीत करते हैं। शासकों के लिए अपने देश का कल्याण ही सबसे प्रमुख अभीष्ट होता है, जबकि व्यापारी लोगों के लिए देश का कल्याण घृणा की चीज है।"[9]

राबर्ट क्लाइव ने बक्सर युद्ध के तुरंत बाद ही बंगार, बिहार और उड़ीसा पर अधिकार पा लिया था इसके तुरंत बाद ही कम्पनी ने भूमि को प्रतिवर्ष लगान वसूल करने वाले उन ठेकेदारों को देना आरंभ किया, जो उसे अधिक लगान देने को तैयार होते थे। कम्पनी की सारी आर्थिक आवश्यकताओं की पूर्ति करने के लिए यही एक मुख्य आधार बन गया था।

अंग्रेज़ों के द्वारा भूमि पर अधिकार प्राप्त ठेकेदार लोग किसानों से ज़्यादा से ज़्यादा लगान वसूल करते थे- जिसमें से उनका अपना हिस्सा भी मिले तथा कम्पनी का हिस्सा भी मिले। इस प्रकार शोषण का शिकार आखिर किसान हुए थे। ठेकेदारों के साथ-साथ सामन्तवादी वर्ग भी किसानों का शोषण कर रहा था। जमींदारों के कारण भारत के करोड़ों किसानों को बेगारी बनना पड़ा। इस प्रकार किसानों की स्थिति अत्यंत दयनीय बनती जा रही थी। पर ब्रिटिश सरकार की दृष्टि इनकी तरफ नहीं थी।

प्राचीन आर्थिक व्यवस्था के अंतर्गत भूमि के मालिक किसान ही थे, पर अंग्रेज़ों की स्वार्थ नीति के कारण इन किसानों के पास लगान एवं अनगिनत करों को चुकाने के लिए पैसे नहीं बचते थे। इसलिए किसानों को गाँव के महाजन एवं स्थानीय बनियों के पास कर्ज लेना अनिवार्य हो जाता था। एक तो ये किसान निरक्षर थे, ऊपर से कर्ज भी बढ़ता जाता था। इसलिए महाजनी व्यवस्था भी किसानों को धोखा देती थी या उनकी भूमि को गिरवी में रखकर अंततः उस पर कब्जा कर लेती थी। इन परिणामों के चलते असंख्य किसानों को अपनी भूमि को छोड़ देना पड़ा तथा भूमि के मालिक या तो जमींदार, ठेकेदार बने या हृदयहीन साहूकार तथा महाजन। अधिकांश किसान शोषण की चक्की में पिसकर बंधुवा मजदूर बन गये या भूमिहीन कंगाल बन गये। जितने भी कानून थे वे भी सामन्तवर्ग के अनुकूल ही बनाये गये थे। ऐसी प्रतिकूल अवस्था में जो बचे - खुचे किसान थे जिनका अधिकार अभी अपनी भूमि से नहीं गया वे साल भर मेहनत करके जो फसल प्राप्त करते थे, वह फसल या तो कर-लगान चुकाने के लिए बराबर होती थी या अपने उत्पादनों को मण्डी तक ले जाकर अच्छे दामों पर बेचने का अवसर ही किसानों को नहीं मिलता था। किसानों की इसी करूणाजनक स्थिति का विस्तार से वर्णन प्रेमचन्द के महाकाव्यात्मक उपन्यास 'गोदान' में हृदयस्पर्शी ढ़ंग से किया गया है। होरी जैसे मजबूर एवं शोषकवर्ग से त्रस्त किसानों की शुरूआत अंग्रेज़ शासन के दौरान इसी समय में हो चुकी थी। इतना ही नहीं, किसान अपनी इच्छा के अनुसार खेती भी नहीं कर सकते थे। अंग्रेज़ दुनिया भर में सबसे महान तथा सबसे चालबाज व्यापारी थे, अतः उन्होंने भारतीय कृषि - उत्पादकों को भी अपने वाणिज्य के अनुकूल बनाया। इंग्लैण्ड के मांचेस्टर तथा लंकाशैर जैसे शहरों में स्थिति उद्योग-कारखानों के लिए जो कच्चा माल चाहिए था वह जनसामान्य के हितकर या जनता की भूख मिटाने वाले

अनाज न होकर कपास, नील, चाय, कॉफी, पटसन जैसी वस्तुएँ थीं जो अंग्रेज़ों की पूँजी का साथ लेकर उनके विदेशी व्यापार के बढ़ने में अत्यंत आवश्यक होती थीं। अतः भारतीय किसान अपने खेतों में ब्रिटेन के लिए लाभदायक चीजों का उत्पादन करने को मजबूर हो गये थे सच कहें तो मजबूर बनाये गये थे। सुमित सरकार ने लिखा है : ''ब्रिटिश सरकार की कृषि नीतियों का आधार मुख्यतः दो बातों का मेल था। ये थीं - अधिक राजस्व का लोभ (जिसके फलस्वरूप अति आकलन की प्रवृत्तियाँ उत्पन्न होती थीं) और निर्यात के लिए विशेष प्रकार के कृषि उत्पादकों को प्रोत्साहित करने की इच्छा....''[10]

किसानों के बाद त्रस्त अन्य वर्ग भारतीय ग्रामीण - गृह उद्योग एवं लघु उद्योंगों से संबंधित था। भारतीय दस्तकारी की क्षीण दशा भी कम्पनी के राजनीतिक सत्ता-ग्रहण के बाद ही आरंभ हो गयी थी। भारतीय ग्रामीण उद्योगों के प्रति औद्योगिक क्रान्ति भयानक अभिशाप सिद्ध हुआ। मशीनों से बने कपड़ों की तुलना में हाथ से बने दस्तकारी युक्त कपड़े महँगे पड़ने लगे तथा जुलाहों को कपड़ा बनाने का समय भी मशीनों की तुलना में ज़्यादा था। ब्रिटेन में भारतीय माल के आयात के समय अधिक कर वसूल किये जाते थे, भारत में ब्रिटेन से निर्यात माल पर बहुत कम कर लगाये जाते थे। इस सुनियोजित शोषण पद्धति के कारण भारतीय वस्तुओं के व्यापार ने ब्रिटेन वस्तुओं के व्यापार के सामने घुटने टेक दिये। फलतः बहुत कम समय में ग्रामीण, लघु-गृह उद्योगों का सर्वनाश हो गया तथा ग्रामीण आत्मनिर्भरता नष्ट हो गई थी।

इस प्रकार सन् 19 वीं शती में जो यूरोप तथा अन्य पाश्चात्य देशों के लिए वरदान सिद्ध हुआ वे औद्योगिक क्रान्ति तथा यंत्रीकरण भारत की ग्रामीण आर्थिक व्यवस्था के लिए बहुत महँगी साबित हुए। अंग्रेज़ों ने भारत में अपनी पूँजी लगाकर जितनी मिलों की शुरूआत की वे भी लोहा, कागज आदि बनाने के लिए थीं। आर्थिक स्वावलम्बन तथा राष्ट्रीय प्रगति में अद्‌भुत सहायक मशीनों, औज़ारों, रसायनों या दवाइयों के कारखाने इस देश में नहीं बनाये गये थे। इसके फलस्वरूप इंग्लैण्ड, जर्मनी या अन्य यूरोपीय देशों की तरह भारत औद्योगिक प्रगति नहीं कर सका। एक तरफ भारतीय खेतों में विदेशी उद्योगों के लिए कच्चे माल की उपलब्धि, विदेशी तैयार माल की खपत बढ़ाने के लिए भारत जैसे विशाल मार्केट को पटाना, विदेशी माल को भारत के कोने-कोने तक पहुँचाकर धन कमाने के लिए बिछी गयी रेल-तार

व्यवस्था, भारतीय आर्थिक व्यवस्था के विरोधी तथा ब्रिटिश आर्थिक शक्तियों की रक्षा करनेवाले कर-विधान - इन सबके कारण भारतीय जनता का दोहन होने लगा। भारत में अंग्रज शासन के मुख्य कानून भी इन व्यापारिक फायदों की रक्षा के लिए ही बन रहे थे। लार्ड वेलेस्ली ने क्रोध में आकर एक बार कहा था - ''भारत पर राज्य राजधानी से नहीं, बल्कि पैसा गिनने वाले दफ्तर से चलाया जा रहा है। यहाँ राज्य राजे नहीं, बल्कि वे लोग चला रहे हैं जो मलमल और नील की खुदरा बिक्री का काम करते हैं।''[11]

भारत की अपार संपत्ति समुंदर पार करके ब्रिटेन को पहुँचने लगी। इसी प्रक्रिया को ''संपत्ति का प्रवाह'' (Drain of wealth) कहा जाता है। एक समय दो जून रोटी खाने वाले को अब एक जून की रोटी मिलना भी दूभर हो चला। देश भर में ऐसे लोगों का समुदाय बढ़ने लगा जो दरिद्रता से भी दयनीय स्थिति में थे, जिनकी आय अपनी बुनियादी जरूरतों के लिए भी पर्याप्त नहीं थी। देश की आर्थिक व्यवस्था की रीढ़ की हड्डी ही मानो टूट गयी। राम विलास शर्मा ने लिखा है कि ''1901 वाले व्याख्यान में दादाभाई ने कहा था कि महमूद ग़ज़नी ने भारत परा अठारह बार हमला किया और उसे लूटा, लेकिन जितना तुम एक साल में लूट कर ले जाते हो, उतना वह अठारह बार में न ले जा सका था।''[12]

इन सारे परिणामों के कारण गाँवों में आर्थिक विपन्नता बढ़ी, लोगों की असंतुष्टि तथा बेचैनी बढीं, अब तक आत्मसम्मान एवं इज्जत से जीवन बिताये कलाकारों, दस्तकारों, किसानों तथा लघु उद्योगपतियों को मज़दूर बनना पड़ा था। गाँवों की अधिकांश आबादी तबाह हो गयी। एक समय भारत के लिए गर्व कहलाये गये दस्तकार एवं कारीगर अब ब्रिटिश सरकार के यंत्रभूतों के सामने परास्त हो गये थे। भारत में इन दीन जनों की दुरवस्था का वर्णन अपने ग्रंथ विश्व इतिहास की झलक में जवाहरलाल नेहरू जी ने ठीक से किया कि ''वाणिज्य के इतिहास में ऐसी तबाही की शायद ही कोई दूसरी मिसाल मिले। सूती कपड़ा बुनने वाले जुलाहों की हड्डियों से भारत के मैदानों पर सफेदी छा गयी।'' अपनी आर्थिक स्थिति से परेशान जनों में असंतोष घर कर गया। वही राष्ट्रीय स्तर पर अनेक आंदोलनों की आधारशिला बना। राष्ट्रीय जागरण नामक महाग्नि के लिए यह आर्थिक विपन्नता मानो घृत का काम कर रही थी।

2.4.2 यातायात के साधन

अंग्रेज़ों के शासन काल में भारत में हुआ अपूर्व परिवर्तन यातायात के साधनों से संबंधित है। यातायात के साधनों के अभाव में ही यद्यपि सांस्कृतिक धरातल पर राष्ट्र एक ही था तथापि राजनैतिक दृष्टि से भारत एक राष्ट्र कभी नहीं बन पाया यदि बना तो बहुत अल्प काल तक ही बना रहा। लेकिन औद्योगिक क्रान्ति के बाद अंग्रेज़ों के सामने यह समस्या खड़ी हो गयी कि भारत उपनिवेश का कच्चा माल इंग्लैण्ड कैसे पहुँचे और मांचेस्टर तथा लंकाशैर जैसे शहरों में तैयार माल भारत में कैसे पहुँचाएँ। इसी दृष्टि से कम्पनी की सरकार ने भारत में रेलवे की स्थापना की और सडक निर्माण में कदम बढाये। फलतः सन् 1853 ई. में बम्बई से थाने तक रेलमार्ग की शुरूआत हुई और धीरे-धीरे पूरे देश में रेल की पटरियाँ बिछा दी गयीं। मद्रास से कलकत्ते तक बहुत ही लम्बी सडक ग्रैण्ड ट्रंक रोड़ का निर्माण भी हुआ। 1857 ई. के संदर्भ में अंग्रेज़ों ने यह महसूस किया कि रेल तथा सडक निर्माण में और वृद्धि की आवश्यकता है जिसके सहारे अंग्रेज़ सैनिक देश के एक प्रांत से दूसरे प्रांत तक कम समय में सफर कर सकते हैं। अंग्रेज़ों के इन कार्यों के पीछे निहित उद्देश्य स्वार्थपूर्ण ही हैं लेकिन इससे भारत को कई प्रयोजन सिद्ध हुए - भारत के कई प्रदेशों के लोगों के बीच आपसी आदान-प्रदान होने लगा और विविध क्षेत्रों का गमनागमन संभव हो पाया। देश की दूरियाँ सिमट गयीं। भारत में राष्ट्रीय जागरण का विकास बहुत ही जल्दी होने लगा।

2.4.3 प्रेस और पत्र-पत्रिकाएँ

प्रेस के कारण दुनिया में चमत्कारी परिणाम साध्य हुए। साहित्य के जन-जन तक पहुँचने में प्रेस की भूमिका महत्वपूर्ण है। प्रेस एवं अन्य मुद्रणा-सुविधाओं के अभाव में साहित्य केवल मौखिक रहा या तालपत्र जैसे असुरक्षित तरीकों से साहित्य का प्रचार होता था। लेकिन प्रेस के कारण पत्र-पत्रिकाओं के कारण महान आंदोलनों का जन्म हुआ और भारत में राष्ट्रीय जागरण का संदर्भ इसका अपवाद नहीं है। भारत में प्रेस की शुरूआत पुर्तगालियों के द्वारा की गयी। डॉ. नगेंद्र ने लिखा कि "......सन् 1550 ई.में उन्होंने दो मुद्रण-यंत्र मँगवाकर धार्मिक पुस्तकें छापनी आरंभ की। सन् 1674 ई. में ईस्ट इंडिया कम्पनी द्वारा बम्बई में मुद्रण्-कार्य आरंभ किया गया। अठारहवीं शताब्दी में मद्रास, कलकत्ता, हुगली, बम्बई आदि स्थानों में छापेखाने स्थापित हुए। अंग्रेज़ों और मिशनरियों ने समाचारपत्र निकाले,

किन्तु अपने देश के संदर्भ में पत्र निकालने की पहल राजा राममोहनराय ने की। सन्1821 में उनके सहयोग से 'संवाद-कौमुदी' नामक साप्ताहिक बंगला-पत्र का प्रकाशन आरंभ हुआ । .... सीरामपुर मिशन के तत्वावधान में दो पत्र प्रकाशित हो रहे थे - 'समाचार-दर्पण' और 'दिग्दर्शन'।''[13] 'जाम-ए-जहाँ-नुमा', 'मीरत-उल-अखबार' जैसी फ़ारसी की पत्र-पत्रिकाएँ, 'बाम्बे समाचार', द्वारिकानाथ टैगौर के नेतृत्व में 'बंगदूत', हिन्दी का पहला पत्र 'उदन्त मर्तोण्ड' 'प्रजामित्र', कई बंगला दैनिक, साप्ताहिक एवं मासिक पत्रिकाओं का प्रारंभ हो गया। हिन्दी का दैनिक पत्र 'समाचार सुधावर्षण' भी कलकत्ते से निकलने लगा। तेलुगु में 'आंध्र पत्रिका' श्री काशीनाथुनि नागेश्वरराव पन्तुलु के संपादन में प्रारंभ हुई। अठारहवीं सदी के अंतिम चरण में अनेक पत्र-पत्रिकाओं के कारण राजा राममोहन राय, देवेंद्रनाथ टैगोर, केशवचंद्र सेन इत्यादि महान व्यक्तियों के उपदेश जन-जन तक पहुँचने लगे। इस प्रकार राष्ट्रीय जागरण के विकास में पत्र-साहित्य की भूमिका अविस्मरणीय रही। जनमत का संग्रह करने में प्रेस ने महान राष्ट्रीय कार्य किया तथा इससे शिक्षित वर्ग के बीच महान विचारों का आदान-प्रदान आसानी से होने लगा।

2.4.4 सामाजिक-धार्मिक-सुधारवादी आंदोलन

जब एक देश पराधीन बनता है और उस पराधीनता में ही उस देश की कई शताब्दियाँ बीत जाती हैं तो समझना चाहिए कि उस देश की जनता की दार्शनिक बुनियादें या तो ध्वस्त हो चुकी हैं या शिथिल हो चुकी हैं। क्योंकि किसी भी आदमी का आचरण पक्ष उसके बौद्धिक पक्ष के द्वारा ही संचालित होता है। यदि एक देश अचानक अपना पुरुषार्थ छोड़ चुका है तथा और उसका आचरण पक्ष सहसा निवृत्ति परक बन गया है तो समझना चाहिए कि उसका बौद्धिक पक्ष निवृत्ति मार्ग से ज़्यादा आतंकित है तथा उसने ऐसे चिंतन या दर्शन में विश्वास किया जिसमें कर्मण्यता की जगह अकर्मण्यता को प्रमुखता मिली। भारत के साथ भी ठीक यही हुआ।

भारत का इतिहास बहुत प्राचीन है और यह दो तीन सौ साल का न होकर कई हजार वर्षों पुराना है। इस लंबे अंतराल में इस देश ने अनेक महान सभ्यताओं के जन्म-विकास एवं पतन देखे हैं। सभ्यता की उत्कर्ष स्थिति तभी संभव है - जब संस्कृति की आधारशिला बहुत ठोस हो। यों कहना उचित होगा कि किसी देश की सभ्यता उस देश के दार्शनिक एवं

सांस्कृतिक मूल्यों का ही प्रतिफलित रूप है। जनता तभी उत्साहित और पुरुषार्थयुक्त बनती है जब मानसिक रूप से उसे किसी स्वस्थ दर्शन का सहारा मिलता हो। यही सहारा हमारे विचारों को उच्च बनाता है। प्राचीन भारत के लोग निरुत्साही या पलायनवादी नहीं थे। वे बड़े उत्साही थे और क्रियात्मक स्वभावी थे। उन्होंने दुनिया को कई रंगों से भरा देखा था तथा साहस और सकारात्मक रवैया अपनाकर अपने रंगीन सपनों को साकार भी किया था। यहाँ के शासक दूर-दूर तक जाकर अनेक विदेशों पर भी अपना प्रभाव छोड़कर अपनी प्रतापी मनःस्थिति का परिचय देते थे। निस्संदेह भारत में चमकी अनेक महान सभ्यताओं के पीछे उस समय के महान दार्शनिकों के विचार जुड़े हुए थे। लेकिन धीरे-धीरे अनेक परिस्थितियों के कारणवश जनता महान विचारों से युक्त उस स्वस्थ एवं क्रियाशील परंपरा से दूर हो गयी। ठोस वैचारिक धरातल से उसके पाँव खिसक गये। किसी भी देश का सांस्कृतिक-दार्शनिक-वैचारिक एवं मानसिक पतन पहले होता है बाद में राजनैतिक एवं अन्य भौतिक रूपों में उसका प्रतिफलन होता है।

यदि भारत के बौद्धिक उत्कर्ष की बात करें तो छटी शती के बाद कोई महान क्रांति के दर्शन नहीं दिखायी देते। (बीच में हिन्दी साहित्य के भक्तिकाल के अंतर्गत कुछ चेतना जरूर आयी पर वह चेतना परिस्थितियों के प्रभाव से उत्पन्न थी इसलिए पुनः रीतिकाल का प्रवेश हो गया।) भारत में चिन्तन, खोज, अनुसंधान और बौद्धिक उन्नति की प्रक्रिया, प्रायः ईसवी सन् की छठी शताब्दी तक चलती रही। इस बीच जैन एवं बौद्ध धर्मों के कारण हिन्दू धर्म एवं दर्शन में कुछ परिवर्तन जरूर हुआ लेकिन अंग्रेज़ों के आगमन समय तक आते-आते जैन, बौद्ध धर्मों पर इस्लाम धर्म हावी हुआ और भारत में तब तक धार्मिक क्षेत्र में मुख्यतः दो ही धर्म रहे - हिन्दू और इस्लाम। इस समय में हिन्दू धर्म अनेक विकृतियों का शिकार हुआ और मुगल बादशाहों के अंतिम चरण में इस्लाम ने भी अत्यंत कट्टरता का रूप ले लिया। हिन्दू धर्म में जात-पाँत, सती, परदाप्रथा, वर्ण एवं जन्म के आधार पर उच्च-नीच का निर्णय होना, छुआछूत इत्यादि घृणास्पद कुरीतियों का जन्म हुआ। इस्लाम धर्म भी कठोर प्रतिबंध एवं धार्मिक असहिष्णुता का केंद्र बन गया। इस प्रकार भारतीय जनता में अधिकांश धार्मिक विश्वास कठोर नियमों का पालन करने तथा प्रतिबंधों को आगामी पीढ़ियों तक विस्तृत बनाने तक ही सीमित रह गये।

इस बीच भारतीय धार्मिक या सांस्कृतिक जगत में एक भी महान दार्शनिक का जन्म नहीं हुआ जो यह कह सके कि जीवन में पराजय को स्वीकार करना नहीं चाहिए तथा निरंतर कर्म का आचरण ही सफलता का रहस्य है। इसीके परिणामस्वरूप जाति में एक प्रकार की निस्तब्धता छा गयी। लोग कुछ ऐसी स्थिति में पहुँच गये जहाँ न्याय-अन्याय, शोषण-पोषण, स्वाधीनता-पराधीनता में उन्हें अंतर ही स्पष्ट नहीं हो रहा था। जगत् को मिथ्या तथा यथार्थ को क्षणभंगुर मानना दार्शनिक क्षेत्र तक ठीक है, पर जीवन-संग्राम के क्षणों में यह सोच निश्शस्त्र एवं कवचहीन होकर युद्धक्षेत्र में जाने के बराबर है। इस वैचारिक शून्यता के कारण लोगों में भयानक उदासीनता छा गयी। परंपरा से बढ़कर सोचने की शक्ति लगभग समाप्त हो चुकी। लोग किसी भी स्थिति को सहने के आदी हो गये तथा 'यह हाल ऐसा क्यों है? इसके अलावा भी कुछ बेहतर स्थिति होगी या नहीं?' आदि प्रश्नों के उठने का माहोल ही कही नहीं था। सारी जाति भयानक अकर्मण्यता की बीमारी का शिकार बन गयी। स्थूल रूप से यही अंग्रेज़ों के उत्कर्ष के समय भारत का सांस्कृतिक एवं धार्मिक चित्र था।

भारत में अंग्रेज़ों के शासन काल तक संस्कृत एवं फारसी पाठशालाएँ चलती थीं। मुगलों के समय से शासन की राज भाषा के पद पर फारसी थी। सारे शासकीय काम-काज फारसी में होते थे। उधर हिन्दुओं में पुराण,आख्यान तथा देवताओं के स्तोत्र पाठ - इधर इस्लाम में कुरान ही शिक्षा के आधार थे। सामान्य बाहरी जगत में घटनेवाली ऐतिहासिक घटनाओं का ज्ञान देने के लिए जिस सामान्य शिक्षा की आवश्यकता होती है- उसका सर्वत्र अभाव था। खैर, इसके लिए तत्कालीन सामाजिक एवं यातायात की परिस्थितियाँ और कुछ हद तक भारत का भौगोलिक निर्माण भी जिम्मेदार हैं। क्योंकि अपनी विशेष भौगोलिक सीमाओं के कारण भारत में दूसरे देशों की जनता का आगमन होना कठिन था। भारत की उत्तर दिशा में स्थित हिमालय पर्वत भारत के लिए एक अभेद्य दीवार की तरह खडा था जिसके कारण कई शताब्दियों तक भारत तो सुरक्षित रहा लेकिन उसी समय विदेशी लोगों के आगमन के लिए वह एक प्रकार की रूकावट ही पैदा कर रहा था। इससे सहज ही विचारों के आदान-प्रदान के लिए ठीक वातावरण बना नहीं था। भारत के तत्कालीन लोग विश्व के क्या अपने ही देश के भूगोल से परिचित नहीं थे। इतिहास, विज्ञान, गणित या विश्व की घटनाओं से छात्रों को परिचित करनेवाले अथवा उन घटनाओं के प्रति रुचि जगाने वाले

विषयों की जगह साहित्य, काव्यशास्त्र ही प्रमुख रूप से पढ़ाये जाते थे। इससे सारी शिक्षा प्रणाली जीर्ण अवस्था में थी।

ऐसी स्थिति में अंग्रेज़ों का शासन भारत में शुरू हुआ था। पहले पहल कम्पनी ने यह तय किया कि शिक्षा के मामलों में टाँग अडानी नहीं चाहिए इसलिए स्थिति को यथावत रखें। अतः कम्पनी ने भी संस्कृत एवं फारसी भाषा-साहित्य के अध्ययन पर जोर दिया था। सर्वप्रथम सन् 1781 ई. में वारन हेस्टिंग्स ने कलकत्ते में एक मदरसा खोला। ठीक दस वर्ष बाद बनारस में कार्नवालिस ने संस्कृत कालेज की स्थापना की। उधर अंग्रेज़ शासन से दूर अंग्रजी-प्रसार में पहला कदम ईसाई मिशनरियों ने उठाया जब उन्होंने बंगाल के सिरामपुर में एक छापाखाना खोला तथा बाइबिल का अनुवाद 26 भारतीय भाषाओं में कर दिया। इतना ही नहीं वे सारी भारतीय जनता को क्रिस्तान बनाने के लक्ष्य से बहुत तेजी के साथ आगे बढ़ रहे थे और इस प्रक्रिया में उन्होंने अंग्रेज़ी को बहुत आवश्यक समझा।

लेकिन कम्पनी-शासन ने जल्दबाजी में कोई निर्णय नहीं लिया। बहुत समय बाद जब राजा राममोहन राय ने अंग्रेज़ी में भारतीयों को शिक्षा दिलाने की लाख कोशिशें कीं तब जाकर कहीं सन् 1835 ई. में लार्ड विलियम बेंटिंक के समय में यह घोषणा की गयी कि ‘भारत में अब शिक्षा का माध्यम अंग्रेज़ी ही होगी।’

भारत में शिक्षा का माध्यम अंग्रेज़ी बनाने के बाद अंग्रेज़ी पढ़नेवाले भारतीयों की संख्या में बेहद विकास हुआ। सन् 1857 ई. में कलकत्ता, मद्रास और बम्बई में विश्वविद्यालयों की स्थापना की गयी तथा सन् 1882 ई. में लाहौर में पंजाब यूनिवर्सिटी की स्थापना हुई थी। इससे छात्र-संख्या में वृद्धि हुई तथा अंग्रेज़ी के सहारे भारतीयों को बाहरी संसार में होनेवाले मौलिक परिवर्तन तथा उनके प्रेरणास्त्रोतों से परिचित होने का सौभाग्य मिला था। चारों तरफ से बंद भारत में पश्चिम की ओर अंग्रेज़ी भाषा-ज्ञान की खिड़की खुल गयी तथा उस खिड़की से ताजा और प्रभावशाली बयार आने लगी। भारतीय विद्यार्थी-जगत् जो अंग्रेज़ी माध्यम से पढ़कर बाहर आ रहा था और जीवन में प्रवेश कर रहा था- उसे मालूम होने लगा कि जो बातें पढ़ी गयीं उनमें और अंग्रेज़ शासन के कार्यकलापों में कोई सामंजस्य नहीं है। इस विरोधाभास स्थिति में पड़े जनों का ध्यान सहज ही मिल, स्पेन्सर और वाल्टेर जैसे महान विचारकों की रचनाओं की तरफ आकर्षित हुआ जिन्होंने दुनिया को समता,

स्वतंत्रता एवं समाज में अधिकांश जनता का कल्याण आदि विषयों के पाठ पढ़ाये।

जब भारत की शिक्षा-प्रणाली में आमूल परिवर्तन हुए थे तब यूरोप में उससे भी महान परिवर्तन चल रहे थे। 'स्वतंत्रता-समानता-भ्रातृत्व' का नारा फ्रान्सीसी क्रांति के द्वारा संसार को मिला। एक तरफ खुद इंग्लैण्ड में ही अधिकारों को लेकर बहुत बड़ा संघर्ष चल रहा था। यह समय यूरोप के रिनेसाँ का उत्कर्ष समय था जिसके चलते सारे यूरोप के देशों में मौलिक परिवर्तनों का दौर चल रहा था। राष्ट्रीयता, सर्वजन समानता, आत्मविश्वास, उदारता, बहुजन हिताय-बहुजन सुखाय वाली भावनाएँ जोरों पर थीं। यूरोप तथा बाह्य जगत के परिणामों को भारतीय जनता अवगत करने लगी तथा इस देश का छुई - मुई वाला स्वभाव धीरे-धीरे बदलने लगा।

इसके अलावा एक और परिणाम हुआ। भारत में यूरोपीय जातियों का आगमन प्रकृति पर मानव की विजय एवं प्राकृतिक रहस्यों को भेदने के क्रम में मानव का एक महान कदम था। इसके बाद भारत पर सत्ता ग्रहण करने के कई संदर्भों में भी अपनी कूट-नीति के अतिरिक्त उन्होंने बड़े साहस का भी परिचय दिया था। कई साल उन्हें नजदीक से देखने के बाद भारतीय जनता को मालूम होने लगा कि यूरोपीय जातियों की जीवन शैली अकर्मण्य प्रधान नहीं कर्मण्यता से ओत प्रोत थी और उनकी विजयों का रहस्य भी यही है। कई युगों से अलक्षित और धूलि दूसरित इस धरती के प्रतापी व्यक्तित्व की नींद खुलने लगी। इतने सालों तक जिस खास सिद्धांत के बल पर जनता अपने दिन काट रही थी -जीवन की निस्सारता का वह सिद्धांत अब जनों को घृणास्पद लगने लगा। इस प्रकार भारतीय जनमानस में यूरोपीय जातियों के आगमन के बाद उसी कर्मण्यता का महत्व पुनः प्रतिष्ठित होने लगा जिसके आधार पर प्राचीन भारत ने वर्तमान यूरोपीय जनों से कई गुना ज़्यादा महान कार्य किये थे। लेकिन यह बदलाव किसी एक रात में संभव नहीं था। बहुत ही धीमी गति से इसका प्रभाव भारतीय दिलो दिमाग पर चढ़ा। पर एकबार चढ़ने के बाद भारत के लोगों ने अपने धर्म, जीवन-शैली एवं दार्शनिक विश्वासों को पुनस्समीक्षित करने की ऐतिहासिक आवश्यकता को जिस ढ़ंग से और जिस गंभीरता से अनुभूत किया वह तो अद्वितीय था। फिर भारतीय जनता में सामाजिक, सांस्कृतिक एवं धार्मिक धरातलों पर जो महान आंदोलन हुए - उन्हें 'भारतीय नवोत्थान' या 'नव जागरण' जैसे नामों से अभिहित किया जाता है।

इस संदर्भ में यूरोपीय जातियों के विशेषकर अंग्रेज़ों के आगमन और उनके कार्यकलापों के कारण भारतीय सांस्कृतिक जगत में उत्पन्न महान क्रांतिकारी परिवर्तनों को लेकर कुछ स्पष्टता की आवश्यकता है। क्योंकि अंग्रेज़ एवं अमरीका सहित कई देशों ने अनेक सभ्यताओं पर विजय प्राप्त की तथा वहाँ के उनके अपने मौलिक धर्म, संस्कृति एवं आचार-विचारों को तहस-नहस कर डाला। उदाहरणार्थ आस्ट्रेलिया में नेटिव आस्ट्रेलियन लोगों का जो अस्तित्व था वह आज देखने को नहीं मिलता। लेकिन भारत के साथ हुआ कुछ अलग ही है। यहाँ निस्संदेह कहा जा सकता है कि अंग्रेज़ ही इन परिवर्तनों का प्रधानस्रोत हैं लेकिन अंग्रेज़ों के ही कारण भारत में ज्ञान का स्थापन हुआ या अंग्रेज़ी शिक्षा प्रणाली के ही कारण भारत में राष्ट्रीयता का विकास हुआ- यह कुछ अतिवादी धारणा ही है। डॉ. नगेंद्र के अनुसार यदि शिक्षा का माध्यम अंग्रेज़ी न होकर कोई बोलचाल की भारतीय भाषा होती तो उससे देश को और फायदा हो सकता था। उन्होंने लिखा कि "बोलचाल की भाषा को शिक्षा का माध्यम स्वीकार न करने का निर्णय अत्यंत दुर्भाग्यपूर्ण था। प्रायः दलील दी जाती है कि अंग्रेज़ी शिक्षा के फलस्वरूप देश में एकता की भावना पैदा हुई और जीवन की समस्याओं के संबंध में लोगों ने एक ढ़ंग से सोचना आरंभ किया। राष्ट्रीय आकांक्षाओं को जागृत करने में इसे बहुत श्रेय दिया जाता है। प्रश्न यह है कि देशी भाषाओं के माध्यम से शिक्षा देने से क्या इन उद्देश्यों की पूर्ति न होती? वस्तुतः यदि अंग्रेज़ अधिकारियों ने देशी भाषा का माध्यम अपनाया होता, तो राष्ट्रीयता की भावना और भी जल्दी उत्पन्न होती। शिक्षा के इतना अधिक फैल जाने पर भी इस देश का आधुनिकीकरण नहीं हो पाया। अधिकांश लोग आज भी निरक्षर हैं। पर उस समय इस शिक्षा के माध्यम से जिस बौद्धिक मध्य-वर्ग का उदय हुआ उसके आदर्श ऊँचे थे। आगे चलकर उन्होंने इसका उपयोग राष्ट्रीय-सांस्कृतिक विचारों के प्रसार में किया।"[14]

वास्तव तो यह है कि भारत के पास वे औज़ार पहले से ही मौजूद थे जिनके आधार पाश्चात्य देशों ने प्रगति की। इतना ही नहीं, कई युगों पहले वह उन्हीं औज़ारों के सहारे महान प्रगति एवं भौतिक सुखों का अनुभव कर चुका था। लेकिन परवर्ती दार्शनिक शून्यता के कारण भारत कुछ शताब्दियों तक उन औज़ारों को भूल गया। पर एक बार विस्मृति खुलने के बाद उसने देर नहीं की और इस बार उसने न केवल स्वयं को उद्यमी बनाया बल्कि संसार

को विश्वमानवता एवं परम शांति के संबंध में नया पाठ भी पढ़ाया। भारत को यह नयी शक्ति या अपनी ही भूली हुई प्राचीन शक्ति का स्मरण दिलाने में सांस्कृतिक नेताओं तथा संस्थाओं का योगदान अविस्मरणीय है।

2.4.4.1 राजा राममोहन राय- ब्रह्म समाज

भारत में सांस्कृतिक पुनर्निर्माण की प्रक्रिया के प्रवर्तक राजा राममोहन राय थे। आपका जन्म बंगाल के बर्दवान जिले में सन् 1772 ई. में हुआ। प्राचीन हिन्दू धर्म को नवीन संदर्भ में आख्यायित करने का प्रयास सर्वप्रथम उन्होंने ही किया। उन्होंने संस्कृत, अरबी, फारसी, अंग्रेज़ी, ग्रीक तथा हिब्रू भाषाओं का गंभीर अध्ययन किया तथा ग्रीक एवं हिब्रू भाषाओं के जरिये ही उन्होंने बाइबिल का अध्ययन किया। क़ुरान के भी वे महान अध्येता थे। गीता उपनिषदों का भी उन्हें बड़ा ज्ञान था। उनकी दृष्टि बहुत पैनी थी तथा उनका दर्शन तर्कपूण एवं बुद्धिवाद पर आधारित था। यूरोप के महान विचारकों यथा अरस्तू, प्लेटो के विचारों का परिचय उन्होंने अरबी अनुवादों से प्राप्त किया तथा आधुनिक यूरोपीय चिंतकों के ग्रंथों से भी उनका साक्षात्कार हुआ। वे प्रवृत्ति से निरीश्वरवादी थे इसलिए इस्लाम के एकेश्वरवाद का स्पष्ट प्रभाव उन पर दिखायी देता था। उन्होंने अपने देश में ईसाइयत से हिन्दूधर्म पर किये जाने वाले प्रहारों से हिन्दू धर्म को बचाना चाहा। इसके लिए उन्होंने सर्वप्रथम हिन्दू धर्म का संशोधन एवं परिमार्जन बहुत आवश्यक समझा। हिन्दू धर्म की कमजोरी उसके प्रथा-पालन में है, उसके अंधविश्वासों में है - छुआछूत, परदा, सती-प्रथा, बाल विवाह, बहुविवाह एवं अल्पायु विवाह तथा अंधविश्वासों में है। इसलिए उन्होंने इन्ही विकृतियों पर कुठाराघात किया था। सन् 1828 ई. में उन्होंने हिन्दू धर्म एवं समाज में परिवर्तन लाने की दृष्टि से 'ब्रह्म समाज' की स्थापना की थी। उन्हींके प्रयासों के फलस्वरूप सन् 1829 ई. में विलियम बेंटिंक ने सतीप्रथा का विरोध किया था। राममोहन राय ने अपने भाषणों के दौरान जाति-प्रथा को उन्होंने अमानवीय घोषित किया विधवा विवाहों पर जोर दिया। ब्रह्म समाज से दीक्षित कई व्यक्ति देश भर में फैलने लगे तथा इन सुधारवादी विचारों का प्रचार द्रुतगति से होने लगा। ब्रह्म समाज के ही प्रभाव के कारण कंदुकूरि वीरेश लिंगम पंतुलु, रघुपति वेंकट रत्नम नायुडु, गुरजाड अप्पाराव जैसे मनीषियों ने आंध्र एवं दक्षिण प्रांत में बाल्य विवाह का निषेध एवं विधवा विवाह का समर्थन किया। उधर महाराष्ट्र में भी महादेव

गोविन्द रानडे जैसे नेताओं ने इस जागरण का विस्तार किया। ब्रह्म समाज ने कई भाषणों, धार्मिक वाद-विवादों , लेखों, समाचार पत्र-पत्रिकाओं, स्कूलों, कॉलेजों के माध्यम से सामाजिक रूढ़ियों एवं धार्मिक कुसंस्कारों से जाति को मुक्त करने का स्तुत्य प्रयास किया। स्त्री-शिक्षा, अंतर्जातीय विवाह, विधवा-विवाह आदि रचनात्मक कार्यकलापों के द्वारा समाज को जागृत किया। राजा राममोहन राय के पश्चात् श्री देवेंद्रनाथ टैगोर तथा केशवचंद्र सेन आदि ने ब्रह्म समाज के कार्यकलापों को आगे बढ़ाया।

इस संबंध में राजा राममोहन राय की विशेषताएँ मुख्यतः इस प्रकार हैंः एक- उन्होंने सांस्कृतिक धरातल पर सारे राष्ट्र को एकसूत्र में बांधने का प्रयास किया। बाद में वही एकसूत्रता राजनैतिक एकता के रूप में परिणत हुई। ब्रह्म समाज के कार्यकलापों का आधार राष्ट्रीयता ही था। वह केवल बंगाल तक सीमित नहीं था। राजा राममोहन राय के ब्रह्म समाज में अधिवेशन का प्रारंभ वेदमंत्रों के पाठ से होता था जिसके लिए उन्होंने वेद पंडितों को आंध्रप्रदेश से बुलाया था। इस सभा के अधिवेशन में दो तेलुगु ब्राह्मण वेद का पाठ करते थे।

दूसरी विशेषता - उन्होंने भारत के प्राचीन वैभव का आधार वेदांत ही माना तथा नवीन युग के संदर्भ में भी वे वेदांत का सहारा छोड़ना नहीं चाहते थे लेकिन दूसरी ओर वे अपने देशवासियों को अंग्रेज़ी द्वारा पाश्चात्य विज्ञान-जगत में प्रवेश कराना भी चाहते थे। उन्होंने तर्क एवं बुद्धि की कसौटी पर हिन्दू धर्म को परखने का अभूतपूर्व प्रयास किया जिसकी प्रेरणा निस्संदेह उन्हें यूरोप से प्राप्त हुई थी। उनके उद्देश्य भी स्पष्ट थे - वे एक ओर हिन्दू धर्म को ईसाइयत की भर्त्सना से बचाना चाहते थे और पाश्चात्य जगत की प्रचण्ड वैज्ञानिक प्रगति से भारतीय विशाल जनसमुदाय को संबद्ध करना भी चाहते थे।

ब्रह्म समाज के प्रभाव से महाराष्ट्र में भी प्रार्थना समाज की स्थापना की गयी थी। महादेव गोविंद रानडे के नेतृत्व में प्रार्थना समाज ने सामाजिक कुरीतियों का विरोध किया। लेकिन प्रार्थना समाज को ब्रह्म समाज की महाराष्ट्रीय शाखा मानना ही उचित है।

2.4.4.2 स्वामी दयानंद सरस्वती - आर्य समाज

ब्रह्म समाज एवं राजा राममोहन राय के प्रयत्नफल से हिन्दू धर्म का संस्करण जरूर हुआ था। पर कई विद्वानों ने ब्रह्म समाज के द्वारा बताये गये हिन्दू धर्म के संशोधित रूप को ईसाइयत का ही भारतीय रूप माना । लेकिन स्वामी दयानंद सरस्वती ने हिन्दू धर्म का जो

आख्यान किया वह इससे पूरी तरह भिन्न था और पूर्णतः राष्ट्रीय था। दिनकर के शब्दों में "जैसे राजनीति के क्षेत्र में हमारी राष्ट्रीयता का सामरिक तेज पहले-पहल तिलक में प्रत्यक्ष हुआ, वैसे ही संस्कृति के क्षेत्र में भारत का आत्माभिमान स्वामी दयानंद में निखरा"[15]

स्वामी दयानंद सरस्वती ने 'सत्यार्थ प्रकाश' नामक अभूतपूर्व ग्रंथ की रचना की जिसमें उन्होंने हिन्दू धर्म का असली रूप वेदों से संबद्ध माना- पुराणों, स्तोत्र पाठों या पुरोहितवर्ग के जाल से संबंधित नहीं। 'गो बैक टु वेदास' कहकर उन्होंने वर्तमान हिन्दू धर्मावलम्बियों की कड़ी आलोचना की तथा हिन्दू धर्म की वर्तमान विकृतियों का कारण उन्होंने पौराणिक संस्कार ही घोषित किया था। सन् 1875 ई. में उन्होंने आर्य समाज की स्थापना बंबई में की थी। वे संस्कृत, अंग्रेज़ी तथा हिन्दी के महान वक्ता थे तथा अपने भाषणों के द्वारा उन्होंने जाति में आत्मविश्वास भरने का स्तुत्य प्रयास किया था। केशव चंद्र सेन की सलाह के अनुसार उन्होंने अपने भाषणों का माध्यम संस्कृत से हिन्दी में परिवर्तित किया। तब सारा उत्तर भारत आर्यसमाज के क्रियाकलापों से प्रभावित रहा तथा स्वामी जी के असंख्य शिष्य बन गये थे। आर्यसमाज गुजरात, उत्तर प्रदेश, मध्यप्रदेश, महाराष्ट्र , आंध्र प्रदेश एवं पंजाब तक भी पहुँच गया तथा राष्ट्रीय जागरण की व्याप्ति में बहुत ही प्रभावशाली सिद्ध हुआ। हिन्दुत्व में शुद्धि और संगठन का दौरा आर्य समाज के ही द्वारा प्रारंभ होता है।

इस संबंध में रामधारी सिंह दिनकर ने लिखा कि "परिवर्तन जब धीरे-धीरे आता है, तब सुधार कहलाता है। किन्तु वही जब तीव्र वेग से पहुँच जाता है, तब उसे क्रान्ति कहते हैं। दयानंद के अन्य समकालीन सुधारक केवल सुधारकमात्र थे, किन्तु दयानंद क्रान्ति के वेग से आये और उन्होंने निश्छल भाव से यह घोषणा कर दी कि हिन्दू धर्म-ग्रंथों में केवल वेद ही मान्य हैं, अन्य शास्त्रों और पुराणों की बातें बुद्धि की कसौटी पर कसे बिना मानी नहीं जानी चाहिए । छः शास्त्रों और अठारह पुराणों को उन्होंने एक ही झटके में साफ़ कर दिया। वेदों में मूर्तिपूजा, अवतारवाद, तीर्थों और अनेक पौराणिक अनुष्ठानों का समर्थन नहीं था, अतएव, स्वामी जी ने इन सारे कृत्यों और विश्वासों को गलत घोषित किया।"[16]

राष्ट्रीय जागरण की पहली किरण बंगाल में फूटी। बाकी प्रांतों की तुलना में उत्तर भारत में राष्ट्रीय जागरण का उदय कुछ देरी से हुआ। स्वामी दयानंद सरस्वती का महान योगदान यह रहा कि उन्होंने उत्तर भारत को जगाया तथा सामाजिक विपरिणामों के समय

आर्यसमाज ने लोगों का साथ निभाया। सन् 1921 ई. में मोपला में सांप्रदायिक दंगों के समय आर्यसमाजी कार्यकर्ताओं ने वीरता से परिस्थिति का सामना किया तथा सन्1937 ई. में जब हैदराबाद की निज़ाम सरकार ने आर्य समाज पर प्रतिबंध लगाया तब भी आर्यसमाज के हजारों सत्याग्रहियों ने जेल काटी। जब भारत पूरी तरह से स्वतंत्र था लेकिन हैदराबाद निजाम सरकार की मुट्ठियों में रह गया था तब रामानंद तीर्थ जैसे आर्य समाजी वीरों का अनुपम त्याग इतिहास के पन्नों में सदा रह जायेगा।

2.4.4.3 श्रीमती एनीबिसेंट - थियोसॉफिकल सोसाइटी

थियोसाफिकल सोसाइटी की स्थापना अमरीका में सन् 1875 ई. के दौरान 'पेट्रोवना ब्लेवास्की' तथा 'आलकॉट' द्वारा हुई थी। पूर्वी देशों में जाकर वहाँ के धर्म और ज्ञान के तत्वान्वेषण करना इस संस्था का एक उद्देश्य था। इसीलिए सन् 1893 ई. में श्रीमती एनीबेसेंट ने भारत में पदार्पण किया था। इससे पहले ही मतलब, सन् 1882 ई. में ही तमिलनाडु के अडयार में थियोसॉफिकल सोसाइटी की स्थापना हुई थी। श्रीमती एनीबेसेंट ने अपने भाषणों के द्वारा घोषित किया कि हिन्दू धर्म अत्यंत प्राचीन और श्रेष्ठ धर्म है तथा हिन्दू धर्म के उद्धार से ही विश्व का उद्धार संभव है। उन्होंने बनारस में सेंट्रल हिन्दू कॉलेज की स्थापना की, जिसका विकसित रूप ही आज का हिन्दू विश्वविद्यालय है। श्रीमती एनीबेसेंट ने बाद में भारत की राजनीति में भी भाग लिया तथा 1914 में राजनैतिक क्षेत्र में उनका प्रवेश हुआ। उन्होंने होमरूल आंदोलन का समर्थन किया तथा भारतीय कांग्रेस का भी भार संभाला। उनके भाषणों के फलस्वरूप निराशा और निरुत्साह की खाई में खो गयी हिन्दू जाति को उत्साह मिला।

इस समाज के सदस्य बहुत कम थे फिर भी श्रीमती एनीबिसेंट के प्रभाव को राष्ट्रीय जागरण के उत्थान में कम करके देखा नहीं जा सकता। एक अंतर्राष्ट्रीय संस्था होने के कारण इस संस्था के बल पर विदेशों में भारत का सकारात्मक दृष्टि से प्रचार हुआ। भारत के सात्विक एवं प्रभावशाली धार्मिक पक्षों को एनीबेसेंट के द्वारा प्रसारित आलोक में संसार ने देखा। सर वैलेनटाइन शिरोल ने लिखा है कि ''जब अत्युच्च बौद्धिक शक्तियों एवं अद्‌भुत वक्तृत्व-शक्ति से सुसज्जित यूरोपियन भारत जाकर भारतवासियों से यह कहें कि उच्चतम ज्ञान की कुंजी यूरोप वालों के नहीं, तुम्हारे पास है तथा तुम्हारे देवता, तुम्हारे दर्शन और तुम्हारी

नैतिकता की यूरोपवाले छाया भी नहीं छू सकते, तब इसमें क्या आश्चर्य है कि भारतवासी हमारी सभ्यता से पीठ फेर लें?''[17]

2.4.4.4 रामकृष्ण परमहंस

राष्ट्रीय जागरण के संदर्भ में रामकृष्ण परमहंस का महत्व भी रेखांकित करना समीचीन होगा। उन्होंने स्वामी विवेकानंद जैसे प्रतापी सांस्कृतिक पुरुष को तथा उद्‌भट आधुनिक युगप्रवर्तक को भारत के लिए दिया, और खुद अपने ढ़ंग से हिन्दू धर्म के अनुभूति पक्ष की शक्ति को संसार के सामने प्रकट किया। रामकृष्ण परमहंस का जन्म सन् 1836 ई. में हुआ था। एक तरह से वे अपढ़ ही थे या तथाकथित आधुनिक शिक्षा-प्रसार से उनका कोई सरोकार नहीं था। फिर भी जैसे कबीर ने लिखा कि -

''पोथी पढ़ी पढ़ी जग मुआ, पण्डित भया न कोय।
ढ़ाई आखर प्रेम का पढ़ै सो पण्डित होय।।''

उन्होंने बिना किसी पुस्तकीय ज्ञान के, केवल अनुभूति के बल पर ही चमत्कार कर दिखाये। हिन्दू धर्म की विशेषता यह है कि वह कर्मकाण्ड या तर्क-बुद्धिवाद की तुलना में अनुभूति की प्रबलता में ही ज़्यादा चमकता है। हिन्दी साहित्य का भक्तिकाल भी अनुभूति प्रबलता का ही अभिव्यक्तीकरण है। अपने सहज ज्ञान से रामकृष्ण महा मुनियों एवं महर्षियों की उस आध्यात्मिक उन्नति को प्राप्त हुए जिसे किसी वैज्ञानिक या तार्किक के सामान्य पारखी साधनों की सहायता से सिद्ध किया नहीं जा सकता। उन्होंने यह बतलाया कि हिन्दू धर्म मात्र वह नहीं- जो तर्क या बुद्धि से खरा उतरे। उनका जीवन ही साक्षी है कि हिन्दू धर्म के गहनतम आध्यात्मिक रहस्यों का उद्‌घाटन शील, संयम तथा चरित्र से भी प्राप्त किया जा सकता है। अब तक जितने भी आध्यात्मिक सांस्कृतिक नेता हुए , सभी ने हिन्दम धर्म को अन्य धर्मों के आतंक से बचाने के उद्देश्य से या अन्य धर्मों को हिन्दू आध्यात्मिक शक्ति से आतंकित करने के लक्ष्य से काम किया था। लेकिन रामकृष्ण परमहंस की विशेषता यह है कि उन्होंने केवल ध्यान, स्मरण और सरल भक्ति की अनुभूति के माधुर्य से हिन्दू धर्म की थाह प्राप्त की, इसके साथ-साथ उन्होंने किसी को उपदेश देने का प्रयास भी नहीं किया कि 'यह करो या यह मत करो।' एक तरह से वे आधुनिक युग के संत हैं जिनके जीवन तथा साधना के माध्यम से ही लोगों को हिन्दू धर्म की उच्चता के दर्शन आसानी से हो जाते हैं। उन्होंने अपनी बात को सच

सिद्ध करने की कोशिश कभी नहीं की तथा तर्क का सहारा भूलकर भी नहीं लिया। क्योंकि धर्म - तर्क या निरूपण की वस्तु नहीं, भावनात्मक तत्त्व है। इसीलिए कहा जाता है कि ईश्वर को निरूपित नहीं किया जा सकता लेकिन अनुभूत किया जा सकता है। यही कारण है कि परम नास्तिक एवं निरीश्वरवादी, एवं यूरोप के भौतिकवाद तथा तर्क से आतंकित नवयुवक भी रामकृष्ण परमहंस के साथ साक्षात्कार करके उनकी स्थिति को देखकर दंग रह जाते थे। ऐसे नवयुवकों में स्वामी विवेकानंद भी एक थे।

किसी धार्मिक या सांस्कृतिक नेता का आशय यदि आध्यात्मिक जगत की भव्यता से आम आदमी को परिचित करना तथा उसे भौतिक यातनाओं से परम शांति की ओर ले जाना हो, तो रामकृष्ण परमहंस ने अपनी साधना के द्वारा वही किया था। उन्होंने आधुनिक युग की आधिभौतिकता से त्रस्त जनों को धर्म का मार्ग पुनः दिखाया। उनकी साधना स्पष्ट करती है कि जिस प्रकार 'गिलाफ अलग-अलग हो सकता है लेकिन उसके अंदर भरा कपास एक ही है' उसी प्रकार भगवान एक ही है चाहे वह माँ काली के रूप में हो या ईसा। इसीलिए रामकृष्ण कुछ समय तक इस्लाम तथा ईसाई भी बने तथा उन मार्गों में भी उन्होंने सत्य का साक्षात्कार किया था।

रामकृष्ण परमहंस के उद्‌भवकाल तक हिन्दू धर्म की जो बुनियादी मान्यताएँ थीं, संयम, चरित्र की रक्षा, शील, सद्वर्तन और इंद्रिय निग्रह, उन पर संदेह के काले बादल छाये हुए थे और लोगों को लगने लगा था कि क्या मामूली गृहस्थी जीवन में ये सब संभव हैं? रामकृष्ण परमहंस को देखने पर इन जैसे सैकड़ों लोगों के संदेह अपने आप दूर हो जाते थे।

रामकृष्ण के प्रभाव से इस देश की जनता को पुनः भक्ति की शक्ति मालूम होने लगी। जनता में अपने धर्म एवं भक्ति के सरल सिद्धांत जैसे- मूर्तिपूजा, ध्यान, स्मरण आदि में विश्वास पनपने लगा....क्योंकि इन्हीं पर अब तक कई तरह से ईसाइयत के धर्मप्रचारक, यूरोपीय तर्क-विश्लेषण से आतंकित बुद्धिजीवी वर्ग एवं खुद हिन्दू धर्म के सांस्कृतिक नेता लोग प्रहार करते आये थे। रामकृष्ण ने मात्र हिन्दू धर्म के द्वारा ही नहीं बल्कि इस्लाम और ईसाइयत के द्वारा भी आध्यात्मिक शक्ति का निरूपण किया। इससे तत्कालीन धार्मिक अंतरों को भुलाकर धर्मों के बीच समरसता जगाने में अप्रत्यक्ष रूप से उन्होंने बहुत बड़ी पहल की। इस प्रकार राष्ट्रीय जागरण के प्रेरणास्रोतों में रामकृष्ण परमहंस का निस्संदेह बड़ा हाथ रहा है।

2.4.4.5 स्वामी विवेकानंद

यदि कोई भारत को समझना चाहता है तो, उसे विवेकानंद को पढ़ना चाहिए। भारतीय सांस्कृतिक जगत में प्रचण्ड भानु समान उदित स्वामी विवेकानंद ने हिन्दू धर्म की नयी व्याख्या की तथा भारतीय युवा पीढ़ी को नया मार्गदर्शन किया जिस पर चलकर वह स्वयंविकास के साथ-साथ विश्व का भी कल्याण साध्य बना सकेगी। स्वामी विवेकानंद का जन्म सन् 1863 ई. में हुआ था। उनका असली नाम नरेंद्रनाथ दत्त था। नरेंद्रनाथ बचपन से ही बहुत होशियार और नटखट थे। अपनी पढ़ाई के दौरान वे अंग्रेज़ी शिक्षा के माध्यम से यूरोपीय साहित्य से परिचित हुए थे। स्पेन्सर, हेगेल और जान स्टुअर्ट मिल जैसे विद्वानों की रचनाओं से वे बहुत प्रभावित रहे। राष्ट्रीयता, लोकतंत्र, उदारवाद, आदि के साथ-साथ तर्क, वैज्ञानिक दृष्टिकोण एवं बुद्धिवाद से भी उनका तार बंधा। इस समय धर्म-आध्यात्मिकता, ईश्वर की शक्ति आदि गहन विषयों को लेकर वे बहुत शंकालू पड़ गये थे। अपनी शंकाओं के निवारणार्थ वे ब्रह्मसमाज गये लेकिन वहाँ उनके संदेहों की निवृत्ति नहीं हो सकी। उन दिनों कलकत्ते के दक्षिणेश्वर में रामकृष्ण परमहंस बहुत ही विख्यात संत थे इसलिए नरेंद्रनाथ रामकृष्ण की शरण में चले गये थे। रामकृष्ण ने उनके संदेहों की निवृत्ति की थी। बाद में नरेंद्रनाथ ने संन्यास ग्रहण किया और वे 'स्वामी विवेकानंद' बने। उन्होंने अपने राष्ट्र की धार्मिक एवं सांस्कृतिक परिस्थितियों में एक बहुत बड़ी क्रांति की आवश्यकता महसूस की।

देश में एकतरफ हिन्दू धर्म के लोग परलोक की साधना में लगे हुए थे लेकिन इहलोक में उनका आचरण जाति-पाँति, छुआछूत, रूढ़िवाद एवं पौराणिक काल के धार्मिक अंधविश्वासों से भरा हुआ था। उधर इस्लाम धर्म भी बहुत कट्ठर रूप धारण कर चुका था। भारत के इन प्रधान दो धर्मों के बीच कोई सामरस्य नहीं था। अन्य समस्या यह थी कि ईसाइयत के प्रचार में हिन्दू धर्म की बड़ी भर्त्सना हो रही थी। यूरोप के तर्कवाद एवं भौतिक सुख-समृद्धियों से प्रभावित पढ़े-लिखे लोग भी अपने देश का निरादर कर रहे थे। भारतीय समाज सभ्य देशों की तुलना में गरीब, विकृत एवं शक्तिहीन बना हुआ था और यह जाति मानों अपनी गरिमा ही भूल चुकी थी। चारों तरफ गरीबी और भुखमरी छायी हुई थी। ऐसी स्थिति में स्वामीजी को भारत के सामाजिक एवं धार्मिक क्षेत्रों में रूढ़िवाद से आबद्ध अकर्मण्यता को दूर करना था। जो धर्म लोगों को कर्मण्यता का बोध कराकर गतिशील

बनाने के उद्देश्य से बना, वही धर्म परंपरावाद एवं जात-पाँत की परतों में अपने मूल्यों को छिपाये हुआ था। इस समय स्वामी विवेकानंद ने धर्म का पुनःव्याख्यान करके यह बताया कि धर्म एवं सांस्कृतिक मूल्यों का मतलब आदमी को आलसी या मदमत्त बनाना नहीं, प्रत्युत कर्मण्यता, सक्रियता और प्रवृत्ति का पाठ पढ़ाना है। इसके अलावा हिन्दू धर्म में आत्मविश्वास भरना भी उनका एक लक्ष्य था।

उपर्युक्त लक्ष्यों की पूर्ति के लिए उन्होंने सन् 1896 ई. में रामकृष्ण मिशन की स्थापना की थी। सबसे पहले उन्होंने अपने वक्तव्यों से भारतवासियों में अभिमान जगाया कि 'उनका धर्म कोई तुच्छ वस्तु नहीं है या तथाकथित अपमानजनक नहीं है प्रत्युत, तुच्छ तो हम हैं जो उस धर्म के उत्तराधिकारी होकर भी अपनी अकर्मण्यता से अपने आप को इस स्थिति में ढ़केल रहे हैं। हमारी भूल जीवन को अशाश्वत या क्षणभंगुर मानकर उसका निरादर करने में है, इसलिए जीवन से प्यार करें तथा कर्मठ बनें।' उन्होंने भारतीय समाज की दरिद्रता एवं कंगाली को बहुत ही घृणास्पद माना और इसकी ओर सारे लोगों में चेतना जगाने की कोशिश की। इस संबंध में उन्होंने जो प्रयास किया, उससे सांस्कृतिक धरातल पर सारा राष्ट्र एक हो जाने का मार्ग सुगम हो रहा था। इस दृष्टि से भारत में सांस्कृतिक राष्ट्रीयता के प्रवर्तक स्वामी विवेकानंद हैं।

उन दिनों पाश्चात्य संस्कृति के ही प्रभाव के कारण लोग असमंजस में पड़ गये थे कि क्या हम सचमुच बेवकूफ हैं, या हममें वह शक्ति नहीं है- जिसके अभाव के कारण आज हम मस्तक झुकाये खड़े हैं? विवेकानंद के कारण उन्हीं पाश्चात्य देशों में भारत के धर्मप्रताप को लेकर प्रशंसा की धूम मच गयी। व्यावहारिक तौर पर स्वामी विवेकानंद की सबसे बड़ी विजय यह मानी जा सकती है कि उन्होंने केवल अपने ही बल पर भारतीय धर्म के प्रति पाश्चात्य देशों में व्याप्त हीन-भावना को जड़ से उन्मूलित कर दिया। अरबिंद घोष के अनुसार विवेकानंद के ही कारण भारत को विश्व-विजय पाने की शक्ति प्राप्त हुई।

सन् 1893 ई. के शिकागो के सर्वधर्म सम्मेलन में भाग लेकर विवेकानंद ने यह सिद्ध किया कि समुद्र की यात्रा कोई पाप नहीं है तथा आधुनिक जगत् से जुड़ने में ही हिन्दू धर्म की भलाई है। उनके भाषण वाक्पटुता, धर्म- आध्यात्मिकता के भव्य विचार एवं सर्वमानव-समानता जैसे विषयों के कारण इतिहासप्रसिद्ध हो गये। जिस गरिमामयी धार्मिकशक्ति की

सर्जना रामकृष्ण परमहंस में देखी गयी- स्वामी विवेकानंद ने विदेशों में उसका आचरणात्मक अनुवाद प्रस्तुत किया। ''उनके भाषणों पर टिप्पणी करते हुए 'द न्यूयार्क हेराल्ड' ने लिखा कि धर्मों की पार्लमेंट में सबसे महान व्यक्ति विवेकानंद हैं। उनका भाषण सुन लेने पर अनायास यह प्रश्न उठ खड़ा होता है कि ऐसे ज्ञानी के देश को सुधारने के लिए धर्म-प्रचारक भेजने की बात कितनी बेवकूफी की बात है!''[18]

स्वामी विवेकानंद की यह अमेरिकी यात्रा निस्संदेह भारत के सांस्कृतिक इतिहास में एक सुवर्ण अध्याय है। जहाँ तक राष्ट्र के गौरव से राष्ट्रीय जागरण को प्रेरणा मिलने की बात है, उसके लिए इस घटना से बड़ा उदाहरण नहीं मिल सकता।

स्वामी विवेकानंद ने पाश्चात्य देशों में धन-वैभव, साधन-समृद्धि से उपज भौतिकता एवं अमानवीयता को पहचाना था। स्वार्थ-साधन, अहंकार, सुख-भोगों के लिए होड़, अशांति और असहिष्णुता आदि भौतिकवादी समाज के लक्षण हैं। अतः वहाँ विवेकानंद ने संयम, दान, परोपकार, सहनशीलता एवं त्याग के उपदेश दिये थे। लेकिन अपने देशवासियों के लिए उनका उपदेश बिलकुल भिन्न था। उन्होंने सारे भारतवासियों से 'लोहे की मांसपेशियाँ और फौलाद की नाडियाँ' अपनाने को कहा। इस देश की जनता के लिए परिश्रम, शारीरिक शक्ति, साहस तथा प्रवृत्ति की प्रचण्डता बहुत आवश्यक हैं। इसलिए उन्होंने भय को मौत कहा, तथा धैर्य को जीवन। उन्होंने परमात्मा एवं धर्म को ऊर्ध्व जगत् से लाकर वास्तविक धरातल पर खड़ा कर दिया। इसलिए उन्होंने कहा कि ''मेरे जीवन का परमध्येय उस ईश्वर के विरुद्ध संघर्ष करना है जो परलोक में आनंद देने के बहाने इस लोक में मुझे रोटियों से वंचित रखता है, जो विधवाओं के आँसू पोंछने में असमर्थ है, जो माँ-बाप से हीन बच्चे के मुख में रोटी का टुकडा नहीं दे सकता।''

स्वामी विवेकानंद ने भारत को विराट राष्ट्र के रूप में देखा। उन्होंने सारी जाति को लक्षित करके अपना उपदेश दिया। ''हमारे देशवासियों में से कोई व्यक्ति जब ऊपर उठने की चेष्टा करता है, तब हम सब लोग उसे नीचे घसीटना चाहते हैं, किन्तु यदि कोई विदेशी आकर हमें ठोकर मारता है, तो हम समझते हैं, यह ठीक है। हमें इन तुच्छताओं की आदत पड़ गयी है। लेकिन, अब गुलामों को अपना मालिक आप बनना है। इसलिए, दास-भावना को छोड़ दो। अगले पचास वर्षों तक भारतमाता को छोड़कर हमें और किसी का ध्यान नहीं

करना है। भारतमाता को छोड़कर और सभी देवता झूठे हैं। उन्हें अपने मन से निकाल कर फेंक दो। यही देवी, यही हमारी जाति की वास्तविक देवी है। सर्वत्र उसके हाथ दिखायी पड़ते हैं। सर्वत्र उसके पाँव विराजमान हैं, सर्वत्र उसके कान हैं और सब कुछ पर उसी देवी का प्रतिबिम्ब छाया हुआ है। बाकी जितने देवता हैं, नींद में हैं। यह विराट् देवता हमारे सामने प्रत्यक्ष है। इसे छोड़ कर हम और किस देवता की पूजा करेंगे?'' ऐसे वाक्य राष्ट्रीय जागरण के लिए बहुत सहायक सिद्ध हुए।

विवेकानंद के उपदेशों ने अकर्मण्यता एवं शैथिल्य में ऊँघती समस्त जाति को झकझोर दिया था। सारे देश में सांस्कृतिक धरातल पर कम्पन महसूस हुआ तथा धर्म को आध्यात्मिकता को समाज के दृष्टिकोण से देखने की स्वस्थ परंपरा जोर पकड़ने लगी। स्वामी विवेकानंद ने धर्म के माध्यम से राष्ट्रीयता को उत्तेजित किया था। उनके कारण युवा पीढ़ी में राष्ट्र के प्रति भक्ति जगी, साधारन जनता को आत्मनिर्भरता का बोध हुआ।

2.5 राष्ट्रीय जागरण की क्रियात्मक अभिव्यक्ति : स्वतंत्रता संग्राम

अंग्रेज़ों के शोषण के कारण राष्ट्रीय जागरण की क्रांति धीरे धीरे उठने लगी और इधर-उधर जनता का असंतोष विद्रोह का रूप लेने लगा था। इन विद्रोहों में बंगाल का 'सन्यासी-विद्रोह', (1760-1800) उड़ीसा के जमींदारों का विद्रोह(1804-1817) सतारा विद्रोह (1841) कोल्हापुर-विद्रोह (1844) गुजरात के कोलियों का विद्रोह (1824-39) उड़ीसा के खेडों का विद्रोह (1846-48) मध्य भूभाग में भीलों का विद्रोह (1818-1846) तथा बंगाल और बिहार प्रदेशों में संपन्न संथालों का विद्रोह आदि उल्लेखनीय हैं। इन विद्रोहों को अंग्रेज़ों ने अपनी सैनिकशक्ति से तुरंत ही दबा दिया था। लेकिन राष्ट्रीय जागरण की सर्वोच्च अभिव्यक्ति सन् 1857ई. का सैनिक विद्रोह है जिसे 'प्रथम स्वतंत्रता संग्राम' की संज्ञा दी गई।

2.5.1 सन् 1857 ई. का विद्रोह

कहा जा सकता है कि राष्ट्रीय जागरण का सबसे महान विस्फोट सन् 1857 ई. के विद्रोह के द्वारा ही हुआ था। कम्पनी की लालच दिनोंदिन बढ़ती गयी तथा अंग्रेज़ों तथा उनके अहलकारों की लूट के कारण जनता में असंतोष अपनी चरमसीमा पर पहुँच गया। उपर्युक्त विद्रोहों को ब्रिटिश सरकार ने बड़ी आसानी से उड़ा दिया लेकिन सन् 1857 ई. तक पहुँचते-

पहुँचते भारतीय समाज की ऊपरी परतों तक यह असंतोष भड़क उठा। पुरोहित, मुल्ला वर्ग, राजा, नवाब, जमींदार, ऊँचे व्यापारी - ये सब हमेशा भारतीय समाज के उच्च वर्ग के प्रतिनिधि रहे हैं। लेकिन अंग्रेज़ों की नीति के कारण सामान्य जनता के समान इन सबको भी यातनाओं का सामना करना पड़ा।

अंग्रेज़ों की प्रशासनिक एवं राजनीतिक चतुराई के कारण भारत का अधिकांश भूभाग कम्पनी के हाथ लगने लगा। लार्ड डल्हौजी ने विलय की नीति अपनायी जिसके अनुसार किसी पुत्र विहीन राजा को दत्तक पुत्र लेने के लिए अंग्रेज़ों से अनुमति लेने की जरूरत थी। इसी नीति के कारण डल्हौजी ने बड़ी चतुरता से सन् 1848 ई. में सतारा, सन् 1850 ई. में जैतपुर, सन् 1852 ई. में सम्भलपुर, अगले ही वर्ष यानी सन् 1853 ई. में उदयपुर, झांसी और नागपुर जैसे राज्यों को ब्रिटिश शासन में मिला दिया। इससे अनेक राजाओं को बेहद अपमान सहना पड़ा। अवध के नवाब, मध्यप्रदेश के राज्याधीश, नानासाहब एवं दिल्ली के अधीश मुगल सम्राट बहादुरशाह ने अंग्रेज़ों की विलय-नीति के सामने घुटने टेक दिये थे। इस प्रकार अंग्रेज़ों ने इन विविध राज्याधीशों को आपस में मिलने का अवसर दिया और ये सब अंग्रेज़ों को अपना सामूहिक शत्रु मानने लगे। उनके राज्यों में बसनेवाले मज़दूर, किसान, कारीगर एवं मेहनतकश वर्ग के लोगों के लिए तो अंग्रेज़ पहले से ही शत्रु थे। अब असंतोष की ज्वाला राजाओं तक पहुँच गयी, जनता ने खुशी-खुशी अपने राजाओं-नवाबों की यातनाओं पर सहानुभूति प्रकट की और अंग्रेज़ों के विरुद्ध महान संघर्ष के लिए रणभूमि अपने आप तैयार हो गयी थी।

इसके साथ-साथ अंग्रेज़ों की व्यापारिक एवं वाणिज्यिक नीति के कारण भारतीय व्यापारियों में असंतोष का जगना बहुत स्वाभाविक ही था। क्योंकि अंग्रेज़ यहाँ से कच्चा माल सस्ते दामों खरीदकर विलायत भेजते और वहाँ का तैयार माल भारत में बेचते। इससे भारतीय व्यापारी एवं वाणिज्य वर्ग को बहुत ही बड़ा आघात पहुँचा, क्योंकि अब व्यापार लगभग उनके हाथ से चला गया। इधर अंग्रेज़ों के द्वारा सतीप्रथा, विधवा-विवाह आदि सामाजिक कुरीतियों का निषेध हुआ, लेकिन हिन्दू धर्म की अधिकांश जनता के लिए ये आचार पवित्र एवं पूज्य थे। ध्यान देने की बात है कि इस समय तक राजा राममोहन राय जैसे सांस्कृतिक नेताओं के प्रयत्न-फल अभी प्राथमिक अवस्था में ही थे। अतः अधिकांश हिन्दुओं

को लगने लगा कि अंग्रेज़ अनावश्यक हमारे धार्मिक एवं सांस्कृतिक मामलों में हस्तक्षेप कर रहे हैं। उधर सैनिकों में भारतीयों को अंग्रेज़ सैनिकों की तुलना में वेतन तथा पद आदि के संबंध में बहुत कम स्थान दिया जाता था। सन् 1840 ई. के आसपास बैरकपुर, शोलापुर, हैदराबाद तथा सिंध आदि प्रांतों में सैनिकों के द्वारा असंतोष कुछ खुली ज़ुबान में ही प्रकट किया गया था। इस प्रकार भारतीय समाज के लगभग सभी वर्गों में असंतुष्टि एवं क्रोध शांत ज्वालामुखी के रूप में जमा होकर समय की प्रतीक्षा कर रहे थे।

चर्बी चढ़े कारतूसों के प्रयोग से संबंधित विवाद ने असंतोष के भयानक विस्फोटन में चिनगारी का काम निभाया था। उन दिनों अंग्रेज़ों की सेना को एन-फील्ड राइफलों के कारतूसों में एक चर्बी लगा कागज होता था जिसे प्रयोग करने से पूर्व दाँतों से काटना पड़ता था। चर्बी गाय अथवा सूअर के मांस की होती थी। इस तथ्य ने सिपाहियों की धार्मिक भावनाओं को भड़काया। इतना ही नहीं, ब्रिटिश सेना में काम करते सिख एवं मुसलमान सैनिकों को अपने बाल-दाढ़ी को लेकर भी कई अपमान सहने पड़े। 29 मार्च 1857 ई. को कलकत्ता के समीप बैरकपुर की 34 एन. आई. के सिपाही मंगल पाण्डेय ने विद्रोह का सूत्रपात किया था। उसने चर्बीयुक्त कारतूसों के प्रयोग के विरोध में परेड के समय दो अंग्रेज़ सैनिकों को बुरी तरह से घायल कर दिया। 24 अप्रैल, 1857 ई. को मेरठ की छावनी में सैनिकों ने विद्रोह का विस्तार करके दिखाया। धीरे-धीरे सैनिकों ने कई जगह विद्रोह करना आरंभ कर दिया। 9 मई को अम्बाला के सैनिकों ने भी विद्रोह में भाग लिया। अंग्रेज़ अधिकारियों का वध करके सैनिक दिल्ली पहुँच गये और लाल क़िले में जाकर मुगल बादशाह बहादुरशाह जफ़र को भारत का शाहनशाह घोषित कर दिया था। ऐसा लग रहा था कि वहाँ की सेनाएँ भी विद्रोहियों का इंतजार कर रही थीं। देखते ही देखते अंग्रेज़ अधिकारी कत्ल कर दिये गये। उनकी कोठियाँ जलकर राख हो गयीं। कुछ अंग्रेज़ तो भाग गये लेकिन एक ही हफ्ते में दिल्ली पर विद्रोही सिपाहियों ने कब्जा कर लिया। सैनिकों का नेतृत्व खुद राजा, नवाब, जमींदार और अन्य सैनिक नेता कर रहे थे। कानपुर में नानासाहब और तांत्या टोपे, झाँसी की रानी लक्ष्मीबाई, कुँवर सिंह इत्यादि लोग जनता की नजरों में राष्ट्रीय जागरण के चिंगारी बन गये। "....ग्रामीणों के बीच अंग्रेज़ी हुकूमत के खिलाफ विद्रोह का शंखनाद करने वाले विद्रोही नेताओं का असर समाज के हर तबके पर पड़ा। किसान, दस्तकार,

धर्मगुरु, नौकरीपेशा, दुकानदार हर कोई इस विद्रोह में शामिल हो गया और सिपाहियों का विद्रोह आम जनता का विद्रोह बन गया।''[19]

उत्तर एवं मध्य भारत में हर जगह पर सिपाहियों का यह विद्रोह जन सामान्य का विद्रोह बन गया था। सिपाहियों का विद्रोह उग्र रूप में उठा था। ''....पूरे विप्लव में नाना साहिब और तांत्या टोपे की सेना विशाल थी। 80,000 सैनिक उनके साथ थे। संख्या ही अधिक नहीं थी, तांत्या टोपे स्वयं एक वीर सेनापति, कुशल सिपहसालार और निपुण राजनीति का पण्डित था। परन्तु उसके भी पांव नहीं जमे। हार पर हार हाथ लगती गयी। रानी लक्ष्मी बाई बड़ी वीरता से लड़ी। एक भारतीय नारी द्वारा पुरुषों की वेशभूषा में युद्ध करना, सिंहनी की भाँति शत्रु पर टूट पड़ना, अद्‌भुत बात थी। राव साहिब और रानी द्वारा योजना बनाकर ग्वालियर का क़िला जीतना रानी की कुशलता का प्रतीक था। रानी ने फ्रांस की 'जान ऑफ आर्क' को भी अदम्य साहस प्रदर्शन में पीछे छोड़ दिया था। तभी तो उसे हराने वाले अंग्रेज़ सेनापति सर ह्यूमरोज ने कहा था- 'रानी सभी विद्रोहियों में सबसे अधिक योग्य और वीर थी।''[20]

सामान्य जनता ने विद्रोह में प्रायः लाठी, कुल्हाडी, भाला, तीर-कमान, दराँती, तलवार और देशी बंदूकों का उपयोग किया था। विशेषकर आजकल जो उत्तर प्रदेश, हरियाणा और बिहार का क्षेत्र है, उस भाग में किसानों और मज़दूरों ने उस विद्रोह में बड़ी संख्या में भाग लिया था। 1857 ई. के विद्रोह की सबसे बड़ी सफलता हिन्दू और मुसलमान की एकता थी। दोनों ने अपने परस्पर सांप्रदायिक विश्वासों के ही आधार पर अंग्रेज़ों के साथ युद्ध किया था।

अंग्रेज़ों ने जान लिया कि यदि इस विद्रोह को जल्दी समाप्त न किया जाए तो भारत में एक भी यूरोपीय व्यक्ति का जिन्दा रहना असंभव हो जायेगा। इसलिए कम्पनीवालों ने बहुत सख्ती से विद्रोहियों को कुचल डालना आरंभ कर दिया। इंगलैण्ड से भारत में धन रूपेण एवं सेना रूपेण सहायता मिलने लगी। सरकार ने इस विद्रोह को बहुत गंभीरता से लिया। ''.....अंग्रेज़ सरकार ने अपना सर्वस्व विद्रोह को दबाने में ही झोंक दिया। हर अंग्रेज़ को यह विश्वास हो गया था कि विद्रोह की सफलता का अर्थ होगा हर यूरोपीय का भारत में क़त्ल। वे वीर और अनुशासित तो थे ही, उन्होंने हारते-हारते एवं मरते-मरते भी साहस नहीं छोड़ा। उनके पास विद्रोही सिपाहियों और अनुशासनहीन लोगों की भीड़ की तुलना में शस्त्र तो बढ़िया थे ही, वस्तुतः धीरे-धीरे उनकी जीत होने लगी।''[21]

लेकिन भारतीय विशाल भूभाग में सिपाहियों का यह विद्रोह दक्षिण तक फैला नहीं, ज़्यादातर जनता का असंतोष उत्तर भारत में ही भडक उठा। इतना ही नहीं, अंग्रेज़ों के साथ मिलकर कुछ लोगों ने देश के साथ गद्दारी भी की थी। अंग्रेज़ों के आधुनिक शस्त्रों की तुलना में सामान्य जनता ठहर न सकी और अंग्रेज़ों ने धीरे धीरे विद्रोहियों पर विजय हासिल कर ली।

अंग्रेज़ों की सूचना तथा रेल व्यवस्था के कारण सैनिक एक प्रांत से दूसरे प्रांत तक बहुत जल्दी यात्रा कर सके और एक तरह से आधुनिक प्रगति ने भी इस विद्रोह को असफल बनाया था। धीरे-धीरे जो प्रदेश अंग्रेज़ों के हाथ से खिसक गये- उन्हें पुनः अंग्रेज़ों ने हासिल कर लिया था। अंग्रेज़ों को तब तक अनेक युद्ध लड़ने एवं महान साम्राज्यों पर जीत जासिल करने का अपार अनुभव था। ध्यातव्य है कि नेपोलियन जैसे विश्व के अद्बितीय योद्धाओं के साथ अंग्रेज़ों ने लड़ाइयाँ कीं और विजय प्राप्त की थी। इधर 1857 के विद्रोह में भाग लेने वाले भारतीयों में पेशेवर या प्रशिक्षित सैनिकों की कमी थी। विद्रोह में संगठन तथा केंद्रीय संचालन शक्ति का सदा अभाव, विद्रोह में भाग लेने वाले नेताओं के मध्य समन्वय का लोप, कुछ क्षेत्रों में सामान्य जनता का विद्रोहियों की मदद न करना, अंग्रेज़ों की रणनीति, उनके आधुनिक अस्त्र-शस्त्र, धन एवं कुशल सेनापतियों का अनुभव आदि के कारण अद्‌भुत आरंभ के बावजूद भी यह प्रथम स्वतंत्रता संग्राम सफल न हो सका। इतना ही नहीं विद्रोही सेनिकों तथा सामान्य जनता के लिए किसी एक महान् नेता का अभाव था। विद्रोह का नेतृत्व स्वरूप-स्वभाव से ही बिखरा हुआ था...जनता तथा विद्रोही सैनिकों को किसी एक अनुभवी नेता का केंद्रीय नियंत्रण एवं मार्गदर्शन न मिल सका। फलस्वरूप अंग्रेज़ों के सामने बागी सैनिकों को पराजय स्वीकार करने के सिवाय दूसरा चारा नहीं था। ‘‘......नाना साहिब अपने परिवार के साथ नेपाल भाग गया और वापस भारत नहीं आया। तांत्या टोपे ने दो वर्ष तक अंग्रेज़ सरकार को बहुत तंग किया। जब वह पूरी तरह टूट गया और अकेला पड़ गया तब भी उसने हार नहीं मानी। अंग्रेज़ उसके रक्त के प्यासे थे परन्तु वह भारतीय वीर जिसमें चीते जैसी स्फूर्ति थी, उनके काबू में नहीं आया। अंत में चम्बल घाटी के डाकू मानसिंह ने अपने नाम का इतिहास दुहरा दिया। उसने देश से विश्वासघात किया। तांत्या टोपे का मित्र बनकर उसने बहादुर तांत्या टोपे को, जब वह एक गुफा में सोया हुआ था, अंग्रेज़ों के हाथ पकड़वा दिया।’’[22]

सन् 1857 ई. के संग्राम में जिन प्रांतों के लोगों ने भाग लिया उन्हें अंग्रेज़ी फ़ौज ने बड़ी क्रूरता से कुचल दिया। उदाहरण के लिए अवध प्रांत जो इस महासंग्राम में भाग लेनेवाला हिन्दी जनपद था- उस पर अंग्रेज़ों के अत्याचारों की कोई सीमा ही न रही। साम्राज्यवाद की सबसे बड़ी विशेषता- निर्ममता होती है। इसी निर्ममता के चलते साम्राज्यवादी ब्रिटिश सरकार ने अवध प्रांत में बावला मचा दिया था। "....क्लाइव के जमाने से अवध के किसान रोटी-रोजी की तलाश में बंगाल जाते थे। यहाँ फौज़ में भर्ती होकर अंग्रेज़ी राज के विस्तार में सहायक होते थे। जिसे बंगाल-आर्मी कहा जाता था, उसमें बंगाल का एक सिपाही न था, ज़्यादातर सिपाही पछाँह के थे, विशेषकर अवध के। अवध की बेगम, अज़ीमुल्ला, नानासाहब, फैज़ाबाद के मौलवी, राना बेनीमाधव को साथ मिलाकर अवध के सिपाहियों ने अंग्रेज़ों से दो साल तक भयंकर संग्राम किया। अंग्रेज़ों ने इसका बदला लिया, उन्होंने अवध को जो भारत का बाग कहलाता था, उजाड़ डाला। उन्नाव, रायबरेली, इलाहाबाद, बहराइच आदि उद्योग और व्यापार के बड़े-बड़े केंद्रों को बरबाद कर दिया। अंग्रेज़ी राज में अवध की प्रजा को दोहरा अत्याचार सहना पड़ता था। अंग्रेज़ों ने ताल्लुकदारों-जमींदारों को अपना चाकर बना लिया था। सूदखोर महाजनों और निर्दयी जमींदारों की मदद के लिए अंग्रेज़ी कानून, कचहरी-अदालत, पुलिस, जरूरत हो तो फौज़ भी, हमेशा तैयार रहती थी। सबसे ज़्यादा सताये जाते थे - नीची जात वाले। चमारों से बेगार लेना, उनकी बहू-बेटियों को बेइज्जत करना जमींदारों का आम चलन था। बहुत- से गाँवों में गरीबी के मारे ये अपढ़-असहाय चमार मुर्दा जानवरों का मांस खाकर दिन काटते थे। अंग्रेज़ों ने अल्पसंख्यक मुसलमानों को पुलिस-कचहरी में विशेष सुविधाएँ देकर, सरकारी काम-काज में अरबी-फारसी से लदी हुई भाषा चलाकर यहाँ की जनता के सांस्कृतिक विकास को भारी नुकसान पहुँचाया।"[23]

राष्ट्रीय जागरण की महान अभिव्यक्ति सन् 1857 ई. के विद्रोह के रूप में प्रकट हुई थी। बहुत कुछ लोग इसीसे राष्ट्रीय जागरण का उदय मानते हैं। लेकिन ऐतिहासिक क्रम को देखने से लगता है कि राष्ट्रीय जागरण के लिए सन्1857ई. के पहले ही पृष्ठभूमि तैयार हो चुकी थी, और कहीं न कहीं राष्ट्रीय जागरण की लहरें उत्पन्न हो रही थी। हाँ, सन्1857ई. का विद्रोह उनकी तुलना में एक उत्तुंग जलतरंग जरूर है। यह विद्रोह असफल होकर भी

अपने आप में एक महत्वपूर्ण ऐतिहासिक परिवर्तन साबित हुआ। "......अपनी विफलता में भी इसने एक महान उद्देश्य की पूर्ति की। यह उस राष्ट्रीय मुक्ति आंदोलन का प्रेरणास्रोत बन गया, जिसने वह हासिल कर दिखाया, जो विद्रोह हासिल नहीं कर सका।"[24]

भारत में इस विद्रोह ने प्रथम स्वतंत्रता संग्राम के रूप में प्रसिद्ध होकर परवर्ती स्वतंत्रता संग्राम के सैनिकों को कई रूपों में प्रेरणा दी और बनिया राज ईस्ट इण्डिया कम्पनी के स्थाने भारत को सीधे ब्रिटिश ताज के अधीन बनाने के लिए लंदन को बाध्य कर दिया था। अंग्रेज़ों की चालाकी का चरमोत्कर्ष इस विद्रोह के बाद देखने को मिला जब भारतीय समाज के राजाओं और नवाबों के असंतोष को दूर करके उन्हें स्थायी रूप से अपने गुलाम बनाने के लिए सरकार ने आश्वासन दिया कि भविष्य में रियासतों का विलय नहीं किया जाएगा। अंग्रेज़ों में भारतीय अपार जनशक्ति को देखकर जरा संकोच और भय जरूर उत्पन्न हुए और उन्हें लगा कि यदि इस विद्रोह का प्रसार समूचे देश में फैलेगा तो हम मुट्ठीभर लोग इस विशाल जनसमुद्र के आगे टिक नहीं सकेंगे। इसलिए भारत में तुरंत अंग्रेज़ सेना की वृद्धि की गयी थी और जनता को तत्काल संतुष्ट करने के उपाय रचे गये थे।

राष्ट्रीय जागरण में इस महान विद्रोह का योगदान असीम है। इससे उच्च या उच्च्मध्यवर्ग तक ही सीमित वैचारिक चेतना एवं बौद्धिक क्रान्ति की आँच जनसामान्य तक पहुँची। राष्ट्र पर छाये हुए विदेशी शासन को हटाने की प्रबल आकांक्षा इस विद्रोह की सबसे महान उपलब्धि है। ".....इस विद्रोह ने परिस्थिति में एक कायापलट कर दी। इस विद्रोह ने समूचे देश को ऐसा झकझोरा कि पुनः मध्ययुगीन सुप्तावस्था की ओर लौटना असंभव था। सामंती वर्ग के नेतृत्व में ही सही, पर जनता ने विद्रोह में भाग लेकर और भीषण दमन और अत्याचार की चक्की में पिसकर जन-संघर्ष का पहला पाठ सीखा था, जिसे वह कभी न भुला सकी और जिसकी गर्वपूर्ण स्मृतियाँ उसे निंतर प्रेरणा देती रहीं। साम्राज्यवाद ने जनता के इस संघर्ष और बलिदान से भयभीत होकर सामंतवाद से समझौता कर लिया और वह देश में प्रतिक्रिया का केंद्र बन गया। टूटी-फूटी सामन्ती व्यवस्था साम्राज्यवाद की वरद छाया में पलने लगी । किन्तु राष्ट्रीय, सामाजिक और सांस्कृतिक प्रगति के संघर्ष की पताका अब स्वयं जनता और उसके प्रतिनिधियों ने अपने हाथ में उठा ली थी और एक ओर उन्होंने मध्ययुगीन सामन्ती मान्यताओं, प्रथाओं और अंधविश्वासों के दुर्ग पर चढ़ाई बोल दी तो दूसरी ओर अपने

संगठन, प्रचार और आंदोलन से अंग्रेज़ी साम्राज्यवाद की नीवों पर प्रहार भी करने शुरू कर दिये जो अपनी सामाजिक प्रगति की भूमिका समाप्त करके, प्रगति विरोधी बन चुका था और अपना रहा-सहा ऐतिहासिक औचित्य भी खो बैठा था। भारतीय जीवन में 'राष्ट्रीय जागरण' की स्रोतस्विनी फूट पड़ी ...''[25]

2.5.2 भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस की स्थापना

सन् 1857 ई. की महान क्रान्ति के बाद भारत का शासन कम्पनी के हाथों से छूटकर ब्रिटिश सरकार के अधीन हो गया। सन् 1858 ई. को लार्ड कैनिंग ने महारानी विक्टोरिया का घोषणा पत्र प्रकट किया। सन् 1883 ई. में ब्रिटिश सरकार ने इलबर्ट बिल पास किया जिसके द्वारा भारतीय जज एवं न्याय अधिकारी भी यूरोपीय लोगों के विरुद्ध अभियोगों की सुनवाई कर सकते थे। अंग्रेज़ों को यह बिल बेहद नापसंद था क्योंकि इससे उनकी जातिगत आधिपत्य-भावना को ठेस पहुँच सकती थी। इसलिए इस बिल का कड़े स्वर में विरोध किया और गवर्नर जनरल का सामाजिक बहिष्कार करके उसे वापस इंग्लैण्ड भेजने का षड्यंत्र रचा गया। इस बिल ने भारतीयों की आँखें खोलने का काम किया एवं यह सिद्ध किया कि अंग्रेज़ों की नजरों में भारतीय लोग कितने तुच्छ हैं। इसी समय तत्कालीन राजनीति के प्रमुख नेता सुरेंद्रनाथ बेनर्जी को कलकत्ता के उच्च न्यायालय के मुख्य न्यायाधीश ने एक केस में लिप्त करके जेल भेजने का दण्ड सुना दिया। इस दण्ड के विरुद्ध कलकत्ता के विद्यार्थियों ने बड़ा आंदोलन चलाया और उच्च न्यायालय के दर्वाजे तोड़ दिये गये।

प्रसिद्ध इतिहासकार आर.सी. मजुमदार ने लिखा कि ''सुरेंद्रनाथ बेनर्जी की गिरफ्तारी भारत के लिए वरदान सिद्ध हुई। पूरे देश ने अंग्रेज़ सरकार के विरुद्ध रोष प्रकट किया। यह एकता और संगठन का प्रमाण था। विद्यार्थी वर्ग की भूमिका तो विशेष उल्लेख के योग्य थी। उन्होंने खुले तौर पर अंग्रेज़ सरकार की दमन की नीति का खण्डन किया। कई विद्यार्थी सरकार के जुल्म का शिकार भी हुए।''[26]

इलबर्ट बिल के प्रकरण के बाद भारतीयों ने एक राजनैतिक मंच की आवश्यकता महसूस की और सन् 1883 ई. में कलकत्ता में 'इण्डियन एसोसिएशन' नामक संस्था की स्थापना हुई। दो वर्ष के बाद सन् 1885 ई. 31 जनवरी को बम्बई में इस संस्था का राष्ट्रीय अधिवेशन हुआ जिसमें देश के कोने कोने से प्रतिनिधियों ने भाग लिया। यही संस्था उसी वर्ष

यानि सन् 1885 ई. 30 दिसम्बर को 'भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस' बन गयी। इसकी स्थापना में एक अवकाशप्राप्त अंग्रेज़ प्रशासनिक अधिकारी ए.ओ.ह्यूम का योगदान अविस्मरणीय है। राष्ट्रीय कांग्रेस में पहले मात्र उच्च वर्ग के शिक्षित लोग ही सदस्य हुआ करते थे जो प्रायः अंग्रेज़ी के दुरंधर विद्वान थे, स्वभाव से सरल एवं पाश्चात्य जीवन शैली से प्रभावित थे। सुरेंद्रनाथ बेनर्जी, डब्लयू.सी.बेनर्जी, दादाभाई नौरोजी, मोतीलाला नेहरू, गोपालकृष्ण गोखले इत्यादि भद्रपुरुष राष्ट्रीय कांग्रेस के सारथी थे। इनके प्रारंभिक लक्ष्य देश में राजनैतिक स्तर पर राष्ट्रीय एकता कायम रखना, जनता को राष्ट्रीय आंदोलनों में सक्रिय बनाना, हिन्दू-मुस्लिम मैत्री पैदा करना तथा अंग्रेज़ों के समान भारतीय शिक्षित वर्ग को भी सारे अवसर प्रदान करने के लिए सरकार पर जोर देना इत्यादि थे। भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस की स्थापना ने राष्ट्रीय जागरण के प्रथम लक्ष्य जो भारत को अंग्रेज़ों के हाथों से राजनैतिक मुक्ति दिलाना था, की पूर्ति में योगदान दिया। "....1860 और 1870 के दशक से ही भारतीयों में चेतना पनपने लगी थी। कांग्रेस की स्थापना इस बढ़ती चेतना की पराकाष्ठा थी। सन् 1885 में इस राजनैतिक चेतना ने करवट बदली। भारतीय राजनीति में सक्रिय बुद्धिजीवी संकीर्ण हितों के लिए आवाज उठाने के बजाय राष्ट्रीय हितों के लिए राष्ट्रीय स्तर पर संघर्ष करने को छटपटाने लगे थे। इनके इस प्रयास को सफलता मिली, एक राष्ट्रीय दल का गठन हुआ- एक ऐसा दल जो राष्ट्रीय चेतना का प्रतीक था, भारतीय राजनीति के लिए एक प्लेटफार्म, एक संगठन, एक मुख्यालय।"[27]

राष्ट्रीय कांग्रेस की स्थापना के बाद लगभग पंद्रह-बीस साल तक उपर्युक्त नेताओं ने अंग्रेज़ी सरकार के साथ बहुत विनम्रता के साथ पेश आकर भारतीय जनता की समस्याओं को सरल एवं आवेदन की वाणी में सुनाने का प्रयास किया।

2.5.3 राष्ट्रीय जागरण तथा लाल-बाल-पाल

सन् 1907ई. के सूरत-कांग्रेस अधिवेशन में कांग्रेस के दो दल हो गये - नरम दल और गरम दल। आदि से अंग्रेज़ों से नरमी से पेश आनेवाले गोपालकृष्ण गोखले, दादाभाई नौरोजी आदि नेता नरम दल में तथा कुछ गरमी से पेश आनेवाले बालगंगाधर तिलक, बिपिनचंद्र पाल और लाला लजपत राय जैसे लोग गरम दल में विभक्त हो गए। इन नेताओं के कारण राष्ट्रीय कांग्रेस के लक्ष्य बदल गये। अब तक केवल विनति या आवेदन के रूप में

कांग्रेस की माँगों का प्रकटीकरण हो रहा था, लेकिन लाल, बाल, पाल त्रयी ने कांग्रेस की वाणी को प्रखर बना दिया।

राष्ट्रीय जागरण में बालगंगाधर तिलक की भूमिका अत्यंत महत्वपूर्ण है। प्राचीनकाल में अर्थात् वेद काल में भारतीय लोगों को जीवन में कर्मण्यता, उत्साह, आशा और क्रियाशील मनोवृत्ति ने ही आगे बढ़ाया लेकिन परवर्ती धार्मिक, सांस्कृतिक, दार्शनिक परिस्थितियों के कारण अकर्मण्यता, संन्यास, नीरस मनोवृत्तियों ने भारतीय जनमानस को घेर लिया। परिणामस्वरूप यह जाति कई सालों तक गुलाम बन गयी। लेकिन राष्ट्रीय जागरण का दार्शनिक पक्ष स्वामी विवेकानंद के कर्मण्यता प्रधान धार्मिक उपदेशों के कारण बलवती बन गया, पर उसे जनसामान्य तक राजनीतिक स्तर पर लागू करनेवाले महान नेता बालगंगाधर तिलक हुए। उन्होंने हिन्दू धर्म के पवित्र ग्रंथ 'भगवद्गीता' की कर्मण्यता प्रधान टीका की और 'मराठा' एवं 'केसरी' पत्रिका के द्वारा समूचे राष्ट्र में जागरण की ज्वार उठायी। तिलक ने लिखा कि "भारतीय युद्ध का प्रारंभ होने के पहले जब कुरूक्षेत्र में दोनों पक्षों की सेनाएँ लड़ाईई के लिए सुसज्जित हो गयी थीं और जब एक-दूसरे पर शस्त्र चलने ही वाला था कि इतने में अर्जुन ब्रह्म-ज्ञान की बड़ी-बड़ी बातें बतलाने लगा और विमनस्क होकर संन्यास लेने को तैयार हो गया। तभी, उसे क्षात्र-धर्म में प्रवृत्त करने के लिए भगवान ने गीता का उपदेश दिया है।....भगवान श्रीकृष्ण का यह उद्देश्य नहीं था कि अर्जुन संन्यास-दीक्षा लेकर और बैरागी बन कर भीख माँगता फिरे या लँगोटी लगाकर और नीम के पत्ते खाकर मृत्यु-पर्यन्त हिमालय में योगाभ्यास साधता रहे। भगवान का यह भी उद्देश्य नहीं था कि अर्जुन धनुष-बाण को फेंक दे और हाथ में वीणा तथा मृदंग लेकर कुरूक्षेत्र की धर्म-भूमि में उपस्थित भारतीय क्षात्रसमाज के सामने, भगवन्नाम का उच्चारण करता हुआ, बृहन्नला के समान और एक बार अपना नाच दिखावे।"[28]

तिलक ने त्योहारों के द्वारा जनता में राष्ट्रीय जागरण का प्रसार किया। जनता में राष्ट्रीय उत्साह भरने की दृष्टि से उन्होंने गणेश उत्सव एवं शिवाजी उत्सव का आयोजन किया और इन संदर्भो में भी स्तोत्र एवं गीतों के द्वारा देशवासियों को विदेशी शासन के खिलाफ गठित होने का संदेश दिया। "....गणपति स्तोत्र का सार कुछ इस प्रकार था : हाय तुम्हारा दुर्भाग्य! दासता में रहकर भी तुम्हें लज्जा नहीं आती? इस नरकीय जीवन से तो

आत्महत्या कर लेना बेहतर है। तुम्हारे देश का नाम तो भारतवर्ष है फिर यहाँ अंग्रेज़ क्यों राज्य करते हैं? शिवाजी स्तोत्र में निम्नलिखित भाव प्रकट होते थे : हाथ पर हाथ रख बैठे रहने से और शिवाजी गाथा को बार-बार दोहराने से स्वतंत्रता नहीं मिल सकती। हमें तो शिवाजी और बाजीराव की तरह कमर कसकर जुट जाना है। स्वतंत्रता के लिए ढ़ाल, तलवार उठा लेनी पड़ेगी। हम राष्ट्रीय युद्ध के मैदान में अपने जीवन का बलिदान कर देंगे। हर वर्ष ऐसे उत्सव मनाने की व्यवस्था की गयी। मंतव्य लोगों की देशभक्ति के विचार को घुट्ठी की तरह पिलाने का था। उत्सवों की समाप्ति पर महारानी विक्टोरिया का जय-घोष भी किया जाता था ताकि सरकार को संदेह न हो कि इन उत्सवों के बहाने लोगों में विद्रोह की भावना फैलायी जा रही है।''[29]

इस प्रकार की ओजपूर्ण वाणी ने जनता में राष्ट्रीय गौरव को उत्पन्न किया। उधर बिपिनचंद्र पाल भी प्रचण्ड वायु समान राष्ट्र की यात्रा कर रहे थे और राष्ट्रीय जागरण अपने चरमोत्कर्ष पर पहुँचा। बिपिनचंद्र पाल ने 'वंदे मातरम्' के संपादक अरविंद घोष के खिलाफ गवाही देने से इनकार कर दिया था और दस महीने की कैदी की सज़ा उन्होंने खुशी से स्वीकार कर ली थी। इस घटना ने उन्हें राष्ट्रीय जागरण के प्रकरण में एक महान नेता के रूप में स्थापित किया। वे अपने तीखे भाषणों से सारे राष्ट्र में एकता और स्वराज्य का प्रचार करते थे। 'स्वाधीनता किसी की दी गयी भीख नहीं- संघर्ष का पुण्यफल होता है' तिलक के इस विचार से बिपिनचंद्रपाल भी सहमत थे। वे लिखते हैं कि - ''कोई किसी को स्वराज्य नहीं दे सकता। यदि आज अंग्रेज़ मुझे कहें कि स्वराज्य ले लो, मैं उसे ठुकरा दूँगा, क्योंकि जिस चीज को मैं स्वयं उपार्जित नहीं कर सकता, उसको मैं लेने का अधिकारी भी नहीं हूँ। हम अपनी सारी शक्ति को इस तरह से लगाएँगे जिससे विरोधी शक्ति को अपने मत पर ला सकें। विलायती माल के बायकॉट से लेकर सविनय अवज्ञा तक ये सब हमारे अस्त्र हैं।''[30]

उन्होंने राष्ट्रीय शिक्षा पर भी जोर दिया और उसी क्रम में उन्होंने राष्ट्र के सभी प्रमुख शहरों में राष्ट्रीय कलाशालाओं की स्थापना की। ''....सन् 1907 ई. में बिपिनचंद्र पाल ने आंध्र प्रांत में भ्रमण किया। उन्होंने राजमहेंद्री, विजयवाड़ा, बंदरू तथा नेल्लूरु आदि स्थानों में भाषण दिये। उन्होंने अपने भाषणों से आंध्र की जनता को उत्तेजित किया। इससे समस्त आंध्र प्रदेश में एक महान राजनैतिक क्रांति उत्पन्न हुई। कुछ लोग अवज्ञा करने के लिए तैयार हो

गये। इनमें गाडिचर्ल सर्वोत्तमराव प्रमुख थे। सरकार ने इनको राजमहेंद्री ट्राइनिंग विद्यालय से निकाल दिया तो इन्होंने 'स्वराज्य' नामक पत्रिका की स्थापना करके सरकार का विरोध किया। कोंपल्ले हनुमंतराव ने अपने वकील-उपाधि-पत्र को फाड़ कर बंदरू के नाले में फेंक दिया। इस प्रकार उन्होंने अपनी वकील वृत्ति को त्याग कर अपना सारा जीवन देश सेवा के लिए न्योछावर किया।''[31]

उधर 'पंजाब केसरी' नाम से प्रसिद्ध लाला लजपतराय भी राष्ट्रीय जागरण का शंख फूँक रहे थे। वे राजनीति के ही नहीं सामाजिक क्षेत्र के भी बड़े नेता थे। उन्होंने भी अपने भाषणों तथा कार्याचरण के द्वारा लोगों में राष्ट्रीय सम्मान एवं विदेशी शासन के प्रति विरोध पैदा करने का सफल प्रयास किया था। वे कहते थे : ''आज़ादी बिना बलिदान दिये प्राप्त नहीं हो सकती। आज़ादी मिलती नहीं, ली जाती है। इसका मूल्य चुकाना पड़ता है जो रूपयों-पैसों में न होकर नर-मुंडों के रूप में होता है। उस राष्ट्र के बढ़ते कदमों को कोई भी बाधा नहीं रोक सकती जिसके युवकों के दिलों में अन्याय के विरुद्ध लड़ने के वलवले हों, क्रूर शासक से जूझने के मनसूबे हों, देश की आन पर मर-मिटने के अरमान हों.....सारे संसार का धन और वैभव भी आज़ादी और सम्मान से तुलना नहीं कर सकता। जैसे किसी दास की आत्मा नहीं होती वैसे ही किसी गुलाम राष्ट्र की भी आत्मा नहीं होती और जिस राष्ट्र की आत्मा नहीं है वह पशुओं के झुण्ड की भाँति है।''[32]

यहाँ ध्यान देने की बात है कि इस लाल-बाल-पाल की त्रयी ने समस्त राष्ट्र को अपने भाषणों से झकझोर दिया और उनका प्रभाव सारे देश की युवापीढ़ी पर बहुत गहरे रूप से पड़ने लगा। क्योंकि ये तीनों महान वक्ता अपने भाषण से श्रोताओं का मन मोह लेने में समान रूप से समर्थ थे। राष्ट्रीय जागरण में इन तीनों महान नेताओं का योगदान बहुमूल्य है- इसमें कोई संदेह नहीं। लेकिन अन्य नेताओं की तुलना में लाल-बाल-पाल की त्रयी के कारण राष्ट्र में ऐसे नव युवकों का जन्म होने लगा जो इनके भाषण सुनकर तीव्ररूप से प्रभावित हो गये थे और भारतमाता की रक्षा के लिए अपने प्राण तक त्याग देने में संकोच नहीं करते थे। ऐसे नवयुवकों को इतिहास ने क्रांतिकारी का नाम दिया। इनके कारण राष्ट्रीय जागरण में उग्रवाद एवं आतंकवाद से भरी राष्ट्रीयता अंकुरित हुई। ऐसे क्रांतिकारी लोग गुप्त रूप से अपना संगठन चलाते थे और अंग्रेज़ों पर घात लगाकर चोट करते थे। ब्रिटिश सरकार ने ऐसे लोगों

की राष्ट्रीयता को प्रायः कुचल डालने का प्रयत्न किया। इसलिए क्रांतिकारी लोग पकडे जाते तो उन्हें या तों फाँसी की सज़ा दी जाती थी या उन्हें कालापानी की भयानक सज़ा मिलती थी। समय समय पर ये क्रांतिकारी लोग अंग्रेज़ों पर हमले करते थे और अंग्रेज़ों को भयभीत करके भारत से निष्कासित कर देना ही इनका लक्ष्य था। बंगाल के राजनारायण बोस, महाराष्ट्र के वासुदेव बलवंत फड़के, मध्यप्रदेश में जन्मे चंद्रशेखर आज़ाद, पंजाब के भगतसिंह, आंध्र प्रदेश के अल्लूरि सीताराम राजू इत्यादि कई नाम इसी उग्रवादी राष्ट्रीयता के इतिहास में बड़े गौरव के साथ लिये जाते हैं। इन सबको ब्रिटिश सरकार ने भयानक सज़ाएँ दिलवायीं। फिर भी राष्ट्रीय जागरण का प्रभाव सामान्य जनों तक पहुँचाने में इन सबका योगदान अविस्मरणीय है। बंगाल की अनुशीलन समिति, पूना का 'आर्य बांधव समाज' आदि कई शाखाएँ उग्रवादी गतिविधियों के लिए काफी प्रसिद्ध हुई थीं।

2.5.4 बंग-भंग आंदोलन

राष्ट्रीय जागरण के परवर्ती परिणामों में बंग-भंग आंदोलन का बड़ा महत्व है। लार्ड कर्जन ने देखा कि भारत में राष्ट्रीयता के प्रचार एवं प्रसार के लिए कलकत्ता ही सबसे आगे है और बंगाल से ही सारे देश को जागरण का शंखनाद सुनाया जा रहा है। बंगाल तो सारे कांग्रेस वादियों की वाणी को प्रखर बनाने में सहायक सिद्ध हो रहा था और उग्रवादियों के लिए नैतिक सहारा भी बंगाल ही रहा। इसलिए कर्जन ने बंगाल को कुचलने के उद्देश्य से सन् 1905 ई. उसे पूर्वी बंगाल और पश्चिमी बंगाल के रूप में विभाजित किया तथा यह बताया कि इस विभाजन का उद्देश्य केवल शासन में सुविधा लाना ही नहीं बल्कि एक मुस्लिम प्रांत को अलग बनाना भी है। मगर कर्जन के इस कार्याचरण के पीछे कुछ गंभीर कारण निहित थे। उसने अपने हृदय के उद्गार एक पत्र में व्यक्त किये जो उसने भारत सचिव को लिखा था। पत्र की कुछ पंक्तियाँ इस प्रकार थीं - "कांग्रेस की गतिविधियों का केंद्र कलकत्ता है। राजनीति के मनसूबे यहीं तैयार होते हैं। यहीं बढ़िया वक्ता हैं। वे स्थानीय शासन को दबाने का दुःसाहस करते हैं। ये बंगाली बाबू सोचते हैं कि वे अंग्रेज़ों को भारत से मार भगाएँगे और स्वयं गवर्नमेंट हाऊस की कुर्सियों की शोभा बढ़ायेंगे। यदि भारत के पूर्व में उभर रही इन बुद्धिजीवियों की शक्ति को काबू में न किया गया तो यह हमारे लिए संकट का कारण बन जाएगे।"

स्पष्ट है कि अंग्रेज़ों ने भारत में बढ़ती राष्ट्रीय शक्तियों को उन्मूलित करने के उद्देश्य से ही यह काम किया था। इस विभाजन से सारे राष्ट्र की एकता को चुनौती दी गयी और इस चुनौती का उत्तर सारे देशवासियों ने अभूतपूर्व ढ़ंग से दिया था। सुरेंद्रनाथ बेनर्जी, बाल गंगाधर तिलक, बिपिनचंद्र पाल, अरबिंद घोष आदि नेताओं ने राष्ट्रीय स्तर पर इस बंग-भंग के विरुद्ध आंदोलन चलाये और इससे संपूर्ण देश में विदेशी सरकार के प्रति रोष चरमसीमा पर पहुँच गया। यही नहीं, राष्ट्रीय जागरण का सबसे अनोखा आंदोलन 'स्वदेशी आंदोलन' का सूत्रपात भी इसीसे माना जाता है। "..विभाजन विरोधी आंदोलन स्वदेशी आंदोलन में विकसित हुआ, जिसने विखण्डन और त्रस्त शक्तियों को बल और संलग्नता दी। इस नये वर्ग ने समाचार-पत्रों को स्पष्टवादी और छात्रों को विद्रोही होना सिखाया। इसने हिंदुओं और मुसलमानों को सहयोग करने, जनता को अपनी राजनीतिक और आर्थिक स्थिति पर विचार करने, निर्भीक होने, सरकार की अवज्ञा करने, लाठी चलाने, जेल जाने और फाँसी के तख्ते को देश की सेवा में अर्जित सम्मान समझकर स्वीकार कर लेने की सीख दी।"[33]

राष्ट्रीय शिक्षा, राष्ट्रीय वस्तुओं का उपयोग, विदेशी शिक्षा एवं नौकरी का बहिष्कार, विदेशी वस्तुओं का तिरस्कार आदि कई रूपों में राष्ट्रीय जागरण की लहर सारे देश में फूट पड़ी। कलकत्ता, बम्बई, मद्रास आदि सभी प्रमुख शहरों में बड़े-बड़े विदेशी माल-गोदाम जलाये गये और स्वदेशी वस्तुओं के उपयोग पर जोर दिया जाने लगा। खादी का उपयोग, हिन्दी का प्रयोग स्वदेश प्रेम के चिह्न-से बन गये। डॉ.पट्टाभि सीतारामय्या ने लिखा कि "सरकार की उत्तरोत्तर उग्र और नग्न रूप धारण करनेवाली दमन नीति के कारण नव जागृत चेतना भी सचमुच व्यापक विस्तृत और गहरी होती गयी। देश के एक कोने में जो घटना होती थी वह सारे देश में फैल जाती।"[34]

सन् 1906 ई. में कलकत्ता में कांग्रेस का अधिवेशन दादाभाई नौरोजी के स्वराज्य की माँग से गूँज उठा। इसमें बंकिमचंद्र चटर्जी से लिखित आनंदमठ उपन्यास से स्वीकृत 'वन्देमातरम्' का गीत राष्ट्रीय गीत के रूप में घोषित किया गया। वंदेमातरम् गीत समूचे भारत में एक ही भाव एक ही आवेग और एक ही समरोत्साह से गाया जाने लगा तथा वंदेमातरम् गीत को सारे भारत ने राष्ट्रीय गौरव के रूप में सहर्ष स्वीकार किया। इसलिए बंग-भंग आंदोलन को 'वन्देमातरम् आंदोलन' के नाम से भी अभिहित किया जाता है।

'युगान्तर', 'संध्या', 'अमृत बाजार', 'वन्देमातरम्' आदि पत्र-पत्रिकाओं ने इस आंदोलन में सामान्य जनता पर अंग्रेज़ शासन के द्वारा किये गये भयानक अत्याचारों का पर्दा-फाश किया। तिलक, घोष, लाला लजपतराय एवं बिपिनचंद्र पाल जैसे नेता महाराष्ट्र या बंगाल तक सीमित न होकर राष्ट्रीय नेता बन गये। आंदोलन की तीव्रता को पहचानकर ब्रिटिश सरकार ने सन् 1909 ई. में मिंटो मारले रिफार्म का सूत्रपात किया जिसके अनुसार प्रांतीय सभाओं में सदस्यों की संख्या बढ़ा दी गयी। सन् 1911 ई. में दिल्ली दरबार में इंगलैण्ड के सम्राट ने बंगाल के विभाजन का प्रस्ताव रद्द कर दिया। सारे देशवासियों की यह राष्ट्रीय विजय थी। यद्यपि इस आंदोलन में देशवासियों को बहुत मूल्य चुकाना पड़ा तथापि राष्ट्रीय जागरण की शक्ति पर उन्हें विश्वास हो गया।

राष्ट्रीय जागरण काल में हिन्दू-मुसलमान की एकता एक प्रधान मुद्दा था। दरअसल हिन्दू और मुसलमानों के बीच अंग्रेज़ों के आगमन तक कोई बहुत बड़ी खाई नहीं थी। यद्यपि मुसलमान शासक तथा हिन्दू शासित वर्ग के थे तथापि देश के इन दो प्रधान वर्गों में ज़्यादा द्वेष या आपसी वैर नहीं थे, यदि कभी हुआ करते थे तो वे अब युगों के सहजीवन के बाद मित्रता एवं सहिष्णुता में बदल चुके थे। सन् 1857 ई. का महान विद्रोह हिन्दू-मुसलमान जनता की आपसी मैत्री का अद्वितीय उदाहरण है। इसी समय दोनों ने कंधे से कंधा मिलाकर अंग्रेज़ों के खिलाफ लड़ाई की। सन् 1857 के विद्रोह को दबा देने के बाद अंग्रेज़ों को लगा कि हिन्दू-मुसलमान एकता को जारी रखने का मतलब बड़ा खतरा मोल लेना ही होगा। इसलिए उन्होंने धीरे धीरे 'फूट डालो-राज करो' वाली अपनी पुरानी कूट नीति को अपनाकर हिन्दुओं की विशाल जनता से मुसलमानों को धर्म एवं भाषा के आधार पर अलग करने का प्रयास किया और इस प्रयास में सफलता भी उन्हें प्राप्त हुई। फलस्वरूप सन् 1906 ई. में मुस्लिम लीग की स्थापना हुई।

राष्ट्रीय जागरण में सन् 1915-16 ई. का समय बहुत महत्वपूर्ण माना जाता है। इसी समय श्रीमती एनीबेसेंट का कांग्रेस पार्टी में आगमन हुआ। इससे पहले यानी सन् 1914 ई. में ही प्रथम विश्वमहायुद्ध छिड़ चुका था। श्रीमती एनीबिसेंट के आगमन के बाद कांग्रेस के नरमदल एवं गरमदल के बीच समन्वय लाने की चेष्टा जोर पकड़ने लगी और तिलक भी माण्डले जेल से अपनी पूरी सज़ा काटकर आ गये। उन्होंने दोनों दलों के प्रमुख नेताओं के

मध्य समझौता करने का प्रयास किया तथा राष्ट्रवादी विचारों से पार्टी को संगठित करने पर जोर दिया। स्वराज्य के लिए एक और

जोरदार आंदोलन शुरू हो गया। सन् 1916 ई. में चले इस आंदोलन का नाम होमरूल आंदोलन है। श्रीमती एनीबेसेंट एवं तिलक ने होमरूल आंदोलन के द्वारा स्वदेशी, राष्ट्रीय शिक्षा का कार्यक्रम जीवित रखा। श्रीमती एनिबिसेंट, अरण्डेल तथा वाडिया को सरकार ने नज़रबंद किया। देश के विभिन्न प्रांतों में आंदोलन में लगे लोगों पर गोलियाँ बरसीं। इसी समय यानी सन् 1915 ई. में मोहनदास करमचंद गांधी का भारत में पदार्पण हुआ।

2.5.5 महात्मा गांधी का युग

लाल-बाल-पाल त्रयी के पश्चात् राष्ट्रीय जागरण का नेतृत्व करनेवाले मोहनदास करमचंद गांधीजी ने किया। आपका जन्म 2 अक्तूबर, सन् 1869 ई. को गुजरात के पोरबंदर में हुआ था। महात्मा गांधी जी ने पहले ही दक्षिण अफ्रिका में गोरों के विरुद्ध सत्याग्रह, हडताल की नवीन रणनीति का उपयोग करके लोकप्रियता हासिल की थी। दक्षिण अफ्रिका में गोरों के जातिगत विद्वेष के शिकार बने भारतीयों को गांधीजी के रूप में एक सहारा मिला था। भारत में भी उन्होंने सत्याग्रह का आंदोलन चलाया। गांधीजी के ही कारण राष्ट्रीय जागरण में अहिंसा और सत्याग्रह अंग्रेज़ों के खिलाफ अद्वितीय हथियार सिद्ध हुए। गांधी जी ने अहिंसा और सत्याग्रह को ही प्रश्रय क्यों दिया? क्योंकि गांधी जी पर जैनों के अनेकान्तवाद का गहरा प्रभाव रहा। अनेकान्तवाद उस दर्शन का नाम है जहाँ सत्य मात्र एक ही नहीं होता बल्कि अनेक दृष्टिकोणों से देखने पर अनेक भी हो सकता है। संसार में द्वेष का सबसे बड़ा कारण यही है कि हम अपनी कही बात को ही सर्वोपरि मानते हैं और अकसर यही सोचते हैं कि हमारी ही बात सच है। लेकिन अनेकान्तवाद यह कहता है कि 'सत्य मात्र वह नहीं जो मैं कहता- सत्य वह भी हो सकता है जो तुम कहते हो।' महात्मा गांधी जी इसी सिद्धांत से प्रभावित थे तथा अहिंसा इसी सिद्धांत का व्यावहारिक रूप है। महात्मा गांधी ने लिखा कि ''मेरा अनुभव है कि अपनी दृष्टि से मैं सदा सत्य ही होता हूँ, किन्तु मेरे ईमानदार आलोचक तब भी मुझमें गलती देखते हैं। पहले मैं अपने को सही और उन्हें अज्ञानी मान लेता था। किन्तु, अब मैं मानता हूँ कि अपनी-अपनी जगह हम दोनों ठीक हैं। कई अंधों ने हाथी को अलग-अलग टटोल कर उसका जो वर्णन किया था, वह दृष्टांत अनेकान्तवाद का सबसे

अच्छा उदाहरण है। इसी सिद्धांत ने मुझे यह बतलाया कि मुसलमान की जाँच मुस्लिम दृष्टिकोण से तथा ईसाई की परीक्षा ईसाई दृष्टिकोण से की जानी चाहिए। पहले मैं मानता था कि मेरे विरोधी अज्ञान में हैं। आज मैं विरोधियों को प्यार करता हूँ क्योंकि अब मैं अपने को विरोधियों की दृष्टि से भी देख सकता हूँ। मेरा अनेकान्तवाद, सत्य और अहिंसा, इन युगल सिद्धान्तों का ही परिणाम है।''[35]

सर्वप्रथम उन्होंने बिहार प्रांत के चम्पारन जिले में नील की खेती से जुड़े किसानों के प्रतिनिधि बनकर अंग्रेज़ों का विरोध किया था। सन् 1918 ई. में खेड़ा और अहमदाबाद के पीडित कृषकों तथा मज़दूरों को भारी कष्टों से मुक्ति दिलवायी थी। गांधीजी के रूप में भारतीय जनता को राष्ट्रीय जागरण के एक मुख्य नेता मिल गये। पण्डित जवाहरलाल नेहरू ने लिखा कि ''बहुत दिन बाद, किसान को आशा की किरण दिखायी दी, अच्छे दिन आने और बोझा हल्का होने की धीमी-सी आवाज उसके कानों में सुनायी दी। एक छोटा-सा व्यक्ति आया, जिसने उसकी आँखों से आँखें मिलायीं। उसके मुरझाऐ हुए दिल की तह तक पहुँचकर उसकी युग-पीडा को अनुभव किया। इसकी नज़र में जादू था, स्पर्श में आग थी, आवाज में सहानुभूति और ह्रदय में करूणा, छलकता हुआ प्रेम और मृत्यु पर्यन्त विश्वास-पात्रता थी। और जब किसानों ने मज़दूरों ने और उन सबने, जो पैरों तले रौंदे जा रहे थे, उसे देखा और उसकी आवाज सुनी, तो उनके मुर्दा दिलों में जीवन जाग उठा और वे पुलकित हो उठे, उनमें एक विचित्र आशा का उदय हुआ और हर्ष के मारे वे चिल्ला उठे : 'महात्मा गांधी की जय' और अपने कष्टों की घाटी से बाहर निकलने के लिए चल पड़े।''[36]

अनेक कारणों से ब्रिटिश शासन के प्रति भारतीय जनता का विद्वेष बढ़ता गया। विशेषकर पंजाब में शासन का व्यवहार सबसे क्रूर रहा। सन् 1913 ई. से पंजाब में जो लेफ्टिनेंट गवर्नर था उस सर माइकेल ओडयर के कारण शिक्षित एवं मध्यवर्ग की जनता बहुत सतायी गयी थी। इधर देश के मुसलमानों की असंतुष्टि का एक और कारण था। प्रथम विश्वयुद्ध की समाप्ति के बाद मुसलमानों के धार्मिक गुरु खलीफ़ा के प्रति ब्रिटिश लोगों का व्यवहार मुसलमानों के कोप का कारण बना। तुर्की राष्ट्र के सुल्तान इस खलीफ़ा के सारे अधिकार छीन लिये गये। इस्लाम के सारे पवित्रस्थानों पर खलीफ़ा की पकड़ जाती रही। इसलिए भारत में मुसलमान जनता के कुछ प्रतिनिधि व्यक्तियों ने इसे इस्लाम के प्रति अपमान

समझा और अंग्रेज़ों के विरुद्ध 'खिलाफ़त आंदोलन' चलाया। इस आंदोलन के नेता मुहम्मद अली और शौकत अली थे। महात्मा गांधी को यह अवसर हिन्दू-मुसलमान लोगों को पुनः एक करने का स्वर्णिम अवसर दिखायी दिया और सहज ही उन्होंने इस आंदोलन का समर्थन किया। खिलाफत आंदोलन में भाग लेने वाले मुसलमान लोगों को हिन्दुओं की पूरी सहायता मिली। इन परिणामों के कारण मुसलमान जनता में ब्रिटिश शासन के प्रति विरोध, गांधीजी के प्रति विश्वास एवं हिन्दू भाइयों के प्रति स्नेह उत्पन्न हुए। यह संदर्भ राष्ट्रीय जागरण के इतिहास एक अद्वितीय संदर्भ रहा। "मुसलमान लोग हिन्दुओं को अपने भाई समझकर उनसे घुल-मिल गये। दिल्ली, लाहौर, बंबई, कलकत्ता जैसे शहरों के भव्य मसज़िदों में प्रार्थना के समय हिन्दुओं को प्रवेश दिलाया गया। यह अभूतपूर्व विषय है। हिन्दू सन्यासियों तथा नेताओं ने मसज़िदों के मंचों से जो उपदेश दिये उन्हें मौल्वी साहब और उलेमा के उपदेशों से बढ़कर लोगों ने सुना। उन दिनों मुसलमान एवं हिन्दुओं के बीच वर्ग-वैमनस्य का भाव अदृश्य हो गया।"[37]

अब तक गांधीजी के सत्याग्रह किसी गाँव या जिला तक सीमित रहे। लेकिन सन् 1919 ई. में उन्होंने सबसे पहले रौलट शासन के खिलाफ जो सत्याग्रह चलाया था, उसका प्रभाव सारे राष्ट्र पर पड़ा और गांधी जी कांग्रेस के अद्वितीय सेनापति सिद्ध हुए। सन् 1919 ई. के मार्च महीने में ब्रिटिश सरकार ने रौलट आयोग की रिपोर्ट को कानून बना दिया जिसके तहत किसी भी भारतीय को कैद करके बिना मुकद्दमा चलाए बंदीगृह में अनिश्चित समय के लिए रखा जा सकता है। महात्मा गांधी ने इस शासन के खिलाफ सत्याग्रह का आंदोलन चलाया था। उन्होंने सारे देश को इस आंदोलन में भागीदार बनाया। दिल्ली में मार्च 30, सन् 1919 ई. को हड़ताल किया गया था। बंबई, गुजरात, मध्यप्रदेश के पाँच बड़े शहरों में तथा मद्रास में भी जनता ने बड़ी संख्या में इस आंदोलन में भाग लिया। बंगाल के कलकत्ता, ढ़ाका जैसे शहरों में जनता ने बड़े उत्साह से काम किया। बिहार के पटना, मुजफरपुर, गया जैसे शहरों में भी सफलता पूर्वक आंदोलन चला। उत्तरप्रदेश हर शहर में हजारों लोगों ने आंदोलन में भाग लिया। भारत में हर एक राज्य में यह सत्याग्रह चला और आंदोलन सर्वप्रथम समूचे राष्ट्र में फैला। इसी बीच सन् 1919 ई. अप्रैल में जलियाँवाला बाग का हत्याकाण्ड हुआ।

इस हत्याकाण्ड का परिप्रेक्ष्य भी गंभीर ही था। रौलट शासन के विरुद्ध लड़नेवाले

लोगों पर पंजाब में दारुण दमनकाण्ड चलने लगा। डॉ.सैफुद्दीन किचलू और डॉ.सत्यपाल को गिरफ्तार करने का आदेश दिया गया। इसके विरोध में अमृतसर के जलियाँवाला बाग में शांतिपूर्वक ढ़ंग से एक सभा का आयोजन किया गया। इस सभा पर जनरल डायर ने बिना सूचना के गोली चला दी। लगभग बीस हजार आदमी सभा में मौजूद थे - इसलिए गोलीकाण्ड के बाद भयानक रूप से लोग तितर-बितर हो गये। लगभग पाँच सौ लोगों की मौत हो गयी लेकिन गैर सरकारी आँकडे मृतकों की संख्या एक हजार से ज़्यादा बताते हैं। इस घटना में कई हजार लोग घायल हो गये। जनरल डायर की इस क्रूरता का सभ्यसमाज ने मुक्तकंठ से विरोध किया और राष्ट्र की जनता का खून उबल पड़ा। राष्ट्रीय जागरण के संदर्भ में जलियाँवाला बाग का हत्याकाण्ड एक और मोड है। क्योंकि इस घटना ने राष्ट्रीय स्तर पर जनता का ध्यान आकृष्ट किया और प्रांतीय, स्थानीय प्रभावों से परे हटकर भारतीय जनता ने मृतकों को अपनी श्रद्धांजलि अर्पित की। इस घटना का वर्णन कुछ इस प्रकार है -

"...13 अप्रैल को हिन्दुओं की खुशी का पर्व बैसाखी था, परन्तु पंजाब रोष और आक्रोश की अग्नि में जल रहा था। अमृतसर के जलियाँवाला बाग में एक सभा का आयोजन किया गया। हजारों स्त्रियाँ, पुरुष, बच्चे - बूढ़े अपने नेताओं की बात सुनने के लिए एकत्रित हो गए। अनुमानतया बीस हजार लोग होंगे। बाग, शहर के मध्य एक छोटा-सा स्थल है जो चारों ओर से भवनों से घिरा हुआ है। केवल एक संकरी-सी गली है, जो अंदर जाने और बाहर आने का एकमात्र मार्ग है। जब श्री हंसराज भाषण दे रहे थे, वहाँ जनरल डायर अपने 100 सैनिकों के साथ आ पहुँचा और आते ही सैनिकों को पोजीशन लेने और फायर करने के आदेश दे दिये। मिनटों में 1600 गोलियाँ चलीं और एम्यूनिशन समाप्त हो गया। सभा स्थल पर लाशों के ढ़ेर लग गए। हाहाकार मच गया। जो लोग जान बचाने की खातिर भागे, वे पास के कुएँ में गिरकर मर गए......जो तीन-चार हजार लोग जख्मी थे और तडप रहे थे, उन्हें उसी अवस्था में पड़ा रहने दिया गया। चारों ओर सेना का पहरा था और कोई आदमी बाग के बादहर नहीं जा सकता था। इतना ही नहीं, शहर का पानी, बिजली बंद कर दी गयी, ताकि कोई जख्मी पानी की बूँद पीकर बच न जाए।"[38]

लेकिन जनरल डायर ने अपने इस कुकृत्य की निर्लज्ज सफाई पेश की। उसने जाँच कमिटी के सामने कहा कि यदि उसके पास और कारतूस होते तो वह लोगों पर और फायरिंग

करवाता। इतना ही नहीं उसने अपने कर्म को 'कर्तव्यपालन के लिए आवश्यक तथा पवित्र' घोषित किया।

इस भयानक हत्याकाण्ड के विरोध में रवींद्रनाथ टैगोर ने ब्रिटिश सरकार द्वारा प्राप्त नाइटहुड की उपाधि वापस कर दी, इधर शंकरन नायर ने गवर्नर जनरल की कार्यकारिणी परिषद से त्यागपत्र दे दिया। अमृतसर के देशभक्तों को राष्ट्रीयदीक्षा में मिले स्वर्गवास पर सारे देश में एक ही प्रकार की अतीव प्रशंसा प्राप्त हुई तथा राष्ट्रीय जागरण की ज्वाला में यह घटना बंग-भंग प्रसंग की तरह एक और चिनगारी का काम करती रही। इस घटना ने कई नवयुवकों को ब्रिटिश शासन के कट्ठर विरोधी बना दिया। वे ही युवक बाद में चलकर चंद्रशेखर आज़ाद, सुखदेव जैसे क्रांतिकारी हुए।

महात्मा गांधी ने सन् 1920 ई. में असहयोग आंदोलन का शंखनाद किया। इस आंदोलन का लक्ष्य भारत में शिक्षा, न्याय, राजनीति, समाज-सेवा, अर्थ-व्यवस्था इत्यादि कई क्षेत्रों में कार्यरत संस्थाओं का बहिष्कार करना तथा ब्रिटिश शासन के प्रयोजनों के खिलाफ चलकर विदेशी वस्त्रों को तथा वस्तुओं का निराकरण करके स्वदेशी वस्तुओं का उपयोग बढ़ाना था। इस आंदोलन को गांधी जी ने पूर्णरूपेण अहिंसात्मक घोषित किया। 31 मार्च, 1921 को सर्व भारतीय कांग्रेस कमिटी की बैठक विजयवाड़ा में संपन्न हुई। इसी संदर्भ में विजयवाड़ा के देशभक्त श्री पिंगलि वेंकय्या जी ने राष्ट्र-ध्वज का निर्माण करके महात्मा को दिखाया। आंदोलन में ब्रिटिश सरकार द्वारा चलायी जानेवाली शैक्षिक संस्थाओं तथा कार्यालयों से देश भक्त भारतीय जनता अपने आप दूर हो गयी तथा कई सरकारी कर्मचारियों ने अपनी नौकरियाँ छोड़कर राष्ट्रीय आंदोलन में कूद पड़े। असम राज्य में असहयोग आंदोलन ने दूसरा रूप ले लिया। वहाँ के चाय-बागों में काम करनेवाले सात हजार मज़दूर लोग अपने ब्रिटिश मालिकों की क्रूरता से तंग आकर अपने स्वस्थान बिहार चले गये। इधर बिहार में किसान एवं मज़दूरों ने जमींदारों के खिलाफ़ कुछ महीनों तक लडाई की। उत्तर प्रदेश में मोतीलाल नेहरू एवं जवाहर लाल नेहरू के नेतृत्व में लोगों ने किसान आंदोलन चलाया और लगान देना बंद कर दिया। लेकिन सन् 1922 ई. फरवरी को गोरखपुर जिले के चौरी-चौरा गाँव में आंदोलन ने कुछ अपरिहार्य परिस्थितियों में हिंसात्मक रूप ले लिया और पुलिस ठाने को आग लगा दी गयी। इस घटना में लगभग 22 पुलिसवाले मर चुके। जनता के द्वारा अब

अहिंसा का पालन न होगा क्योंकि अभी अहिंसा के लिए देश तैयार नहीं है - इस विचार से महात्मा ने बारदोली में 9 फरवरी से आरंभ होनेवाले अवज्ञा आंदोलन को रोक दिया और खादी, छुआछूत-निवारण, मद्य-निषेध एवं राष्ट्रीय शिक्षा का प्रचार आदि रचनात्मक कार्यक्रमों पर ध्यान दिया। क्योंकि तब तक गुजरात के बारदोली में वल्लभभाई पटेल के नेतृत्व में राष्ट्र के कोने कोने से हजार खद्दरधारी एवं कई महिलाएँ पहुँच चुके थे।

महात्मा गांधी के इस निर्णय से समूचे राष्ट्र में असंतुष्टि जाग उठी। राष्ट्रीय जागरण जब अपने राजनैतिक लक्ष्य- स्वतंत्रता प्राप्ति के अतिसमीप पहुँच चुका हो, तब राष्ट्रीय आंदोलन के स्थगन ने सारे राष्ट्रप्रेमियों को दुःखसागर में डुबो दिया। सारे देश में जनता के समरोत्साह एवं राष्ट्रीय कोलाहल पर पानी फिर गया और कांग्रेस के कई नेताओं को भी गांधी जी का यह निर्णय ठीक नहीं लगा।

इस घटना के बाद राष्ट्रीय आंदोलन में कई बाधाएँ उपस्थित हो गयीं और फिर राष्ट्रीय उत्साह बनने के लिए कई साल लग गए। पण्डित जवाहर लाल नेहरू ने इस पर अपने उद्‌गार निम्नवत् व्यक्त किये थे कि ''जब हम अपनी स्थिति मज़बूत करते हुए, हर मोर्चे पर आगे बढ़ने वाले थे, आंदोलन को बंद कर दिये जाने से हम दुखी हो उठे। चौरी-चौरा की हिंसक घटना को आधार मानकर इतने सुगठित राष्ट्रव्यापी आंदोलन को बंद कर देने से सभी कांग्रेसी कार्यकर्ता रूष्ट हो उठे हैं। मेरे पिताजी जो जेल में थे, वह भी बहुत दुखी हुए। युवा पीढ़ी तो इस निर्णय से उत्तेजित हो उठी है। हमारी आशाएँ धूल में मिल गयी हैं। आंदोलन स्थगित किये जाने का कारण और भी दुखदायी है। ...चौरी-चौरा की घटना खेद जनक है... इस बात का क्या भरोसा है कि ऐसी दुर्घटना अवाँछनीय तत्वों द्वारा करवा दी गयी हो? ऐसी ऐसी घटनाएँ करवाकर अहिंसात्मक आंदोलन हमेशा ही असफल करवाये जा सकते हैं।''[39]

इसके परिणामस्वरूप कुछ नेताओं में असंतुष्टि पराकाष्ठा तक पहुँच गयी थी। पं.मोतीलाल नेहरू तथा चित्तरंजन दास की अध्यक्षता में एक नए दल का आविर्भाव हुआ - स्वराज्य पार्टी नाम से वह प्रसिद्ध है। सन् 1922 से लेकर 1927 तक भारत में राजनैतिक स्तर पर ही नहीं वैचारिक स्तर पर भी घोर अनिश्चिति का समय बीता। सन् 1927 ई. में देश में प्रशासनिक सुधार की जाँच करके अपेक्षित सुधार लाने हेतु जॉन साइमन की अध्यक्षता में एक आयोग बना था। यह आयोग 3,फरवरी 1928 को बंबई पहुँचा। लेकिन इस आयोग

में एक भी भारतीय सदस्य के न होने के कारण कमिशन का सारे देश में विरोध किया गया। 'साइमन गो बैक' नारा सारे देश में गूँज उठा। जनता पर पुलिसवालों ने डण्डे बरसाये। आयोग का सर्वत्र मुक्तकण्ठ से विरोध किया गया। साइमन आयोग का बहिष्कार सफलपूर्वक ढ़ंग से किया गया। उधर केंद्र विधान सभा में भी लाला लजपतराय ने यह प्रस्ताव किया कि 'इस आयोग पर केंद्र विधान सभा विश्वास नहीं करती'- लाला लजपतराय का यह प्रस्ताव पारित किया गया। यह ब्रिटिश शासन के लिए और अपमानजनक सिद्ध हुआ। इसलिए जनता का दमन और तीव्र हो गया। शासन ने जो संविधान बनाया, उसके बदले अपना संविधान खुद बनाने के लिए कांग्रेस ने निर्णय लिया। इसके मुताबिक मोतीलाल नेहरू की अध्यक्षता में एक कमिटी का आयोजन किया गया और उस कमिटी ने 10 अगस्त, 1928 को एक संविधान बनाकर समर्पित किया।

इस समय तक पूर्ण स्वतंत्रता की प्राप्ति कांग्रेस का एकमात्र लक्ष्य बन गया। सन् 1929 ई. के लाहौर के अधिवेशन में पण्डित जवाहर लाल नेहरू की अध्यक्षता में पूर्ण स्वतंत्रता की माँग की गयी थी। लक्ष्य की पूर्ति के लिए गांधी जी ने सविनय अवज्ञा आंदोलन का अस्त्र चलाया। 26 जनवरी, सन् 1930 ई. को स्वतंत्रता दिवस घोषित किया गया। उन दिनों अंग्रेज़ी सरकार नमक पर भी कर लगाकर उससे भी पैसे कमाती थी। नमक बनाने का अधिकार मात्र सरकार के पास था। इसलिए यदि सामान्य जनता नमक को खुद बनायेगी तो वह कानून का भंग ही होगा। इसलिए गांधी जी ने देश के तटवर्ती प्रदेशों में नमक बनाने की सूचना दी और मात्र अहिंसा के पुजारियों को ही इस आंदोलन में भाग लेने की विनति की। इसके अंतर्गत गांधी जी का लक्ष्य यह भी था कि आंदोलन को देश के कोने कोने में पहुँचाएँ क्योंकि तटवर्ती प्रदेशों में मुख्यतः गाँवों में इस आंदोलन का प्रचार होगा। उन्होंने 12 मार्च, 1930 ई. को 79 आश्रमवासियों तथा साथियों के साथ 200 मील पैदल चलकर दण्डी यात्रा करके समुद्र के तट पर नमक बनाकर नमक-कानून का भंग किया। उनकी यह यात्रा 24 दिन तक चली और यात्रा के दौरान गाँव-गाँव में जनता से विनति की कि कोई भी अंग्रेज़ों के खिलाफ हिंसा के कदम न उठायें और जितनी भी यातनाओं का सामना करना पड़े, सबको शांतिपूर्वक सहन करें। इस संदर्भ में गांधी जी ने लिखा कि ''अंग्रेज़ राज्य ने भारत का नैतिक, भौतिक सांस्कृतिक और आध्यात्मिक सभी तरह का नाश कर दिया है। मैं इसे राज्य को

अभिशाप समझता हूँ और इसे नष्ट करने का प्रण कर चुका हूँ। मैंने स्वयं गॉड सेव द किंग के गीत गाये हैं और दूसरों से गवाये हैं। मुझे भिक्षांदेहि की राजनीति में विश्वास था। पर वह सब व्यर्थ हुआ। अब तो राजद्रोह ही मेरा धर्म हो गया है। पर हमारी लडाई अहिंसा की लडाई है। हम किसी को मारना नहीं चाहते, किन्तु इस सत्यनाशी शासन को खत्म कर देना हमारा परम कर्तव्य है।''[40]

भारत के अन्य भागों में भी इस आंदोलन ने राष्ट्रीय आंदोलन का रूप ले लिया। आंध्र प्रदेश के तटवर्ती प्रदेशों में भी दण्डि आंदोलन का प्रभाव पड़ा और कई नेताओं ने नमक बनाकर अंग्रेज़ों का विरोध किया। ''....आंध्र प्रांत में काकिनाडा में बुलुसु सांबमूर्ति के नेतृत्व में अत्यंत सफलतापूर्वक नमक का कानून तोड़ा गया। गाँवों में भी कांग्रेस संस्थाएँ आरंभ की गयीं। समस्त तटवर्ती आंध्र प्रदेश में नमक का कानून भंग किया गया। इस संदर्भ में सांबमूर्ति, पट्टाभि सीतारामय्या, देशभक्त कोण्डा वेंकटप्पय्या पंतुलु, अय्यदेवर कालेश्वर राव, गोट्टिपाटि ब्रह्मय्या, स्वामी सीताराम, ओरूगण्टी वेंकट सुब्बय्या आदि प्रमुख नेताओं को कारावास दण्ड मिला। मद्रास में उदयवनम में काशीनाथुनि नागेश्वर राव के नेतृत्व में आंध्र केसरी टंगुटूरि प्रकाशम पंतुलु, गादे रंगय्य नायुडु, दुर्गाबाई इत्यादि ने नमक का कानून भंग किया।''[41]

राष्ट्रीय जागरण में महात्मा गांधी का अध्याय इसलिए स्वर्णिम माना जाता है कि उन्होंने अहिंसा पूर्वक इतने विशाल देश को एकता-सूत्र में पिरो कर इतने बड़ आंदोलन को धैर्य और सहन के साथ चलाया था। नमक कानून का भंग करते वक्त कई बार पुलिस ने मार पीट की लेकिन अहिंसा सिद्धांत से आबद्ध जनता ने चूँ तक नहीं की और ना ही अंग्रेज़ों पर हाथ उठाया। मिलर नामक एक अमेरिकन पत्रकार इस आंदोलन को अपनी आँखों से देखकर विचलित हो गया और उसने लिखा कि ''18 वर्ष से एक पत्रकार के रूप में मैने लगभग 22 देश देखे हैं। मैं अनगिनत आंतरिक कलह, दंगे-फसाद, आक्रमण एवं विद्रोह अपनी आँखों से देख चुका हूँ। लेकिन सूरत के दर्शना में ही पहली बार इतने भयानक दृश्य मैंने देखे। उन दृश्यों को देख, भयभीत होकर कई बार मैं वापस चला गया। लेकिन उनका (कांग्रेस वालों का) अनुशासन बड़ा ही आश्चर्यजनक रहा। लगता है कि गांधी जी का अहिंसा-सिद्धांत उनकी नस-नस में समा गया।''[42]

भारत में बढ़ती असंतुष्टि को शांत करने के लिए ब्रिटिश सरकार ने सन् 1930 ई. में लंदन में गोलमेज सम्मेलनों का आयोजन किया। प्रथम सम्मेलन में कांग्रेस ने भाग नहीं लिया लेकिन द्वितीय सम्मेलन में गांधी-इर्विन समझौते के कारण महात्मा गांधी जी कांग्रेस के प्रतिनिधि बनकर लंदन गए। लेकिन इस सम्मेलन का नतीजा बहुत ही हानिकारक निकला क्योंकि इस सम्मेलन में मुसलमान तथा दलितों के लिए पृथक निर्वाचन क्षेत्रों का आयोजन किया जाने का निर्णय लिया गया। इस निर्णय के पीछे भारतीय राष्ट्रीय एकता को नष्ट करने के लिए जनता में हिन्दू-मुसलमान भेद तथा सवर्ण-दलित का भेद उकसाने का उद्देश्य ही छिपा था जो स्पष्ट रूप से ब्रिटिश सरकार की भेद-नीति का ही परिणाम था। गांधीजी ने इसका विरोध किया तथा पूना में आमरण अनशन आरंभ कर दिया। इससे गांधी जी की मौत हो सकती है- इस भय से मदन मोहन मालव्या के नेतृत्व में एक सभा का आयोजन पूना में हुआ। डॉ.भीमराव अम्बेडकर ने इसमें भाग लिया। चर्चाओं के बाद अम्बेडकर सहित सभी नेताओं ने एक समझौता किया जिसे पूना पैक्ट के नाम से जाना जाता है। इसके एक दिन पहले ही सभी हिन्दू नेताओं ने मिलकर यह निर्णय लिया कि अब हिन्दू समाज में किसी को अस्पृश्य नहीं माना जायेगा तथा मंदिर, सार्वजनिक विद्यालय, सड़क, कुएँ तथा अन्य संस्थाओं पर सबके समान दलितों का भी हक होगा। इसी सभा में निर्णय लिया गया कि स्वराज्य मिलने के बाद यह कानून बना दिया जायेगा कि छुआछूत की प्रथा अमानवीय है। इस प्रकार पूना में गांधीजी का आमरण अनशन हिन्दू समाज में छुआछूत के खिलाफ किया गया एक संग्राम ही था।

2.5.6 क्रान्तिकारी संघर्ष-काल

कानून-भंग का आंदोलन 1932-34 के समय में अपनी चरमसीमा पर पहुँच गया था। लाखों लोगों ने इस आंदोलन में भाग लिया था। इस बीच सामान्य जनता में इन शांतिपूर्वक एवं अहिंसात्मक आंदोलनों से हटकर कुछ ऐसे युवा क्रान्तिकारी उत्पन्न हुए जो राष्ट्रीय जागरण की चिनागारी को निरंतर हवा देते रहे। उत्तरप्रदेश के काकोरी स्टेशन के पास कुछ युवकों ने रेल गाडी को रोककर सरकारी खजाना लूटा। इस मुकद्दमे में रामप्रसाद बिस्मिल, अशफाकुल्ला, राजेंद्र लाहिडी और रोशनसिंह - इन चारों को फाँसी हो गयी थी। 1930-32 के समय में बंगाल में क्रान्तिकारी आंदोलन अपने चरमोत्कर्ष पर पहुँचा।

चंद्रशेखर आज़ाद ने क्रांतिकारियों का नायक बनकर अंग्रेज़ों के साथ अद्वितीय युद्ध किया था। साइमन कमिशन के खिलाफ लाहौर में निकली जुलूस में पंजाब केसरी लाला लजपतराय को सैण्डर्स नामक पुलिस ने जान बूझकर पिटाई की जिससे लाला लजपतराय की कुछ ही दिनों में मौत हो गयी। भगत सिंह ने सैण्डर्स की हत्या करके इस मौत का प्रतिशोध लिया। इस संबंध में लाहौर की जनता पर पुलिसवालों के अत्याचार बढ़ गये और जनता में कुछ लोग कहने लगे कि 'ये क्रान्तिकारी अपना काम करके छिप जाते हैं, लेकिन इनके ही कारण सामान्य आदमी को पुलिस तंग कर रही है।' तब भगतसिंग और बटुकेश्वर दत्त ने मिलकर 8 अप्रैल, 1929 को पार्लमेंट में बम फेंक दिया। अगर वे चाह तो भाग सकते थे पर वे सिद्ध करना चाहते थे कि क्रान्तिकारी कायर नहीं हैं। वे 'वन्देमातरम्' का नारा लगाते हुए वहीं खड़े रह गये और पुलिस ने उन्हें गिरफ्तार कर लिया। उनकी इस हरकत के पीछे एक महान उद्देश्य छिपा था। 1929 तक असहयोग आंदोलन का विफल हो जाना, अंग्रेज़ों की दमननीति आदि कारणों से जनता में राष्ट्रीय चेतना अवरुद्ध होने लगी। ठीक इसी समय एक ऐसे विस्फोट की आवश्यकता थी जो देश की जनता को झकझोर सके और उनमें राष्ट्रीय जागरण की ज्वाला पुनः प्रज्वलित कर सके। भगतसिंग एवं बटुकेश्वर दत्त के बम-प्रयोग से इस उद्देश्य की सौ प्रतिशत पूर्ति हुई। भगतसिंग देश में एक आराध्य नेता बन गये। उन दिनों भगतसिंग का नाम भारत की चारों दिशाओं में गांधी जी के नाम की तरह विख्यात हो गया।

जेल में भगतसिंग और बटुकेश्वर दत्त ने क्रान्तिकारियों को मिली सुविधाओं की कमी को लेकर अनशन आरंभ कर दिया। अन्य कैदियों ने भी इसमें भाग लिया। बंगाल के यतींद्रनाथ दास नामक एक क्रान्तिकारी ने 63 दिन तक अनशन व्रत रखा एवं अपने प्राण त्याग दिये। इस महान बलिदान का समाचार सुनकर पूरे देश में खलबली मच गयी। कलकत्ता में यतींद्रनाथ दास की अर्थी को देखकर श्रद्धांजलि अर्पित करने के लिए लाखों लोग एकत्र हुए। उस महान क्रान्तिकारी की अंतिमयात्रा में छः लाख लोगों ने भाग लिया। सन् 1931 ई. में भगतसिंग को फाँसी की सज़ा हो गयी। चंद्रशेखर आज़ाद अंत तक गिरफ्तार तो नहीं हुए लेकिन इलाहाबाद के अल्फ्रेड पार्क में पुलिस के साथ हुई भिडन्त में उन्होंने आत्महत्या कर ली। इन वीरों के बलिदान से जनता में राष्ट्रीय चेतना का प्रसार बराबर होता रहा और ये क्रान्तिकारी नेता देश की जनता के लिए आदर्श राष्ट्रीय योद्धा के रूप में अविस्मरणीय बने रहे।

2.5.7 भारत छोड़ो आंदोलन

साइमन आयोग की रिपोर्ट को आधार बनाकर ब्रिटिश पार्लमेंट ने भारत के लिए सन् 1935 ई. में एक अधिनियम पास किया, जिसका कांग्रेस ने विरोध किया। इसके तहत राज्यों के लिए कुछ विशेष अधिकार तो मिले पर उन पर गवर्नरों का आधिपत्य हो गया। फिर भी यह अधिनियम 1937 से लागू किया गया। विधानसभाओं के चुनाव में कांग्रेस ने भाग लिया और इस चुनाव में कांग्रेस को जीत मिली। यद्यपि अभी स्वतंत्रता तो नहीं मिली लेकिन राज्यों में क्षेत्रीय नेताओं को सत्ता मिला। किसानों की स्थिति में परिवर्तन लाने के लिए मद्रास राज्य में टंगुटूरि प्रकाशं पंतुलु की अध्यक्षता में एक आयोग बना। उड़ीसा में और उत्तर प्रदेश में भी किसान-हित के लिए कई प्रयास किये गये। दलित जनोद्धरण का कार्यक्रम जोर पकडा। कुछ राज्यों में मद्यनिषेध किया गया। इसी समय यानी सन् 1939 ई. में द्वितीय विश्व महायुद्ध प्रारंभ हो गया।

उधर यूरोप में द्वितीय विश्व महायुद्ध के प्रहारों से अंग्रेज़ संकट में पड़ गये और उनके प्रधानमंत्री विनस्टन चर्चिल ने भारत के स्वतंत्रता सेनानियों की ओर मित्रता का हाथ बढ़ाया। अतः क्रिप्स मिशन भारत में भेजा गया। लेकिन क्रिप्स का समझौता विफल हो गया और गांधी जी ने 'हरिजन' पत्रिका में Quit India (भारत छोड़ो) का शीर्षक देकर कई लेख लिखे। कांग्रेस नेताओं पर इन्ही लेखों का प्रभाव पड़ा और भारत छोड़ो आंदोलन का सूत्रपात हो गया। 7 अगस्त 1942 को बम्बई में मौलाना अबुल कलाम आज़ाद की अध्यक्षता में इस आंदोलन का प्रस्ताव पारित हुआ। गांधी जी ने उपस्थित जन समुदाय को संबोधित करते हुए कहा कि "वास्तविक संघर्ष इसी क्षण नहीं हो रहा है, आपने मेरे हाथ में कुछ अधिकार दे दिए हैं। मेरा पहला काम वायसराय से मिलना और उनसे कांग्रेस की माँग स्वीकार करने के लिए पैरवी करना होगा। इसमें दो या तीन सप्ताह लग सकते हें...इसी क्षण से आप में हर स्त्री-पुरुष को अपने को स्वतंत्र महसूस करना चाहिए। इस प्रकार आप साम्राज्यवाद के जुए के अंदर बिल्कुल नहीं हैं। उन्होंने इस अवसर पर जनता को एक नारा दिया : करो या मरो।"[43]

9 अगस्त, 1942 की प्रातः भारत के लिए एक चुनौती लेकर उदित हुई। गांधीजी सहित प्रमुख नेताओं की गिरफ्तारी का समाचार पाकर जनता अवाक रह गयी। देश के हर गाँव, हर कस्बे एवं हर शहर में हड़ताल, जुलूस, सभाएँ एवं प्रदर्शन हुए। 'अंग्रेज़ो! भारत

छोड़ो' .... 'फिरंगियों वापस जाओ' ... 'भारतवासियों ज़ोर लगाओ' ... 'गोरों को यहाँ से भगाओ' जैसे नारे गूँज उठे। देखते ही देखते यह भारत छोड़ो आंदोलन तीव्रतर होता गया। यह आंदोलन असहयोग आंदोलन, सविनय अवज्ञा आंदोलन, नमक आंदोलन या सत्याग्रह पर आधारित आंदोलन- इन सबसे भिन्न माना जाता है क्योंकि इस आंदोलन में समूचे भारत का राष्ट्रीय आवेश अपनी चरमसीमा पर पहुँची दिखायी देती है। इस आंदोलन में जनता ने कई बार संयम खो दिया और पुलिस के विरुद्ध कई 'चौरा-चौरी' -सी घटनाओं में भाग लिया। फिर भी किसीने जनता पर रोक लगाने की कोशिश नहीं की। इसका एक कारण था - गांधी जी द्वारा प्रतिपादित अहिंसा का समर्थन करनेवाले खुद कांग्रेस में ही कम हो गये तथा दूसरा कारण था- देश पर छा गये विश्वयुद्ध के संकट मेघों के कारण जनता विह्वल हो उठी।

7 दिसंबर, सन् 1941 ई. को जापान ने अमरीका के पेरल हार्बर पर हमला करके यूरोप तक सीमित युद्ध को विश्व महायुद्ध के रूप में बदल दिया। बाद में जापानी सेनाओं ने इण्डो-चीन को, इण्डोनीशिया को, फिलप्पैन्स को जीत लिया। जापानी सैनिकशक्ति के सामने ब्रिटिश सेना ने हांगकांग, सिंगापूर, मलाया आदि युद्धक्षेत्रों में घुटने टेक दिये। इतना ही नहीं, बर्मा पर भी जापान ने आक्रमण करके रंगून पर कब्जा कर लिया। 6 अप्रैल, सन् 1942 ई. को जापान ने आंध्र के विशाखपट्टणम पर बमवर्षा कर दी। 20 दिसम्बर को कलकत्ता पर भी जापानी हमले हुए। इन सारे संदर्भों में ब्रिटिश सैनिक ताकत की पराजय के कारण भारतीय जनता में अंग्रेज़ों पर रोष बढ़ गया। अब लोगों को लगने लगा कि यदि जापान भारत पर पूरी तरह से हमला बोल देगा तो किसी भी क्षण ब्रिटिश लोग इस देश को जापानियों के हाथ में देकर भाग खडे होंगे। जो मलाया और रंगून में हुआ वह भारत में भी हो सकता है। इसलिए जनता में राष्ट्रीय अभिमान जागृत हो गया कि इस देश को ब्रिटिश सेनाओं की कोई आवश्यकता नहीं- बल्कि हम अपनी रक्षा खुद कर सकते हैं।

भारत छोड़ो आंदोलन की सबसे बड़ी कमी थी- किसी समर्थ नेता के मार्गदर्शन का अभाव। गांधी जी से लेकर सारे प्रमुख नेताओं को गिरफ्तार किया गया, इसलिए जनता का राष्ट्रीय अभिमान ब्रिटिश शासन के खिलाफ रोष में बदल गया और कई जगह लोगों ने रेल-तार-व्यव्था को नष्ट कर दिया। कई जगह रेल गाडियों से यात्रियों को निकलवाकर रेल के डिब्बे जला दिये गये। आंदोलन ने उत्तरप्रदेश के पूर्वी इलाकों में, बिहार में, बंगाल के

मेदिनीपुर जिले में भयानक रूप लिया था। मेदिनीपुर में तो ब्रिटिश शासन की जगह एक क्षेत्रीय सरकार की स्थापना हुई तथा राष्ट्रीय सरकार के नाम पर वह 17 दिसम्बर 1942 से लेकर 8 अगस्त 1942 तक कायम रही। बिहार के उत्तर भागलपुर जिले में, उत्तर प्रदेश के बलिया जिले में भी ऐसी सरकारों की स्थापना की गयी। आंदोलन को ब्रिटिश सरकार ने निर्मम ढ़ंग से कुचल दिया। कई जगह पुलिस और सैनिकों ने बंदूक चलाकर अनगिनत लोगों का वध कर दिया। कई हजार लोगों से जेल भर गये। जेलों में भी राष्ट्रीय जागरण के सैनिकों को नारकीय यातनाओं का सामना करना पड़ा। कई गाँवों में घर जला दिये गये। दिन दहाडे लूट - पाट, धन-मान-प्राण का अपहरण आम बातें हो गयीं। सरकार ने अनेक गाँवों से सामूहिक लगान वसूल किये। कुछ प्रांतों में तो आंदोलनकारियों को तितर बितर करने के लिए आसमान से हवाई जहाजों द्वारा बम भी फेंके गये। इस संदर्भ में ब्रिटिश प्रधानमंत्री विनस्टन चर्चिल ने 10 सितम्बर, 1942 को ब्रिटन पार्लियामेंट में भाषण देते हुए गर्व से कहा- ''सरकार ने अपनी ताकत का पूरी तरह से उपयोग किया तथा वहाँ (भारत में) विद्रोह को कुचल दिया गया। अतिरिक्त सेनाओं को भी वहाँ भेजा गया। ब्रिटिश के शासनकाल में अब भारत में जितने गोरे सैनिक मौजूद हैं, उतने तो पहले कभी नहीं थे।''[44] ये बातें सुनने से लगता है कि चर्चिल किसी शत्रु देश पर ब्रिटन के हमले का बयान दे रहे हैं।

सरकार की दमननीति के कारण सितम्बर सन् 1942 ई. तक भारत छोड़ो आंदोलन लगभग खतम हो गया। लेकिन जयप्रकाश नारायण के अनुयायी, बिहार में सियाराम दल, परशुराम दल, उत्तरप्रदेश में हिन्दुस्तान सोशलिस्ट रिपब्लिकन पार्टी, बंगाल में युगांतर दल से संबंधित लोग गोपनीय ढंग से कार्रवाइयाँ करते रहे। लेकिन क्रमशः इनका हलचल भी समाप्त हो गया। इस आंदोलन में छात्र, महिलाओं के साथ किसान, निम्न मध्यवर्ग (Lower middle class people) के लोगों ने भी सराहनीय भूमिका निभायी। आंदोलन में लगभग दस हजार लोगों की मौत हो गयी और कई घायल हो गये। इस आंदोलन ने कई तरह से ब्रिटिश सरकार को संकट डाल दिया और राष्ट्रीय जागरण की महान स्फूर्ति की वाहिका बनकर जनता को प्रेरित करने में सफल हो गया।

2.5.8 आज़ाद हिन्द फौज़

ठीक इसी समय विदेशों में भी राष्ट्रीय जागरण की ज्वाला धधकाने का काम होता

रहा। यह काम करनेवाले नेताजी सुभाषचंद्र बोस थे। सन् 1939 ई. में नेताजी सुभाषचंद्र बोस कांग्रेस के अध्यक्ष बने लेकिन कारणवश उन्होंने उस पद को त्यागकर फार्वर्डब्लॉक पार्टी की स्थापना की। सन् 1940 ई. में उन्होंने कानून-भंग आंदोलन का प्रारंभ किया लेकिन सरकार ने उन पर नज़रबंदी लगायी। लेकिन सुभाष बाबू सन् 1941 जनवरी महीने में घर से लापता हो गये तथा काबूल, मास्को से होते हुए जर्मनी की राजधानी बेर्लिन गये। वहाँ जर्मनी सरकार की सहायता से उन्होंने बेर्लिन शहर से भारतीय जनता के लिए रेडियो द्वारा कई महीनों तक भाषण दिये। विदेशों में रहनेवाले असंख्य भारीतीय लोगों ने जापान की प्रगति से स्फूर्ति पाकर जापान की सहायता से ब्रिटन को पराजित करना चाहा। उनका नेतृत्व रासबिहारी बोस नामक व्यक्ति ने किया। उसकी मदद से जापान प्रधानमंत्री से चर्चाओं के बाद सुभाष बाबू ने सन् 1943 ई. में सिंगापूर एवं मलाया में पकडे गये भारतीय सैनिकों को एकत्रित करके 'आज़ाद हिन्द फौज़' की स्थापना की। सेना में राष्ट्रीयता भरने के लिए उन्होंने अंग्रेज़ी शब्दों के स्थान पर हिन्दूस्तानी शब्दों का प्रयोग चालू किया। 'दिल्ली चलो', 'जय हिन्द' जैसै नारे सुभाष बाबू की ही देन हैं। सन् 1944 ई. में आज़ाद हिन्द फौज़ ने रंगून से होते हुए आगे बढ़कर कुछ प्रांतों में ब्रिटिश सेनाओं पर विजय प्राप्त कर ली। कोहिमा एवं इंफाल तक आज़ाद हिन्द सेनाओं का आगमन हुआ। लेकिन अमरीका एवं बिटिश सेनाओं का सामना करना जापान के लिए मुश्किल हो गया। युद्ध में जापान की हार हो गयी और उसके साथ ही आज़ाद हिन्द फौज़ का भी पतन हो गया। सन् 1945 ई. में ब्रिटन ने पुनः रंगून पर आधिपत्य पा लिया और सैकडों आज़ाद हिन्द फौज़ के सैनिक फिर से बंदी बन गये। उन पर देश-द्रोह का मुकद्दमा चलाया गया। लेकिन भारत में राष्ट्रीय जागरण के सारथी नेताओं ने आज़ाद हिन्द फौज़ बचाव समिति गठित की। फलतः उन सब को मुक्त किया गया। हार के बाद भी सुभाषचंद्र बोस निराश नहीं हुए। जापान की यात्रा के दौरान हवाई जहाज की दुर्घटना में नेताजी का स्वर्गवास हो गया। कहते हैं कि तब उनका देहांत नहीं हुआ तथा नेताजी बाद में कई सालों तक जीवित रहे। इस बात को लेकर अब तक कई विवाद चल रहे हैं। फिर भी सुभाषचंद्र बोस राष्ट्रीय जागरण के अग्रणी नेताओं में एक हैं। उनका जय हिन्द नारा राष्ट्रप्रेमियों के लिए सतत प्रेरणादायक है।

आज़ाद हिन्द फौज़ के उत्थान के कारण ब्रिटिश सरकार को मालूम हो गया कि अब

इस देश में सैनिकों की स्वामिभक्ति पर आधारित होकर राज करना असंभव है और सैनिकों को इंग्लैण्ड से लाना और विशाल सेना का निर्माण करना भी असंभव है। सन् 1857 ई. की तरह इस बार भी ब्रिटिश सत्ता पर विद्रोह करनेवाले सैनिक ही हैं लेकिन इस विद्रोह को अधिकांश जनता का समर्थन मिला एवं संसार के सभ्य जातियों तथा शिक्षित वर्गों ने भी सिपाहियों की वीरता की भूरि-भूरि प्रशंसा की। इसका कारण सौ साल बाद देश की राजनैतिक व सामाजिक परिस्थितियों में आया परिवर्तन था।

2.5.9 स्वतंत्रता-प्राप्ति

रूस की सेनाओं ने जर्मनी एवं इटली पर विजय प्राप्त की और हिट्लर ने आत्महत्या कर ली। 6 अगस्त एवं 9 अगस्त, 1945 ई. को जापान के हिरोशिमा और नागसाकी शहरों पर अणुबम का प्रयोग करके अमरीका ने जापान को तहस-नहस कर डाला। इससे जापान ने घुटने टेक दिये और द्वितीय विश्वयुद्ध की समाप्ति हो गयी। यद्यपि इस युद्ध में ब्रिटन की जीत हुई तथापि अंग्रेज़ देश का सारा वैभव युद्ध के साथ ही समाप्त हो गया। ब्रिटन की जीत भी ज़्यादातर अमरीका की सहायता पर ही आधारित रही एवं इस युद्ध के बाद ब्रिटन की सारी धनराशि खतम हो गयी और वह संसार के सर्वशक्तिमान देशों की कोटि में अपना प्रथम स्थान खो चुका। अंग्रेज़ों का स्थान अब रूस एवं अमरीका ने ले लिया। ऐसी स्थिति में भारत जैसे उपनिवेशों को काबू में रखना असंभव है- यह बात अंग्रेज़ों की समझ में आ गयी। इतना ही नहीं, अब भारत से ज़्यादा कुछ मिलने वाला भी नहीं- क्योंकि अब भारत सोने की चिडिया नहीं रहा और न ही अब भारतीय जनता 17 वी एवं 18 वी सदी की जनता रह गयी। उस समय की भारतीय जनता बहुत अल्पमात्रा की राजनैतिक एवं सामाजिक चेतना रखती थी और उस समय अपने राष्ट्र के प्रति अभिमान भी जनता में लुप्त था। अब अनेक परिस्थितियों के चलते भारतीय जनता में राष्ट्रीय जागरण की महान चेतना घर कर गयी और वे पराये शासन से संतुष्ट होने वाले कतई नहीं हैं। इस वास्तविकता से अंग्रेज़ अवगत हो गये और उन्होंने इस देश को छोड़ने का निर्णय लिया। इसी बीच इंग्लैण्ड में चुनाव हुआ और लेबर पार्टी के अटली प्रधानमंत्री बने। सन् 1946 में केबिनेट सदस्यों का एक मिशन भारतीय परिस्थितियों को सुधारने के लिए भारत आया। कांग्रेस एवं मुस्लिम लीग नेताओं से इस मिशन की बात चीत हुई। जिन्ना की अध्यक्षता में मुस्लिम लीग ने पाकिस्तान की माँग की

और अपने लक्ष्य की पूर्ति के लिए 16 अगस्त, 1946 को डायरेक्ट एक्शन का दिन घोषित किया। बंगाल में हिन्दू-मुसलमानों के बीच भयानक दंगे हुए और हजारों लोगों की मौत हो गयी। अगस्त से आरंभ हुए ये सांप्रदायिक अत्याचार क्रमशः अन्य प्रांतों तक विस्तरित हुए। बंगाल में हिन्दुओं पर सांप्रदायिक दंगों ने भयानक रूप ले लिया। अनेकों की हत्या की गयी, दूकानें जला दी गयीं जिससे भयभीत होकर हिन्दू बिहार भाग गये। बिहार में हिन्दुओं ने मुसलमानों पर बदला लिया। गांधी जी के लिए ये परिस्थितियाँ बहुत वेदनादायी सिद्ध हुईं । वे बंगाल जाकर दो महीनों तक गाँव-गाँव में घूमकर परिस्थितियों में सुधार लाये। बाद में उन्होंने बिहार में भी घूमकर हिन्दू-मुसलमान की एकता के लिए प्रयास किया।

बाद में घटित अनेक परिणामों में मुख्यतः दो बातें उल्लेखनीय हैं, एक - 15अगस्त, सन् 1947 ई. को भारत राजनैतिक रूप से स्वतंत्र हो गया। दो- पाकिस्तान के नाम पर एक और देश का निर्माण हुआ तथा अब तक अहिंसा एवं सत्याग्रह के बल पर चले जन-आंदोलन देश के बँटवारे के समय में अत्यंत भयानक दंगों का रूप ले चुके तथा 140 लाख जनता चाहे हिन्दू की हो या मुसलमान की, सदियों से रहते आये अपने स्वस्थानों को छोड़कर इधर भारत को या उधर पाकिस्तान को भाग गयी। बँटवारे के कारण प्रवासियों की भी समस्या उत्पन्न हो गयी। यद्यपि सन् 1905 ई. से ही राष्ट्रीय जागरण की अभिव्यक्ति ज़ोर पकड़ती गयी तथापि सन् 1947 ई. तक उसका प्रमुख लक्ष्य - अंग्रेज़ों को देश से निष्कासित करके स्वराज्य की स्थापना करके राजनैतिक स्वतंत्रता प्राप्त करना साकार नहीं हो पाया। स्वतंत्रता तो मिल गयी लेकिन देश की एकता को बरकरार रखने में विफलता ही हाथ लगी। बकौल मौलाना अबुल कलाम आज़ाद ने कहा कि 'भारत ने स्वतंत्रता तो प्राप्त कर ली लेकिन उसकी एकता नष्ट हो गयी।' (India gained her freedom, but lost her unity)

2.6 राष्ट्रीय जागरण और रिनेसाँ

राष्ट्रीय जागरण की प्रेरक परिस्थितियों को लेकर कई मतभेद हैं। कुछ विद्वानों का मानना है कि अंग्रेज़ों के ही आगमन के कारण भारत में अपने राष्ट्र को लेकर चेतना जगी इसलिए अंग्रेज़ों को ही भारत में राष्ट्रीय जागरण की स्फूर्ति प्रदान करने का श्रेय मिलना चाहिए। अन्य विद्वानों के मतानुसार भारत में राष्ट्र प्रेम एवं राष्ट्रीय चेतना पहले से ही मौजूद थीं लेकिन यूरोप से बही तेज अंग्रेज़ी हवाओं की टकराहट के कारण उस पर जमी धूल उड़

गयी और वह तत्व उभरकर सामने आया। यहाँ एक बात निश्चित रूप से कही जा सकती है कि भारत को राष्ट्र से संबंधित किसी भी प्रकार का पाठ पढ़ाने का साहस संसार का कोई भी देश नहीं कर सकता, विशेषकर अंग्रेज़। क्योंकि इतिहास की दृष्टि से भारत की प्राचीनता से साम्य रखनेवाले देश संसारभर में दो-तीन से ज़्यादा नहीं हैं। जब भारत में राष्ट्र को लेकर बड़ी बड़ी बातें चल रही थीं, राष्ट्रीयता को लेकर महान अवधारणाएँ बन रही थीं, तब अंग्रेज़ या अमेरिका जैसे देशों का संसार के नक्शे में कहीं पता भी नहीं था। लेकिन इस संदर्भ में ध्यान देने की बात है कि मात्र इसी प्राचीन इतिहास से भारत में राष्ट्रीय जागरण जैसे आंदोलन का श्रीगणेश नहीं हुआ न ही भारत की प्राचीन वैदिक ऋचाओं से इस आंदोलन को प्रत्यक्षरूपेण प्रेरणा प्राप्त हुई। राष्ट्र की जनता में जागरण का कार्य तभी प्रारंभ हुआ जब यहाँ के सांस्कृतिक महानुभावों ने भारतीय प्राचीन साहित्य की नयी व्याख्या की। उन महानुभावों का संपर्क यूरोप के स्वतंत्रता, उदारता एवं मानव-श्रेष्ठता का प्रचार करनेवाले आंदोलनों से और साहित्यिक रचनाओं से जरूर हुआ। यूरोप के इन वैचारिक आंदोलन के मूल में जो सांस्कृतिक चेतना काम कर रही थी उसे जन्म देनेवाला युग यूरोप का सांस्कृतिक पुनर्जागरण काल या यूराप का नवजागरण या रिनेसाँ नाम से कहलाता है। अतः रिनेसाँ के बारे में संक्षिप्त परिचय प्राप्त करना तथा भारतीय संदर्भ में उसके प्रभाव का विश्लेषण करना समीचीन होगा।

2.6.1 रिनेसाँ : एक सामान्य परिचय

सांस्कृतिक पुनर्जागरण काल या रिनेसाँ 14 वीं एवं 16 वीं शतियों के बीच यूरोप में उत्पन्न हुआ। चौदहवी सदी के उत्तरार्थ में ही यूरोप में इस आंदोलन का बीजावापन हुआ लेकिन सन् 1453 ई. में कानस्टेंटनोपिल पर तुर्कों के आक्रमण के कारण कई लोग अपने साथ प्राचीन यूनानी पाण्डुलिपियों को लेकर पश्चिम भाग गये। इस अनमोल वैचारिक सामग्री की प्राप्ति से यूरोप में एक अभूतपूर्व आंदोलन का सूत्रपात हुआ जिसे रिनेसाँ नाम से अभिहित किया जाता है। रिनेसाँ का अर्थ प्रायः 'सांस्कृतिक पुनर्जागरण' लगाया जाता है, तथापि इस आंदोलन के नामकरण को लेकर पाश्चात्य वैचारिक जगत में कई मतभेद हैं।

रिनेसाँ (Renaissance) शब्द के अर्थ की ओर ध्यान दें तो न्यू वेबस्टर डिक्शनरी में लिखा गया है कि "Renaissance : Rebirth ; The transitional movement in Europe

from the middle ages to the modern world." मानक हिन्दी-अंग्रेज़ी कोश में रिनेसाँ का अर्थ इस प्रकार दिया गया है: ''पुनरुत्थान, पुनर्जागरण, नवजागरण, पुनर्जागृति, पुनरुद्‌बोधन'', ''14वी तथा 16वी शताब्दियों के बीच शास्त्रीय आदर्शों के अनुकूल उत्पन्न कला और विद्या के विकास की लहर।''

यदि इस शब्द की व्याख्या की ओर ध्यान दें तो न्यू एनसाइक्लोपीडिया ब्रिटानिका के अनुसार रिनेसाँ शाब्दिक अर्थ से पुनर्जागृति, तथा 'यूरोपीय सभ्यता में मध्य युगों के पश्चात् संपन्न' एक आंदोलन का नाम है जिसका जन्म 'शास्त्रीय शिक्षा एवं मूल्यों' के प्रभाव के कारण हुआ था तथा इस आंदोलन के समय नये नये महाद्वीपों की खोज, खगोल, वाणिज्य एवं विज्ञान के अन्य क्षेत्रों में अभूतपूर्व प्रगति, सामंती व्यवस्था का ध्वंस, कागज आदि का आविष्कार इत्यादि परिणाम देखे गये।

कोलियर्स एनसाइक्लोपीडिया के अनुसार रिनेसाँ 'यूरोपीय इतिहास एवं संस्कृति के संबंध में बहुचर्चित एक शब्द का नाम' है और यह आंदोलन अनेक साहित्यिक-कलात्मक आंदोलनों का सम्मिश्रण है जिसका सूत्रपात 14 वी तथा 15वी सदियों में इटली में हुआ तथा बाद में जो आल्प्स परबतों के उस पार जर्मनी, फ्रान्स, इंग्लैण्ड एवं यूरोप के अन्य देशों तक व्याप्त हुआ। इतना ही नहीं रिनेसाँ के कारण उत्पन्न सामाजिक एवं राजनैतिक परिणामों के चलते यूरोप में मध्ययुग का अंत होकर एक नवीन युग का प्रारंभ हो गया।

रिनेसाँ शब्द का सर्वप्रथम प्रयोग फ्रान्सीसी इतिहास - दार्शनिक मिशेलेट ने सन् 1855 ई. में किया था। उन्होंने इस आंदोलन को 'मानव-इतिहास में ही एक नये अध्याय का आरंभ' कहा। उनके अनुसार आधुनिक मानव की सर्वोत्कृष्ट आत्मा का असली आविष्कार इसी रिनेसाँ में हुआ तथा समुद्रों पर मानवीय शक्ति की जीत, और उस आत्मा का आविष्कार आधुनिक वैज्ञानिक प्रगति, आधुनिक भव्य साहित्यिक रचनाओं के रूप में प्रकट हुआ। इतना ही नहीं, आधुनिक मानव के सभी महान आविष्कारों की कुँजी है। इन सभी विशिष्टताओं को सूत्रबद्ध करते हुए उन्होंने लिखा कि 'रिनेसाँ मानव की तथा दुनिया की खोज है।' उनके बाद इटली के इतिहासकार बर्कहार्ट ने सन् 1860 ई. में 'रिनेसाँ' वाली अवधारणा की व्याप्ति में स्तुत्य कार्य किया।

इस प्रकार रिनेसाँ को आधुनिक यूरोप के सामाजिक, आर्थिक, एवं राजनैतिक ढ़ाँचे

को समूल परिवर्तित करनेवाले एक महान सांस्कृतिक आंदोलन के रूप में देखा गया है। रिनेसाँ के माध्यम से यूरोप ने मध्ययुगों के अंधकार को चीरकर आधुनिक युग के कांतिपुज के दर्शन किये। रिनेसाँ के कारण यूरोप में बौद्धिक, साहित्यिक, कलात्मक एवं वैज्ञानिक आंदोलनों का ऐसा ज्वार उठा कि यूरोप-समाज सभी क्षेत्रों में विश्व में अग्रणी बन गया तथा संसार में सबसे प्रतापशाली समाज सिद्ध हो गया। इसका प्रादुर्भाव ही यूरोप की मध्ययुगीन सामन्तवादी मान्यताओं तथा परंपराओं से विच्छेद करने की भावना से प्रेरित था। उस समय यूरोपीय देशों के सामाजिक और आर्थिक जीवन में मौलिक परिवर्तन हो रहे थे। सबसे बड़ा परिवर्तन शहरों का जन्म लेना था। व्यापार के विस्तार से तथा वाणिज्यिक वस्तुओं के विक्रय से पूँजी एकत्र हुई और बैंकिंग, उद्योग आदि अन्य आर्थिक स्रोतों का जन्म हुआ। कृषि के स्थाने वाणिज्यिक एवं औद्योगिक संस्थाओं का बोलबाला बढ़ने लगा। 10 वीं शताब्दी के अंत से यूरोप के कुछ देशों के विशेषकर इटली के कुछ शहरों के लोग मछली, लोहा आदि के व्यापार में मुनाफे कमाने लगे तथा अच्छी-खासी रक़म जमा करने लगे। रिनेसाँ का नेतृत्व करनेवाले शहर या तो प्रमुख वाणिज्य केंद्र थे या प्रमुख वस्तोत्पादक केंद्र थे।[45] वेनिस, मिलान, फ्लॉरेन्स आदि शहर इस कोटि में उल्लेखनीय हैं। अमीरों की जागीरों की जगह व्यस्त बस्तियाँ बढ़ने लगीं। ये ही शहर मुख्यतः यूरोप के रिनेसाँ का कारण बने।

रिनेसाँ की एक और विशेषता राजनैतिक चेतना है। इटली के अंदर नगर-राज्यों से तथा अन्य देशों में राष्ट्रीय गणतंत्रों के माध्यम से धीरे-धीरे राजनैतिक चेतना का विकास होने लगा। अब तक यूरोप पर धार्मिक संस्थाओं का बोलबाला था लेकिन शनैःशनैः इस धारणा को लोग तिलांजलि देने लगे। लियोनार्डो बूनी (सन् 1369 - 1444 ई.) सर्वप्रथम धर्म से राजनीति को अलग करके देखने का स्तुत्य कार्य किया तथा उनकी परंपरा को निभाते हुए महान राजनैतिक विचारकों, दार्शनिकों का प्रादुर्भाव इसी समय यूरोप में होने लगा। इसी क्रम में माकियावेली (सन्1469-1527 ई.) जैसे उद्भट राजनीतिज्ञों का जन्म हुआ। माकियावेली ने अपने समय की परिस्थितियों के अनुरूप राजनीति को शास्त्रीय ढ़ंग से तराशा और उसे एक विज्ञान का दर्जा दिया। पोलिडोर वर्गिल, जीन बोडिन तथा थामस मूर जैसे राजनीतिज्ञों के प्रयासों के फलस्वरूप धर्माध्यक्षों के अंधादुंध शासन की जगह शास्त्रीय, परिष्कृत एवं उदार राजनैतिक सिद्धान्तों का जन्म हुआ। रिनेसाँ के चलते चर्च एवं पादरियों का प्राबल्य

धीरे-धीरे घटने लगा। धर्माध्यक्षों की प्रतिष्ठा एवं साख चलती बनी। इस युग में यूरोप के लोग धर्म के प्रति उतने आकर्षित या उतने विनम्र नहीं - जितने पहले जमाने में हुआ करते थे। क्योंकि रिनेसाँ के दौरान उत्पन्न महान चिंतकों ने जनता को हृदय-विशालता का परिचय दिया एवं मानव की जिज्ञासु-प्रवृत्ति को प्रश्रय दिया। जनता के विवेचनशक्ति का उदय होते ही धार्मिक पाखण्डता एवं चर्च के नाम पर किये जानेवाले अत्याचारों का पर्दाफाश हो गया। जनता के स्वच्छंद भावाभिव्यक्तीकरण के पालन-पोषण में रोगर बेकन, एलबरटस, थोमस एक्विनास, एसीसी के संत फ्रान्सिस, दान्ते आदि महान चिंतकों व दार्शनिकों की महत्वपूर्ण भूमिका रही।

2.6.2 मानवतावाद और रिनेसाँ

मानवतावाद रिनेसाँ का बहुचर्चित अंग है। यूरोप में घटित महान आर्थिक, सामाजिक, राजनैतिक एवं धार्मिक परिवर्तनों के पीछे इस मानवतावाद का बहुत बड़ा हाथ है। तत्कालीन यूरोपीय स्कूलों तथा विद्यालयों में तर्क, गणित, भौतिकविज्ञान एवं न्यायशास्त्र ही प्रमुख रूप से पढ़ाये जाते थे जिसके कारण व्यक्ति को अपने इतिहास तथा संस्कृति से परिचित होकर अपनी भव्यता से अवगत होने के अवसर बहुत कम मिलते थे। अतः रिनेसाँ के सांस्कृतिक नेताओं ने शिक्षा-प्रणाली में कायापलट कर दी तथा भाषण-कला, इतिहास, काव्यशास्त्र एवं व्याकरण आदि को प्रश्रय दिया। शिक्षालयों में मानववादी शिक्षओं की शुरूआत के बाद, व्याकरण, इतिहास, काव्य इत्यादि के पठन-पाठन के कारण लोगों को प्राचीन रोमन सभ्यता एवं संस्कृति की भव्यता का बोध हुआ तथा उन प्राचीनता के मूल्यों को पुनर्ग्रहण करने की दिशा में यूरोपीय जनता प्रवृत्त हुई थी। यों कहना उचित होगा कि मानवतावाद रिनेसाँ की सबसे महत्वपूर्ण उपलब्धि है। क्योंकि अब तक यूरोप में व्यवस्था एवं व्यक्ति के बीच चल रहे संघर्ष में व्यक्ति का कहीं पता नहीं था। व्यक्ति व्यवस्था की सत्ता के सामने घुटने टेक चुका था। धर्म-नीति के कटघरे में व्यक्तिगत संबंधों का कोमल ताना-बाना कैद था। इस स्थिति से मानववादी शिक्षाओं ने व्यक्ति को ऊपर उठाया और प्राचीन काव्य एवं शिल्प, चित्रकला के सौंदर्य का उदाहरण देकर मानव को सृष्टि में सबसे सुंदर घोषित किया। यही व्यक्तिवाद आगे चलकर अंग्रेज़ी साहित्य के रोमांटिसिज़्म का आधार बना और उसी रोमांटिसिज़्म से प्रभावित हिन्दी-साहित्य के प्रसिद्ध काव्य-युग छायावाद में सुमित्रानंदन पन्त कहते हैं कि ‘सुंदर है विहग, सुमन सुंदर- मानव तुम सबसे सुंदर हो’।

इसी परिणाम को विस्तार से समझाते हुए शिवदान सिंह चौहान लिखते हैं कि ''यूरोप का सांस्कृतिक पुनर्जागरण मध्य-युगीन सामंतवादी मान्यताओं और परंपराओं से विच्छेद करने की भावना से प्रेरित था। यूरोपीय देशों के सामाजिक और आर्थिक जीवन में मौलिक परिवर्तन हो रहे थे। ह्रासोन्मुख, सामन्तवादी समाज-व्यवस्था को चुनौती देनेवाला व्यापारी वर्ग उत्पन्न हो गया था, जो आगे चलकर पूँजीवान का जनक बना। भाप की शक्ति के उपयोग से उत्पादन यंत्रों में एक अभूतपूर्व उन्नति की संभावना और औद्योगिक क्रान्ति की भूमिका तैयार हो चुकी थी। ऐसे समय मनुष्य की प्रगति के मार्ग में बाधक बननेवाले सामंती समाज-संबंधों का ढ़ाँचा नयी सामाजिक शक्तियों के दबाव से टूटने लगा। जिस प्रकार जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में वैसे ही चेतना के प्रत्येक स्तर पर इन परिवर्तनों का प्रभाव पड़ा। मानववादी शिक्षाओं ने प्राचीन ग्रीक साहित्य और कला की महान परंपरा की ओर लोगों का ध्यान आकर्षित किया और अपनी प्रेरणा का स्रोत बनाया। इस प्रकार मध्ययुगीन सामाजिक और सांस्कृतिक जीवन से इस युग ने अपने संबंध-विच्छेद की घोषणा की। मध्य-युगों में व्यक्ति की सत्ता को महत्ता नहीं प्राप्त थी। व्यक्ति केवल सामाजिक इकाई का एक मूक अंग समझा जाता था। धर्म-नीति ने जीवन और संसार के साथ मनुष्य के व्यक्तिगत संबंध की केवल इतनी महत्ता ही शेष रखी थी कि मनुष्य इस जीवन में निष्काम कर्म द्वारा अपनी आत्मा को इस योग्य बनाता चले कि कयामत के दिन उसे स्वर्गारोहण का अधिकार प्राप्त हो सके। किंतु नयी परिस्थितियों ने जब 'सांस्कृतिक पुनर्जागरण काल' के मनुष्य को पुनः ग्रीक-कला और साहित्य के संपर्क में पहुँचा दिया तो उसने एक नया ही दृश्य देखा। ग्रीक-कला और साहित्य ने मनुष्य को कुछ और ही शिक्षा दी थी। उसने सिखाया था कि मनुष्य अकिंचन और निरीह प्राणी नहीं है, बल्कि सृष्टि का वरदान है। मनुष्य असंख्य माध्यमों से उन्नति करके पूर्णत्व को प्राप्त कर सकता है। इस जगत को माया समझकर घृणा की दृष्टि से देखना उसका कर्तव्य नहीं, बल्कि इस जगत में रहकर, उसे अपनी बुद्धि और सामर्थ्य से समझना, बदलना और उसकी समृद्धियों का उपभोग और आनंद प्राप्त करना ही उसका लक्ष्य है। जीवन के प्रति यह दृष्टिकोण मध्ययुगीन दृष्टिकोण से भिन्न था। इस नये दृष्टिकोण में व्यक्तिवाद भी अंतर्निहित था, जो बाद में रोमाण्टिक काव्यधारा की मूल प्रेरणा बना।''[46]

फ्रान्सेस्को पेट्रार्क, डेसिडेरियस एरासमस, पेट्रो एरेटिनो जैसे लोग मानवतावादी

शिक्षाओं की महान विभूतियाँ हैं। मानवतावादी शिक्षाओं के इन प्रवर्तकों ने देखा कि मात्र भौतिकवाद, न्यायशात्र या तर्क पढ़ने से मानव पूर्ण नहीं बनेगा। उन्होंने जान लिया यह प्राचीन शिक्षाव्यवस्था मात्र क्लर्कों को पैदा करनेवाली थी और मानव की स्वतंत्र एवं स्वच्छंद विचारधारा का उस व्यवस्था में जगह नहीं थी। यह शिक्षा-पद्धति उन्हें बहुत ही निरुपयोगी एवं असंगत मालूम हुई। जीवन की हर संभावना को एक नया, सरल एवं लचीला दृष्टिकोण तथा खुलापन प्रदान करना विश्व को रिनेसाँ की बड़ी देन है।

रिनेसाँ के इन मानवतावाद के पक्षधर विद्वानों ने अपनी वर्तमान ज़िदगी को बहुत नीरस, कुरूप तथा यांत्रिक रूप में पाया तथा उन्हें प्राचीन ग्रीक-रोमन साहित्य में सृष्टि का समस्त सौंदर्य दिखायी पड़ा। पेट्रार्क जैसे लोग तो मीलों तक पैदल ही चलते थे और पहाड भी चढ़ जाते थे सिर्फ इसे जानने के लिए कि एक मानव अपनी सीमाओं के तहत कितने सुंदर दृश्यों को देख सकता है।

पेट्रार्क ने ग्रीक तथा लैटिन भाषाओं में लिखी ऐसी कई रचनाओं को पढ़ा तथा उनकी वाणी को जनता में पहुँचाने का प्रयास किया। इन महान दार्शनिकों ने जान लिया कि अब धर्म के उसी रूढ़िवादी रूप से काम नहीं चलेगा और धर्म के प्रक्षालन में तथा उसके नवीकरण में प्राचीन ग्रीक काव्यों से बढ़कर उपयोगी औज़ार दूसरा नहीं है। पेट्रार्क के बाद गियोवानी बोकासियो (1313-1375), निकोलो निक्कॉली (1363-1437), कलशियो सेलुटाटी (जन्मकाल अनुपलब्ध-1406) जैसे लोगों ने इस स्वस्थ परंपरा को आगे बढ़ाया और इनके कारण फ्लॉरेन्स शहर बहुत ही जल्दी मानवतावादी शिक्षाओं का एक महान अध्ययन-केंद्र बन गया। पंद्रहवी शताब्दि के अंत तक इटली में उत्पन्न इन विचारों की व्याप्ति इंग्लैण्ड तथा जर्मनी जैसे अन्य यूरोपीय देशों में पूर्णरूपेण देखी जा सकती है। अंग्रेज़ जॉन कॉलेट (1467-1519), जर्मन कॉनरॉड केल्टिस (1459 - 1508), जैसे लोगों के द्वारा इस विचारधारा का प्रचार-प्रसार इटलीएतर देशों में हुआ। विज्ञान आविष्कारों के तहत प्रिंटिंग प्रेस का आरंभ हुआ जिसके कारण यह विचारधारा इटली को पार करके उत्तर यूरोप के देशों में तेजी से जा पहुँची। जहाँ जहाँ इस विचारधारा ने कदम रखा- वहाँ वहाँ खोयी हुई मानव-आत्मा का पुनराविष्कार करके मानव की भव्यता का गुणगान किया। धार्मिक कट्ठरता के मानसिक बंधनों में जकड़ी हुई मानव-बुद्धि को स्वतंत्र करना ही रिनेसाँ का उद्देश्य था और मानवतावाद ने इस उद्देश्य की पूर्ति में महती भूमिका निभायी थी।

इन मानवतावादी विचारकों का प्रभाव धर्म के क्षेत्र पर खूब पड़ा। धार्मिक संस्थाओं का नेतृत्व करनेवाले कई प्रबुद्ध धर्माचार्यों ने जान लिया कि अब धर्म को इस मानवतावादी पहलू को अपनाना ही होगा। अतः कई लोगों ने धर्म के क्षेत्र में मानवतावादी विचारों को प्रश्रय देकर उसका नवीनीकरण किया। दर असल कुछ पोप लोगों ने भी इस दिशा में पहले प्रयत्न किया, जिनमें पोप पंचम निकोलस उल्लेखनीय हैं जिन्होंने मानवतावादी विचारकों को धर्म के संबंध में खुलकर विचार करने मौका दिया। इन्हीं के फलस्वरूप क्रिश्चियानिटी को गैर क्रिश्चियन धर्मों से भी बहुत कुछ सीखने का और बहुत कुछ परिवर्तन पाने का सुअवसर प्राप्त हुआ। इतना ही नहीं, बाइबिल को लेकर मध्ययुगों में प्रचलित व्याख्याओं पर भी लोगों का विश्वास उठने लगा तथा बाइबिल को उसकी मातृभाषा में, उसकी निसर्ग भाषा में पढ़ने की उत्सुकता जनता में जागने लगी। फलस्वरूप मूल ग्रीक तथा हिब्रू भाषाओं में बाइबिल का अध्ययन होने लगा। डेसिडेरियस एरासमस (1469-1536) ऐसे लोगों में अग्रणी थे जो धर्म का आधुनिकीकरण मानवतावादी बुनियाद पर करना चाहते थे। उनका ग्रंथ प्रैज़ ऑफ फॉली व्यंग्यात्मक ढ़ंग से मानवतावादी सुधारात्मक पक्ष को जनता के सामने लानेवाली सशक्त रचना है। उन्होंने ग्रीक, लैटिन जैसी प्राचीन भाषाओं में लिखे कई ग्रंथों का गंभीर अध्ययन किया तथा बाइबिल के न्यू टेस्टिमेंट का लैटिन अनुवाद भी प्रस्तुत किया। धर्म के संबंध में उनके विचारों का प्रभाव उधर कैथलिक इधर प्रोटेस्टेंट दोनों क्रिश्चियन वर्गों पर बहुत गहरे रूप से पड़ा तथा यह प्रभाव कई पीढ़ियों तक बना रहा।

विज्ञान के क्षेत्र में तो रिनेसाँ ने चमत्कार ही कर दिया। विज्ञान के इतिहास में रिनेसाँ का समय बहुत ही महत्वपूर्ण अध्याय है। क्योंकि इसी समय कोपर्निकस, गेलीलियो, विलियम हार्वे एवं जॉन गूटेनबेर्ग जैसे लोगों का जन्म हुआ जिन्होंने अपने वैज्ञानिक सिद्धांतों तथा आविष्कारों से सारे विश्व की रूप-रेखा को बदल डाला। पाडूवा विश्वविद्यालय ऐसे वैज्ञानिकों का कारखाना-सा बन गया। जान गूटेनबेर्ग ने सन् 1465 ई. में मुद्रणायंत्र का आविष्कार किया। इससे छापाखाने खुल गये तथा मानव-ज्ञान का संचित लिखित रूप सामान्य जनता तक बहुत आसानी से और बहुत सस्ती दर में पहुँचने लगा जिसके कारण परवर्ती युगों में मानव-इतिहास के अद्भुत परिणाम निकले। छापाखाने के पूर्व लोग पांडुलिपियों पर ही ज़्यादातर आधारित थे इसलिए ज्ञान बहुत ही संकुचित रूप में था और कुछ वर्गों तक ही

सीमित था। छपाई के क्षेत्र में इस वैज्ञानिक आविष्कार ने मात्र यूरोप का ही नहीं समस्त विश्व का भाग्य खोल दिया। बाद में कैक्स्टन जैसे लोगों के द्वारा पंद्रहवी शती तक इंग्लैण्ड, इटली और हंगरी जैसे नगरों में भी छापाखाने खुलाये गये। इससे विज्ञान, कला, दर्शन, तर्क, न्याय, व्याकरण आदि शास्त्रों की जानकारी विश्वविद्यालयों तक सीमित न होकर सामान्य जनता तक पहुँच गयी। पोलैण्ड के निकोलस कोपर्निकस (1473-2543) सौरमण्डल में पृथ्वी का स्थान वैज्ञानिक आधार देकर निर्धारित किया तथा उनके इस महानआविष्कार के कारण चर्च के इस सिद्धांत में लोगों का विश्वास उठ गया कि 'पृथ्वी ही इस ब्रह्माण्ड का केंद्रबिंदु है'। क्योंकि कोपर्निकस ने निरूपित किया कि पृथ्वी का स्थान इस ब्रह्माण्ड में सूक्ष्मातिसूक्ष्म है क्योंकि वह भी सूर्य की परिक्रमा करनेवाले कई ग्रहों में से एक है। गैलीलियो (1564-1642) ने अपने समय की पूर्ववर्ती जिज्ञासु प्रवृत्ति की महान परंपरा को आगे बढ़ाया तथा टेलिस्कोप का आविष्कार किया था।

साहित्य तथा कलाओं के क्षेत्र में भी यूरोप में अभूतपूर्व परिवर्तन हो रहे थे। मानवतावाद के जन्म के कारण हर चीज को स्वतंत्र एवं खुले विचारों के माध्यम से परखने की प्रवृत्ति साहित्य के क्षेत्र में भी पनपी और फूली। इटली के वेनिस, मिलान जैसे नगरों में संपन्न शहरीकरण का उदय होते ही लेखकों तथा कलाकारों को प्रोत्साहन मिलने लगा। इनके कारण एक उदारवादी संस्कृति का जन्म भी होने लगा। कला एवं साहित्य की अभिव्यक्ति में लोग नवीनता एवं भव्यता की माँग कर रहे थे। अतः अन्य क्षेत्रों की भाँति इस क्षेत्र में भी आधुनिक सर्जनात्मक अभिव्यक्ति के द्वार खुलने लगे। दर असर माकियावेली, पेट्रार्क जैसे लोगों की रचनाओं से ही साहित्य की नवीन अभिव्यक्ति शुरू हो गयी थी क्योंकि उनकी रचनाएँ अपने समय के मानव-समाज की हर परिस्थिति का आँखों देखा वर्णन करती थीं। इनके कारण धर्म एवं आध्यात्मिक जडता के प्रभाव का धीरे धीरे अंत होने लगा तथा वस्तु एवं शैली में नितांत अर्वाचीन विधान की शुरूआत हो गयी। इटली में क्षेत्रीय भाषाओं के प्रति रुचि बढ़ने लगी तथा समाज में इन भाषाओं को भी अपनी पहचान बनने लगी। दान्ते की अद्‌भुत कृति डिवाइन कामेडी इस दिशा में एक महान ग्रंथ है क्योंकि इस महाकाव्य में समसामयिक समाज के जीवन में मनुष्य के पारस्परिक प्रेम संबंधों का चित्रण हुआ तथा इटली को संगठित एवं स्वतंत्र रूप से देखने की इच्छा को अभिव्यक्ति मिली। इस ग्रंथ में एक गहरी

मनोवैज्ञानिक अंतर्दृष्टि का भी पता मिलता है जो तत्कालीन रिनेसाँ साहित्य की कई विशिष्टताओं को रेखांकित करती है। प्रख्यात ग्रंथ डेकेमेरान के लेखक बोकाशियो (1313-1375) तो इटालियन गद्यसाहित्य के पिता माने जाते हैं। एरिस्तो, तासो जैसे कवि भी रिनेसाँ की ही उपज थे। इटली के बाद फ्रांस तथा स्पेन देशों में भी इन उच्च साहित्यिक मूल्यों का परिवहन हुआ। फ्रान्स के पीर दि रोनसार्ड (1524-1585), फ्रान्कोइस रेबेलैस (1494-1553) जैसे कवियों ने मानवीय मूल्यों का चित्रण मध्यवर्ग की वास्तविक परिस्थितियों के माध्यम से करके फ्रान्सीसी कविता को तराशा। अंग्रेज़ी साहित्य में भी रिनेसाँ का गहरा प्रभाव अंकित हुआ तथा थामस मोर (1478-1535) ने युटोपिया की रचना की। अंग्रेज़ी साहित्य में फिलिप सिड्नी, एडमण्ड स्पेंसर जैसे महान कवियों का जन्म हुआ और विलियम शेक्सपियर के समय में अंग्रेज़ी साहित्य अपने चरमोत्कर्ष पर पहुँचा। शेक्सपियर ने अपने नाटकों में पतनोन्मुख सामंतवाद और उभरते बुर्जुआ वर्ग की स्थितिगतियों को बहुत ही कलात्मक एवं चित्रात्मक भाषा में प्रस्तुत किया। उनके हेमलेट, ओथेलो, रोमियो एण्ड जुलियट, किंगलियर आदि नाटक इसके उदाहरण हैं। इनके अलावा मार्टिन लूथर ने जर्मन भाषा में बाइबिल का अनुवाद प्रस्तुत किया।

चित्रकला एवं शिल्पकला में भी रिनेसाँ का प्रभाव स्पष्टतः दर्शित होता है। अन्य क्षेत्रों की तरह चित्रकला में भी इटली ही यूरोप का पथप्रदर्शक रहा। चित्र एवं शिल्पकला में विविधता एवं अत्यद्भुत तकनीक को महत्व दिया गया। अब तक मध्ययुगीन कलाएँ चर्च के आदेशों का अनुपालन करनेवाली रह गयी थीं लेकिन रिनेसाँ के दौरान कलाकारों ने नयी दुनिया की खोज एवं नयी मानवता का आविष्कार अपनी कलाकृतियों के माध्यम से करना आरंभ किया। यह परंपरा गियोटो (1276-1336) से शुरू होती है। इन्हीं से वस्तुओं को सहज ढंग से देखने की प्रथा का श्रीगणेश हुआ। बाद में मासिकियो (1402-1429) के नेतृत्व में फ्लेरेन्स के चित्र एवं शिल्पकारों ने आदर्श सौंदर्य का अंकन करना प्रारंभ कर दिया। यह आदर्श सौंदर्य किसी अलौकिक या किसी अमूर्त का न होकर मानव का ही है। इसलिए इनकी कलाकृतियों में मानव शरीर - निर्माण के प्रति श्रद्धा एवं ममता से भरी रेखाओं को देखा जा सकता है। ये कलाकृतियाँ उन कलाकारों की मानवता के प्रति आस्था एवं मानव शरीर के प्रति उनके सौंदर्यात्मक दृष्टिकोण के सजीवसाक्षी हैं। चित्रकला एवं शिल्पकला में परिवर्तन

होने लगे। बहुत ही व्यापक क्षेत्र में से इन कलाओं की विषयवस्तु चुनी जाने लगी। मानव शरीर के विविध पहलू, जानवर, प्राकृतिक दृश्य, रोजमर्रे जीवन की घटनाएँ, ऐतिहासिक घटनाएँ -चित्रकारों व शिल्पकारों के लिए कृतिफलक (कैन्वास) बनने लगे। अधिकतर चर्च एवं अन्य धार्मिकस्थलों में भित्ति-चित्रांकन के रूप में ही चित्रकला का उपयोग हुआ है तथापि तैलीय चित्रकारिता (oil painting) का आरंभ इसी समय से माना जाता है। डोनाटेलो (1386-1466) ने शिल्पकला में अत्यंत सहजढंग से मानव शरीर को शिल्पों में उतारना आरंभ कर दिया। लियोनार्डो द विंशी (1452-1519), माइकेल एंजिलो (1475-1564) एवं राफेल (1483-1520) आदि रिनेसाँ के समय उत्पन्न महान विभूतियाँ हैं जो केवल चित्रकार ही नहीं बल्कि शिल्पकार, वैज्ञानिक, संगीतज्ञ, अभियन्ता, दार्शनिक एवं कवि भी थे। मोनालिसा, द लास्ट सप्पर, द वर्जिन ऑफ द गोट्टो, लास्ट जजमेंट इत्यादि कलाकृतियों के द्वारा मानव के सौंदर्य, मानव की शक्ति और साहस का अभिव्यक्तीकरण हुआ है। इंग्लैण्ड, स्पेन तथा फ्रान्स जैसे देशों में इन कलाकारों का अपूर्व स्वागत किया जाता था तथा इनसे उन देशों में काम करने की प्रार्थना की जाती थी। वे अपनी कलाकृतियों से उन देशों में भी अपने भावों का प्रचार करते थे। फिर भी यूरोप के अन्य देशों तक कला के क्षेत्र में आये इन परिवर्तनों के पहुँचने में कुछ ज़्यादा समय लगा।

इस प्रकार यूरोप के इटली से आरंभ इस सांस्कृतिक पुनर्जागरण का प्रभाव कुछ देर से ही सही अन्य देशों पर भी बहुत ही सशक्त ढंग से पड़ा और अपनी प्राचीन संस्कृति से प्रेरणा प्राप्त करके नये समाज को बनाने के लक्ष्य को दृष्टि में रखते हुए इस आंदोलन को रिनेसाँ (सांस्कृतिक पुनर्जागरण) का शीर्षक सार्थक मालूम पड़ता है।

2.6.3 राष्ट्रीय जागरण और रिनेसाँ

इस संदर्भ में रिनेसाँ और राष्ट्रीय जागरण के बीच कुछ समानताएँ नज़र आती हैं। यूरोप में घटित सांस्कृतिक पुनर्जागरण का संबंध भारत में कुछ विशेष परिस्थितियों में उत्पन्न राष्ट्रीय जागरण से कैसे हो सकता है...लेकिन सावधानी से विचार करने पर पता चलता है कि यह संबंध इतना स्पष्ट नहीं, जिस पर सहसा लोगों का ध्यान जा सके, फिर भी इन दोनों के बीच कुछ समानतत्व जरूर हैं। शायद इसलिए राजा राममोहन राय से पादरी अलेक्जेण्डर ने कहा था - 'मुझे ऐसा लगने लगा कि यहाँ भारत में यूरोपीय रिनेसाँ से मिलता जुलता कुछ घटित हो रहा है।'

राष्ट्रीय जागरण का प्रारंभ भारतीय संस्कृति के नवजागरण से हुआ। नवजागरण का पूर्ववर्तीकाल भारतीय संदर्भ में अंधकार युग (Dark age) कहा जा सकता है। क्योंकि इस समय अंग्रेज़ों के शासनकाल में भारतीय बुद्धि सो रही थी और देश में चेतना और विवेक का अकाल पड़ गया था। लोग पूर्ण रूप से निष्क्रियता से लिपटे रहे तथा धार्मिक धरातल पर आध्यात्मिकता का कोई बहुत बड़ा प्रकाश उभर नहीं पा रहा था- ऊपर से धर्म के नाम पर अत्याचार चरमोत्कर्ष पर पहुँच गये थे। मुगल साम्राज्य के पतन के बाद केंद्रीय सत्ता शक्तिहीन हो चुकी तथा मराठों का भी पतन हो गया था। इस देश पर आक्रमण करने की दृष्टि से फ्रान्सीसी और अंग्रेज़ों के बीच घमासान युद्ध चल रहे थे फिर भी देश की जनता को इस विषय का ज्ञान नहीं था, ऊपर से इन युद्धों में देश की जनता भी मासूम बनकर भाग ले रही थी। प्लासी और बक्सार युद्धों के बाद अर्थात् सन् 1764 ई. के बाद अंग्रेज़ों का शासन भारत पर स्थिर हो गया था। अंग्रेज़ी सरकार की अमानवीय आर्थिक नीति के कारण सामान्य जनता शोषित हुई, जीना दूभर हो गया। अंग्रेज़ों ने भारतीय बुद्धि का अंग्रेज़ीकरण करना चाहा जिसके फलस्वरूप यूरोप एवं अन्य प्रांतों में होनेवाले महान वैचारिक एवं राजनैतिक आंदोलनों से भारतीय बुद्धिजीवी वर्ग का परिचय प्राप्त हुआ। ऐसी परिस्थितियों में हाशिये पर खडे अपने राष्ट्र को सांस्कृतिक, राजनैतिक, सामाजिक एवं आर्थिक हर तरह से मुक्ति दिलाने की दिशा में राष्ट्रीय जागरण का प्रादुर्भाव हुआ। वर्तमान परिस्थितियों से असंतुष्टि ही राष्ट्रीय जागरण और रिनेसाँ में सबसे पहली साम्यता है। इन दोनों के मध्य सबसे प्रभावशाली एवं सबसे सार्थक साम्यता है- प्राचीन संस्कृति की स्फूति से चेतना ग्रहण करके नये संसार का आह्वान करना। राजा राममोहन राय से प्रारंभ होकर हमारे हर सांस्कृतिक नेता ने भारतीय प्राचीन संस्कृति के उदात्त तत्वों की ओर ध्यान दिया और वर्तमान दीनता से भारत के अतीत को नितांत विरोधाभास की स्थिति में पाया। स्वामी विवेकानंद तक आते-आते राष्ट्र की वर्तमान स्थिति को प्राचीन भव्य संस्कृति के आधार पर धक्का देकर जगाने का काम जोरों पर होने लगा। रामधारी सिंह दिनकर ने लिखा : ‘‘...स्वामी जी ने अपनी वाणी और कर्तृत्व से भारतवासियों में यह अभिमान जगाया कि हम अत्यंत प्राचीन सभ्यता के उत्तराधिकारी हैं, हमारे धार्मिक ग्रंथ संसार में सबसे उन्नत और हमारा इतिहास सबसे महान हैं, हमारी संस्कृत भाषा विश्व की सबसे प्राचीन भाषा है और हमारा साहित्य सबसे उन्नत साहित्य है, यही नहीं

प्रत्युत हमारा धर्म ऐसा है जो विज्ञान की कसौटी पर खरा उतरता है और जो विश्व के सभी धर्मों का सार होता हुआ भी उन सबसे कुछ और अधिक है। स्वामी जी के भीतर से हिन्दुओं में यह विश्वास उत्पन्न हुआ कि उन्हें किसी के भी सामने मस्तक झुकाने अथवा लज्जित होने की आवश्यकता नहीं है। भारत में सांस्कृतिक राष्ट्रीयता पहले उत्पन्न हुई, राजनीतिक राष्ट्रीयता बाद को जन्मी है, और इस सांस्कृतिक राष्ट्रीयता के पिता स्वामी विवेकानंद थे।''[47]

यूरोप के मध्ययुगीन अंधकार युग के समय मानव की महिमा खो गयी तथा वह धर्म एवं समाज के बोझ से उपेक्षित बन गया था। इस समय रिनेसाँ ने मानव की महिमा का गुण गान किया तथा उसे संसार में सर्वश्रेष्ठ घोषित करके उसमें जगत के प्रति आस्था भरने का काम किया। राष्ट्रीय जागरण के संदर्भ में भी कुछ हद तक यही काम होता रहा। अंग्रेज़ शासन के दौरान भारतीय समाज में अकर्मण्यता घर कर गयी। सर्वत्र निराशा एवं निरुत्साह व्याप्त थे। जनता कुछ ऐसी अवस्था को प्राप्त हो गयी जहाँ जीने एवं मरने में कुछ भेद नहीं रह गया था। ऐसी स्थिति में राष्ट्रीय जागरण के नेताओं ने राष्ट्र को कर्मण्यता का पाठ पढ़ाया। रिनेसाँ के कलाकारों को प्राचीन रोमन सभ्यता एवं संस्कृति से स्फूर्ति मिली तो भारतीय सांस्कृतिक नेताओं को राष्ट्रीय जागरण के लिए उपयुक्त सामग्री भारतीय प्राचीन साहित्य यथा- वेद एवं उपनिषदों में मिली। इसीलिए स्वामी दयानंद सरस्वती ने वेदों के माध्यम से राष्ट्रीय जागरण का काम किया तो वही काम स्वामी विवेकानंद ने उपनिषदों के माध्यम से। रिनेसाँ के कलाकारों की तरह ये नेता लोग भी कह रहे थे कि ''जगत को माया समझकर संन्यास लेने में जीवन की सार्थकता नहीं है। यहीं रहकर जगत को बदलना ही मानव का कर्तव्य है।'' इसलिए राजा राममोहन राय से पादरी अलेक्जेण्डर ने कहा था कि मुझे ऐसा लगने लगा कि यहाँ भारत में यूरोपीय रिनेसाँ से मिलता जुलता कुछ घटित हो रहा है।

राष्ट्रीय जागरण के दौरान रिनेसाँ की भाँति उदात्त मानववादी परंपरा की उद्‌भावना की गयी। मनुष्य मात्र की समानता, सामाजिक कुरीतियों का खण्डन, धर्म के संदर्भ में पाखण्डता का विरोध एवं सुधारवादी चेतना आदि को प्रश्रय दिया गया। जिस प्रकार रिनेसाँ ने मध्ययुगीन नीरस विषयवस्तु पर आक्रमण करके दैनंदिन मानव जीवन को कला के केंद्र में स्थापित किया उसी प्रकार राष्ट्रीय जागरण ने संस्कृति, कला और साहित्य के राष्ट्रीय निर्माण और विकास की ओर ध्यान दिया तथा राष्ट्रीय जीवन और उसकी समस्याओं को प्रतिबिंबित करके सर्वसाधारण को लक्ष्य करके उसके कल्याण के लिए लगातार प्रयास किया। बस फर्क इतना

रहा कि रिनेसाँ यूरोप का सांस्कृतिक पुनर्जागरण आंदोलन रहा तो भारत में उत्पन्न राष्ट्रीय जागरण सांस्कृतिक क्षेत्र तक सीमित न होकर सामाजिक, धार्मिक एवं राजनैतिक आंदोलनों को समेटता हुआ आगे बढ़ा। यह भी ध्यातव्य है कि इटली में उत्पन्न रिनेसाँ धीरे धीरे आल्प्स परबतों के उस पार तथा पश्चिमी यूरोप को स्पर्श करता गया तो भारत में राष्ट्रीय जागरण बंगाल से प्रारंभ होकर देश के हर प्रांत तक विस्तरित हुआ।

रिनेसाँ में फ्लॉरेन्स जैसे शहरों में लियोनार्डो ब्रूनी जैसे मानववादियों ने राष्ट्र-प्रेम से संचालित होकर स्थानीय भाषाओं के प्रति प्रेम व्यक्त किया। उन्होंने प्राचीन रोमन साहित्य की प्रेरणा से वर्तमान समस्याओं को सुलझने का प्रयास फ्लॉरेन्स में जो हुआ, उसकी तुलना राष्ट्रीय जागरण के बृहत्परिणामों से की जा सकती है। राष्ट्रीय जागरण के समय भी देश के विभिन्न क्षेत्रों में राष्ट्रीयता का प्रचार हुआ तथा विविध स्थानीय भाषाओं में राष्ट्रीय जागरण की घंटियाँ सुनायी पड़ीं। रिनेसाँ में प्रस्तावित समानता, उदारता, स्वतंत्रता, मानव की उदात्तता आदि तत्व भारत के राष्ट्रीय साहित्य में भी आसानी से मिल जाते हैं।

राष्ट्रीय जागरण तथा रिनेसाँ में कुछ तत्व ज़रूर मिलते-जुलते हैं। राष्ट्रीय जागरण का आशय राष्ट्र के प्रत्येक नागरिक की सांस्कृतिक, सामाजिक, राजनैतिक तथा आर्थिक दासता से मुक्ति दिलाना है और इस आशय की पूर्ति के उद्देश्य से ही बीसवीं सदी के प्रारंभ से राष्ट्रीय स्तर पर भारत ने अपने भाषा-साहित्य एवं कलाओं का विकास करना आरंभ किया। इस विकास में कई उदात्त तत्वों का आगमन हुआ और इन तत्वों को रिनेसाँ से उत्पन्न यूरोपीय साहित्य के माध्यम से भारत ने स्वीकार किया। जब अंग्रेज़ों ने अंग्रेज़ी भाषा और साहित्य की खिड़की खोल दी तो भारत के बुद्धि जीवी वर्ग ने उस खिड़की के ज़रिये वह सब कुछ देखकर प्रभाव ग्रहण किया जो रिनेसाँ के कारण यूरोप में घटित हुआ था और हो रहा था।

विश्व में देशों तथा महाद्वीपों के बीच उदात्त विचारों का आवागमन होना चाहिए। भारत ने प्राचीनकाल से संसार के किसी भी कोने से आगत उदार विचार को स्वीकार करने में तथा आत्मसात करने में कभी संकोच या संकीर्णता का प्रदर्शन नहीं किया। जहाँ तक यूरोप के महान सांस्कृतिक आंदोलन रिनेसाँ से प्रभावित उदात्त विचारों को स्वीकार करने का सवाल है - यह संदर्भ उपरोक्त भारतीय ग्रहणशक्ति का अपवाद नहीं है।

संदर्भ-सूची

1. हिन्दी गद्य साहित्य, शिवदान सिंह चौहान, पृ.19
2. संस्कृति के चार अध्याय, श्री रामधारी सिंह दिनकर, पृ.407
3. संस्कृति के चार अध्याय, श्री रामधारी सिंह दिनकर, पृ.407
4. संस्कृति के चार अध्याय, श्री रामधारी सिंह दिनकर, पृ.408-409 पर उद्धृत
5. भारत का बृहत् इतिहास-3, मजुमदार, राय चौधरी, दत्त, पृ.181
6. स्वतंत्रता संग्राम-बिपिनचन्द्र, त्रिपाठी, पृ.49
7. निराला काव्य का राजनीतिक संदर्भ, डॉ.संध्यासिंह, पृ.27 पर उद्धृत
8. संस्कृति के चार अध्याय, श्री रामधारीसिंह दिनकर, पृ. 412
9. विश्व इतिहास की झलक, पंडित जवाहरलाल नेहरू, पृ.736 पर उद्धृत
10. आधुनिक भारत, सुमित सरकार, पृ.53
11. संस्कृति के चार अध्याय, श्री रामधारीसिंह दिनकर, पृ. 413
12. भारत में अंग्रेज़ी राज और मार्क्सवाद, भाग-2, डॉ.रामविलास शर्मा, पृ.346
13. हिन्दी साहित्य का इतिहास, डॉ.नगेन्द्र, पृ.436
14. हिन्दी साहित्य का इतिहास, डॉ.नगेन्द्र, पृ.434
15. संस्कृति के चार अध्याय, डॉ.रामधारी सिंह दिनकर, पृ.463
16. संस्कृति के चार अध्याय, डॉ.रामधारी सिंह दिनकर, पृ.466
17. संस्कृति के चार अध्याय, डॉ.रामधारी सिंह दिनकर, पृ.476 पर उद्धृत
18. संस्कृति के चार अध्याय, डॉ.रामधारी सिंह दिनकर, पृ.499
19. भारत का स्वतंत्रता संघर्ष, बिपिन चन्द्र, पृ.6
20. स्वतंत्रता संग्राम का इतिहास, मदन लाल शर्मा, पृ.28
21. “Peace reigned throughout Andhra, broken only by a few disturbances in the hilly tracks occupied by the tribal people and by a few raids of the rohillas and arabs from the Nizam's territory. But these had no direct connection with happenings in the North." (P.59, Freedom strugle in the Andhra pradesh : Vol.I) मदन लाल शर्मा की पुस्तक स्वतंत्रता संग्राम का इतिहास में से , पृ.27 पर उद्धृत
22. स्वतंत्रता संग्राम का इतिहास, मदन लाल शर्मा, पृ. 28
23. निराला की साहित्य-साधना, भाग-1, डॉ.रामविलास शर्मा, पृ.14
24. भारत का स्वतंत्रता संघर्ष, बिपिन चन्द्र, पृ.10
25. हिन्दी गद्य साहित्य, शिवदान सिंह चौहान, पृ.33

26. स्वतंत्रता संग्राम का इतिहास, मदन लाल शर्मा, पृ.48 पर उद्धृत
27. भारत का स्वतंत्रता संघर्ष, बिपिन चन्द्र, पृ.43
28. संस्कृति के चार अध्याय, श्री रामधारी सिंह दिनकर, पृ.514 पर उद्धृत
29. स्वतंत्रता संग्राम का इतिहास, मदन लाल शर्मा, पृ. 64-65
30. स्वतंत्रता संग्राम का इतिहास, मदन लाल शर्मा, पृ. 66
31. हिन्दी और तेलुगु कविता में राष्ट्रीय चेतना, डॉ.एन.वी.एस.प्रसाद, पृ.38 पर उद्धृत
32. स्वतंत्रता संग्राम का इतिहास, मदन लाल शर्मा, पृ. 66
33. स्वतंत्रता संग्राम-बिपनचंद्र, त्रिपाठी, पृ.86
34. हिन्दी और तेलुगु कविता में राष्ट्रीय चेतना, डॉ.एन.वी.एस.प्रसाद, पृ.39 पर उद्धृत
35. संस्कृति के चार अध्याय, श्री रामधारी सिंह दिनकर, पृ.538 पर उद्धृत
36. स्वतंत्रता संग्राम का इतिहास, मदन लाल शर्मा, पृ.110 पर उद्धृत
37. भारत स्वातंत्र्योद्यम चरित्र-तृतीय भाग, मामिडिपूडि वेंकट रंगय्या, पृ. 49
38. स्वतंत्रता संग्राम का इतिहास, मदन लाल शर्मा, पृ.121
39. स्वतंत्रता संग्राम का इतिहास, मदन लाल शर्मा, पृ.142
40. कांग्रेस का इतिहास, श्री भोगराजु पट्टाभि सीतारामय्या, पृ.239 पर उद्धृत
41. हिन्दी और तेलुगु कविता में राष्ट्रीय चेतना, डॉ.एन.वी.एस.प्रसाद, पृ.50 पर उद्धृत
42. भारत स्वातंत्र्योद्यम चरित्र-तृतीय भाग, मामिडिपूडि वेंकट रंगय्या, पृ.182 पर उद्धृत
43. स्वतंत्रता संग्राम का इतिहास, मदन लाल शर्मा, पृ.204 पर उद्धृत
44. भारत स्वातंत्र्योद्यम चरित्र-तृतीय भाग, मामिडिपूडि वेंकट रंगय्या, पृ. 311
45. The civilization of the renaissance rested on the wealth created by commerce, and the important renaissance cities were either trading centers like Venice or manufacturing centers like Florence. Collier's Encyclopedia, Vol.19, pg no. 733
46. हिन्दी गद्य-साहित्य, सं.शिवदान सिंह चौहान, पृ.26 पर उद्धृत
47. संस्कृति के चार अध्याय, डॉ.रामधारी सिंह दिनकर, पृ.498

तृतीय अध्याय
निराला की साहित्यिक चेतना और राष्ट्रीय जागरण

तृतीय अध्याय

निराला की साहित्यिक चेतना और राष्ट्रीय जागरण

3.1. निराला का जीवन : एक सामान्य परिचय

निराला के जीवन का सागर-मंथन करनेवाले आलोचक रामविलास शर्मा के अनुसार उनका जन्म सन् 1899 ई. को हुआ था। माघ शुक्ल 11, संवत् 1955, तदनुसार 29 फरवरी, 1899 को रामसहाय तेवारी के घर पुत्र-जन्म हुआ था। निराला के पूर्वज मूलतः उत्तर प्रदेश के उन्नाव जिले में गढ़ाकोला नामक गाँव के निवासी थे। निराला के पिताजी का नाम श्री रामसहाय तिवारी था और माता रुक्मिणी देवी थी। निराला अपने माता-पिता के इकलौते पुत्र थे। निराला के पूर्वजों का गाँव गढ़ाकोला बैसवाडे के अंतर्गत है। निराला जब ढ़ाई वर्ष के बालक थे- तभी उनकी माता रुक्मिणी देवी का निधन हो गया था। निराला अपने जीवन में हमेशा के लिए मातृ-प्रेम से वंचित तो रह गये फिर भी एकांतसेवी जीवन उन्होंने नहीं बिताया। रामविलास शर्मा ने लिखा कि "....उनकी माँ का देहान्त उनके शैशवकाल में हुआ, पर उन्हें प्यार, दुलार कम मिला हो, सो बात नहीं। मातृहीन, दुखी, एकान्तसेवी बालक का जीवन उन्होंने न बिताया था। महिषादल में बैसवाड़े की बहुत-सी स्त्रियाँ थीं, वे- और विशेषकर रामशंकर की माँ- निराला को बड़े स्नेह से रखती थीं। वह कुछ हैं, औरों से भिन्न हैं, यह बोध उन्हें इन स्त्रियों से हआ जो जमादार के लड़के का दलार विशेष रूप से करती थीं। वह समझने लगे कि दूसरे उन्हें प्यार करें यह उनका धर्म है।"[1]

पिताजी रामसहाय तिवारी बंगाल के महिषादल राज्य में सिपाहियों पर जमादार की नौकरी करते थे। पिताजी अंदर से इकलौते पुत्र से बहुत प्यार करते थे और यही कारण था कि चौंतालीस वर्ष की उम्र में पत्नी को खोकर भी उन्होंने दूसरी पत्नी पाने की बात नहीं सोची। क्योंकि उनके लिए अब पुत्र का पालन-पोषण ही महत्वपूर्ण कर्तव्य था। फिर भी वे अनुशासन प्रिय थे और आचार-विचार, बैसवाडे ब्राह्मण परिवारों में पायी जानेवाली सांप्रदायिक कट्ठरता के सजीव मूर्ति थे। एकबार उन्होंने निराला को बहुत ही कड़ी सज़ा दी जिसका विवरण निराला ने स्वयं इस प्रकार दिया - "...पिताजी का क्रोध सप्तम सोपान पर पहुँचा। एक तो सिपाही आदमी, फिर हृष्ट-पुष्ट, उस पर व्यक्तिगत और जातिगत अपमान।

कहा है- 'सब ते अधिक जाति-अपमाना'। आते ही मुझे पकड़कर फौज़ी प्रहार जारी कर दिया। मारते वक़्त पिताजी इतने तन्मय हो जाते थे कि उन्हें भूल जाता था कि दो विवाह के बाद पाए हुए इकलौते पुत्र को मार रहे हैं। मैं भी, स्वभाव न बदल पाने के कारण मार खाने का आदी हो गया था। चार-पाँच साल की उम्र से लेकर अब तक एक ही प्रकार का प्रहार पाते-पाते सहनशील भी हो गया था, और प्रहार की हद भी मालूम हो गयी थी।''[2]

इस प्रकार मारने की वजह थी - एक वेश्या के पुत्र के हाथ पानी पीना। गाँव में यह बहुत ही अपमानजनक था और गाँववालों ने आकर निराला के पिताजी से शिकायत की थी। अतः निराला पर उन्होंने अपना क्रोध उपर्युक्त ढ़ंग से बरसाया। लेकिन पिताजी के इस प्रकार के व्यवहार से निराला को लाभ ही हुआ क्योंकि उन्हें आगे के जीवन में और भी भयानक यातनाएँ सहने का साहस और सहनशक्ति शायद बचपन में पिताजी से दिये गये कठोर प्रहारों से ही मिले होंगे।

निराला की प्रारंभिक शिक्षा-दीक्षा का स्थान बंगाल ही रहा। महिषादल के हाईस्कूल में उन्हें मुफ्त में प्रवेश मिला तथा उन्होंने अंग्रेज़ी की पढ़ाई यहाँ से शुरू की थी। हाईस्कूल में द्वितीय भाषा के रूप में संस्कृत पढ़ी और पहले से ही उन्हें हिन्दी का ज्ञान था क्योंकि अवध के अन्य घरों की भाँति उनके घर में भी तुलसी रामायण का पठन होता था। निराला उस देहाती संस्कृति के उत्तराधिकारी थे जहाँ तुलसी रामायण को संसार के पवित्रतम चीजों में एक माना जाता है। यह तुलसी रामायण अवधी में है। उनके घर के वातावरण में बैसवाडी बोली जाती थी और इस बैसवाडी पर उनका अमित अनुराग था। ''.......निराला को जितना गर्व हिन्दी पर था, उससे ज़्यादा बैसवाड़ी पर। मेरी बैसवाडी, माता-पिता की दी वाग्विभूति, जिससे सभी रसों के स्रोत मेरे जीवन में फूटकर निकले हैं, साहित्यिकों में प्रसिद्ध है-- उन्होंने 'मेरे गीत और कला' में लिखा था।''[3]

एक प्रकार से निराला बंगला, संस्कृत, हिन्दी और अंग्रेज़ी चारों भाषाओं को एक साथ सीखने लगे। लेकिन उनकी प्रवृत्ति पाठशाला में बैठकर पढ़ने की नहीं थी, प्रकृति ही उन्हें उत्तम गुरु दिखायी देती थी। निराला के शब्दों में - ''मैं कवि हो चला था, फलतः पढ़ने की आवश्यकता न थी। प्रकृति की शोभा देखता था। कभी-कभी लड़कों को समझाता भी था कि इतनी बड़ी किताब सामने पड़ी है, लड़के पास होने के लिए सिर के बल हो रहे हैं, वे

उद्भिद्कोटि के हैं। लड़के अवाक् दृष्टि से मुझे देखते रहते थे, मेरी बात का लोहा मानते हुए।.......किताब उठाने पर और भय होता था, रख देने पर दूने दबाव से फेल हो जानेवाली चिंता। फलतः कल्पना में पृथ्वी-अंतरिक्ष पार करने लगा। कल्पना की वैसी उड़ान आज तक नहीं उड़ा। वह मसाला ही नहीं मिला। अंत में निश्चय किया, प्रवेशिका के द्वार तक जाऊँगा, धक्का न मारूँगा, सभ्य लड़के की तरह लौट आऊँगा, अस्तु, सबके साथ गया। और-और लड़कों ने पूरी शक्ति लगायी थी, इसलिए, परीक्षा-फल के निकलने से पहले, तरह-तरह से हिसाब लगाकर अपने-अपने नंबर निकालते थे, मैं निश्चिंत, इसलिए निश्चिंत था, मैं जानता था कि गणित की नीरस कापी को पद्माकर के चुहचुहाते कवित्तों से मैंने सरस कर दिया है, फलतः परीक्षा समुद्र-तट से लौटते वक्त, दूसरे तो रिक्त-हस्त लौटे, मैं दो मुट्ठी बालू लेता आया।''[4]

इस समय निराला की इस प्रवृत्ति के पीछे एक कारण जरूर था- जिस प्रवेश-परीक्षा का जिक्र निराला ने किया था उस परीक्षा के पहले ही मतलब बारह साल की उम्र में ही उनकी शादी जिला रायबरेली के डलमऊ की कन्या मनोहरादेवी से हो गयी थी। यह कन्या पं.रामदयाल दुबे की पुत्री थी। उसकी उम्र ग्यारह साल की थी। वह सुंदर, सुशील और पढ़ी-लिखी लड़की थी। निराला के लिए वह योग्य कन्या थी। ''विवाह वर के योग्य हुआ। स्वर्गीया मनोहरा देवी रूपवती और गुणवती दोनों थीं। रंग कवि का-सा था, यानी खिलता गेहुँआ, मुँह कुछ लंबा सा, घने-लंबे केश, गाने में अत्यंत निपुण, सौ-डेढ़े-सौ स्त्रियों में धाक जमाने वाली, विवाह के समय साहित्य में कवि से अधिक योग्य।''[5]

विवाह के कारण निराला की पढ़ाई सही ढ़ंग से हो नहीं पायी थी। उन्हें एंट्रेन्स परीक्षा देनी थी लेकिन किताब खोलते ही नव विवाहिता पत्नी की याद आती थी। पद्माकर की कविता से पन्ने भर आये फलतः एंट्रेन्स में विफल हो गये। इस पर पिताजी बहुत नाराज़ हुए और उन्होंने पुत्र को घर से बाहर कर दिया। इस समय निराला अपनी पत्नी समेत कुछ दिन ससुराल में रहे और इसी समय उनका परिचय कुल्ली भाट, चतुरी आदि से हुआ। स्पष्ट है कि कि ये ही आगे चलकर निराला की कहानियों के नायक बने। बाद में जाकर पिता का क्रोध शांत हुआ तो निराला फिर अपने गाँव चले।

निराला की पत्नी मनोहरा संगीत एवं साहित्य में निपुण थीं। उनकी वाणी इतनी मधुर

थी कि निराला अपने स्वर को उसके सामने तुच्छ मानते थे। उन्होंने गीतिका के समर्पण में अपनी पत्नी के बारे में लिखा : ''जिसकी हिन्दी के प्रकाश से, प्रथम परिचय के समय, मैं आँखें नहीं मिला सका- लजाकर हिन्दी की शिक्षा के संकल्प से, कुछ काल बाद देश से विदेश, पिता के पास चला गया था और उस हिन्दी-हीन प्रांत में बिना शिक्षक के, 'सरस्वती' की प्रतियाँ लेकर, पद-साधना की और हिन्दी सीखी थी, जिसका स्वर गृहजन, परिजन और पुरजनों की सम्मति में मेरे संगीत स्वर को परास्त करता था, जिसकी मैत्री की दृष्टि क्षण-मात्र में मेरी रूक्षता को देखकर मुस्करा देती थी, जिसने अंत में अदृश्य होकर मुझसे मेरी पूर्ण-परिणीता की तरह मिलकर मेरे जड़ हाथ को अपने चेतन हाथ से उठाकर दिव्य श्रृंगार की पूर्ति की, उस सुदक्षिणा स्वर्गीया प्रियाप्रकृति श्रीमती मनोहरा देवी को सादर।''[6]

मनोहरा देवी के सांगत्य से निराला को संगीत एवं साहित्य के प्रति नया आकर्षण उत्पन्न हुआ। मनोहरा के स्वर में तुलसी के भजन सुनकर निराला में सोते ज्वार जाग उठे। निराला ने पत्नी से सही अर्थ में सार्थक जीवन - निर्वाह किया। उनकी अनुराग-वल्लरी पर दो पुष्प विकसित हुए- बेटा रामकृष्ण और बेटी सरोज। जिस वर्ष मनोहरा देवी ने सरोज को जन्म दिया उसी वर्ष पिता रामसहाय तिवारी का निधन हो गया। निराला को पिताजी की साख के आधार पर ही महिषादल की रियासत में नौकरी मिली। तहसील-वसूली, कचहरी के क्रियाकलापों से संबंधित मुनीम की नौकरी। इसी बीच महामारी के कारण निराला की पत्नी का देहांत हो गया। ''.....सुर्जकुमार को तार मिला- तुम्हारी स्त्री सख्त बीमार है, फौरन आओ। सुर्जकुमार ने तुरंत डलमऊ के लिए कूच किया। राम-राम करते जब ससुराल पहुँचे, तब मालूम हुआ, मनोहरा देवी पहले ही चिता में जल चुकी हैं।''[7]

इसी समय निराला के चचेरे भाई बदलूप्रसाद भी महामारी के कारण चल बसे। उनके देहांत के तीसरे दिन भाभी भी गुजर गयी। इस प्रकार बहुत ही कम समय में सारा परिवार ही उजड गया। निराला अपनी संतान और चचेरे भाई की संतान को लेकर अकेले रह गए। पारिवारिक बोझ का मतलब अब निराला की समझ में आने लगा। अब तक तो पिता की शरण में थे, लेकिन अब उनके सिर पर अचानक इन बच्चों के पालन-पोषण का दायित्व आ पड़ा।

परिवार के इतने सदस्यों के साथ-साथ पत्नी के वियोग से निराला पर मानो वज्रपात

हो गया। फिर भी वे संभले और पत्नी का अब और भी उदात्त ढ़ंग से स्मरण करने लगे। इस अवस्था में उनकी मनःस्थिति विराग की ओर आकर्षित हुई जो कि सहज बात है। छः बच्चों का पालन-पोषण उनके लिए बहुत ही कठिन कार्य साबित हुआ, इसलिए रामकृष्ण और सरोज को डलमऊ में नानी के घर छोड़ आये। निराला को अपनी कन्या देने के लिए कई लोग उनके पीछे पड़े हुए थे। लेकिन निराला ने दूसरी शादी नहीं की। उनका मन बिल्कुल दूसरी अवस्था में था और इसी समय उनका परिचय रामकृष्ण मिशन के स्वामी प्रेमानंद के साथ हुआ। इन्हें देखकर निराला को लगा कि संन्यास ग्रहण करने में ही जीवन की सार्थकता है और अपने जीवन की सारी समस्याओं का हल संन्यास ग्रहण करने से हो जायेगा। यद्यपि बाह्यरूप से वे संन्यासी नहीं बने फिर भी इस समय वे मानसिक रूप से संन्यासी हो गये। स्वामी प्रेमानंद के साथ परिचय के बाद निराला अब रामकृष्ण परमहंस एवं स्वामी विवेकानंद को और दिलचस्पी से पढ़ने लगे। उन्हें रामकृष्ण परमहंस इस लोक में भगवान का अवतार मालूम पड़े।

निराला में इस अवस्था के दौरान एक तरफ वैराग्य की भावना थी, तो दूसरी तरफ अपने चारों ओर स्थित समाज की बुरी हालत के कारण परेशानी भी थी। बंगाल के जागृत सामाजिक एवं राजनैतिक वातावरण के कारण निराला बंकिमचंद्र, रवीद्रनाथ ठाकुर और द्विजेंद्रलाल राय जैसे विद्वानों की रचनाएँ भी पढ़ने लगे। हिन्दी में कविता लिखना भी उन्होंने इसी समय आरंभ किया था। इतना ही नहीं उन्होंने इन्हीं कवियों की तुलना में अपना नाम भी बदल दिया। अब तक वे सुर्जकुमार तेवारी थे लेकिन नाम में कुछ गंभीरता ध्वनित करते हुए उसे सूर्यकान्त त्रिपाठी बदल दिया। ''सुर्जकुमार का नया जीवन आरंभ हुआ- कवि का जीवन। पर उन्हें अपना नाम सुर्जकुमार तेवारी जरा भी कवित्वपूर्ण न लगता था। इसे शुद्ध करके यदि सूर्यकुमार तेवारी कर दिया जाय, तब भी गिरीशचंद्र घोष, द्विजेंद्रलाल राय, बंकिमचंद्र चट्टोपाध्याय अथवा रवीन्द्रनाथ ठाकुर के नामों के मुकाबले वज़न में कुछ हल्का बैठता था। बहुत सोच-विचार के बाद उन्होंने अपना नया नाम रखा- सूर्यकांत त्रिपाठी। सूर्यकुमार से सूर्यकान्त नाम सुनने में और अर्थ के विचार से भी ज़्यादा अच्छा लगा।''[४]

इस समय उन्हें महिषादल में चिट्ठी-पत्री, तहसील-वसूली और राजकाज से संबंधित जो नौकरी थी वह नीरस और बेजान मालूम होने लगी। इस नौकरी से छुटकारा पाने की

तलाश में निराला थे तभी एक घटना हुई। निराला महिषादल के सुपरिण्टेंडेण्ट के व्यवहार से नाखुश हो गये और उन पर राजा से शिकायत की कि वे कई व्यसनों के शिकार हैं और रियासत का धन फिजूलखर्चे में लगा रहे हैं। इस पर राजा ने पूछताछ करवायी लेकिन इसके संबंध में निराला की बात पर उन्होंने ज़्यादा विश्वास नहीं किया। इससे निराला क्षुब्ध हुए कि उन पर राजा ने विश्वास नहीं किया और गुनाहगार सुपरिण्टेंडेण्ट पर कड़ी कार्रवाई नहीं की। उन्होंने अपने पद से इस्तीफ़ा दे दिया। लेकिन अब बच्चों का पालन-पोषण और भी कष्टदायक मालूम होने लगा। अब वे अपनी रुचि के अनुरूप नौकरी करने का प्रयास करने लगे। इसी प्रयास में उनका परिचय आधुनिक हिन्दी साहित्य के निर्माताओं में से एक तथा हिन्दी साहित्य के युग-प्रवर्तक श्री महावीर प्रसाद द्विवेदी के साथ हुआ। वे दौलतपुर जाकर द्विवेदी जी के दर्शन भी कर आये। निराला की स्थितिगतियों से और उनकी प्रतिभा से द्विवेदी जी प्रभावित हुए और उन्हें नौकरी दिलाने की कोशिश करने लगे। निराला का जीवन कठिन परिस्थितियों से गुजरने लगा। ''बारह लाख वार्षिक आमदनी के राज्य में सूर्यकान्त अब नौकर नहीं हैं, इनके साथ चार भतीजे हैं, पुत्र और कन्या डलमऊ में हैं, द्विवेदी जी ने सब हाल मालूम किया। वह इनके लिए काम की तलाश करने लगे। सूर्यकान्त इस समय सचमुच कष्ट में थे। कर्ज से भी दबते जा रहे थे। भतीजे छोटे थे। घर का सारा काम खुद करते थे, यहाँ तक कि हाथ की चक्की से आटा भी खुद ही पीसते थे।''[७]

जो नौकरियाँ द्विवेदी जी की सिफारिश से आयीं, उनका मासिक वेतन बहुत कम था। अतः निराला इस दशा में असमंजस में पड़ गये कि ऐसी नौकरी से क्या महिषादल की नौकरी बेहतर होगी कि नहीं। आखिर निराला जिम्मेदारियों के बोझ से दब गये और महिषादल जाने का निश्चय किया। निराला को इसी समय 'समन्वय' नामक धार्मिक एवं दार्शनिक पत्र के संपादक की नौकरी मिली। यह स्वामी माधवानंद के निर्देशन में रामकृष्ण मिशन के द्वारा संचालित पत्र था। इसका का कार्यालय कलकत्ते में था इसलिए निराला महिषादल राज्य को हमेशा के लिए छोड़कर कलकत्ता आ गये। निराला ने 'समन्वय' के संपादक का यह काम बड़े मनोयोग के साथ किया था क्योंकि बंगला वातावरण में पलने के कारण उन्हें बंगला पर अच्छी पकड़ थी और बंगला से हिन्दी में अनुवाद करने में भी वे सक्षम थे। निराला 'समन्वय' के कार्यालय में संन्यासियों के साथ जीते थे। संन्यासियों की जीवन-शैली उनकी बन गयी थी।

निराला रामकृष्ण परमहंस एवं स्वामी विवेकानंद का अध्ययन, दर्शन, अध्यात्म एवं वेदांत हर तरह से करते थे। संन्यासियों के सत्संग में रहकर गंभीर चर्चाएँ करते थे।

कलकत्ते में उनका परिचय शिवपूजन सहाय, महादेव प्रसाद सेठ जैसे लोगों के साथ हुआ था। इनके सांगत्य के कारण उनकी साहित्य-साधना को अतीव प्रोत्साहन मिलने लगा था। यहाँ उनकी साहित्य-साधना नया मोड लेने लगी और दुनिया के चारों तरफ सौंदर्य को खोजने लगी। निराला के कविहृदय को वेदांत एवं दर्शन नीरस लगने लगे और सौंदर्य उनके साहित्य की वस्तु बनने लगा। यद्यपि रामकृष्ण परमहंस एवं विवेकानंद का प्रभाव उन पर था तथापि उनका मन दुनिया की ओर, अच्छाई-बुराई की ओर खिंचने लगा था। कुछ ही दिनों में निराला का विश्वास इस आध्यात्मिक लोक से उठने लगा था। उन्होंने लिखा कि "....बहुत दिनों की बात है। तब मैं लगातार साहित्य-समुद्र-मंथन कर रहा था। पर निकल रहा था केवल गरल। पान करनेवाले अकेले महादेव बाबू। शीघ्र रत्न और रंभा के निकलने की आशा से अविराम मुझे मथते जाने की सलाह दे रहे थे। यद्यपि विष की ज्वाला महादेव बाबू की अपेक्षा मुझे ही अधिक जला रही थी, फिर भी मुझे एक आश्वासन था कि महादेव बाबू को मेरी शक्ति पर मुझसे भी अधिक विश्वास है। इसी पर वेदांत-विषयक नीरस एक सांप्रदायिक पत्र का संपादन-भार छोड़कर मनसा-वाचा-कर्मणा सरस कविता-कुमारी की उपासना में लगा।"[10]

निराला मन ही मन तर्क करते थे कि यदि संसार में सिर्फ अच्छाई ही रहेगी तो उसकी क्या विशेषता है....अतः संसार में बुराई का रहना भी उचित है। इस तर्क के कारण उनके जीवन में उच्छृंखलता के दर्शन पहली बार यहीं पर दिखायी देते हैं। वे इस तर्क-वितर्क की विचिकित्सा कविताओं के माध्यम से करने लगे। "......इस नये साहित्यिक विकास की दिशा में सूर्यकान्त जितना ही आगे बढ़े, उतना ही संन्यासियों से दूर होते गये। उनके व्यवहार में उच्छृंखलता आने लगी। वह उच्छृंखलता पहले वह 23, शंकर घोष लेन के बाहर छोड़ आते थे, अब उसे अंदर भी ले आने लगे। कलाकार पर लोक व्यवहार के नियम लागू नहीं होते। जीवन में तरह-तरह के अनुभव प्राप्त किए बिना कोई सच्चा कलाकार नहीं हो सकता। माइकेल मधुसूदन दत्त, गिरीशचंद्र घोष कितनी शरीब पीते थे, फिर भी कितने बड़े कलाकर थे। सूर्यकान्त के मित्रों में इन बातों की बड़ी चर्चा होती थी।"[11]

यह समय निराला की सर्जना का उत्थान-काल था, साथ ही उन्होंने कुछ अच्छे मित्रों के संग का लाभ भी कलकत्ते में उठाया। 'समन्वय' पत्रिका कार्यालय की इमारत में एक प्रेस चलता था और महादेव प्रसाद इसी प्रेस के मालिक थे। इनके अलावा शिवपूजन सहाय और मुंशी नवजादिक लाल श्रीवास्तव जैसे लोगों के साथ निराला की पटरी बैठी। मुंशी नवजादिक लाल एवं महादेव बाबू के प्रोत्साहन से ही निराला की कविताओं का प्रथम संग्रह 'अनामिका' छपकर आया। सन् 1923 में इन चारों ने मिलकर 'मतवाला' नामक पत्र को चलाया था। इस 'मतवाला' का प्रेरणास्रोत बंगला का हास्य-व्यंग्य रसात्मक साप्ताहिक "अवतार" था। 'मतवाला' का प्रकाशन हिन्दी साहित्य जगत में समरणीय घटना है क्योंकि 'मतवाला' की तुक पर ही निराला का नाम आविष्कृत हुआ। "...मतवाले के सम पर निराला नाम रख दिया गया था, किसी विशेष विचार से नहीं, 'पुराने महारथी' की तरह यह भी एक नाम था।"[12]

निराला ने एक वर्ष तक 'मतवाला' का संपादन किया। निराला 'मतवाला' के कारण ही हिन्दी जगत में प्रसिद्ध हुए। क्योंकि निराला ने 'मतवाला' पत्रिका को सँवारा और कई छद्मनामों से अनेक लेख, संपादकीय टिप्पणियाँ और कविताएँ लिखकर उसे लोकप्रिय बना दिया। निराला के उत्थान में 'मतवाला' का स्थान निर्धारित करते हुए रामविलास शर्मा जी ने लिखा कि "'मतवाला' में राजनीति, समाज-व्यवस्था, साहित्य- सभी पर जोरदार टिप्पणियाँ होती थीं। 'मतवाला' अँग्रेजी राज का विरोधी और सामाजिक रूढ़िवाद का कट्‌ठर शत्रु था। सन् 20 के स्वाधीनता-आंदोलन के साथ देश में जो जागृति फैली, 'मतवाला' उसका प्रतिनिधि था। उसकी राजनीतिक चेतना गांधीवाद की सीमाएँ लाँघकर देश और समाज की परिस्थितियों में और गहरे पैठती थी। वह बालकृष्ण भट्‌ट के हिन्दी प्रदीप का सही उत्तराधिकारी और गणेश शंकर विद्यार्थी के प्रताप का योग्य जोडीदार था। 'मतवाला' दूर-दूर तक पहुँचता था। जहाँ हिन्दी प्रेमी थे, वहाँ 'मतवाला' था। लोग पढ़ते थे, अंक सँभालकर रख लेते थे। वाचनालयों में 'मतवाला' पढ़ने के लिए भीड़ लग जाती थी।"[13]

पर कुछ कारणों के चलते निराला को 'मतवाला' पत्रिका छोड़नी पड़ी। उन कारणों का संबंध निराला की सर्जनात्मक प्रतिभा पर लगे प्रश्नचिह्न से था। कलाकार को सबसे ज़्यादा खुशी पैसों से नहीं, उसकी सर्जनात्मक प्रतिभा की पहचान से तथा उस प्रतिभा की यथोचित प्रशंसा से मिलती है। निराला ऐसे ही कलाकार थे। निराला ने 'मतवाला' में काम

करते समय पैसों की ज़्यादा चिंता नहीं की। लेकिन माधुरी पत्रिका में छपे एक लेख 'भावों की भिडन्त' के कारण निराला पर बंगला-काव्य के कॉपी करने का आरोप लगा था। इस विवाद के कारण निराला के मित्रमण्डल के साथ निराला काफी बदनाम हुए। साथ ही निराला की जगह बाबू महादेव प्रसाद सेठ पाण्डेय बेचन शर्मा 'उग्र' नामक लेखक को ज़्यादा प्रोत्साहन देने लगे। उग्र की रचनाएँ निराला की कविताओं की तरह दुरूह न रहकर बहुत सरल और बाजार की खपत के अनुकूल रहती थीं। निराला 'मतवाला' के मण्डल से बाहर हो गये।

बाद में दो तीन बार 'मतवाला' ने उनका स्वागत किया और निराला ने भी कुछ समय तक 'मतवाला' में काम किया। 'मतवाला' के समय बिताये प्रशांत जीवन को छोड़कर निराला पुनः अस्वस्थता, आर्थिक संकट एवं मानसिक अशांति से भरे लंबे समय से गुज़रे। गढ़ाकोला में उन्होंने कविता को छोड़ दिया और जीवन-निर्वाह की सोची। इस समय निराला नाम की चिंता न करके बंगला से हिन्दी में अनुवाद करते थे और अपनी तात्कालिक आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए पर्याप्त धन कमा लेते थे। निराला ने इस अंतराल में काशी जाकर जयशंकर प्रसाद, प्रेमचंद, शांतिप्रिय द्विवेदी एवं विनोदशंकर व्यास जैसे साहित्यिक मनीषियों से संबंध स्थापित किये। प्रसाद तथा प्रेमचंद से उनका मैत्रीपूर्ण संबंध उनके वैयक्तिक जीवन के मधुरतम प्रसंगों में से एक थाहै। काशी में उनके निवास स्थल प्रसाद और विनोदशंकर व्यास के घर थे।

निराला जब काशी गये तब वे भयानक रोग से पीड़ित थे और प्रसाद एवं अन्य मित्रों के कारण उनकी वेदना कम हो रही थी। काशी में मित्र-मण्डली ने उनका इस समय बड़ा साथ दिया। निराला के रोग की दवा दिलायी प्रसाद जी ने, निवास एवं पोषण का भार संभाला विनोदशंकर व्यास ने। एक समय निराला को लगा कि इस प्रकार मित्रों पर आधारित होकर जीना कहाँ तक संगत होगा- तुरंत वे बिना बताये गढ़ाकोला चले गये। छायावाद के प्रवर्तक के रूप में निराला ने प्रसाद को हमेशा सम्मान दिया तथा प्रगतिवादी लेखक एवं महान कथाकार के रूप में प्रेमचंद के प्रति हमेशा उनके हृदय में श्रद्धा थी। बाद में वे गढ़ाकोला गये पर गढ़ाकोला में भी ज़्यादा दिन वे नहीं ठहर सके और काम के लिए पुनः कलकत्ते में कदम रखना पड़ा।

'मतवाला' के मित्र शिवपूजन सहाय ने निराला की बड़ी सहायता की। वे निराला की प्रतिभा से परिचित थे और उनकी आर्थिक दुरवस्था से भी। उन्होंने निराला को काम दिलाने

के लिए कई जगह कोशिश की। निराला ने गढ़ाकोला, काशी और कलकत्ते के बीच घूमते हुए पैसों के लिए कई किताबें लिखीं और अनुवाद किये। बंगला पुस्तकों को हिन्दी में अनूदित करते था, इससे जो रूपये मिलते, गढ़ाकोला भेज देते। मित्र शिवपूजन सहाय के अनुरोध से बड़े प्रयास के बाद उन्होंने छात्रों के लिए रस-अलंकार नामक पुस्तक की रचना की। लेकिन यह पुस्तक प्रकाशित नहीं हुई। कलकत्ते में वे दो-एक मारवाड़ी सेठों के लड़कों की ट्यूशन भी लेने लगे। भक्त धृव, भीष्म आदि पर उन्होंने छोटी पुस्तकें लिखीं। लेकिन इससे निराला के आर्थिक संकटों का अंत नहीं हुआ। इस समय उनकी स्थिति अपने लड़कों को अपने पास बुलाकर उन्हें अच्छी शिक्षा दिलाने की भी नहीं थी। रामविलास शर्मा ने लिखा कि ''बच्चों के लिए इस तरह की किताबें लिखना निराला को खल रहा था। पुस्तकें जल्दी लिखनी थीं, पैसे के लिए। बच्चों के लिए कलात्मक साहित्य रचने का अवसर न था। इनमें भी जहाँ-तहाँ वह अपनी गंभीर करूणा और मानवीय सहानुभूति की झलक दिखा देते थे। बाजारू काम होने पर भी इनमें उनका नाम जाता था। पर दूसरों की पाण्डुलिपियाँ शुद्ध करने के लिए उन्हें कोई श्रेय न मिलता था। पुस्तक के संपादक-रूप में उनका नाम न दिया जाता था। इससे घटिया बात यह कि पैसे के पीछे कभी-कभी वह दूसरों के लिए लिखते, किताब लिखते निराला, लेखक-रूप में उस पर नाम छपता दूसरे का। अन्य साहित्यकारों से वह होड़ में पिछडे जा रहे हैं, यह सोचकर मन ग्लानि से भर जाता। सन् '26 खतम होने को आया। पाँच साल कलम घिसते हो गये। न अपने खाने-पीने का ठीक, न बच्चों को साथ रखने, उन्हें पढ़ाने-लिखाने की व्यवस्था हो पायी। 'दिल्ली की दलाल' जैसी पुस्तकों की खपत है, निराला की कविता के लिए बाज़ार नहीं।''[14]

फिर भी पराजय स्वीकार न करते हुए मृत्यु के साथ लगातार समर करने की प्रवृत्ति उनसे दूर नहीं हुई और इसी प्रवृत्ति की अभिव्यक्ति उनके साहित्य में प्रकट होती थी। 'मतवाला' से उनके संबंध शिथिल हो रहे थे तो पुनः 'समन्वय' का भार संभालते। इस समय उन्होंने रामकृष्ण परमहंस पर लेख और स्वामी विवेकानंद की रचनाओं के अनुवाद प्रकाशित कराये। जैसे ही 'मतवाला' के साथ उनका पूर्ववत संबंध नहीं बना, वैसे पूर्ववत आदर भी नहीं मिला। यहाँ तक कि एक दिन मुंशी नवजादिक लाल श्रीवास्तव ने निराला को 'मतवाला' के कमरे से बाहर जाने को कह दिया। इन सारे अपमानों को झेलकर निराला का हृदय बड़ा निर्मम बन गया।

शिवपूजन सहाय के कारण गंगा पुस्तकमाला (लखनऊ) 'सुधा' और 'माधुरी' जैसे पत्र-पत्रिकाओं में निराला के लिए बुलावा आया। लेकिन उनकी योग्यता के बारे में पूछ-ताछ हुई, उनसे भाषा-ज्ञान संबंधी अनुभव पूछा गया तो निराला ने उसका जिक्र करते हुए पत्र लिखे। फिर भी वहाँ से उन्हें नौकरी नहीं मिली। सन् 1929 ई. तक उनका जीवन बड़ा ही कष्टदायक, आर्थिक संकटों से त्रस्त एवं रोगग्रस्त रहा। सन् '29 में अपने एक पत्र में उन्होंने अपने भतीजे को लिखा था कि खर्च की तकलीफ हो तो बर्तन बेच डालना। सरोज अब विवाह-योग्या बन गयी और रामकृष्ण का उपनयन-संस्कार निराला ने करा दिया। अब तक तो बच्चे ससुराल में ही रहे लेकिन अब सास ने साफ - साफ बता दिया कि कन्या का विवाह तुम्हीं को करना है। निराला के आत्मसम्मान को एक और झटका लगा। अब तक तो बच्चों के पालन-पोषण की चिंता नहीं थी। इधर आमदनी भी अच्छी नहीं थी। फिर भी निराला सास की बात मानकर बच्चों को गढ़ाकोला लाये। गढ़ाकोला में भी स्थिति ठीक नहीं थी। कुछ ही दिनों में बाग-बगीचे बेच डालने की नौबत आ गयी। फिर भी निराला हिम्मत नहीं हारे। इस बीच निराला और महादेव प्रसाद सेठ के मध्य झगडा हो गया। निराला को लगा कि जिन लोगों ने एक समय महाकवि कहकर सम्मान दिया , उन्हीं लोगों ने आज अपमानित कर दिया। निराला दुनियादारी से ऊब गये और इस संसार को तुच्छ मानकर बनने का निर्णय ले चुके। रामकृष्ण को युवा मित्र शिवशेखर द्विवेदी आदि को सौंपकर उन्होंने संन्यास ग्रहण भी कर लिया लेकिन कुछ ही घंटों बाद निराला का अपराजेय मन जाग उठा। उन्होंने संन्यास छोड़ दिया।

बाद में उनके जीवन में कुछ स्थिरता आ गयी और वे सुधा के संपादक-मण्डल में काम करने लगे। इस समय निराला अपने राष्ट्र एवं समाज को लेकर बहुत ही गंभीर विषयों का व्याख्यान 'सुधा' की संपादकीय टिप्पणियों के माध्यम से करते थे। अब निराला को बेटी के प्रति अपने कर्तव्य का भी बोध हो गया और कन्या के लिए योग्य वर को ढूंढ़ने लगे। कलकत्ते के युवा मित्र शिवशेखर द्विवेदी के साथ सन् 1931 ई. में निराला की पुत्री सरोज का विवाह संपन्न हो गया। विवाह में निराला ने रिश्तेदारों को नहीं अपने साहित्यिक मित्रों को ही प्रधानता दी। गाँव में इस विवाह का बड़ा विरोध किया गया और बिरादरी लोगों ने इस विवाह का मानों बहिष्कार ही कर दिया। लेकिन निराला अविचलित रहे। बेटी की शादी उनके

लिए मानों बहुत बड़ी क्रांति थी। सरोज के विवाहोपरांत उन्होंने अपनी साहित्य साधना बराबर जारी रखी। लखनऊ से 'परिमल' प्रकाशित होकर आया। बाद में 'अप्सरा', 'अलका' जैसे उपन्यास, लिली जैसे कहानी संग्रह, प्रबंध पद्म जैसे आलोचना ग्रंथ उनकी लेखनी से निकले।

विवाह के कुछ ही वर्ष बाद सरोज बीमार हो गयी और निराला बेबसी और मज़बूरी से पुत्री की हालत देख रहे थे। जब सरोज बीमार थी और कई महीनों से रायबरेली के अस्पताल में थी, तब निराला को नींद नहीं आती थी। वे जो भी काम करते, सरोज की याद उनके मन में आती रहती। इसी समय उन्हें कुछ दिनों के लिए 'रंगीला' नामक पत्रिका संपादन करना पड़ा। इधर साहित्य जगत् में भी 'मतवाला' के समय जिस विरोध का सामना करना पड़ा, वह अब भी जारी था। निराला की कविताओं केंचुआ व रबड़ छंद कहकर उनका उपहास किया जा रहा था। हर तरफ उनकी मौलिकता पर प्रश्नचिह्न लग रहे थे। ''जितना लिखित विरोध था, उससे ज़्यादा मौखिक था। गढ़ाकोला से लखनऊ और लखनऊ से कलकत्ते तक छायावाद, नये साहित्य की चर्चा में निराला का नाम बार-बार आता था। यही है वह जो चमारों, धोबियों, मुसलमानों के साथ खाता है, पीता भी, जनेऊ उतारकर फेंक दिया है, और राम जाने क्या-क्या करता है, छुट्टा घूमता है, तमाम नौजवानों को बिगाड़ रहा है। निराला यह कानाफूसी सुनते-सुनते ऊबने लगे थे। सड़क पर चलते हुए उन्हें लगता था, लोग उन पर हँस रहे हैं, आपस में उन्हीं के बारे में बातें कर रहे हैं।''[15]

सन् 1935 ई. में उनके जीवन का एक और भयानक दौरा आरंभ हो गया जब उनकी पुत्री सरोज की असमय मौत हो गयी। सरोज की मौत निराला तिलमिला उठे। वे अब तक हर प्रकार की कठिनाई का बड़े धैर्य के साथ सामना कर रहे थे लेकिन प्रिय पुत्री की मौत ने मानों उन पर कुठाराघात कर दिया। सरोज की मौत का प्रभाव निराला पर किस हद तक पड़ा इसका उल्लेख करते हुए डॉ.भगीरथ मिश्र ने लिखा कि ''कठोर नियति और प्रकृति के किसी भी आघात से निराला न हिले थे, न डिगे थे, परन्तु अपनी प्रिय पुत्री के असामयिक निधन ने उन्हें बुरी तरह झकझोर डाला। परवर्ती काल में भी जब कभी पुत्री की याद आती, तो वे आठ-आठ आँसू रोते। दिवंगत कन्या की स्मृति में निराला जी ने 'सरोज स्मृति' कविता लिखी। हिन्दी में ऐसा शोक गीत दूसरा नहीं है। 'सरोज स्मृति' एक ढ़ंग से अपने आप में निराला जी के अनकहे दुःखों की मुखर गाथा है। मातृवत जिस कन्या का पालन-पोषण उन्होंने

किया था - वह भरे-पूरे यौवन में, आयु के उन्नीसवे वर्ष में ही चल बसी, एक दृष्टि से अर्थाभाव के कारण ही उसकी मृत्यु हो गयी। निराला इस रूग्ण कन्या की अंतिम दिनों में परिचर्या भी न कर सके। कर्ण के समान दाता कवि की कन्या चंद चाँदी के टुकडों के अभाव में जीवन से हाथ धो बैठी। कुछ भी तेरे हित न कर सका की गहरी कचोट की भावना निराला जी को बार-बार खलती रही। 'सरोज स्मृति' में इस अक्षमता, विवशता और कराहती हुई वेदना का घना अंधकार है।''[16]

सरोज की मौत निराला को इतनी असह्य बात क्यों? क्योंकि सरोज की मौत एक तरह से निराला के जीवन की सफलता पर लगा प्रश्नचिह्न थी। आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी के अनुसार जीवन में सफलता और सार्थकता नामक दो चीजें होती हैं। सुख-चैन से परिवार का पालन-पोषण कर लेना, सांसारिक भोग विलास पाने में कोई कसर न छोड़े- इतना धन कमा लेना आदि जीवन की सफलता है तो मन की इच्छा के अनुसार एक लक्ष्य को निर्धारित करके जीना, उस लक्ष्य की पूर्ति के लिए व्यक्तिगत एवं पारिवारिक सुखों को भी त्याग देने की क्षमता रखना जीवन की सार्थकता है। निराला जीवन में हमेशा जीवन की सार्थकता पर ही देते आये- जीवन की सफलता पर नहीं। निराला महिषादल में ही रहकर राजा की सेवा करके परिवार के पालन-पोषण की तरफ से निश्चिंत होने की जगह हिन्दी साहित्य में युगप्रवर्तन के लिए निकले। अपने लक्ष्यों की पूर्ति के लिए परिवार के सुख त्याग दिये। इसलिए निराला को सरोज की मौत का जिम्मेदार खुद ही महसूस होने लगा।

दुःख की गहराइयों में फसे निराला की मानसिक स्थिति अब बहुत ही विरले प्रकार की बन गयी। सरोज की मृत्यु ने एक तरफ उनके अंतर्मन को झकझोर दिया तो दूसरी तरफ उन्हें देश और समाज की तरफ और प्रतिबद्ध होने की सूचना दी। निराला अब देश की स्थिति से अपनी स्थिति की तुलना करते और कई साम्य पाते। सन्1936 ई. मं उन्होंने अपनी अप्रतिम कविता 'राम की शक्तिपूजा' लिखी। अब वे मंजे हुए गद्य लेखक भी बन गये। 'राम की शक्तिपूजा' के साथ ही उनके दो उपन्यास भी निकले- 'प्रभावती' और 'निरूपमा'। इन सारी रचनाओं में उन्हींके जीवन सारे दुखद अनुभवों का प्रकटीकरण प्रतीकात्मक ढ़ंग से होता रहा। इसी वर्ष यानी '36 में ही हिन्दी के महान लेखक प्रेमचन्द का स्वास्थ्य बहुत खराब हो गया। निराला उन्हें देखने गये और उन्हें लगा कि ये उनके अंतिम दिन हैं। तब निराला ने

लिखा कि "हिन्दी के युगांतर-साहित्य के सर्वश्रेष्ठ रत्न, अंतर्प्रान्तीय ख्याति के प्रथम साहित्यिक, प्रतिकूल परिस्थितियों से निर्भीक वीर की तरह लड़नेवाले, उपन्यास-संसार के एकछत्र सम्राट्, रचना-प्रतियोगिता में विश्व के अधिक से अधिक लिखनेवाले मनीषियों के समकक्ष आदरणीय श्रीमान् प्रेमचंद जी आज महाव्याधि से ग्रस्त होकर शय्याशायी हो रहे हैं।" इन वाक्यों से प्रेमचंद पर निराला की श्रद्धा प्रकट हो रही हैं। उसी वर्ष प्रेमचंद जी का निधन हो गया। प्रसाद जी की मौत निराला के अंतस्थल पर चोट करनेवाली घटना ही थी। प्रसाद को लेकर निराला ने एक कविता लिखकर अपनी श्रद्ध प्रकट की।

सन् 1937 ई. में निराला के पुत्र रामकृष्ण का विवाह संपन्न हुआ। तुलसीदास निराला के सबसे प्रिय कवि थे। इसलिए तुलसीदास को अपना काव्यनायक बनाकर उन्होंने एक कविता लिखी - "तुलसीदास", इसका प्रकाशन सन् 1938 ई. में हुआ। निराला ने कई पुस्तकों की रचना तो की लेकिन उस रचनाकर्म से उन्हें मिलनेवाली आय तो बहुत कम थी। वह उनकी जीवन-आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए पर्याप्त कभी नहीं रही। 1937 ई. में उन्होंने शिकार साहित्य के महान लेखक और समर्थ संपादक पं.श्रीराम शर्मा को एक पत्र में लिखा : "....आप मेरी आमदनी के संबंध में पूछते हैं। सच तो यह है कि मैंने कभी आमदनी के विचार से काम नहीं किया। अनुवाद और संपादकों के लिए जो कुछ बैठा-बिठाया लिखता था, वह किसी तरह खर्च चला लेने के लिए। फिर भी पूरा नहीं पड़ता था। लेख के लिए रू.15/- से 20/- तक अधिक से अधिक एक अंक में मुझे मिला है। ऐसे दो लेखों की आमदनी ज़्यादा-से-ज़्यादा महीनों में हुई। खर्च मौलिक पुस्तकों का कापीराइट बेचने पर किसी तरह चला। 200/- और 250/- में कॉपीराइट भेजा।"[17]

सन् 1941 तक 'कुल्ली भाट', 'प्रबंध प्रतिमा' और 'बिल्लेसुर बकरीहा' जैसी पुस्तकें प्रकाशित हो चुकीं। सन् 1943 ई. से लेकर सन् '46 तक प्रयाग में रहकर निराला ने कई कष्ट झेले जो किसी भी दूसरे व्यक्ति के लिए आत्महत्या का कारण बन सकते थे। प्रयाग में कुछ दिन निराला श्रीमती महादेवी वर्मा द्वारा संचालित 'साहित्यकार संसद' के भवन में रहे। प्रयाग में ही उनके काव्य-संग्रह 'नए पत्ते', 'बेला', और 'अपरा' तथा गद्य में 'चतुरी चमार', 'देवी' आदि कहानी-संग्रह, 'चोटी की पकड़', 'काले कारनामे' आदि उपन्यास प्रकाशित हुए। प्रयाग-प्रवास के समय महादेवी जी ने निराला को अपना राखीबंद भाई भी बना लिया। उन्होंने

लिखा कि "उस दिन मैं बिना कुछ सोचु हुए ही भाई निराला जी से पूछ बैठी थी, 'आपके किसी ने राखी नहीं बाँधी ? कौन बहिन हम ऐसे भुक्खड़ को भाई बनावेगी' में उत्तर देने वाले के एकाकी जीवन की व्यथा थी या चुनौती, यह कहना कठिन है। पर जान पड़ता है कि किसी अव्यक्त चुनौती के आभास ने ही मुझे उस हाथ के अभिषेक की प्रेरणा दी, जिसने दिव्य वर्ण-गंध-मधु वाले गीत सुमनों से भारती की अर्चना भी की है और बर्तन माँजने, पानी भरने जैसी कठिन श्रम-साधना से उत्पन्न स्वेद-बिंदुओं से मिट्‌टी का श्रृंगार भी किया है। मेरा प्रयास किसी भी जीवंत बवण्डर को कच्चे सूत में बाँधने जैसा था या किसी पुच्छल महानद को मोम के तटों से सीमित करने के समान, यह सोचने-विचारने का तब अवकाश नहीं था। पर आने वाले वर्ष निराला जी के संघर्ष के ही नहीं, मेरी परीक्षा के भी रहे हैं। मैं किस सीमा तक सफल हो सकी हूँ, यह मुझे ज्ञात नहीं, पर लौकिक दृष्टि से निःस्व निराला हृदय की निधियों में सबसे समृद्ध भाई हैं, यह स्वीकार करने में मुझे द्विविधा नहीं। उन्होंने अपने सहज विश्वास से मेरे कच्चे सूत के बंधन को जो दृढ़ता और दीप्ति दी है, वह अन्यत्र दुर्लभ रहेगी।"[18]

सन् 1941 ई. के बाद निरंतर आपदाओं तथा अनवतर व्यथा के कारण निराला की मानसिक स्थिति बिगड चुकी। अब वे शारीरिक और मानसिक दोनों प्रकार से अस्वस्थ बन गये। दूसरा विश्व महायुद्ध चल रहा था तब निराला कुछ दिन कर्वी में रहे और यहाँ भयानक अस्वस्थता के शिकार हुए। सन् '50 तक आते आते उनकी गिनती विक्षिप्त लोगों में की जाने लगी। महादेवी के यहाँ रहते समय वे कहा करते थे कि गीतांजलि उन्हींकी रचना है और कई कविताएँ जो उनकी हैं, रवींद्रनाथ ठाकुर के नाम से छपी हैं। वे यह भी कहते थे कि उनके पास लाखों-करोडों रूपये की संपत्ति है और करोडों रूपयों का व्यापार है। यह दीनावस्था उनके जीवन की यातनाओं को न सह पाने की स्थिति से उत्पन्न हुई है। निराला की मानसिक स्थिति से दूसरे लोगों को भी परेशानी हो जाती थी, वे लोग यदि महादेवी से शिकायत करते तो उस समय महादेवी वर्मा कहती थी "उनकी शिकायत क्या करते हो ? अपने परिवार का एक व्यक्ति जिस मानसिक स्थिति में है, उसको परिवारवाले न समझेंगे तो कोई दूसरा समझेगा?"[19]

अपने अंतिम समय में निराला प्रयाग में प्रसिद्ध चित्रकार कमलाशंकर सिंह के दारागंज स्थित घर में रहते और प्रार्थना, आत्म-समर्पण एवं प्रकृति-चित्रण से संबंधित गीत लिखते थे।

निरला धीरे-धीरे उस अवस्था को पहुँच गये जहाँ वे हिन्दी से ही विरोध करने लगे। उन्होंने कुछ दिन तो हिन्दी बोलना भी बंद कर दिया और खुद को हिन्दी कवि भी नहीं मानते थे। अधिकतर वे मौन ही रहा करते थे। जीवन के अंतिम चरण में उनके व्यक्तित्व में संन्यासियों का सा वैराग्य भाव उदय हुआ तथा खुद को संन्यासी मानकर सांसारिक सुखों से परे रहते थे। वे संन्यासी भाव में कहा करते 'मुझे रूपये-पैसे से कोई मतलब नहीं।' अब तक निराला साहित्यजगत में बहुत प्रसिद्ध हो चुके और उन्हें देखने कोई आ जाता तो वे कहा करते : 'निराला नाम का कोई आदमी यहाँ नहीं रहता।' संन्यासियों की सी संयत जीवन शैली भी अस्थाई ही रहती क्योंकि जब भी उन्हें जीवन की कठोर यातनाओं का स्मरण हो आता, वे तुरंत बिगड़ जाते और उनका मानसिक संतुलन गड़बड़ हो जाता। निराला यद्यपि इस प्रकार की अवस्था में रहते तथापि उनका बाह्य जगत से संबंध कटे नहीं थे। वे मानसिक रूप से अस्वस्थ तो थे लेकिन बाहरी परिस्थितियों से भी अवगत थे।

निराला ऐसे कलाकारों में से हैं जिनकी गिनती बहुत सेन्सिटिव लोगों में की जानी चाहिए। वे हर एक घटना को बहुत ही गंभीरतापूर्वक लेते थे। भावुकता और मनोद्वेग तो कलाकार के जन्मसिद्ध अधिकार ही तो हैं। उनकी मानसिक दुर्दशा का श्रेय उनके जीवन में घटी सहज दुर्घटनाओं के साथ-साथ बहुत कुछ उनके साहित्यिक विरोधियों को भी मिलना चाहिए। "...निराला का मानसिक संतुलन बिगाड़ने में उनके साहित्यिक विरोधियों का बहुत बड़ा हाथ था। निराला इस विरोध को बढ़ा-चढ़ाकर देखते थे, किन्तु यह विरोध था वास्तविक। यदि विरोध तर्क-संगत हो, तो तर्क से उसका उत्तर दिया जा सकता है या लेखक उससे लाभ उठा सकता है। यदि वह एक संगठित कुटिल अभियान का रूप ले ले तो उससे लेखक के मन को चोट लगेगी ही। निराला के कल्पना-चित्रों में इस विरोध का सीधा प्रतिबिम्ब दिखाई न देता था, पर उनसे था उसका गहरा संबंध। इस विरोध ने- उनकी दृष्टि में- उनकी साहित्यिक प्रतिष्ठा छीन ली थी, इसलिए अब वह दूसरों की पुस्तकों का लेखक अपने को समझने या कहने लगे थे। विशेष रूप से असंतुलन की प्रारंभिक अवस्था में उनके दुःस्वप्नों के प्रेरक उनके साहित्यिक विरोधी भी थे।"[20]

अनवरत संघर्षरत और अभावग्रस्त महान साहित्यकार का निधन 15 अक्तूबर,1961 वाले उषःकाल में हो गया। उनकी मौत को बहुत समीप से देखनेवाले रामप्रताप त्रिपाठी ने

लिखा कि "मुख पर कष्ट या विकारों की भंगिमा नहीं थी और न कोई अंग ही टेढ़ा हुआ था। ऐसा लगता था जैसे जीवन-भर संघर्षों और कठिनाइयों से जूझनेवाले उस महान साहसी एवं अदम्य योद्धा ने मृत्यु का स्वयं ही वरण करके चिरशांति की गोद में अखण्ड निद्रा ले ली हो।"[21]

निराला का जीवन कई यातनाओं के बीच गुजरा है, इसमें कोई संदेह नहीं। लेकिन इतनी यातनाओं को सहते हुए भी उन्होंने अपने साहित्य को बहुजन हिताय वाली भावना से ओतप्रोत करने का प्रयास बराबर किया जिसका अध्ययन हम आगे अध्यायों में करेंगे।

3.2 निराला के साहित्य में राष्ट्रीय जागरण के अनुसंधान की प्रासंगिकता और शोध-प्रविधि

निराला का जन्म-समय राष्ट्रीय जागरण के उत्थान-काल का समय था। निराला का संबंध अवध प्रांत से था और यह अवध प्रांत का राष्ट्रीय जागरण से सीधा संबंध था। अंग्रेज़ों की भारत पर विजय अवध के नवाब सिराजुद्दौला को हराने से संपूर्ण हो गयी। अवध पर अंग्रेज़ों का प्रभुत्व स्थापित हो जाना भारत पर अंग्रेज़ों के शासन का प्रथम सोपान कहा जा सकता है। क्योंकि अवध नवाब को हराने से बंगाल, बिहार एवं उड़ीसा का राज्य अंग्रेज़ों के कब्जे में आ गया। इतना ही नहीं सन् 1857 ई. के महासंग्राम में अवध के सिपाहियों ने जमकर अंग्रेज़ों का विरोध किया और इसका बाद में अवध की जनता को बहुत भारी मूल्य चुकाना पड़ा। रामविलास शर्मा ने लिखा है कि "....क्लाइव के जमाने से अवध के किसान रोटी-रोजी की तलाश में बंगाल जाते थे। यहाँ फौज़ में भर्ती होकर अंग्रेज़ी राज के विस्तार में सहायक होते थे। जिसे बंगाल-आर्मी कहा जाता था, उसमें बंगाल का एक सिपाही न था, ज़्यादातर सिपाही पछाँह के थे, विशेषकर अवध के। अवध की बेगम, अज़ीमुल्ला, नानासाहब, फैज़ाबाद के मौलवी, राना बेनीमाधव को साथ मिलाकर अवध के सिपाहियों ने अंग्रेज़ों से दो साल तक भयंकर संग्राम किया। अंग्रेज़ों ने इसका बदला लिया, उन्होंने अवध को जो भारत का बाग कहलाता था, उजाड़ डाला। उन्नाव, रायबरेली, इलाहाबाद, बहराइच आदि उद्योग और व्यापार के बड़े-बड़े केंद्रों को बरबाद कर दिया।

अंग्रेज़ी राज में अवध की प्रजा को दोहरा अत्याचार सहना पड़ता था। अंग्रेज़ों ने ताल्लुकदारों-जमींदारों को अपना चाकर बना लिया था। सूदखोर महाजनों और निर्दयी

जमींदारों की मदद के लिए अंग्रेज़ी कानून, कचहरी-अदालत, पुलिस, जरूरत हो तो फौज़ भी, हमेशा तैयार रहती थी। सबसे ज़्यादा सताये जाते थे - नीची जात वाले। चमारों से बेगार लेना, उनकी बहू-बेटियों को बेइज्जत करना जमींदारों का आम चलन था। बहुत- से गाँवों में गरीबी के मारे ये अपढ़-असहाय चमार मुर्दा जानवरों का मांस खाकर दिन काटते थे। अंग्रेज़ों ने अल्पसंख्यक मुसलमानों को पुलिस-कचहरी में विशेष सुविधाएँ देकर, सरकारी काम-काज में अरबी-फारसी से लदी हुई भाषा चलाकर यहाँ की जनता के सांस्कृतिक विकास को भारी नुकसान पहुँचाया। उन्नीसवीं सदी के अंतिम चरण में अंग्रेज़ी नीति का विरोध करते हुए भारतेंदु हरिश्चंद्र ने हिन्दी जनता में स्वदेश और स्वभाषा के प्रति प्रेम जगाया। इनके दो प्रमुख सहयोगी अवध के थे : एक प्रतापनारायण मिश्र जिनका गद्य भारतेंदु के गद्य-जैसा ललित होता था, दूसरे बालकृष्ण भट्ट जो अपने युग के सबसे क्रांतिकारी लेखक थे।''[22]

निराला का जन्म सन् 1899 ई. को इसी अवध प्रदेश में हुआ था। तब तक आधुनिक युग का आरंभ हो चुका था और राष्ट्रीय जागरण की क्रियात्मक अभिव्यक्ति की प्रथम किरण सिपाहियों के विद्रोह में फूट पड़ी थी। निराला के पिता रामसहाय तिवारी अवध के ऐसे कई लोगों में एक थे जो अपनी शारीरिक पुष्टि एवं स्वामिभक्ति के कारण बंगाल के राजा के यहाँ सिपाही का काम प्राप्त कर चुके। निराला का बचपन महिषादल में ही बीता। उन्होंने बचपन में ही राजा ईश्वरप्रसाद गर्ग एवं उनके पुत्र सतीप्रसाद गर्ग का शानदार भवन और पास ही पिताजी का कच्चा घर नजदीक से देख लिया और उन दोनों का अंतर भी धीरे-धीरे उस बालक की समझ में आने लगा। निराला के बचपन में ही बंगाल के लाट सर फ्रांसिस ड्यूक महिषादल आये। महिषादल के शासक सतीप्रसाद गर्ग के यहाँ ठहरे और निराला के पिताजी भी इस संदर्भ में इस विदेशी महाशय की सेवा में प्रस्तुत थे। निराला ने इस घटना को कुतूहल से देखा और समझा कि पिताजी सिपाहियों का जमादार हैं लेकिन वे महाराजा सतीप्रसाद गर्ग के मातहत हैं। राजा भी अपनी जगह महान हो सकता है लेकिन निराला को लगा कि सर फ्रांसिस ड्यूक के आगमन के बाद राजा का स्थान भी कुछ घट गया ! क्योंकि निराला ने देखा जब ये सब लोग फोटो खिंचाने के लिए उपस्थित हुए तब सबमें से ऊँची कुर्सी लाट साहब की थी , महाराजा सतीप्रसाद गर्ग की नहीं ! "....इस वर्ष एक महत्वपूर्ण घटना और हुई। बंगाल के लाट सर फ्रांसिस ड्यूक महिषादल पधारे।

महिषादल के राजा के साथ उन्होंने फोटो खिंचाया। बीच में ऊँची कुर्सी पर लाट साहब बैठे। कुर्सी इतनी ऊँची थी कि लाट साहब के पाँव मश्किल से जमीन तक पहुँचते थे। उनके दाएँ नीची कुर्सी पर राजा सतीप्रसाद गर्ग बहादुर बैठे, बाएँ वैसी ही दो नीची कुर्सियों पर राजपरिवार के दो अन्य सदस्य। पीछे एक चपरासी, शेष सिपाही हाथ में तलवारें खींचे खडे हुए। इस लाइन में गवर्नर की बाईं ओर एकदम सिरे पर रामसहाय तेवारी खड़े हुए.......स्कूल में पढ़ते हुए सुर्जकुमार तेवारी राजा, अंग्रेज़, जमादार-- इन शब्दों का अर्थ समझने लगे।''[23]

इस प्रकार निराला को सामन्तवाद एवं साम्राज्यवाद का अंतःसंबंध नजदीक से पहचानने का मौका बचपन में ही मिला।

निराला की पढ़ाई बंगाल में हुई थी। बंगाल हर अर्थ में भारत के सुविकसित एवं सुसभ्य प्रांतों में से अग्रगण्य माना जाता था। उस समय बंग-भंग आंदोलन के दौरान सारे बंगाल में खलबली मची हुई थी। बाल निराला ने बंगाल में अपने बाल्य काल के समय आंदोलन के कई दृश्य देखे थे। यद्यपि इन आंदोलनों का पूरा अर्थ उन्हें मालूम नहीं हो रहा था तथापि स्कूली वातावरण पर बंगाल के राष्ट्रीय जागरण की छाप जरूर थी। बाल निराला ने देखा कि राजा के पास बहुत सारी संपत्ति पड़ी हुई है और पिताजी के पास इतने सारे सिपाही रहते हैं..तो क्यों न पिताजी उस राजा पर चढ़ाई कर दें? यह विचार निराला को किसी और ने नहीं सिखाया यह उनकी स्वीय कल्पना थी। निराला को जब यह बात मन में जँची तब उन्होंने पिताजी से सीधे इसके बारे में प्रश्न किया तो फल बहुत ही कडवा निकला। निराला ने यह प्रश्न क्या सोच कर किया होगा- पता नहीं, लेकिन अवध के ईमानदार सिपाही रामसहाय तेवारी को यह सवाल बहुत ही बेमतलब मालूम हुआ और उन्होंने पुत्र को कडी सज़ा दी। ''....याद आया- एक बार एकांत में मैंने पिताजी को सलाह दी थी, ''तुम्हारे मातहत इतने सिपाही हैं, तुम इस राजा को लूट क्यों नहीं लेते? '' पिताजी ने सोचा, यह किसी दुश्मन की सिखायी बात है, जो उनकी नौकरी लेना चाहता है। मुझे मार-मारकर अपने दुश्मन का भूत उतारते हुए पूछने लगे कि किसने सिखलाया है। मैं किसका नाम बतलाता ? वह उद्भावना मेरी ही थी। मैं जितना ही कहता था, यह बात मेरी ही सोची हुई थी, पिताजी उतना ही संदेह करते और मार-मारकर पूछते जाते थे। मैं कुछ देर बाद बेहोश हो गया था।''[24]

लगभग आठ साल की उम्र में निराला का यज्ञोपवीत संस्कार संपन्न हुआ। रामसहाय तेवारी के परिवार में आचार-संप्रदाय एवं रीति-रिवाजों का पालन बहुत सख्ती से होता था। निराला को बताया गया कि जनेऊ हो जाने के बाद अब दूसरों के घर आना-जाना बंद करे और दूसरे लोगों के हाथ का खाना भी न स्वीकारें। निराला को यह नियम बहुत विचित्र मालूम हुआ। गढ़ाकोला गाँव में एक मुसलमान पतुरिया थी जिनके बच्चों के साथ निराला की बड़ी दोस्ती थी। वह औरत गाँव के ताल्लुकदार की थी और उनकी मौत के बाद उनके बच्चों को ब्राह्मण लोग अछूत समझने लगे। निराला को यह बड़ा अन्याय लगा और उन्होंने पिताजी से सीधे इसके बारे में पूछ लिया। इस घटना के बारे में निराला ने लिखा कि -

" .... अभी तुम हमारे यहाँ का खाते हो, जब जनेऊ हो जायेगा, न खाओगे !

मैंने खुदबखुद सोचा - "यह अन्याय है। अगर आज खाते हैं, तो कल क्यों न खायेंगे?"

परागा बहन ने कहा : "बदलू सुकुल के यहाँ महुए की लप्सी खाओगे, हमारे यहाँ हलुआ नहीं।"

मुझे झेंप मालूम दी। मैं हलुआ छोड़कर लप्सी नहीं खाता, मन में कहा। कुछ दिन बाद जनेऊ हुआ। अब तक इस घर के आदमी-आदमी ने बगावत के लिए मुझे तैयार कर लिया था। मैं प्रतिज्ञा कर चुका था कि जनेऊ चाहे तीन बार हो, लेकिन मैं यहाँ भोजन न छोड़ूँगा। इनकी बातें मुझे संगल मालूम देती थीं। अगर गाँववाले कभी इनके यहाँ खाते थे, तो अब क्यों नहीं खाते ?"

जनेऊ हो जाने के दूसरे रोज पिताजी ने एकानत में बुलाकर मुझसे कहा, "अब आज से, खबरदार, पतुरिया के घर का कुछ खाना-पीना मत।"

मैंने कहा, "पतुरिया का छुआ तो उनके लड़के भी नहीं खाते-पीते। " उन्होंने डाँटकर कहा, "उसके हाथ का भी मत खाना।"

मैंने पूछा, " जब ताल्लुकेदार थे, तब आप लोग उनका छुआ खाते थे ?"

पिताजी ने होंठ चबाकर कहा, "हम जैसा कहते हैं, कर।"

उपर्युक्त घटना से मालूम होता है कि परिवेश की अमानवीय रीतियों का तिरस्कार करके तर्क का आश्रय लेने की प्रवृत्ति निराला के बचपन में भी विद्यमान थी। उन्होंने बात वहीं तक नहीं छोड़ी और पिता जैसा कहते हैं, वैसा नहीं किया।

"...तीसरे या चौथे दिन पं.फतहबहादुर दुबे कुएँ पर नहाने का डौल कर रहे थे, एकाएक मैं पहुँचा। मुझे देखकर वह मुस्किराये। मेरे दिल में जैसे तेज तीर चुभा। बड़ा अपमान मालूम दिया। मैंने उनके पास पहुँचकर कहा, 'भैया पानी पिला दीजिए।'

भैया प्रसन्न हो गये। डौल से लोटे में पानी लेकर मुझे पिलाने लगे। पिलाते वक्त उन्हें गर्व का अनुभव हो रहा था। मुझे भी खुशी थी, जैसे कोई क़िला तोड़ा हो।"[25]

निराला को लग रहा था कि जनेऊ के बाद ऐसा क्या बदलाव होगा जिसके कारण मनुष्य-मनुष्य के बीच अंतर पैदा हो जाए..आदमी दूसरे आदमी को ग़ैर समझकर दूर हो जाए। इसीलिए उन्होंने इस बात को नहीं माना और उसे यथासंभव ठुकरा दिया। इसीलिए उन्होंने पिताजी के कहने पर भी इस प्रथा का अनुमोदन नहीं किया और अपने मन के अनुसार आचरण किया। बाद में निराला की इस हरकत के कारण पिताजी को गाँव ढ़ोंगी और पाखण्डी पण्डितों की भर्त्सना सहनी पड़ी और उन्होंने अपना सारा क्रोध निराला पर ही उतारा। फिर भी निराला को नहीं लगा कि उन्होंने पिताजी को अपमानित करनेवाला कोई काम किया प्रत्युत उन्हें इस काम से किसी क़िले को तोडने जैसी खुशी हुई थी। बाद में उन्होंने विवाह के बाद जब ससुराल को प्रस्थान किया तब वहाँ भी उन पर इसी प्रकार की रीति-रिवाज का अनुपालन करने को जोर डाला गया। डलमऊ में निराला का परिचय कुल्ली भाट से हुआ। निराला ने तब भी अपने पूर्वनिश्चित आचरण का ही प्रयोग किया- मन के अनुसार जो उन्हें अच्छा लगा वही किया। सास ने कहा 'कुल्ली से मिलना नहीं' निराला ने इसका विपरीत ही किया। रामविलास शर्मा ने लिखा कि "सबेरा होते ही कुल्ली आकर सुर्जकुमार को पूछ गये। अभी वह सो रहे थे। सास ने बताया और दामाद को चेतावनी दी, उनके साथ रहने पर तुम्हारी बदनामी हो सकती है। इससे मिलो, उससे न मिलो- यह सब सुर्जकुमार को अच्छा न लगता था। गढ़ाकोला में बाप कहते थे, पतुरिया के लड़कों से न मिला करो, यहाँ सास कहती हैं, कुल्ली से न मिलो। पर ऐसे लोगों से मिलने में ही उन्हें विशेष आनंद आता था। कुल्ली आये, डलमऊ के इतिहास के बारे में बातें कीं। शाम को गंगा का घाट, पुराना क़िला वगैरह दिखाने को कहा। सास ने मना किया पर इन्होंने ज़िद की।"[26]

राष्ट्रीय जागरण का लक्ष्य केवल राजनैतिक स्वतंत्रता प्राप्त करना ही नहीं बल्कि अंग्रेज़ी सरकार के शासन में जनता के बीच फैली सामाजिक एवं सांस्कृतिक दासता का भी

उन्मूलन करना था। निराला ने राजनैतिक मुक्ति से पहले जनों की सामाजिक एवं सांस्कृतिक मुक्ति की प्रबल कामना की। एक प्रतिबद्ध कलाकार होने के नाते उन्होंने यह कामना सिर्फ अपने साहित्य में ही नहीं की, अपने जीवन में भी प्रतिबिंबित की। उन्हें सर्वप्रथम लड़ना था अपने परिवार से, अपने चारों तरफ लदे हुए पुराने संस्कारों से -जिनके कारण कुछ लोगों को अछूत माना जाता था और उनके हाथ का पानी तक पीना मना था। इसलिए निराला ने बचपन से ही इनके विरुद्ध युद्ध किया। ब्राह्मण होकर भी निराला तत्कालीन ब्राह्मणत्व के रूढ़िवाद और दंभता का सख्त विरोध करते थे। एक तरह से इस ब्राह्मणत्व के विरोध में ही निराला ने यज्ञोपवीत का धारण और शाकाहारी भोजन आदि का तिरस्कार किया जिन बातों को लेकर ब्राह्मण दूसरों से खुद को बड़ा मानते थे। निराला यथेष्ट मांस खाते थे और इस विषय को लेकर उनका पत्नी के साथ झगडा भी हो गया था। उनके परवर्ती जीवन में मांसाहार एक आचार-सा बन गया और इसीके कारण वे ब्राह्मणेतर जातियों से इतने घुलमिल गये कि उनका घर साधारण जनों से भर जाता था। 'चतुरी चमार' कहानी से स्पष्ट होता है कि उन्होंने गाँव के चमार चतुरी को अपने समकक्ष बिठाया और उसके बेटे को पाठ भी पढ़ाये। "...अर्जुन का आना ज़ारी हो गया। उन दिनों बाहर मुझे कोई काम न था, देहात में रहना पड़ा। गोश्त आने लगा। समय-समय पर लोध, पासी, धोबी और चमारों का ब्रह्मभोज भी चलता रहा। घृतपक्व मसालेदार मांस की खुशबू से जिसकी भी लार टपकी, आप निमंत्रित होने को पूछा। इस तरह मेरा मकान साधारण जनों का अड्डा, बल्कि House of commons हो गया।"[27]

बाद में उन्होंने कुल्ली के साथ मित्रता ज़ारी रखी, यद्यपि वह बात ससुराल वालों को अपमानजनक थी। अछूतोद्धार और सर्वजन समानता पर बड़े-बड़े भाषण झाडनेवाले साहित्यिकों की तुलना में निराला कई गुना ज़्यादा कर्मरत थे। उन्होंने गाँव के किसानों को संगठित किया और चतुरी के बच्चे को पाठ पढ़ाये। गाँव के निम्नवर्गीय जनता से उनके बहुत ही ममतापूर्ण संबंध थे। जब निराला ने सरोज का विवाह संपन्न किया तब उनके परिवार वालों से ज़्यादा गाँव के निम्नवर्गीय जन इस संदर्भ में शामिल हुए।

कुल्ली भाट को नज़दीक से देखने के बाद निराला को लगा कि वह अनाचरणीय मनुष्य नहीं है। निराला ने लिखा कि "तब मैं ब्राह्मण था, इसलिए चरण-रज से पवित्र करने

की ताकत है, समझता था। कुल्ली के मकान के साथ कुल्ली का देह भी संलग्न है भाव-रूप से, इसलिए उसके पवित्र करने की बात भी मेरे मन में आयी, क्योंकि मैं देख चुका था, कुल्ली की भली बात का व्यंग्य रूप से लोग बुरा अर्थ लगाते हैं, फलतः कुल्ली के पवित्र होने की जरूरत है। कुल्ली अब तक के आचरण से किसी तरह भी अनाचरणीय मनुष्य नहीं। उसका यह भाव लोगों में व्यक्त हो जाना चाहिए।''[28]

इस प्रकार निराला का व्यक्तित्व हर प्रकार की धार्मिक एवं सांप्रदायिक संकीर्णता से मुक्त था।

निराला को साम्राज्यवाद और सामंतवाद के बीच समझौते के दर्शन हो गये थे। उन्होंने बचपन से ही महिषादल के राजमहल की ठाठ देखी और जनता पर राजा का आधिपत्य भी कई संदर्भों में देखा। पिता की मृत्यु के बाद सतीप्रसाद गर्ग ने निराला को राजास्थान में नौकरी दिलायी। निराला पढ़े-लिखे थे इसलिए उन्हें तहसील-वसूली, कचहरी-अदालत से संबंधित काम दिया गया। निराला ने अपनी नौकरी के दौरान देखा कि राजा को सारे नौकर-चाकर प्रणाम करते हैं, झुककर चलते हैं। इस नौकरी से निराला कुछ असुविधाजनक स्थिति में पड़ गये क्योंकि उनके मन के अनुसार संसार में सब लोग समान हैं, कोई बड़ा नहीं और कोई छोटा नहीं। लेकिन महिषादल की नौकरी के दौरान इन भावनाओं को ठेस पहुँचने लगी। राजा को नज़दीक से देखने के कारण निराला को यह जानने का मौका मिला कि राजतंत्र की चक्की में सामान्य लोग कैसे पिसते हैं। प्रजा के उत्पीड़न के बारे में वे जानते थे। एकबार राजा अपने सिपाहियों के साथ किश्ती में जा रहे थे। नहर के किनारे एक पुजारी ने राजा को देखकर मुँह से अजीब सी आवाज की और अपना पेट हाथों से मलता हुआ राजा को इशारा किया कि वह भूखा है। बाद में उसने दोनों हाथों के अँगूठे हिलाए, जिसका मतलब था कि कोई फायदा नहीं। इसके पीछे कहानी यह थी कि उस पुजारी को कई महीनों से वेतन नहीं मिल रही थी और कई दरखास्तों के भेजने के बाद भी कुछ फायदा न हुआ। राजा के सिपाहियों ने इस चेष्टा का गलत अर्थ निकाला और उन्होंने सोचा कि पुजारी ने राजा का अपमान किया है। उन्होंने पुजारी को पकड़कर बहुत पीटा। बाद में उसे नौकरी से भी निकाल दिया गया। (कुछ साल बाद इसी घटना को लेकर निराला ने एक कहानी लिखी : 'राजा को ठेंगा दिखाया।')

निराला के व्यक्तित्व के अनुसार राजा की चापलूसी करके पेट भरना नीचता है। उन्हें यह नौकरी बिलकुल अच्छी नहीं लगती थी और वे मौका मिलते ही उन्होंने नौकरी से इस्तीफा दे दिया। इससे स्पष्ट होता है कि निराला का मन किसी प्रकार की गुलामी को सहनेवाला नहीं था। प्रजा के उत्पीडन से निराला को बड़ा कष्ट होता था और मन में ही विचार करते थे कि इसका अंत कैसे हो ....इस प्रकार महिषादल का राजसहज वातावरण निराला में कई प्रकार के विचार उत्पन्न करता था।

सन् 1920 का वर्ष भारत के स्वतंत्रता-संग्राम में सबसे प्रभावशाली वर्ष था। इसी समय गांधी जी भारत में एक सशक्त नेता बनकर असहयोग आंदोलन का नेतृत्व कर रहे थे। तब तक प्रथम विश्व महायुद्ध समाप्त हो चुका और युद्ध में अंग्रेज़ों की सहायता करनेवाले भारतीय समझ रहे थे कि युद्ध के समाप्त होते ही अंग्रेज़ भारत के लिए कुछ न कुछ करेंगे। लेकिन इसके विपरीत जलियाँवाला बाग का हत्याकाण्ड हुआ और सारा देश अंग्रेज़ी शासन के कूट व्यवहार से बौखला हो उठा था। निराला भी इन परिस्थितियों से प्रभावित थे। अब तक निराला की पत्नी मनोहरा देवी का देहांत हो चुका और निराला का मन स्वामी प्रेमानंद जैसे लोगों के संपर्क में आकर संन्यास और वैराग्य के प्रति खिंचा हुआ था। एक तरफ महिषादल राज्य में जनता का उत्पीडन और दूसरी तरफ देश की जनता पर अंग्रेज़ों के अत्याचार- इन सबको देखते हुए निराला राजनीति की तरफ चलने लगे और उन्हें लगने लगा कि संन्यास से काम नहीं चलेगा बल्कि सामान्य प्रजा की रक्षा करना ही जीवन की सार्थकता है।

सन् 1919 ई. के मार्च महीने में ब्रिटिश सरकार ने रौलट आयोग की रिपोर्ट को कानून बना दिया था जिसके तहत किसी भी भारतीय को कैद करके बिना मुकद्दमा चलाए बंदीगृह में अनिश्चित समय के लिए रखा जा सकता है। महात्मा गांधी ने इस शासन के खिलाफ सत्याग्रह का आंदोलन चलाया। उन्होंने सारे देश को इस आंदोलन में भागीदार बनाया। दिल्ली में मार्च 30, सन् 1919 ई. को हड़ताल किया गया। बंबई, गुजरात, मध्यप्रदेश के पाँच बड़े शहरों में तथा मद्रास में भी जनता ने बड़ी संख्या में इस आंदोलन में भाग लिया। बंगाल के कलकत्ता, ढाका जैसे शहरों में जनता ने बड़े उत्साह से काम लिया। बिहार के पटना, मुजफरपुर, गया जैसे शहरों में भी सफलता पूर्वक आंदोलन चला। उत्तरप्रदेश के हर शहर में हज़ारों लोगों ने आंदोलन में भाग लिया। भारत में हर एक राज्य में यह

सत्याग्रह चला और आंदोलन सर्वप्रथम समूचे राष्ट्र में फैला। इसी बीच सन् 1919 ई. अप्रैल में जलियाँवाला बाग का हत्याकाण्ड हुआ। ".... सुर्जकुमार को संतोष न हुआ। गरीब प्रजा का ध्यान सताने लगा। जर्मनी की लड़ाई खतम हो चुकी थी। कुछ क्रांतिकारियों ने जर्मनी से हथियार मँगाकर भारत में सशस्त्र विद्रोह के लिए प्रयत्न किया था, पर वे सफल न हुए। जो नेता युद्ध में अंग्रेज़ों की सहायता करके बड़ी आस लगाए बैठे थे कि लड़ाई खतम होने पर डोमिनियन स्टेटस मिल जाएगा, वे बड़े निराश हुए। अंग्रेज़ों ने स्वराज्य की माँग का जवाब रौलट एक्ट और जलियाँवाला बाग से दिया। देश के नौजवान क्रोध से तिलमिला उठे। आपस में बातें करते कि अंग्रेज़ी राज का खात्मा किस उपाय से किया जाय। सुर्जकुमार बँगला के अखबार पढ़ते, मित्रों से देश-विदेश की चर्चा करते। कुछ नौजवान लुक-छिपकर उन्हें क्रांतिकारियों के बारे में वह साहित्य पढ़ने को देते जिस पर सरकार ने प्रतिबंध लगा रखा था। सुर्जकुमार तेजी से राजनीति की तरफ खिंचने लगे।"[29]

महात्मा गांधी ने सन् 1920 ई. में असहयोग आंदोलन का शंखनाद किया। इस आंदोलन का लक्ष्य भारत में शिक्षा, न्याय, राजनीति, समाज-सेवा, अर्थ-व्यवस्था इत्यादि कई क्षेत्रों में कार्यरत संस्थाओं का बहिष्कार करना तथा ब्रिटिश शासन के प्रयोजनों के खिलाफ चलकर विदेशी वस्त्रों को तथा वस्तुओं का निराकरण करके स्वदेशी वस्तुओं का उपयोग बढ़ाना था। राष्ट्रीय जागरण का केंद्र बंगाल जहाँ निराला थे, वह इस आंदोलन से भला कैसे दूर हो सकता। निराला बंगला पत्र-पत्रिकाओं के माध्यम से देश की राजनैतिक स्थितिगतियों से संबंध स्थापित कर रहे थे और सन् 1917 में संपन्न रूसी क्रांति से भी वे अवगत हो चुके थे।

निराला को बंगाल वातावरण के माध्यम से रूसी क्रान्ति का समाचार मिलता रहा। लेकिन उन पर रूसी क्रान्ति का प्रभाव किस हद तक पड़ा, यह जानने के लिए रूस के प्रसिद्ध हिन्दी विद्वान ये.पे.चेलिशेव का यह कथन यहाँ उद्धरित किया जा रहा है कि "क्रान्ति का यश गानेवाले, अपनी मातृभूमि और सारे मानव-समाज के राजनैतिक एवं सामाजिक विमोचन का स्वप्न देखने वाले निराला की वाणी उस समय भारत में अकेली नहीं थी। विद्रोही भावना से ओतप्रोत उनकी कविता उपनिवेशवाद-विरोधी आंदोलन के उस उत्थान का अंग थी, जो रूस में महान अक्तूबर-क्रान्ति की विजय के प्रभाव से भारत में आरंभ हुआ था। अक्तूबर-क्रान्ति के मुक्तिकारी विचार भारत के अग्रणी लोगों को इस कारण प्रिय और

बोधगम्य थे कि मातृभूमि की आज़ादी और स्वतंत्रता की खातिर औपनिवेशिक दासता के विरुद्ध भारतीय जनता द्वारा चलाये गये स्वार्थत्यागपूर्ण संघर्ष से इन विचारों का सजीव, अभिन्न संबंध था। भारत के उस समय के प्रमुख राजनैतिक एवं सार्वजनिक नेता बाल गंगाधर तिलक, मोहनदास करमचंद गांधी, जवाहरलाल नेहरू, अबुल कलाम आज़ाद आदि ने अक्तूबर-क्रान्ति का स्वागत किया था।....भारत के सामाजिक चिंतन के समूंचे विकासक्रम पर, भारतीय जनता के समग्र मानसिक जीवन पर बड़ा भारी प्रभाव डालनेवाले अक्तूबर-क्रान्ति के विचार भारतीय सहित्य में भी प्रतिध्वनित हुए।''[30]

बकौल चेलिशेव, अक्तूबर-क्रान्ति के विचार भारतीय साहित्य में भी प्रतिध्वनित हुए लेकिन भारतीय परिस्थितियों के परिप्रेक्ष्य में। हिन्दी में यह प्रतिध्वनि निराला की कई कविताओं में सुनायी पड़ी है। राष्ट्रीय गीतों का पठन, समाज सेवा की तत्परता, गाँवों में जाकर किसानों और ग्रामीणों का संगठन करके स्वराज्य का महत्व समझाना यही इस समय निराला के कार्यक्रम थे। इन्हीं राष्ट्रीय गीतों से प्रेरणा पाकर निराला ने एक कविता लिखी जो जन्मभूमि की वन्दना करती है। यही निराला की सर्वप्रथम कृति समझी जाती है। इस कविता में निराला ने मातृभूमि की वंदना करते हुए गर्व की अनुभूति का प्रकटीकरण किया कि इस भारतभूमि के वैभव के सामने सारा विश्व चकित हो जाता है। ध्यान रहे इसी कविता में उन्होंने भारत को जगन्महारानी कहकर सम्मान दिया। इस गीत की प्रेरणा उन्हें बंगाल के द्विजेंद्रलाल राय से मिली।

''......सन् '20 में गांधीजी ने असहयोग आंदोलन शुरू किया। हिन्दुओं और मुसलमानों की मैत्री के अभूतपूर्व दृश्य देखे गये। दूर-दूर देहात तक चरखे का प्रचार होने लगा। बँगला पत्रों में सुर्जकुमार रूसी क्रान्ति और वहाँ एक नये समाज की रचना का हाल पढ़ते। महिषादल के आसपास के गाँवों में जाते, मित्रों के साथ वहाँ किसानों, कोरियों, जुलाहों आदि का संगठन करते, उनहें स्वदेशी का महत्व समझाते। हर जगह राष्ट्रीय गीतों की धूम थी। सुर्जकुमार बड़े प्रेम से ये गीत पढ़ते और गाते। उन्हें द्विजेंद्रलाल राय के गाने विशेष रूप से पसंद थे। उन्होंने स्वयं राष्ट्रीय गीत लिखने का विचार किया। सन् '20 के बसंत में सुर्जकुमार ने जन्मभूमि पर एक गीत लिखा।''[31]

निराला अब बंगाल में थे और बंगाल के राष्ट्रीय जागरण संबंधी वातावरण का

निराला पर बहुत प्रभाव पड़ा। लेकिन बंगाल का वातावरण निराला में हिन्दी साहित्य के प्रति अनुराग और हिन्दी भाषा के प्रति अटल प्रेम का भी निर्माण कर रहा था। उसी समय राष्ट्र की स्वतंत्रता के साथ-साथ राष्ट्र भाषा की भी चर्चा जोरों पर थी और निराला अपने बंगाल के मित्रों से बार-बार इस चर्चा में डूब जाते कि राष्ट्र भाषा बनने का गौरव हिन्दी को मिलना चाहिए या बंगला को। उनके मित्र बंगला साहित्य की विशिष्टता पर जोर देते और निराला को लगता था भाषा की दृष्टि से हिन्दी बंगला से श्रेष्ठ है। लेकिन जहाँ तक हिन्दी-साहित्य का सवाल है, वह बंगला साहित्य की उदात्तता से कोसों दूर था। इस प्रकार जन्मभूमि के प्रति अनुराग के साथ-साथ हिन्दी साहित्य को समृद्ध बनाने की कांक्षा भी निराला में प्रबल होती जा रही थी। महिषादल की नौकरी त्याग देने के बाद निराला अपने गाँव गये और वहाँ उन्होंने गांधीजी के बताये मार्ग पर जीवन - निर्वाह करने की बात सोची। उन्होंने सूत कातकर पैसा कमाने का विचार किया जिससे देश की सेवा भी होगी। "....सूर्यकांत ने सोचा, क्यों न ऐसा धन्धा करें जिससे देश की सेवा हो, घर का खर्च भी चले। एक पड़ोसी सज्जन कानपुर जा रहे थे। उनसे कहा, एक तकुआ लेते आना, सूत कातेंगे। वह सज्जन तकुआ लाना भूल गये। तब यह गाँव के पड़ोस में कोरियों के पास गये और कहा, बुनाई का काम सिखा दो। कोरियों को विश्वास न हुआ, यह सचमुच काम सीखने आये हैं। उन्होंने कहा, "तुम महाराज होकर यह काम क्या करोगे! "[32]

निराला के जीवन में सन् '20 का दशक राष्ट्रीय चेतना से अनुप्राणित रहा। उन्हें सूत कातकर जीवन बिताना जीवन-निर्वाह का ही नहीं बल्कि देश-सेवा का गौरवान्वित कार्य लग रहा था।बाद में निराला का कर्मक्षेत्र कलकत्ता बना जहाँ वे पहले 'समन्वय' और बाद में 'मतवाला' पत्रिका के लिए काम करते थे। 'मतवाला' पत्रिका को चलानेवाले बाबू महादेव प्रसाद साहित्य के साथ-साथ देश और समाज से भी जुड़े व्यक्ति थे और एक ही इमारत में रहकर महादेवप्रसाद सेठ ने निराला की विचारधारा को बहुत प्रभावित भी किया। बंगला पत्र-पत्रिकाओं के साथ हिन्दी में छपे कई लेखों के द्वारा निराला बाह्य जगत की गतिविधियों से निरंतर तार बंधा रहते । 'समन्वय' में काम करते वक्त निराला में संन्यासियों के जीवन के प्रति जो आकर्षण उत्पन्न हुआ वह दूर होने लगा और लगने लगा कि संन्यासियों की तरह नहीं- कर्मरत मनुष्य की तरह जीकर समाज और राष्ट्र की सेवा करना ही परम कर्तव्य है।

महादेव प्रसाद सेठ से निराला कहा करते थे कि मात्र अंग्रेज़ों को हटाने से कुछ नहीं होगा बल्कि भारतीय समाज को बदलना पड़ेगा। इसी समय निराला ने एक कविता लिखी - ‘अधिवास’- जिसमें उन्होंने कहा..

“छूटता है यद्यपि अधिवास,
किन्तु फिर भी न मुझे कुछ त्रास।”

इसका अर्थ यह हुआ कि निराला की मानसिक स्थिति अब उस अधिवास या मोक्ष को पाने के पक्ष में नहीं थी । वे इस कविता में घोषणा करते हैं कि दीन-दुखियों की सेवा करना ही उनका परमधर्म है, चाहे उससे तथाकथित मोक्ष की प्राप्ति हो या न हो। निराला का समर्थन स्वदेशी आंदोलन को मिलता रहा और उन्होंने अंग्रेज़ों के प्रति गरम दलीय प्रतिक्रिया को उचित समझने के पक्ष में थे। ‘मतवाला’ में काम करते समय निराला राष्ट्रीय जागरण के सभी पक्षों से संबंधित रहे और उनके साहित्यिक-सृजनकाल में यह समय अत्यंत महत्वपूर्ण कहलाता है। क्योंकि इसी समय उन्होंने ‘बादल राग’, ‘महाराजा शिवाजी का पत्र’, ‘जागो फिर एक बार’ जैसी कविताएँ लिखीं और ‘मतवाला’ के कई संपादकीय टिप्पणियों के माध्यम से तत्कालीन भारतीय समाज की स्थिति गतियों पर अमूल्य विचार व्यक्त किये। अब राष्ट्रीय जागरण अपने चरमोत्कर्ष को पहुँच रहा था तथा निराला जैसे क्रांतिकारी और सजग साहित्यकार को इन परिस्थितियों से दूर रहना असंभव था। उन्होंने इसी प्रेरणा से बागलराग की रचना की। यह कविता बादल को क्रांति का प्रतीक बनाकर अंग्रेज़ों के खिलाफ जनता में उठी असंतुष्टि का प्रतिनिधित्व करनेवाली है। उन्होंने इस कविता में कहा कि देश में क्रांति बहुत ही जल्दी उग्र रूप धारण करनेवाली है और एक महान उथल-पुथल के युग का आगमन होनेवाला है। इसी समय उन्होंने राष्ट्रीय जागरण से प्रेरित अनेक अन्य कविताएँ लिखीं जिनका लक्ष्य मात्र देश की राजनैतिक मुक्ति न होकर समस्त सामाजिक आर्थिक असमानताओं को दूर करके एक नवीन समतल-क्षेत्र की संरचना करना है। स्पष्ट है कि यह संरचना अंग्रेज़ों की बनायी असमतुल्य स्थिति का अंत करने पर ही संभव होगी। सन् ‘26 में प्रकाशित महाराज शिवाजी का पत्र इस कोटि की निराला की सर्वश्रेष्ठ कविताओं में एक है। बाबू महादेव प्रसाद सेठ और मुन्शी नवजादिक लाल श्रीवास्तव हिन्दू महासभा के कार्यकलापों से जुड़े थे। इसलिए निराला इस कविता में उन्हें तृप्त करने के लिए हिन्दू राष्ट्रवाद का समर्थन करते

नज़र आते हैं। किन्तु राष्ट्रीय जागरण की तत्कालीन परिस्थितियों की दृष्टि से निराला की ये रचनाएँ अत्यंत महत्वपूर्ण मानी जाती हैं।

रवीन्द्रनाथ ठाकुर तो बंगला में ही सारे देश में प्रसिद्ध हो चुके थे और मैथिलीशरण गुप्त, अयोध्यासिंह उपाध्याय, नाथूराम शर्मा 'शंकर', गया प्रसाद शुक्ल 'सनेही' आदि कवियों ने भारतेंदु की राष्ट्रीय काव्यधारा को आगे बढ़ाने में काफी प्रसिद्धि अर्जित कर ली। सन् बीसवीं के आरंभ में ही नज़रूल इस्लाम ने कहा- ''बंदीगृहों की कुंडियाँ चूर करें, भारी हथौड़ों से ताले तोडें और द्वार खोल दें।'' इधर तमिल भाषा के कविश्रेष्ठ सुब्रह्मण्यम् भारती ने भी घोषित कर दिया कि ''स्वदेश में विदेशियों के गुलाम बनकर अब हम नहीं मरेंगे।'' निराला पर इन सारे कवियों का प्रभाव स्पष्ट रूप से था और रवींद्रनाथ ठाकुर तो सबसे अधिक स्फूर्ति-प्रदाता रहे। अतः निराला ने इस समय 'मतवाला' पत्रिका के माध्यम से राष्ट्रीय जागरण से प्रेरित कई कविताएँ लिखीं जिनमें देशभक्ति, मातृभूमि के प्रति अटल अनुराग के साथ-साथ सामाजिक विषयों पर भी उनके दृष्टिकोण का परिचय मिलता है। 'मतवाला' पत्रिका के संपादक श्री महादेव प्रसाद सेठ से निराला का परिचय एवं उनसे दोस्ती के कारण राष्ट्रीय जागरण की परिस्थितियों से निराला और अधिक जुड़े।

''....एक ही बिल्डिंग में रहने पर महादेव प्रसाद सेठ से सूर्यकान्त का परिचय हुआ। धर्म और दर्शन के अलावा अब साहित्य और राजनीति की चर्चा विशेष होने लगी। रवींद्रनाथ ठाकुर को गांधीजी की चरखेवाली नीति नापसन्द थी। सूर्यकान्त और महादेवप्रसाद सेठ दोनों स्वदेशी आंदोलन और चरखा-नीति के प्रबल समर्थक थे। दोनों का झुकाव उग्र राजनीति की ओर था। अंग्रेज़ों को निकालना ही काफी नहीं है, भारतीय समाज का ढ़ाँचा बदलना भी जरूरी है। द्विज-शूद्र, स्त्री-पुरुष में ऊँच-नीच का भेद-भाव मिटाना आवश्यक है। रूस में बोलशेविक क्या कर रहे हैं, इसके बारे में बँगला-हिन्दी पत्रों में आये दिन लेख प्रकाशित होते थे। महादेवप्रसाद सेठ के पास बहुत-से हिन्दी पत्र आते थे जिनमें 'प्रताप' भी था। उस समय के हिन्दी पत्रों में वह सबसे ज़्यादा क्रांतिकारी था। सूर्यकान्त के मन में वही प्रश्न बार-बार फिर उभरने लगा जिसे उन्होंने महिषादल में अपने इष्ट देव महावीर से किया था, ''ये गरीब मरे जा रहे हैं- इनके लिए क्या होगा ? '' संन्यासी त्यागी अवश्य हैं पर क्या संन्यास लेने से देश की गुलामी खतम हो जायेगी ? उनके मन में अद्वैत मत को लेकर जो शंकाएँ उठती थीं,

वे और तीव्र हो गयीं। अद्वैतवादी साधुओं के लिए तो सब संसार माया है, दरिद्र भी माया, उनका दुख भी माया। ब्रह्म के आगे हर तरह का माया-मोह व्यर्थ है। अभी तक सूर्यकान्त ने अपने सामने जो परमपद-लाभ का लक्ष्य रखा था, उससे मन डिगने लगा।''[33]

'मतवाला' पत्रिका में काम करते समय निराला ने राष्ट्रीय जागरण संबंधी महत्वपूर्ण कृतियों की सर्जना की। लेकिन उन्हें यह सब छापने में बाबू महादेव प्रसाद सेठ का समर्थन भी मिलता रहा। बाबू महादेव प्रसाद सेठ यद्यपि व्यापारी थे तथापि उन्हें राष्ट्र की सामाजिक एवं राजनैतिक परिस्थितियों से सीधे संबंध थे। इसलिए उनकी पत्रिका 'मतवाला' यद्यपि एक हास्य पत्रिका थी तथापि उसमें सामाजिक, राजनैतिक, साहित्यिक सभी तरह की रचनाओं के लिए स्थान था। पत्रिका अभी नयी-नयी खुली है और लेखकों की संख्या कम है - इसलिए निराला ने कई छद्म नामों से रचनाएँ कीं। स्वाधीनता-आंदोलन के कारण देश में जिस राष्ट्रीय चेतना का विस्तार हुआ उसकी प्रतिनिधि-पत्रिका 'मतवाला' थी। बालकृष्ण भट्ट के हिन्दी-प्रदीप तथा गणेशशंकर विद्यार्थी के 'प्रताप' के समकक्ष रखी जानेवाली योग्य पत्रिकाओं में यह भी एक थी।

'मतवाला' में काम करते समय में ही निराला का संघर्ष साहित्यिक धरातल पर जोरदार बनता जा रहा था। एक तरफ उन्हें छायावाद को द्विवेदी युगीन कविता से रसशील और उदात्त सिद्ध करनी थी दूसरी तरफ अपनी सर्जनात्मक मौलिकता पर लगे प्रश्नचिह्न का उत्तर भी प्रस्तुत करना था। ध्यान देने की बात है कि इस महान साहित्यिक संग्राम में प्रसाद और पंत से ज़्यादा निराला ही रीतिवादी समर्थकों एवं द्विवेदी युगीन साहित्यकारों का मुकाबला कर रहे थे। छायावादी विरोधी दल छायावाद को नीचा दिखाने का भरसक प्रयास कर रहा था और निराला 'मतवाला' के 'चाबुक' जैसे स्तंभों का उपयोग करके तीखी साहित्यिक आलोचना में लगे हुए थे। इसलिए निराला को परास्त करने के लिए उनके विरोधी साहित्यिक वर्ग ने उन पर बंगला कविताओं की नकल करने का आरोप लगाया और उन्हें इस सवाल का जवाब देने में ही अपने सारे समय का उपयोग करना पड़ रहा था। इस मानसिक संघर्ष के दौरान भी निराला बाह्य जगत की परिस्थितियों से बिलकुल अनभिज्ञ नहीं हुए। इस समय रवींद्रनाथ ठाकुर ने गांधी जी के चलाये असहयोग आंदोलन का पक्ष न लेकर पाश्चात्य जगत से समझौता करने के विचार व्यक्त किये थे। निराला को यह बहुत ही अन्याय लगा और

उन्होंने रवींद्रनाथ ठाकुर की आलोचना करते हुए ''श्रीकृष्ण संदेश'' पत्रिका में एक लेख लिखा। इनके साथ-साथ निराला ने अपनी कविताओं के द्वारा यह संदेश दिया कि अंग्रेज़ों को दमननीति अपनाकर ही इस देश से बहिष्कृत करना चाहिए। उनकी कविताओं का मुख्य स्वर क्रांतिकारी है और इन कविताओं को पढ़ते वक्त हमें नहीं लगता कि वे गांधीजी के बताये अहिंसा मार्ग का समर्थन कर रहे हैं।

साहित्यिक धरातल पर छायावाद की स्पर्धा द्विवेदी युगीन कवियों से थी और इन कवियों के अग्रदूत श्री मैथिली शरण गुप्त जी थे। निराला की समस्त रचनात्मक चेतना का आरंभ उस द्विवेदी युगीन सीधी-सपाट शैली से भिन्न शैली की सर्जना करने से ही होता है। स्पष्ट है कि गुप्त जी गांधीजी के प्रबल समर्थक थे और गांधीजी की अहिंसा और सत्यवादिता जैसे सिद्धांतों का उन पर गहरा प्रभाव था। इस प्रभाव के स्पष्ट दर्शन उनके काव्य में होते हैं। निराला जब द्विवेदी युगीन शैली से भिन्न शैली का सृजन अपने काव्य में करते हैं तो विषय की दृष्टि से भी उन्हें द्विवेदी युगीन विचारधारा से अर्थात गांधी जी के प्रभाव से दूर होना ही था। तो यह संभव है कि निराला ने गांधी जी के अहिंसा सिद्धांत की जगह क्रांतिकारी रूख को अपनाया होगा।

महात्मा गांधी ने जिस असहयोग आंदोलन का सूत्रपात सन्'20 में किया था उसका बीच में ही स्थगन किया गया। सन् 1922 ई. फरवरी को गोरखपुर जिले के चौरी-चौरा गाँव में आंदोलन ने कुछ अपरिहार्य परिस्थितियों में हिंसात्मक रूप ले लिया और पुलिस ठाने को आग लगा दी गयी। इस घटना में लगभग 22 पुलिसवाले मर चुके। जनता के द्वारा अब अहिंसा का पालन न होगा क्योंकि अभी अहिंसा के लिए देश तैयार नहीं है - इस विचार से महात्मा ने बारदोली में 9 फरवरी से आरंभ होनेवाले अवज्ञा आंदोलन को रोक दिया। इससे राष्ट्रीय जागरण के कार्यकर्ताओं को बड़ा असंतोष हुआ और देश भर में गांधी जी के निर्णय पर असंतुष्टि व्यक्त हुई। इस बीच सन् 1924 ई. में तुर्की देश की राजनैतिक परिस्थितियों के चलते खिलाफ़त आंदोलन भी समाप्त हो गया। खिलाफ़त आंदोलन के समाप्त होते ही कुछ वर्ष पूर्व हिन्दू और मुसलमान जनता में व्याप्त आपसी कलह पुनः पनपने लगे और सन् '23-28 तक देश के हर बड़े शहर में सांप्रदायिक दंगे होते रहे। कलकत्ते में भी इन सांप्रदायिक दंगों की भरमार थी और निराला ने इन दंगों को प्रत्यक्षरूप से देखा।

सन् 1926 ई. के समय निराला इसी प्रकार के सांप्रदायिक दंगे में फस गये और लोग इन पर पत्थर फेंकने लगे। निराला कठिनाई से उनके प्रहारों को सहकर जैसे-तैसे इससे बच निकले। "....सांप्रदायिकता की आग सुलगती रही। आखिर सन् '26 में ज्वालाएँ फूट पड़ीं। इनकी लपेट में निराला भी आ गये। कलकत्ते में दंगे हुए। मछुआ बाजार और आसपास के इलाके में मुसलमानों की घनी आबादी थी। दंगे की सरगर्मी यहाँ ज़्यादा थी। निराला यहाँ दंगाइयों के बीच घिर गये। उन पर ईंटों और पत्थरों की वर्षा होने लगी। निराला ऊपर आते हुए रोड़ों से बचते हुए, ईंटों के बड़े टुकड़े गेंद की तरह कभी लोकते हुए, महिषादल में गेंदबाज़ी के अभ्यास से लाभ उठाकर इन टुकडों को विरोधियों पर ज़ोर से फेंकते हुए कूद-फाँदकर बच निकले।"[34]

लेकिन हिन्दू-मुसलमान के आपसी कलहों के साक्षी रहकर उन्होंने इस समस्या को बहुत गंभीर रूप से लिया और देश के इन दो प्रधान वर्गों के बीच शांति की स्थापना की सख्त आवश्यकता को महसूस किया। निराला के इस समन्वयवाद के दर्शन बाद में उनकी कई संपादकीय टिप्पणियों में होते हैं। उन्होंने 'समन्वय' पत्रिका में एक लेख लिखा जिसका नाम है 'साहित्य की समतल भूमि'। इसमें उन्होंने हिन्दू-मुसलमान जनता के बीच जो तनाव उत्पन्न हुआ था- उसे शांत करने का स्तुत्य प्रयास किया। इस लेख में निराला ने कबीरदास, तुलसीदास, नज़ीर, गालिब आदि कवियों की रचनाओं से उद्धरण देकर उन रचनाओं की समान रेखाओं को उजागर करने की कोशिश की जो समन्वय की विराट चेष्टा है। निराला का यह भी विश्वास था कि जब तक हिन्दू और मुसलमान इस भूमि पर चढ़कर मैत्री की आवाज़ नहीं लगाएँगे, तब तक देश का हित नहीं होगा।

एक आदर्श कलाकार की यह जिम्मेदारी होती है कि वह समाज की विषाक्त परिस्थितियों से अवगत हो, और उन्हें शांत करने का प्रयास अपनी परिधि में करे। निराला ने यह ज़िम्मेदारी बहुत खूबी से निभायी।

निराला इस बीच डलमऊ और गढ़ाकोला आते-जाते थे और इन गाँवों में जहाँ भी किसानों का सम्मेलन या किसी अन्य महासभा का आयोजन होता तो वे जरूर वे उसमें भाग लेते। छतरपुर के महाराजा के यहाँ बाबू गुलाबराय काम करते थे। शिवपूजन सहाय के द्वारा गुलाबराय को मालूम हुआ कि निराला बंगला और हिन्दी के अच्छे ज्ञाता हैं तथा प्रतिष्ठाप्राप्त

कवि हैं, तो उन्होंने निराला का निमंत्रण किया। इस समय डलमऊ में अहीरों की अखिल भारतीय महासभा होनेवाली थी और निराला को इस महासभा में भाग लेना था। इसलिए निराला कुछ देरी से छतरपुर पहुँचे। निराला ने ब्रजभाषा में कविता लिखकर राजा की प्रशंसा पायी जरूर, लेकिन उन्हें वहाँ नौकरी नहीं मिली - यह अलग बात है। लेकिन यदि जीवन-निर्वाह की परिस्थितियों के हिसाब से देखें तो वह निराला के लिए कठिन समय था। तब तक 'मतवाला' का साथ छूट गया था और उन्हें नौकरी की सख्त जरूरत थी। ध्यान देने की बात है कि इसी समय उन्होंने भतीजे को पत्र लिखा था कि यदि जरूरत पड़े तो घर का सामान भी बेच डाले। फिर भी उन्होंने किसी महासभा के लिए अपनी नौकरी का अन्वेषण-काम टाल दिया। इससे मालूम होता है कि निराला को व्यक्तिगत स्वार्थ से ज़्यादा चिंता इन महासभाओं में भाग लेकर समाज की गतिविधियों में भाग लेने की थी।

इस समय तक पूर्ण स्वतंत्रता की प्राप्ति कांग्रेस का एकमात्र लक्ष्य बन गया। सन् 1929 ई. के लाहौर के अधिवेशन में पण्डित जवाहर लाल नेहरू की अध्यक्षता में पूर्ण स्वतंत्रता की माँग की गयी। लक्ष्य की पूर्ति के लिए गांधी जी ने सविनय-अवज्ञा-आंदोलन का सूत्रपात किया। 26 जनवरी, सन् 1930 ई. को स्वतंत्रता दिवस घोषित किया गया। उन दिनों अंग्रेज़ी सरकार नमक पर भी कर लगाकर उससे भी पैसे कमाती थी। नमक बनाने का अधिकार मात्र सरकार के पास था। इसलिए यदि सामान्य जनता नमक को खुद बनायेगी तो वह कानून का भंग ही होगा। इसलिए गांधी जी ने देश के तटवर्ती प्रदेशों में नमक बनाने की सूचना दी और मात्र अहिंसा के पुजारियों को ही इस आंदोलन में भाग लेने की विनति की। इसके अंतर्गत गांधी जी का लक्ष्य यह भी था कि आंदोलन को देश के कोने कोने में पहुँचाएँ क्योंकि तटवर्ती प्रदेशों में मुख्यतः गाँवों में इस आंदोलन का प्रचार होगा। उन्होंने 12 मार्च, 1930 ई. को 79 आश्रमवासियों तथा साथियों के साथ 200 मील पैदल चलकर दण्डी यात्रा करके समुद्र के तट पर नमक बनाकर नमक-कानून का भंग किया। उनकी यह यात्रा 24 दिन तक चली और यात्रा के दौरान गाँव-गाँव में जनता से विनति की कि कोई भी अंग्रेज़ों के खिलाफ हिंसा के कदम न उठायें और जितनी भी यातनाओं का सामना करना पड़े, सबको शांतिपूर्वक सहन करें।

इस दौरान निराला 'सुधा' पत्रिका में संपादकीय विभाग में नियुक्त हुए। यहाँ उन्हें अपने

राजनैतिक-सामाजिक संबंधी सभी विचारों को अभिव्यक्त करने का मौका मिला जिसका उन्होंने पूरा लाभ उठाया। अपनी सर्जनात्मक चेतना को सामाजिकता और राजनैतिक जागृति का पुट जोड़कर निराला ने जिन संपादकीय टिप्पणियों की रचना की, वे हिन्दी गद्य-संसार में बेजोड़ हैं। निराला का कवि-हृदय बात को कुछ अस्पष्ट और प्रतीकात्मक ढ़ंग से कहता था और इस सिलसिले में कभी-कभी कथ्य विषय दुरूह बन जाता था। लेकिन उनकी गद्यलेखन-बुद्धि विषय को बहुत सटीक और स्पष्ट रूप से पेश करती थी क्योंकि 'यदि कविता हृदय की भाषा है तो गद्य जीवन-संग्राम की भाषा है।' सुधा की संपादकीय टिप्पणियों में निराला का नाम तो नहीं आता था लेकिन कुछ टिप्पणियाँ ऐसी थीं, जो उनके निबंध-संग्रहों में स्थान पा चुकीं। इन टिप्पणियों में निराला ने लगभग देश की सभी वर्तमान परिस्थितियों का स्पर्श किया और हर एक गंभीर विषय पर अपना मौलिक चिंतन व्यक्त करते हुए सामाजिक और राजनैतिक क्षेत्रों में आमूल परिवर्तन की आकांक्षा व्यक्त की।

महात्मा गांधीजी ने इस संदर्भ में कहा ''अंग्रेज़ राज्य ने भारत का नैतिक, भौतिक सांस्कृतिक और आध्यात्मिक सभी तरह का नाश कर दिया है। मैं इसे राज्य को अभिशाप समझता हूँ और इसे नष्ट करने का प्रण कर चुका हूँ। मैंने स्वयं गॉड सेव द किंग के गीत गाये हैं और दूसरों से गवाये हैं। मुझे भिक्षांदेहि की राजनीति में विश्वास था। पर वह सब व्यर्थ हुआ। अब तो राजद्रोह ही मेरा धर्म हो गया है। पर हमारी लडाई अहिंसा की लडाई है। हम किसी को मारना नहीं चाहते, किन्तु इस सत्यनाशी शासन को खत्म कर देना हमारा परम कर्तव्य है।''[35]

निराला ने गांधी जी की खुलकर प्रशंसा करते हुए सुधा में टिप्पणी लिखी कि ''कांग्रेस की वक्तृताओं में पहले महात्माजी अपनी अपार महिमा में मौन ही थे, जैसे वे किसी महान प्रतिज्ञा को पूर्ण कर रहे हों। जब वह गत वर्ष समाप्ति पर आ गया और कांग्रेस द्वारा निश्चित किए हुए ध्येय का कोई फल सरकार की ओर से नहीं मिला, तब राष्ट्र के प्राण, संसार के सर्वश्रेष्ठ महापुरुष में वह कैसा ओज, कैसी अपार महाशक्ति प्रत्यक्ष हुई, इसका जड़ लेखनी द्वारा वर्णन नहीं हो सकता। उस दिन- उसी दिन महात्माजी की अजेय सरस्वती की ओजस्विनी मूर्ति के हमने दर्शन किए। वे निडर ज्योतिर्नयन, स्वतंत्रता का आलोक भरते चमकते हुए, राष्ट्र की प्रसुप्त प्रतिमा को जगा रहे थे। वह वाणी शब्द-बंधों के सहस्रों तरंगों से

अबाध उद्वेलित अवरोध तट को बारंबार छाप-छापकर बह रही थी। श्वास के आवर्तोच्छवास के साथ भाषा के बहते हुए तूफान में उस दिन सहस्रों जीवन शरीर के संकीर्ण रेखा तट से महाशून्य में उड़ गए थे और स्वतंत्रता का विशाल दृश्य देखा था। उसी दिन मालूम हुआ, इस पराधीन देश में महात्माजी स्वाधीन साँस ले रहे हैं।''[36]

सुधा की टिप्पणी के इस भाग उल्लेख यहाँ करना आवश्यक इसलिए हुआ कि इसमें उन्होंने गांधीजी का संसार का सर्वश्रेष्ठ महापुरुष कहकर सम्मान दिया। लेकिन जैसे - जैसे समय बीतता गया निराला गांधीवाद से ऊब से गये और 1934 तक आते आते वे गांधी जी पर तीखी आलोचना भी करने लगते हैं। क्योंकि गांधीजी के बताये सामाजिक एवं राजनैतिक समन्वय को विफल होते हुए निराला ने देखा इसलिए उनके परवर्ती विचारों में गांधीजी के समन्वय-सिद्धांत का विरोध नज़र आता है। सुधा में लगभग निराला ने छः वर्ष तक काम किया। इस समय में काम करते समय निराला ने राष्ट्रीय जागरण की धारा से खुद को जोडा और हिन्दू-मुसलमान की एकता, वर्णाश्रम धर्म की विकृतियाँ, नारियों की स्थिति का सुधार, राष्ट्रभाषा आदि अनेक विषयों पर अपने क्रांतिकारी विचार अभिव्यक्त किये जो राष्ट्रीय जागरण के बहुर्यचित विषय हैं। ''वे करीब छ वर्षों तक लखनऊ से प्रकाशित होनेवाली पत्रिका 'सुधा' के संपादकीय विभाग से संबद्ध रहे। उस दौर में उन्हें साहत्य से हटकर दूसरे विषयों पर संपादकीय टिप्पणियाँ लिखने का विशेष अवसर मिला।''[37]

देश की राजनैतिक स्थितिगतियों में भी सन् 1929-30 का समय एक क्रांतिकारी समय कहलाता है। साइमन कमिशन के खिलाफ लाहौर में निकली जुलूस में पंजाब केसरी लाला लजपतराय को सैण्डर्स नामक पुलिस ने जान बूझकर पिटाई की जिससे लाला लजपतराय की कुछ ही दिनों में मौत हो गयी। सैण्डर्स की हत्या करके इस मौत का प्रतिशोध भगतसिंग ने लिया। इस संबंध में लाहौर की जनता पर पुलिसवालों के अत्याचार बढ़ गये और जनता में कुछ लोग कहने लगे कि 'ये क्रान्तिकारी अपना काम करके छिप जाते हैं, लेकिन इनके ही कारण सामान्य आदमी को पुलिस तंग कर रही है।' तब भगतसिंग और बटुकेश्वर दत्त ने मिलकर 8 अप्रैल, 1929 को पार्लमेंट में बम फेंक दिया। अगर वे चाह तो भाग सकते थे पर वे सिद्ध करना चाहते थे कि क्रान्तिकारी कायर नहीं हैं। वे 'वन्देमातरम्' का नारा लगाते हुए वहीं खडे रह गये और पुलिस ने उन्हें गिरफ्तार कर लिया। उनकी इस

हरकत के पीछे एक महान उद्देश्य छिपा था। 1929 तक असहयोग आंदोलन का विफल हो जाना, अंग्रेज़ों की दमननीति आदि कारणों से जनता में राष्ट्रीय चेतना अवरुद्ध होने लगी। ठीक इसी समय एक ऐसे विस्फोट की आवश्यकता थी जो देश की जनता को झकझोर सके और उनमें राष्ट्रीय जागरण की ज्वाला पुनः प्रज्वलित कर सके। भगतसिंग एवं बटुकेश्वर दत्त के बम-प्रयोग से इस उद्देश्य की सौ प्रतिशत पूर्ति हुई। भगतसिंग देश में एक आराध्य नेता बन गये।

जेल में भगत सिंह और बटुकेश्वर दत्त ने क्रान्तिकारियों को मिली सुविधाओं की कमी को लेकर अनशन आरंभ कर दिया। अन्य कैदियों ने भी इसमें भाग लिया। बंगाल के यतींद्रनाथ दास नामक एक क्रान्तिकारी ने 63 दिन तक अनशन व्रत रखा एवं अपने प्राण त्याग दिये। इस महान बलिदान का समाचार सुनकर पूरे देश में खलबली मच गयी। कलकत्ता में यतींद्रनाथ दास की अर्थी को देखकर श्रद्धांजलि अर्पित करने के लिए लाखों लोग एकत्र हुए। उस महान क्रान्तिकारी की अंतिमयात्रा में छः लाख लोगों ने भाग लिया।

निराला आदि से ही स्वतंत्रता-संग्राम में क्रांतिकारी आचरण के पक्षधर रहे। लेकिन उनका सिद्धांत आतंक मचानेवाला न होकर परिवर्तनकारी था। फिर भी यतींद्रनाथ दास का प्राण-त्याग देश की जनता के लिए स्फर्ति दिलानेवाला था। निराला ने इस अवसर पर बहुत ही प्रभावशाली लेख लिखा जो नवंबर '29 वाली सुधा की संपादकीय टिप्पणी के रूप में छपा। उन्होंने लिखा: "भारतवर्ष ने जितना सहना था, सह लिया। वह समय निकल गया, जब खिलौना पाकर भारत बहल जाता था। देश समझ गया है कि हाथ पर हाथ धरकर बैठने से काम न चलेगा। भारत में एक नयी लहर पैदा हो गयी है। नवयुवकों ने रणभेरी बजा दी है।"[38]

निराला के लखनऊ-प्रवास के समय में ही लखनऊ के कैसरबाग में निहत्थी जनता पर अंग्रेज़ी पुलीस ने डण्डे बरसाये। इस घटना पर भी निराला कुपित मन से सुधा में संपादकीय टिप्पणी लिखी और लिखा कि "स्त्रियों और बच्चों पर अत्याचार करनेवाली इस अंग्रेज़ी सरकार के लिए हमारे कोश में उपयुक्त शब्द नहीं है, मुमकिन है, पीछे गढ़ लिये जायें।" इस प्रकार अपने चारों ओर बदलते सामाजिक एवं राजनैतिक जीवन के प्रति निराला हमेशा सजग रहे और उचित संदर्भ में उचित प्रतिक्रिया करते रहे। छायावादी कवियों में एकमात्र निराला ऐसे थे जो इतनी सजगता से देश की सामाजिक व राजनैतिक परिस्थितियों से जुड़कर राष्ट्रीय जागरण का पक्ष लिये हुए थे।

किसानों की सभाएँ जहाँ भी होतीं, निराला उनमें भाग लेने अवश्य जाते थे। निराला इन सभाओं में अंग्रेज़ी राज और सुराज के बारे में भाषण दिया करते थे। उनकी देशभक्ति केवल मंचों पर भाषण देने भर की नहीं थी बल्कि गाँवों में जाकर किसानों और अन्य ग्रामीणों को सामाजिक-राजनैतिक चेतना दिलाने की थी। इसलिए उन्होंने ऐसे लोगों से सदा नफ़रत की जो बातों में महान सामाजिक और राजनैतिक परिवर्तन के हवाई क़िले तो बनाते हैं लेकिन आचरण में अपनी पेट-पूजा से बढ़कर एक कदम भी आगे नहीं बढ़ाते। बातूनी आदर्शवाद से मानों उन्हें सदा वैर था। इसी वैर के कारण बचपन में उन्होंने अपने गाँव के ब्राह्मणों के आचरण के विरुद्ध विद्रोह किया। उनका राजनैतिक कार्याचरण केवल बातों तक सीमित न होकर ग्रामीण जीवन से संबद्ध रहा। क्योंकि निराला जानते थे कि केवल अंग्रेज़ी नीति के खिलाफ मंचों पर डींग मारने से स्वराज्य नहीं आयेगा बल्कि ग्रामीण लोगों के जागृत होने में ही स्वराज्य के मिलने की संभावना निहित है। इसलिए निराला गाँवों में जाकर किसानों को संगठित करने का प्रयास बराबर करते रहे और जमींदार तथा किसानों के बीच हुए संघर्ष में हमेशा किसानों की पक्षधरता करते रहे।

''...किसानों की सभाएँ होती हैं, बाहर से वक्ता आते हैं, अंग्रेज़ी राज क्या है, सुराज कैसे मिलेगा, किसानों को समझाते हैं, निराला स्वयं भी भाषण देते हैं, नंददुलारे वाजपेयी उनके साथ होते हैं। निराला के भाषण उत्तेजक और ज़ोरदार हैं, अंग्रेज़ी राज में किसानों की दुर्दशा का सजीव चित्र खींच देते हैं, आर्थिक पक्ष पर बल देते हैं। नंददुलारे को लगता है, यह कोई छायावादी कवि नहीं कट्टर वस्तुवादी बोल रहा है। उन्हें आश्चर्य होता है, उनके युवक मित्र तो मौखिक रूप से देशप्रेमी बने रहे, निराला गाँवों में किसानों का संगठन कर रहे हैं।...झूठे प्रदर्शन और लफ्फाजी से निराला को सख्त चिढ़ है। लखनऊ में युवकों का प्रांतीय सम्मेलन होता है। वहाँ की कार्यवाही देखकर निराला को लगता है, इनके नेता बातूनी आदर्शवादी और बगुला भगत है। वह युवकों को समझाते हैं- गाँव में जाकर किसानों का संगठन करो। देखो, कितना कठमुल्लापन है। जहाँ किसी ब्राह्मण पुत्र ने जनुऊ छोड़ा, वहीं धर्म के ठेकेदारों के पेट में दर्द शुरू हुआ। जहाँ किसी मियाँ की दाढ़ी मुँडी, वहीं मुल्लों ने बावैला मचाया। अब की जो सामाजिक क्रांति हो, उसमें शास्त्रों की ठेकेदारी खतम करनी होगी।''[39]

'चतुरी चमार' कहानी जो लगभग इसी समय छपकर आयी थी, में निराला ने गाँवों के जमींदार-किसान संघर्ष को चित्रित किया। उन दिनों आंदोलन जोरों पर था, गढ़ाकोला के किसान छः-सात सौ तक की जोत इस्तीफा कर छोड़ चुके। किसानों की एकता से परेशान जमींदार पुलिस को बुलाता है तो दारोगाजी आकर महावीर स्वामीजी के मंदिर के सामने तिरंगा झण्डा देखते हैं। वह झण्डा अब बारिश में भीगकर सफेद हो गया। दारोगाजी पर हावी होने के लिए निराला ने दो-चार अंग्रेज़ी शब्दों का सहारा लिया। दारोगा जी उनसे प्रभावित हो गये और जमींदार का बोलबाला फिस्स हो गया।

निराला का यह रचनाकाल राष्ट्रीय जागरण के साथ कैसा जुड़ा था- यह विषय रामविलास शर्मा जी की इन पंक्तियों से स्पष्ट हो जाता है कि "...निराला ने सुधा को हिन्दी की श्रेष्ठ साहित्यिक-सामाजिक पत्रिका बना दिया। इन दिनों जैसी संपादकीय टिप्पणियाँ सुधा में निकलीं, वैसी दूसरी पत्रिका में नहीं। वे सुंदर अलंकृत गद्य के नमूने थीं, अपनी कलात्मक भंगिमा के कारण वे औसत संपादकीय लेखों से भिन्न थीं। सुधा ने डटकर रीतिवाद का विरोध किया, विश्वविद्यालयों को ललकारा कि नये साहित्य के लिए वे अपने द्वार खोलें। सुधा में निराला ने आमूल सामाजिक क्रांति की आवश्यकता पर जोर दिया, प्रतिपादित किया कि पराधीन देश में केवल शूद्र रहते हैं, पुरानी वर्णव्यस्था से चिपके रहना व्यर्थ है, विशेष रूप से ग्रामीण जनता की शिक्षा और संगठन अति आवश्यक हैं, स्त्रियों की प्रगति के बिना राष्ट्र की उन्नति असंभव है। सुधा में निराला ने राष्ट्रीय आंदोलन को शक्तिशाली बनाने, अंगेजी की जगह भारतीय भाषाओं का व्यवहार करने, बँगला-साहित्य के समानांतर हिन्दी साहित्य के विकास के लिए अनवरत संघर्ष किया।"[40]

इस प्रकार 'सुधा' में निराला का सृजनकाल राष्ट्र और राष्ट्र की अनेक समस्याओं के साथ संबद्ध रहा और वे राष्ट्रीय जागरण के लिए प्रबल समर्थक रहे।

उनकी महत्वपूर्ण कविता 'तुलसीदास' का संबंध भी राष्ट्रीय जागरण से। ध्यान रहे कि यह कविता यद्यपि '38 में प्रकाशित हुई तथापि इसका रचनाकाल सन् 1934 ही था। "तुलसीदास का जो अंश संकलित किया गया है, उसे सन् '38 की रचना कहा गया है, जबकि संपूर्ण रूप में यह कविता 1935 ई. की सुधा के अंकों में प्रकाशित हो चुकी थी।"[41]

मुगलकाल के अंधकार में तुलसीदास ऐसे व्यक्ति थे जो भारतीय संस्कृति के उन्नायक

रहे। निराला ने तुलसीदास के माध्यम से राष्ट्रीय जागरण की लहर को और तेज बना दिया। निराला के अनुसार तुलसीदास ने रामचरित का काव्य इस उद्देश्य से रचा था कि लोगों में आत्मविश्वास तथा अन्याय पर विजय पाने की अपनी क्षमता में विश्वास उत्पन्न कर सकें -

''जागो, जागो, आया प्रभात,
बीती वह, बीती अंध रात,
झरता भर ज्योतिर्मय प्रपात पूर्वाचल
बाँधो, बाँधो किरणें चेतन,
तेजस्वी, हे तमजिज्जीवन,
आती भारत की ज्योतिर्धन महिमाबल।''[42]

कहकर निराला ने उस अंधकारमय रात को भुलाकर नये प्रभात का स्वागत किया है। इतना ही उन्होंने जनता को विश्वास दिलाया कि देश में जितने भी अज्ञानजनित भ्रम थे, वे अब दूर हो चुके हैं और वास्तविक स्थिति से देश परिचित हो चुका है। अतः अब अंधकार से प्रकाश का तथा जड़ से चेतन का समर अपरिहार्य है। इस समर में हमारा पक्ष लेनेवालों में स्वयं ईश्वर हैं तो फिर किसकी चिंता ---

''होगा फिर से दुर्धर्ष समर
जड़ से चेतन का निशिवासर,
कविता का प्रति छवि से जीवनहर, जीवनभर,
भारती इधर, हैं उधर सकल
जड़ जीवन के संचित कौशल,
जय, इधर ईश, हैं उधर सबल माया-कर।''[43]

तुलसीदास कविता में निराला ने जाति और धर्म संबंधी अंतर्विरोधों से विच्छिन्न जन-जीवन का चित्र खींचा। कविता के अंत में निराला ने आजकल के साहित्यकारों को संदेश दिया कि तुलसीदास द्वारा प्रशस्त उस मार्ग का अनुसरण करके उन्हें आगे बढ़ना चाहिए तथा सामाजिक प्रगति में सहायक होकर लोगों को जागृत कर, उनकी निराशा को दूर भगाना ही एक सच्चे साहित्यकार का लक्ष्य होता है।

सन् 1935 ई. में अंग्रेज़ों ने एक कानून बनाया (Government of India Act 1935)

जिसका उद्देश देश के ब्रिटिश-समर्थकों और मुसलमान अल्पसंख्यक जनता को खुश करना था। कांग्रेसी नेताओं का एक दल इस कानून का समर्थन करनेवाला था। कांग्रेस के कुछ नेता कह रहे थे कि राष्ट्रभाषा हिन्दी हो तो अच्छा ही है लेकिन अभी हिन्दी में अंग्रेज़ी साहित्य जैसी उदात्तता नहीं आयी है। निराला इन पर अपना क्रोध प्रकट करते। बनारस में संपन्न एक सभा में जवाहरलाल नेहरू ने हिन्दी-साहित्य को ''दरबारी कविता'' कहा तो निराला ने उन पर भी अपनी आलोचना प्रस्तुत की। इस प्रकार निराला राष्ट्रीय जागरण का एक और प्रधान अंग- राष्ट्र भाषा के विकास पर भी निरंतर विचार करते रहे और अपनी सीमा में हिन्दी साहित्य को उच्च बनाने का प्रयास करते रहे।

'35 में ही निराला की पुत्री सरोज की मृत्यु हो गयी। उसके बाद उनकी रचनाओं में एक प्रकार की निखार मालूम पड़ती है जहाँ वे किसी भी वाद या किसी भी सिद्धांत का अंधानुकरण नहीं करते। सन् 1936 ई. में उन्होंने अपनी सर्वोत्तम कविताओं में से एक 'राम की शक्तिपूजा' की रचना की। देश की परिस्थितियों के प्रति उनकी निराशा का चित्रण 'राम की शक्तिपूजा' कविता में दिखायी पड़ता है। अब तक कई बार देश स्वतंत्रता-प्राप्ति की चरमसीमा तक पहुँच गया लेकिन आज़ादी साकार नहीं हो सकी। फिर भी इस कविता के माध्यम से निराला सूचित करते हैं कि परिस्थितियों से हार मानकर घुटने टेक देने से फायदा न होगा- प्रत्येक मनुष्य को कठिन परिस्थितियों से संघर्ष करते रहना चाहिए और इसकी प्रेरणा अंतर्मन से पानी चाहिए। एकप्रकार से निराला ने राम के चित्रण के माध्यम से राष्ट्र का ही चित्रण कर दिया है। राम की शक्तिपूजा का राम भारतीय जनता को न्याय के प्रतिष्ठापन तथा विजय-प्राप्ति के लिए आमरण जूझने का संदेश देता है। कवि राष्ट्र-जनों को ललकारता है कि मानव को किसी भी हालत में हताश होकर हार माननी नहीं चाहिए। इस संदर्भ में भारतीय साहित्य में आये परिवर्तनों को भी रेखांकित करने की आवश्यकता महसूस होती है।

''तीसरे दशक में भारतीय साहित्य में बड़े परिवर्तन आये। सभी अग्रणी लेखकों को एकजुट करने के आंदोलन के फलस्वरूप भारत के प्रगतिशील लेखक संघ की स्थापना सन् 1936 ई. में हुई। लेखकों में यह विचार फैलता और सहानुभूति पाता गया कि साहित्य को सामाजिक प्रगति में हाथ बंटाना चाहिए। राष्ट्रीय चेतना के जागरण-काल में अर्थात् 19 वीं सदी के अंत में और बीसवीं सदी के आरंभ में, श्रमिक जनता की व्यथा और दुर्दशा की ओर

ध्यान दिलाने और विशेष सुविधा-प्राप्त हलकों में उसके प्रति सहानुभूति और प्रेम उत्पन्न करने की चेष्टा करके ही भारतीय साहित्य में जन-तत्व मुख्य रूप से प्रकट किया जाता था। परंतु बीसवीं सदी के तीसरे दशक में साधारण लोगों में आत्मसम्मान की भावना बढ़ाने, अपनी शक्ति को समझने में उनकी सहायता करने तथा अपने अधिकारों एवं बेहतर जीवन की खातिर संघर्ष करने के मार्ग उन्हें दिखाने की इच्छा में जन-तत्व प्रकट होने लगा। हिन्दी और उर्दू के अमर साहित्यकार प्रेमचंद ने तब कहा था कि मनुष्य में उदार प्रवृत्तियाँ जगाना, मानवता की भावना उत्पन्न करना, दृष्टि की परिधि विस्तृत करना, आत्मिक शक्तियाँ बढ़ाना, मनुष्य को शिक्षित करना तथा बुराई और अन्याय के विरुद्ध जूझने में उसकी सहायता करना साहित्य का कर्तव्य है। सन् 1936 में उन्होंने कहा था कि भारतीय जनता के जीवन की बुनियादी समस्याओं से संबंध रखना भारत के नये साहित्य के लिए अनिवार्य है। ये हैं: श्रमिक जनता की अनर्थकारी कंगाली सामाजिक अवनति और राजनैतिक पराधीनता।''[44]

प्रेमचंद ने जिन लक्ष्यों की ओर साहित्यकारों को संकेतित करते हैं, उन्हीं लक्ष्यों की ओर निराला का परवर्ती साहित्य अग्रसर हुआ है। उन्होंने अपनी कविताओं में अब मात्र राष्ट्रीयता की पुकार देना छोड़कर यथार्थ स्थिति का चित्रण करना आरंभ किया और उन्हें मालूम हो गया कि अंग्रेज़ों को भगाकर सत्ता के परिवर्तन मात्र कर देने से समाज की पीडित तबकों को कुछ होनेवाला नहीं है। क्योंकि अब तक राजनीति में पूँजीवादी शक्तियों का आगमन हो चुका है और निराला ने देखा कि राष्ट्रगौरव, सत्य, भारतीय संस्कृति और संप्रदाय जैसे नामों की आड में सामंतवाद ने ही वेष बदलकर जनोद्धारक का ढ़ोग करने लगा है। इसलिए उन्होंने इस दोगलेबाजों को आडे हाथों लेना शुरू किया जिसके लिए उन्होंने व्यंग्य का खूब उपयोग किया।

सन् 1940 ई. तक आते-आते निराला ने समाजवाद, गांधीवाद एवं देश भक्ति जैसे विषयों के प्रति जो व्यंग्यात्मक दृष्टिकोण अपनाया, उसके दर्शन ''बापू तुम मुर्गी खाते यदि'' आदि में व्यक्त होते हैं। उनकी कविता 'कुकुरमुक्ता' इस कोटि की सर्वोच्च कविता है जिसमें उन्होंने देशभक्ति, भारतीय संस्कृति आदि नामों की ओट में जनता को ठगनेवालों पर मानों अग्निवर्षा कर दी।

उधर यूरोप में द्वितीय विश्व महायुद्ध के प्रहारों से अंग्रेज़ संकट में पड़ गये और उनके

प्रधानमंत्री विनस्टन चर्चिल ने भारत के स्वतंत्रता सेनानियों की ओर मित्रता का हाथ बढ़ाया। अतः क्रिप्स मिशन भारत में भेजा गया। लेकिन क्रिप्स का समझौता विफल हो गया। इसी समय महात्मा गांधी जी ने ‘भारत छोड़ो’ नाम से एक आंदोलन चलाया। यह आंदोलन भारत में तीव्रतर होता गया और इसमें भारत का राष्ट्रीय आवेश अपनी चरम सीमा पर पहुँच गया। गांधीजी सहित प्रमुख नेताओं को गिरफ़्तार किया गया। इसके विरुद्ध जनता ने हड़ताल, जुलूस, सभाएँ और प्रदर्शिनियों से अपनी प्रतिक्रिया व्यक्त की।

अंग्रेज़ों ने इस आंदोलन के समय भारत भर में भयानक दमनकाण्ड किया और काँग्रेसी नेताओं को जेल में भर दिया। जनता आस लगाए बैठी थी कि जैसे ही ये नेता लोग मुक्त होकर बाहर आयेंगे, पिछले दमनकाण्ड के विरोध में कोई बहुत बड़ा आंदोलन जरूर खडा कर दिया जायेगा। लेकिन ऐसा कुछ नहीं हुआ। भारत के बड़े बड़े नेता लोग कुछ समय तक स्तब्ध रह गये। इससे जनता निराश हो गयी।

निराला ने इस समय एक कविता लिखी : काले-काले बादल आये। इस कविता का स्वर आम राष्ट्रीय कविता से नितांत भिन्न है। निराला इस कविता में राष्ट्रीय आंदोलन के समय घायल सामान्य जनता का पक्ष लेते हैं।

“काले-काले बादल छाये, न आये वीर जवाहरलाल!
कैसे-कैसे नाग मँडलाये, न आये वीर जवाहरलाल!

निराला देखते हैं कि राष्ट्रीय आंदोलन के कर्णधार राजनैतिक नेता लोग अब समाज के दूर चले जा रहे हैं और जनता की वेदनाओं से उनका कोई सरोकार नहीं है।

महँगाई की बाढ़ बढ़ आयी, गाँठ की छूटी गाढ़ी कमाई,
भूखे-नंगे खडे शरमाये, न आये वीर जवाहरलाल !
कैसे हम बच पायें निहत्थे, बहते गये हमारे जत्थे,
राह देखते हैं भरमाये, न आये वीर जवाहरलाल।”[45]

सन् 1941 ई. के बाद निरंतर आपदाओं तथा अनवतर व्यथा के कारण निराला की मानसिक स्थिति बिगड चुकी। अब वे शारीरिक और मानसिक दोनों प्रकार से अस्वस्थ बन गये। दूसरा विश्व महायुद्ध चल रहा था तब निराला कुछ दिन कर्वी में रहे और यहाँ भयानक अस्वस्थता के शिकार हुए।

सन् 1946 में केबिनेट सदस्यों का एक मिशन भारतीय परिस्थितियों को सुधारने के लिए भारत आया। कांग्रेस एवं मुस्लिम लीग नेताओं से इस मिशन की बात चीत हुई। जिन्ना की अध्यक्षता में मुस्लिम लीग ने पाकिस्तान की माँग की और अपने लक्ष्य की पूर्ति के लिए 16 अगस्त, 1946 को डायरेक्ट एक्शन का दिन घोषित किया। बंगाल में हिन्दू-मुसलमानों के बीच भयानक दंगे हुए और हजारों लोगों की मौत हो गयी। अगस्त से आरंभ हुए ये सांप्रदायिक अत्याचार क्रमशः अन्य प्रांतों तक विस्तरित हुए। इस समय कांग्रेस और मुस्लिमलीग के नेता वैधानिक उपायों से अंग्रेज़ों से सत्ता स्वीकार करने के पक्ष में थे। कम्यूनिस्ट पार्टी के नेता साम्राज्य-विरोधी नीति अपनाये हुए थे।

निराला इस समय कम्यूनिस्ट पार्टी के सिद्धांतों से प्रभावित थे। उन्होंने सोचा कि अंग्रेज़ों से समझौता न करना ही अच्छी नीति होगी। उन्होंने गंगाप्रसाद पाण्डेय से कहा था- ‘‘आज जनता की चिंताधारा और कांग्रेस की कार्यप्रणाली में कोई तारतम्य नहीं रहा। भारतीय राजनीति में आज तक एक ही रास्ता साफ़ है, क्रांतिपथ, संघर्ष का पथ और अंत में समाजवाद का पथ - इसके अलावा कोई दूसरा पथ नहीं।’’[46]

इस प्रसंग में विश्व महायुद्ध की क्या स्थिति थी - इसका भी जिक्र करना यहाँ उचित होगा। युद्ध के अंतिम समय में रूस की सेनाओं ने जर्मनी एवं इटली पर विजय प्राप्त की और हिट्लर ने आत्महत्या कर ली। 6 अगस्त एवं 9 अगस्त, 1945 ई. को जापान के हिरोशिमा और नागसाकी शहरों पर अणुबम का प्रयोग करके अमरीका ने जापान को तहस-नहस कर डाला। इससे जापान ने घुटने टेक दिये और द्वितीय विश्वयुद्ध की समाप्ति हो गयी। यद्यपि इस युद्ध में ब्रिटन की जीत हुई तथापि अंग्रेज़ देश का सारा वैभव युद्ध के साथ ही समाप्त हो गया। ब्रिटन की जीत भी ज़्यादातर अमरीका की सहायता पर ही आधारित रही एवं इस युद्ध के बाद ब्रिटन की सारी धनराशि खतम हो गयी और वह संसार के सर्वशक्तिमान देशों की कोटि में अपना प्रथम स्थान खो चुका। अंग्रेज़ों का स्थान अब रूस एवं अमरीका ने ले लिया। ऐसी स्थिति में भारत जैसे उपनिवेशों को काबू में रखना असंभव है- यह बात अंग्रेज़ों की समझ में आ गयी। इतना ही नहीं, अब भारत से ज़्यादा कुछ मिलने वाला भी नहीं- क्योंकि अब भारत सोने की चिडिया नहीं रहा और न ही अब भारतीय जनता 17 वी एवं 18 वी सदी की जनता रह गयी। उस समय की भारतीय जनता बहुत अल्पमात्रा की

राजनैतिक एवं सामाजिक चेतना रखती थी और उस समय अपने राष्ट्र के प्रति अभिमान भी जनता में लुप्त था। अब अनेक परिस्थितियों के चलते भारतीय जनता में राष्ट्रीय जागरण की महान चेतना घर कर गयी और वे पराये शासन से संतुष्ट होने वाले कतई नहीं हैं। इस वास्तविकता से अंग्रेज़ अवगत हो गये और उन्होंने इस देश को छोड़ने का निर्णय लिया। इसी बीच इंग्लैण्ड में चुनाव हुआ और लेबर पार्टी के अटली प्रधानमंत्री बने। दूसरा विश्व महायुद्ध तो समाप्त हो गया लेकिन उसका मूल्य भारत जैसे ब्रिटिश उपनिवेश-देशों को चुकाना पड़ा। भारत में भयानक आर्थिक उथल-पुथल हुआ और सामान्य जनों पर युद्ध का दुष्प्रभाव गहरे रूप से अंकित हुआ। निराला पर इन युद्धोत्तर परिस्थितियों का प्रभाव कैसे पड़ा- इसका उल्लेख करते हुए ये.पे.चेलिशेव ने लिखा कि

''दूसरे विश्व-युद्ध के वर्षों में भारतीय जनता को अनेक दुःख-दर्द और मुसीबतें सहन करनी पड़ीं। उपनिवेशी सत्ता का दमन और मनमानी, प्रतिक्रिया का नंगा नाच, बेरोज़गारी और भुखमरी- इन सब चीजों का साहित्यिक विकास पर प्रभाव पड़े बिना न रह सका। कुछ लेखक या तो पूरी तरह मौन हो गये, या फिर उन्होंने अपने कृतित्व में निराशा, घबराहट और दिशाहीनता को अभिव्यक्ति दी है। किन्तु प्रगतिशील लेखकों ने अपनी शक्ति और साहस तथा संघर्ष की तत्परता बनाए रखी, किसी भी तरह के दमन से उनकी आवाज को दबाया नहीं जा सकता। हिन्दी साहित्य के विकास के इतिहास में यह समय बहुत ही उल्लेखनीय था और इसकी पूरी अवधि में निराला के कृतित्व ने बहुत महत्वपूर्ण भूमिका अदा की। अपनी जनता की गरिमा और मेधा तथा औपनिवेशिक दासता से मुक्ति में उनका विश्वास एक पल को भी नहीं डगमगाया।.... 'ककुरमुक्ता' से आरंभ हुई परंपरा का चौथे-पाँचवे दशक में रची गयी उनकी कविताओं तथा गीतों में, जो 'अणिमा', 'नये पत्ते' और 'बेला' में संकलित हैं, आगे विकास हुआ। इन पुस्तकों में संग्रहीत निराला की रचनाओं के विशेष लक्षण हैं- यथार्थवाद और उग्र सामाजिक झुकाव, मातृभूमि के प्रति प्यार, शोषितों के प्रति सहानुभूति, बर्तानवी जुए से भारत की मुक्ति का आह्वान। ये उनके कृतित्व के मुख्य विषय बन गए। यदि पहले कवि उत्पीड़ित जनता के प्रति केवल सहानुभूति और दया भाव दिखाते थे, तो अब उन्होंने विद्यमान व्यवस्था का डटकर विरोध किया। उनका संपूर्ण कृतित्व व्यक्ति की मुक्ति और जनसत्ता की स्थापना की भावना से ओत-प्रोत है।''[47]

15 अगस्त, सन् 1947 को भारत स्वतंत्र हो गया। पाकिस्तान के नाम से एक और देश का निर्माण हुआ तथा देश के इस बँटवारे के समय भयानक दंगे हुए। करोड़ों की संख्या में लोग सदियों से रहती आयी अपनी मातृभूमि को छोड़कर इधर भारत में या उधर पाकिस्तान में भाग गए। देश को स्वतंत्रता तो मिल गई, लेकिन देश की एकता खंड़ित हो गई।

जब देश आज़ाद हुआ तब निराला प्रयाग में प्रसिद्ध चित्रकार कमला शंकर सिंह के दारागंज स्थित घर में रहते और प्रार्थना, आत्म-समर्पण एवं प्रकृति-चित्रण से संबंधित गीत लिखते थे। अब तक निराला का बाहरी गतिविधियों से संबंध कट चुके थे और वे एक दूसरी दुनिया में चले गये जहाँ प्रायः वे अर्ध-जागृत अवस्था में रहते थे। वे अपने अंतिम समय में खुद को हिन्दी कवि भी नहीं मानते थे और कई तरह की कल्पनाजनित कहानियाँ बताते। कुछ लोग उन्हें विक्षिप्त कहते तो कुछ लोग उन्हें साधु मानने के पक्ष में थे। कभी कभी वे सिंहों से भरे जंगल का सपना देखते कभी कभी कहते कि वे आम आदमी नहीं, राजभवन में पैदा हुए राजकुमार थे।

देश की स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद निराला साहित्यिक रणक्षेत्र में घोर रूप से थक गये थे। अब वे प्रपत्तिभाव से प्रेरित गीत लिखने लगे। यद्यपि उनकी मानसिक अवस्था बहुत बिगड चुकी थी- तथापि उनकी रचनाओं में वास्तविकता का बोध पूर्णतः लुप्त नहीं हो गया। इस समय की रचनाओं में जीवन के कटु यथार्थ से साक्षात्कार होने के प्रमाण मिलते हैं और यथार्थ की कटुता का प्रकटीकरण उन्होंने व्यंग्य के माध्यम से ही ज़्यादा किया है। उन्होंने भारतीय राजनीति में पूँजीपतियों का प्रभाव अपनी आँखों से देखा और उनकी खिल्ली उडायी। इधर पश्चिम में भारतीयों पर लादी जानेवाली नयी सभ्यता के दुष्परिणामों का भी उन्होंने व्यंग्यास्त्रों से विरोध किया। 'नये पत्ते' काव्यसंग्रह की कविताएँ इसी प्रकार के तीखे व्यंग्य से भरा हुआ है। पश्चिम के प्रभाव में आधार खोनेवाली भारतीय कला, सारहीन गीतों और फिल्मों को भी निराला ने नहीं छोड़ा।

निराला के जीवन के अंतिम समय में उनकी कुछ कविताएँ प्रकाशित हुईं। उनमें उदासी, एकाकी व्यक्ति का विषाद एवं खेद की अभिव्यक्ति दिखायी पड़ती है। यह निश्चय है कि उन्होंने राष्ट्रीय जागरण के प्रभाव से ही अपनी साहित्य-साधना का आरंभ किया और राष्ट्र

के स्वतंत्र हो जाने के बाद वे वर्तमान परिस्थितियों से उतने ही निराश हुए जितने पराधीन भारत में रहकर। वर्तमान दुस्थिति को देखते हुए सुंदर भारतमाता का कीर्तन करते हुए गीत लिखना निराला के बस की बात नहीं थी। यह आत्मप्रवंचना वे नहीं जानते थे। इसलिए कटु यथार्थ को देखकर उनकी वाणी वर्तमान भारत का यशोगान न करके राजनैतिक एवं सामाजिक क्षेत्रों में बढ़ते पूँजीपतियों के आधिपत्य पर गहरा व्यंग्य करती है। फिर भी उन्हें विश्वास है कि- कभी न कभी इस स्थिति में परिवर्तन आयेगा और देश की युवापीढ़ी ही इस परिवर्तन में मुख्य भूमिका अदा करेगी। इसलिए 'वर्षा के दो गीत' कविता में वे लिखते हैं कि

"बरसो मेरे आंगन में बादल,
जल-जल से भर दो सर उत्पल।
करो विकंपित अवनी का उर,
भरो आम्र-पल्लव में नव सुर,
रंगो अधर तरुणी के आतुर,
सींचो युवकजनों के हृत्तल।"

इस प्रकार हम देखते हैं कि निराला ने सन् '20 लेकर अपने जीवन के अंतिम समय तक राष्ट्र के साथ जुड़े हुए हैं और वे अपने जीवन-काल में राष्ट्र में होनेवाली सामाजिक, राजनैतिक एवं सांस्कृतिक महान घटनाओं से समय समय पर अनुप्राणित होते रहे हैं। लेकिन उन पर राष्ट्र कवि का ठप्पा नहीं लगा। दुर्भाग्य से हमारे देश में और कई अन्य देशों में यह प्रथा है कि जो भी राष्ट्र का यशोगान करनेवाली कविताएँ मात्र लिखता है- उसे लोग राष्ट्रकवि कह देते हैं जो समीचीन नहीं है। क्योंकि सच्चा राष्ट्र कवि तो वहीं होगा जो राष्ट्र की यथार्थ स्थिति से परिचित हो, जो अपने राष्ट्र की सांस्कृतिक परंपराओं को भली भांति जानता हो तथा राष्ट्र पर संकट के मेघ छा जाने पर उक्त सांस्कृतिक परंपराओं से मूल्य ग्रहण करके जनता को उत्साह एवं आशा के संकेत देता हो। उपर्युक्त सभी लक्षण निराला में विद्यमान हैं। इस दृष्टि से देखा जाय तो निराला मात्र राष्ट्र कवि से राष्ट्र लेखक ज़्यादा रहे हैं। क्योंकि हमारी राय में कविता से बढ़कर गद्य-लेखन ही यथार्थ का चित्रण करने में ज़्यादा सक्षम है और निराला को अपने गद्य में राष्ट्र के यथार्थ चित्रण का अवसर मिला है। उनके विचार जो राष्ट्रीय आंदोलन से जुड़े हुए हैं, गद्य में विशेषकर संपादकीय टिप्पणियों तथा

निबंधों में अभिव्यक्त हुए हैं। उन्होंने भारतीय सांस्कृतिक विरासत को अपने साहित्य में प्रतिबिंबित किया। जब-जब राष्ट्र के जन निरुत्साहित हुए तब निराला ने इसी राष्ट्र की भव्य धार्मिक एवं आध्यात्मिक शक्ति का उदाहरण देकर उन्हें जागृत किया। उन्होंने अंग्रेज़ कालीन आलसीपन से सो रहे भारतीय जनों को कर्मठता का संदेश देकर उनमें पुनः प्राण भर दिये। राष्ट्रीय जागरण संबंधी साहित्यकारों के बीच में निराला की मौलिकता यह है कि उन्होंने अपने जीवन के अंतिम क्षणों तक पराजय को स्वीकार नहीं किया और कभी अपने साहित्य में यह नहीं बताया कि संग्राम व्यर्थ है, जो तुम्हारे भाग्य में लिखा हो वहीं भुगतो।

इन तथ्यों के आलोक में निराला के साहित्य में राष्ट्रीय जागरण का विश्लेषण वर्तमान परिस्थितियों में महत्त्वपूर्ण होगा। अतः निराला के साहित्य के अनुसंधान के बल परप उन नियामक तत्त्वों को उजागर करना इस शोध-प्रबंध का आशय है, जिनके बल पर निराला के साहित्य में राष्ट्रीय जागरण की अभिव्यक्ति हुई। इस आशय को दृष्टि में रखते हुए विषय के विश्लेषण में साहित्यिक और साहित्येतर ग्रंथों की सहायता ली गई है। इस संदर्भ में राष्ट्रीय जागरण के स्वरूप-निर्धारण में विभिन्न विद्वानों के मतों का उल्लेख भी किया गया है। विषय का निरूपण करते समय और तथ्यों के संश्लेषण में विश्लेषणात्मक तार्किक पद्धति का उपयोग किया गया है।

वास्तव में भारतीय समाज और साहित्य में राष्ट्रीय जागरण काल में आने वाले परिवर्तनों की पृष्ठभूमि में निराला के साहित्य के कथ्यों का विकास हुआ था, क्योंकि निराला के कथ्य भारतीय जनता के जीवन की बुनियादी समस्याओं से संबंध रखते हुए राष्ट्रीय जागरण का नारा देते हैं। निराला के साहित्य में राष्ट्रीय जागरण से संबंधित चिंतन का जो विकास हुआ था, उसका विश्लेषण उनके साहित्य की विधात्मक व्यापकता को दृष्टि में रखते हुए काव्य और गद्य खण्डों में विभाजित करते हुए आगामी अध्यायों में किया गया है।

संदर्भ-सूची

1. निराला की साहित्य-साधना भाग-1, डॉ.रामविलास शर्मा, पृ.423
2. निराला रचनावली-4, सं.नंदकिशोर नवल, पृ.36
3. निराला की साहित्य साधना-1, डॉ.रामविलास शर्मा पृ.430
4. निराला रचनावली-4, सं.नंदकिशोर नवल, पृ.392
5. 'निराला', डॉ.रामविलास शर्मा, पृ.5
6. निराला रचनावली-1, सं.नंदकिशोर नवल, पृ.445
7. निराला की साहित्य साधना-1, डॉ. रामविलास शर्मा पृ.33
8. निराला की साहित्य साधना-1, डॉ. रामविलास शर्मा पृ.40
9. निराला की साहित्य साधना-1, डॉ. रामविलास शर्मा पृ.45
10. निराला रचनावली-4, सं.नंदकिशोर नवल, सुकुल की बीवी कहानी से उद्धृत, पृ.390
11. निराला की साहित्य-साधना भाग-1, डॉ.रामविलास शर्मा, पृ.62
12. निराला की साहित्य-साधना भाग-1, डॉ.रामविलास शर्मा, पृ.62
13. निराला की साहित्य-साधना भाग-1, डॉ.रामविलास शर्मा, पृ.75
14. निराला की साहित्य-साधना भाग-1 से, पृ.113
15. निराला की साहित्य-साधना भाग-1, डॉ.रामविलास शर्मा, पृ.175
16. डॉ.भगीरथ मिश्र की पुस्तक निराला-काव्य का अध्ययन से, पृ.29
17. निराला की साहित्य-साधना भाग-1, डॉ.रामविलास शर्मा, पृ.470
18. पथ के साथी, श्रीमती महादेवी वर्मा, पृ.43
19. निराला की साहित्य साधना, भाग-1, डॉ.रामविलास शर्मा, पृ.385
20. निराला की साहित्य-साधना भाग-1, डॉ.रामविलास शर्मा, पृ.456
21. महाकवि निराला के अंतिम दर्शन - साप्ताहिक हिन्दुस्तान, 19-11-1961
22. निराला की साहित्य-साधना भाग-1, डॉ.रामविलास शर्मा, पृ.456
23. निराला की साहित्य-साधना भाग-1, डॉ.रामविलास शर्मा, पृ.456
24. कुल्ली भाट -- निरला रचनावली भाग-4, पृ.36
25. निरला रचनावली भाग-4, सं.नंदकिशोर नवल, कुल्ली भाट, पृ.36
26. निराला की साहित्य-साधना, भाग-1, डॉ.रामविलास शर्मा, पृ.28
27. निराला रचनावली, भाग-4, सं.नंदकिशोर नवल, 'चतुरी चमार' पृ.365
28. निराला रचनावली भाग-4, सं.नंदकिशोर नवल, कुल्ली भाट, पृ.40
29. निराला की साहित्य-साधना, भाग-1, डॉ.रामविलास शर्मा, से पृ.39

30. सूर्यकान्त त्रिपाठी निराला,ये.पे.चेलेशेव, पृ.67
31. निराला की साहित्य-साधना, भाग-1, डॉ.रामविलास शर्मा, पृ.39
32. निराला की साहित्य-साधना, भाग-1, डॉ.रामविलास शर्मा, पृ.39
33. निराला की साहित्य-साधना, भाग-1, डॉ.रामविलास शर्मा, पृ.57-58
34. निराला की साहित्य-साधना, भाग-1, डॉ.रामविलास शर्मा, पृ.57-58
35. कांग्रेस का इतिहास, श्री भोगराजु पट्टाभि सीतारामय्या, पृ.239
36. निराला की साहित्य-साधना, भाग-2, डॉ.रामविलास शर्मा, पृ.77
37. निराला रचनावली भाग-1, सं.नंदकिशोर नवल, पृ.13
38. सुधा, नवंबर '29, संपादकीय टिप्पणी-1
39. निराला की साहित्य-साधना, भाग-1, डॉ.रामविलास शर्मा पृ.169
40. निराला की साहित्य-साधना, भाग-1, डॉ.रामविलास शर्मा, पृ.162
41. निराला रचनावली, भाग-1, सं.नंदकिशोर नवल, पृ.22
42. निराला रचनावली भाग-1, सं.नंदकिशोर नवल, पृ.305
43. निराला रचनावली भाग-1, सं.नंदकिशोर नवल, पृ.305
44. सूर्यकान्त त्रिपाठी निराला, ये.पे.चेलिशेव, पृ.67
45. निराला रचनावली भाग-2, सं.नंदकिशोर नवल, काले-काले बादल छाये गीत से पृ.137
46. महाप्राण निराला, गंगाप्रसाद पाण्डेय, पृ.101
47. सूर्यकान्त त्रिपाठी निराला, ये.पे.चेलिशेव, पृ.97

चतुर्थ अध्याय

राष्ट्रीय जागरण और निराला का काव्य

चतुर्थ अध्याय
राष्ट्रीय जागरण और निराला का काव्य

4.1 निराला का काव्य : एक सामान्य परिचय

सूर्यकान्त त्रिपाठी निराला हिन्दी साहित्य के आधुनिक काल के छायावादी काव्य युग के प्रमुख चार कवियों में एक हैं। उनकी साहित्य-साधना लगभग चालीस वर्ष तक लगातार चलती रही। निराला के काव्य का मूल्यांकन के संदर्भ में विशेष रूप से इस तथ्य के प्रति ध्यान देना पड़ता है कि निराला की अनेक सर्जनात्मक प्रवृत्तियाँ उनके काव्य में एक ही समय दिखाई देती हैं। ''निराला ने सन् 1920 ई. के आसपास से कविता लिखना शुरू किया और प्रायः 1961 ई. तक लिखते रहे। उनकी करीब चालीस वर्षों की यह काव्य-साधना सामान्यतया तीन चरणों में विभाजित है। पहले चरण की कालावधि 1920 ई. से लेकर 1938 ई. तक है। दूसरा चरण 1939 ई. से शुरू होता है और 1949 ई. तक चलता है। तीसरे चरण का विस्तार 1950 ई. से लेकर 1961 ई. तक है।''[1]

4.1.1 निराला-काव्य का प्रथम चरण

निराला ने अपनी काव्य-साधना लगभग 1920 से शुरू की। उपर्युक्त तीन चरणों में सबसे पहला चरण राष्ट्रीयआंदोलन से प्रभावित एवं भारत की स्वाधीनता के लिए कवि की आकांक्षा को व्यक्त करनेवाला है। इस अवधि में निराला के काव्य की सर्वप्रमुख विशेषता स्वच्छंदता एवं मुक्ति का आह्वान है, चाहे वह राष्ट्र की मुक्ति हो या कविता की। इस समय प्रकाशित निराला की काव्य-पुस्तकें हैं - 'अनामिका', 'परिमल', 'गीतिका', 'अनामिका' का द्वितीय संस्करण तथा 'तुलसीदास'। सन् 1923 ई. में उनका पहला काव्यसंग्रह 'अनामिका' प्रकाशित हुआ लेकिन आज वह अप्राप्य है। इसी नाम से उसका परिवर्तित संस्करण सन् 1938 ई. में छपा जो प्रथम संस्करण से नितांत भिन्न है। 'परिमल' निराला के काव्य-विकास का अद्‌भुत उदाहरण है क्योंकि इस संग्रह में जुही की कली, अधिवास, तुम और मैं, यमुना के प्रति, बादल राग, जागो फिर एक बार, महाराज शिवाजी का पत्र, संध्या सुंदरी, विधवा, भिक्षुक आदि कविताएँ छपी हैं। ये सारी कविताएँ वस्तु और शैली की दृष्टि से एक दूसरे से भिन्न हैं और इन सबको एक कोटि की कविताओं में रखा नहीं जा सकता। इनमें निराला ने

एक तरफ छायावाद की अप्रतिम शैली को अपनाकर प्रकृति और नारी का अनुपम चित्रण किया और दूसरी तरफ छंद के बंधनों से कविता को मुक्त करने का प्रयास भी किया। राष्ट्र से संबंधित निराला की छटपटाहट भी इसी संग्रह में ज़्यादा दिखायी पड़ती है।

जुही की कली छायावाद कोटि की सौंदर्यात्मक कविता है जो सहज ही रसशील पाठकों का मन आकृष्ट करती है। इस कविता में श्रृंगार का जो रूप अंकित है वह हिन्दी कविता में नितांत भिन्न तथा नया था। बादलराग, जागो फिर एक बार, महाराज शिवाजी का पत्र, आदि कविताएँ राष्ट्रीय जागरण का शंखनाद करती हैं। बादलराग कविता में निराला बादलों को विद्रोह के प्रतीक के रूप में अंकित करते हैं जिनसे दलित जनों और शोषित प्रजा को राहत की साँस मिलती है। इन बादलों के भय से एक तरफ अमीरों के भव्य महल भी आतंकित हो जाते हैं लेकिन फटेहाल कृषक हाथ उठाकर विप्लव के वीर बादलों का आह्वान करते हैं।

> ''जीर्ण बाहु, है शीर्ण शरीर,
> तुझे बुलाता कृषक अधीर
> ऐ विप्लव के वीर।''[2]

निराला की सांस्कृतिक चेतना उनकी राजनैतिक चेतना की तुलना में कम प्रखर नहीं है। वे सन् 1917-20 के ब्रिटिश आतंक के खिलाफ विद्रोह की भावना से किसान की तरफ़ देखते हैं। निराला की 'बादल राग' कविता में विश्व पूँजीवाद की जड़ें हिला देनेवाली सन् 17 की महान जानक्रांति की प्रतिध्वनि सुनायी देती है।

'खण्डहर के प्रति', 'दिल्ली' आदि कविताएँ भारत के गौरवशाली अतीत का गान करनेवाली हैं। धारा नामक कविता में वे पर्वतों को भी चूर करनेवाले शक्तिशाली प्रवाह का चित्रण करके समाज में आमूल परिवर्तन लाने वाली क्रान्ति का आह्वान करते हैं। इसी समय उनकी विधवा और भिक्षुक जैसी कविताएँ सामाजिक एवं आर्थिक असमानताओं में पिसते दीन जनों के आँसू पोंछती हैं और कवि की सामाजिक निबद्धता का संकेत करती हैं।

निराला अब गीतों की रचना ज़्यादा करने लगे और इन गीतों का प्रकाशन गीतिका नाम से हुआ। इस विभाजन को और स्पष्ट रूप से जानने के लिए नंदकिशोर नवल जी के ये शब्द सहायक हैं। ''....उनका काव्य बहुत ही संश्लिष्ट है। वे एक स्तर पर अन्य स्तरों के

काव्य की भी रचना करते हैं। इसके बाद भी किसी हद तक यह विभाजन संभव है। पहले चरण के पहले दौर में वे कई तरह की कविताएँ लिखते हैं, वस्तु की दृष्टि से और रूप की दृष्टि से भी। इस कारण उसमें बहुत अधिक विविधता है। इस दौर की अवधि मोटा-मोटी 1920 ई. से लेकर 1929 ई. के मध्य तक है। दूसरे दौर में निराला गीतों की ओर मुड़ते हैं। पहले दौर के अंत में ही वे मुख्य रूपसे गीतों की रचना करने लगे थे और उनके गीत वाणी शीर्षक से 'मतवाला' में निकलने लगे थे। इसका मतलब यह था कि उनकी योजना बाद में वाणी नाम से गीतों का संग्रह प्रकाशित कराने की थी। गीतों का वह संग्रह गीतिका नाम से निकला। गीतिका में वस्तुगत तथा रूपगत काफी विविधता है, तथापि उसकी सारी रचनाएँ कविता के एक रूप गीत के अंतर्गत ही आयेंगी।''[3]

'गीतिका' काव्य में छायावादी काव्य-शैली के ही गीत ज़्यादातर संकलित हैं जिनमें उद्‌बोधन का भी स्वर सम्मिलित है। याद रखना इतनी ही बात, नयनों में हेर प्रिये, कल्पना के कानन की रानी, मुझे स्नेह क्या मिल न सकेगा, स्पर्श से लाज लगी इत्यादि गीत कवि की कोमलकान्त पदावली के उदाहरण हैं तो कौन तम पार रे कह जैसे गीत उनके दार्शनिक पक्ष को सामने लानेवाले हैं। नरजीवन के स्वार्थ सकल, वर दे- वीणावादिनि, भारति जय विजय करे आदि गीत राष्ट्र का गौरव गान करके राष्ट्रजनों की मुक्ति की कामना करते हैं तो 'जागो जीवन धनिके' जैसे गीत निराला की सामाजिक चेतना के उदाहरण हैं। ध्यान रहे इन सारे गीतों का सृजन शास्त्रीय संगीत के आधार पर हुआ और इनमें संगीतात्मकता का अपूर्व सन्निवेश भी पाया जाता है।

(प्रिय) 'यामिनी जागी' गीत निराला की सौंदर्यात्मक गीतों का भव्य उदाहरण है।

''(प्रिय) यामिनी जागी।
असल पंकज-दृग अरुण-मुख-
तरुण अनुरागी।
खुले केश अशेष शोभा भर रहे
पृष्ठ-ग्रीवा-बाहु-उर पर तर रहे,
बादलों में घिर अपर दिनकर रहे,
ज्योति की तन्वी, तड़ित-
द्युति ने क्षमा माँगी।''[4]

इस गीत में नारी की चेष्टाओं से जो सौंदर्य छटा उभरकर पाठकों के सामने आता है- वह सचमुच अद्वितीय है।

मौन रही हार प्रिय पथ पर नामक गीत में संगीतात्मकता एवं शब्दों का लयात्मक प्रयोग हिन्दी काव्य-जगत को निराला की देन है।

> ''कण कण कर कंकण, प्रिय
> किण-किण रव किंकिणी,
> रणन-रणन नूपुर, उर लाज
> लौट, रंकिणी''[5]

निराला के गीतों में 'भारति जय विजय करे' गीत की अपनी विशेषता है। निराला इसमें भारतमाता की स्तुति करते हुए उसकी सांस्कृतिक छवि पाठकों के सामने रख देते हैं।

> भारति जय विजय करे!
> कनक शस्य कमल धरे!
> लंका पदतल शतदल
> गर्जितोर्मि सागर-जल,
> धोता शुचि चरण युगल
> स्तव कर बहु अर्थ भरे।''[6]

निराला ने ऐसे सुंदर गीतों की रचना करके गीतिकला की दृष्टि से विद्यापति, सूर आदि कवियों की परंपरा को आधुनिक हिन्दी काव्य-जगत में भी कायम रखा है। इसमें कोई संदेह नहीं कि इन गीतों की रचना ने छायावाद को हिन्दी काव्य-जगत में अभूतपूर्व ढ़ंग से प्रतिष्ठित किया। गीतिका पर एक और छायावाद के मूर्धन्य कवि जयशंकर प्रसाद जी ने लिखा कि ''गीतिका हिन्दी के लिए सुंदर उपहार है। उसके चित्रों की रेखाएँ पुष्ट, वर्णों का विकास भास्वर है। उसका दार्शनिक पक्ष गंभीर और व्यंजना मूर्तिमती है। आलंबन के प्रतीक, उन्हीं के लिए अस्पष्ट होंगे जिन्होंने यह नहीं समझा है कि रहस्यमयी अनुभूति, युग के अनुसार अपने लिए विभिन्न आधार चुना करती है। केवल कोमलता ही कवित्व का मानदण्ड नहीं है। निराला जी ने नृम्ण और ओज, सौंदर्य भावना और कोमल-कल्पना का जो माधुर्यमय संकलन किया है, वह उनकी कविता में शक्ति साधना का उज्वल परिचायक है।''[7]

'गीतिका' के बाद 'अनामिका' का द्वितीय संस्करण और 'तुलसीदास' नामक दो काव्य-संग्रहों का प्रकाशन हुआ। इस समय तक आते-आते निराला ने लंबी कविताएँ लिखना शुरू किया और इसी समय उनकी अमर कविताएँ, जो उनके संपूर्ण काव्य-जगत में शिखर सदृश खडी हैंः मित्र के प्रति, सरोज-स्मृति, प्रेयसी, राम की शक्तिपूजा, सम्राट अष्टम एड्वर्ड के प्रति, तुलसीदास आदि की सर्जना हुई। ध्यान रहे ये कविताएँ निराला की प्रतिनिधि कविताएँ हैं और उन्हें महाकवि होने का गौरव बहुत हद तक इन्हीं कविताओं के द्वारा मिला है। एक तरफ उनकी पुत्री सरोज की मौत हो गयी और इसी दुःख का प्रतिफलन हिन्दी काव्य का सर्वोच्च शीकगीत सरोज-स्मृति में हुआ। लेकिन दूसरी तरफ उन्होंने तुलसीदास और राम की शक्तिपूजा जैसी लंबी कविताओं की रचना की जिनमें उक्त पुरुषों के साथ-साथ स्वयं निराला का भी आख्यान पाया जाता है।

'तुलसीदास' निराला की बहुचर्चित कविता है। मुगलकालीन भारत में भारतीय सांस्कृतिक सूर्य के अस्त के साथ कविता की शुरूआत होती है। 'तुलसीदास' कविता के द्वारा निराला ने भारतीय संस्कृति के पतन की गाथा कहकर भारतीय जनता को जागृत करने का प्रयास किया और मुगलकालीन भारत की दुर्दशा के चित्रण के माध्यम से वर्तमान भारत का सजीव चित्र आंका। उन्होंने इस कविता में भारत की वर्तमान स्थिति के साथ-साथ, भारतीय संस्कृति और सभ्यता का स्वरूप, नारी का रूप, दलित वर्ग की समस्या तथा राष्ट्रीय भावनाओं के उद्गार आदि का भी चित्रण किया। तुलसीदास की विशिष्टता पर प्रकाश डालते हुए प्रो.धनंजय वर्मा ने लिखा है कि - ''तुलसीदास छायावादी काव्यकला का चरम परिष्कार है। छायावादी काव्य की एक परिणति कामायनी है, दूसरी तुलसीदास। कामायानी और तुलसीदास के रूप में छायावाद कला को दो प्रबंध काव्यों की अभिप्राप्ति हुई है। तुलसीदास, व्यक्ति अंतर्मन का मनोवैज्ञानिक भूमि पर विश्लेषण और इतिहास के परिपार्श्व में संस्कृति का अध्ययन है। साथ ही प्रकृति के सूक्ष्म व्यक्त सौंदर्य में आध्यात्मिक सत्ता का दर्शन।''[8]

मुगलकाल के अंधकार में तुलसीदास ऐसे व्यक्ति थे जो भारतीय संस्कृति के उन्नायक रहे। निराला ने तुलसीदास के माध्यम से राष्ट्रीय जागरण की लहर को और तेज बना दिया। निराला के अनुसार तुलसीदास ने रामचरित का काव्य इस उद्देश्य से रचा था कि लोगों में आत्मविश्वास तथा अन्याय पर विजय पाने की अपनी क्षमता में विश्वास उत्पन्न कर सकें -

"जागो, जागो, आया प्रभात,
बीती वह, बीती अंध रात,
झरता भर ज्योतिर्मय प्रपात पूर्वाचल
बाँधो, बाँधो किरणें चेतन,
तेजस्वी, हे तमजिज्जीवन,
आती भारत की ज्योतिर्धन महिमाबल।"[9]

कहकर निराला ने उस अंधकारमय रात को भुलाकर नये प्रभात का स्वागत किया है। इतना ही उन्होंने जनता को विश्वास दिलाया कि देश में जितने भी अज्ञानजनित भ्रम थे, वे अब दूर हो चुके हैं और वास्तविक स्थिति से देश परिचित हो चुका है। अतः अब अंधकार से प्रकाश का तथा जड़ से चेतन का समर अपरिहार्य है। इस समर में हमारा पक्ष लेनेवालों में स्वयं ईश्वर हैं तो फिर चिंता करने की क्या आवश्यकता-

"होगा फिर से दुर्धर्ष समर
जड़ से चेतन का निशिवासर,
कविता का प्रति छवि से जीवनहर, जीवनभर,
भारती इधर, हैं उधर सकल
जड़ जीवन के संचित कौशल,
जय, इधर ईश, हैं उधर सबल माया-कर।"[10]

'तुलसीदास' कविता में निराला ने जाति और धर्म संबंधी अंतर्विरोधों से विच्छिन्न जन-जीवन का चित्र खींचा। कविता के अंत में निराला ने आजकल के साहित्यकारों को संदेश दिया कि तुलसीदास द्वारा प्रशस्त मार्ग का अनुसरण करके उन्हें आगे बढ़ना चाहिए तथा सामाजिक प्रगति में सहायक होकर लोगों को जागृत कर, उनकी निराशा को दूर भगाना ही एक सच्चे साहित्यकार का लक्ष्य होता है।

'सरोज-स्मृति' कविता हिन्दी काव्य में करूण रस का उत्तम उदाहरण मानी जाती है। इस कविता में कवि ने अपनी पुत्री सरोज की असमय मृत्यु पर अपने मन पर गिरे वज्रपात का सजीव चित्रण किया है। इसमें कवि के जीवन की समस्त विफलताओं का करूणाजनक अंकन हुआ है। इस कविता की विशेषता यह है कि कहीं भी निराला की प्रयत्न-साध्य कला दिखायी नहीं पड़ती- सब कुछ हृदय से सहसा फूट पड़ी वेदना की स्रोतस्विनी -सी लगती है।

"धन्ये, मैं पिता निरर्थक था,
कुछ भी तेरे हित न कर सका!
जाना तो अर्थागमोपाय
पर रहा सदा संकुचित-काय
लखकर अनर्थ आर्थिक पथ पर
हारता रहा मैं स्वार्थ - समर।"[11]

कवि के जीवन में निरंतर अवहेलना, संघर्ष, अभाव और दुःख का दौरा ही रहा जिसका विवरण निराला ने यों कहकर दिया है -

"दुःख ही जीवन की कथा रही,
क्या कहूँ आज जो नहीं कहीं।"[12]

'अनामिका' में संकलित उनकी एक और मूर्धन्य कविता 'राम की शक्तिपूजा' है। इस लंबी कविता के लिए निराला ने जो आधार चुने हैं वे वाल्मीकि रामायण, कल्कि पुराण, देवी भागवत तथा बांग्ला के 'कृत्तिवास रामायण' में बिखरे पड़े हैं। निराला ने राम-रावण युद्ध का प्रसंग लेकर उस पौराणिक गाथा को युगानुरूप बनाकर वर्तमान भारतीय आत्मा को झकझोर दिया है। महाकाव्योचित गरिमा से मण्डित उनकी यह कृति चरित्र-चित्रण, भाव-सृष्टि एवं रस-निरूपण की दृष्टि से हिन्दी काव्य में अपनेलिए एक विशिष्ट स्थान रखती है। निराला ने इस कविता के द्वारा पराजय से विजय की ओर राम का प्रस्थान चित्रित किया। लेकिन राम की विजय साधारण परिस्थितियों से मिली नहीं, लक्ष्य के लिए मर मिटने का साहस यदि साधक में हो तो वह जरूर विजय का पात्र है- यह संदेश निराला ने दिया। राम की शक्तिपूजा जनों को बताती है कि समस्याओं का हल हमारे अंदर ही है और आत्मान्वेषण करके दीक्षा एवं अचचंल मनोस्थैर्य के द्वारा रावण रूपी प्रतिकूल परिस्थितियों पर काबू पा सकते हैं। इस कविता का शब्द-विधान भी हिन्दी काव्य-जगत में अपूर्व है।

"अनिमेष -राम- विश्वजिद्दिव्य-शर - भंग - भाव
विद्धांग बद्ध - कोदण्ड- मुष्टि- खर- रुधिर - स्राव"[13]

जैसे शब्द प्रयोगों के द्वारा इस कविता ने छायावादी शैली को हिन्दी काव्य में अनुपम घोषित किया। विद्वानों ने तुलसीदास, सरोज - स्मृति, राम की शक्तिपूजा इन तीनों कविताओं

को प्रायः निराला की सर्वश्रेष्ठ काव्य-कृतियाँ ठहराते हैं। इन तीनों कविताओं में निराला के ओज, प्रवाहमयी एवं करूणारससिक्त शब्दजाल का प्रयोग हुआ है जिन तीनों का इतना भव्य चित्रण अन्य कवि के लिए लगभग असंभव है।

इसी समय निराला ने सामाजिक यथार्थ और आर्थिक विपन्नता को चित्रित करते हुए दान जैसी कविता लिखी। इस कविता में कवि पूँजीवाद से उपज उस मनोवृत्ति का विरोध करता है जो बंदरों को तो पुए खिलाकर दीन भिखारियों पर नज़र तक नहीं उठानेवाले लोगों की होती है। इस कविता के माध्यम से कवि ने धर्म एवं संप्रदाय के ढ़ोंग और अर्थहीन मान्यताओं की पोल खोल दी है।

> ''...मेरे पड़ोस के वे सज्जन,
> करते प्रतिदिन सरिता - मज्जन,
> झोली से पुए निकाल लिये,
> बढ़ते कपियों के हाथ दिये,
> देखा भी नहीं, उधर फिरकर
> जिस ओर रहा वह भिक्षु इतर,
> चिल्लाया किया दूर दानव,
> बोला मैं - ''धन्य, श्रेष्ठ मानव !''[14]

उपर्युक्त पंक्तियाँ समाज के अभिशप्त दीन पर दृष्टि न देकर भगवान की कृपा पाने में लगे मूर्ख लोगों को आड़े हाथों लेनेवाली हैं। इस समय तक निराला सामाजिक यथार्थवाद से ओतप्रोत नज़र आते हैं और उनकी कविता में इसीका प्रतिफलन दिखायी देता है। 'तोड़ती पत्थर' नामक कविता भी इसी कोटि की है जो समाज से उपेक्षित एक मज़दूरिन को नायिका बनाकर चलती है।

> ''श्याम तन, भर बंधा यौवन-
> नत नयन- प्रिय कर्मरत मन,
> गुरु हथौडा हाथ-
> करती बार-बार प्रहार,
> सामने तरूमालिका- अट्टालिका- प्राकार।''[15]

कहकर निराला ने श्रमसौंदर्य का चित्रण भी किया है और मज़दूरिन की उस मज़बूरी का भी चित्रण किया जिसके चलते इतनी धूप में छायादार तरू की तरफ जाने के लिए अट्टालिकाएँ , प्राकर कैसे उसके रास्ते के रोड़े बने हुए हैं। यहाँ अट्टालिकाएँ और प्राकार पूँजीवाद के उन ह्दयहीन साधनों को ही सूचित करते हैं जिनके कारण श्रम करनेवाला वर्ग कभी अपनी मेहनत के लिए उचित फल प्राप्त नहीं कर पाता।

निराला काव्य की सबसे बड़ी विशेषता- पराजय को न स्वीकारनेवाली उनकी मानसिक शक्ति है। यह शक्ति उनकी काव्यधारा में आदि से अंत तक किसी न किसी रूप में व्यक्त होती ही रही। प्रथम चरण में उनकी एक कविता है - 'खेवा'। इस कविता में निराला विश्वास खोकर बैठे हुए लोगों में जीवन के प्रति इच्छा जगाते हैं और पराजय से निरंतर जूझने का संदेश देते हैं। नदी पर आँधी चलती है, पतवार टूट जाती है, चारों ओर घन घोर अंधकार छाया रहता है लेकिन इन सारी मुश्किलों को झेलकर आगे बढ़ते हुए नाविक का साहस पाठकों में ऊर्जा भर देता है।

''डोलती नाव, प्रखर है धार,
सँभालो जीवन-खेवनहार !
तिर तिर फिर फिर
प्रबल तरंगों में
घिरती है,
डोले पग जल पर
डगमग डगमग
फिरती है,
टूट गयी पतवार-
जीवन-खेवनहार-
भय में हूँ तन्मय
धरधर कम्पन
तन्मयता,
छन-छन में
बढ़ती ही जाती है,
अतिशयता,
पारावार अपार,
जीवन-खेवनहार!''[16]

यद्यपि लहरें कमजोर नाव को डुबानेवाली हैं, तथापि निराला नाविक का उदाहरण देकर भयातुर व्यक्ति में साहस और उत्साह भरने की चेष्टा करते हैं।

4.1.2 निराला-काव्य का द्वितीय चरण

निराला की काव्य-साधना के पहले चरण की कालावधि 1920 ई. से लेकर 1938 ई. तक है। सन् '39 से उनके काव्य का दूसरा चरण शुरू होता है और 1949 ई. तक चलता है। इस चरण की विशेषता यथार्थवाद है। इस चरण के बारे में नंदकिशोर नवल ने लिखा कि "निराला काव्य के दूसरे चरण की सबसे बड़ी विशेषता उसका यथार्थवाद है। 'कुकुरमुत्ता', 'अणिमा' और 'नये पत्ते' की कविताओं में हास्य के तत्व देखे गये हैं, लेकिन वे शुद्ध हास्य के तत्व नहीं हैं, क्योंकि उनके भीतर निराला का सामाजिक यथार्थ का गहरा बोध छिपा हुआ है। 'कुकुरमुक्ता' उनकी ऐसी कविता है, जिसमें व्यंग्य की धार दोहरी है। उसमें एक तरफ वे पूँजीपति-वर्ग पर व्यंग्य करते हैं और दूसरी तरफ संकीर्णतावादी प्रगतिशील दृष्टि पर। 'खजोहरा' जैसी कविताओं में उन्होंने रूमानी सौंदर्य-स्वप्न को पूरी तरह से मिटा देना चाहा है। इसी काल में यथार्थ के तीखे बोध से तिलमिलाकर उन्होंने शास्त्रीजी को लिखा था कि "एक रोज दिल में आया जो कुछ पद्य-साहित्य में लिखा है, उसका उल्टा लिख डालूँ।"[17]

'कुकुरमुक्ता', 'अणिमा', 'बेला' और 'नये पत्ते' निराला को हिन्दी काव्य-जगत में अद्वितीय प्रगतिशील कवि के रूप में प्रतिष्ठित करनेवाले काव्य-संग्रह हैं, साथ ही इनमें निराला की व्यंग्यात्मक शैली के भी दर्शन होते हैं। निराला ने समाज में फैले बाह्य आडंबरों का पर्दाफाश करने में व्यंग्य का खूब इस्तेमाल किया।

निराला ने 'मास्को डायलाग्स' कविता के द्वारा समाजवाद के नाम पर जनों को छलनेवाले साहित्यकारों को आडे हाथों लिया है। साथ ही 'प्रेम-संगीत' और 'गर्म पकौड़ी' जैसी कविताओं के द्वारा वे मदमत्त ब्राह्मण अहंभाव पर शब्द प्रहार करते हैं -

"बह्मन का लड़का
मैं उसको प्यार करता हूँ।
जात की कहारिन वह,
मेरे घर की है पनहारिन वह,
आती है होते तड़का,
उसके पीछे मैं मरता हूँ।"[18]

इस कविता में निराला ने ऐसे शब्दों का प्रयोग किया जो सभ्य समाज में वर्जित एवं लांछनीय माने जाते हैं। इनके प्रयोग के पीछे निराला की मानसिकता है- कुछ लोग समाज में उच्चवर्ण का ठप्पा लगाकर जो काम वर्जित हैं उन्हें तो चुपचाप कर लेते हैं लेकिन उनके घृणित कार्य यदि शब्दबद्ध किया जाय तो कैसी प्रतिक्रिया होगी, देखें। उनकी गर्म पकौडी कविता भी वस्तु एवं भाषा की दृष्टि से नितांत नवीन कविता कही जा सकती है।

''गर्म पकौडी-
ऐ गर्म पकौडी !
तेल की भुनी,
नमक मिर्च की मिली,
ऐ गर्म पकौड़ी
..........पहले तूने मुझको खींचा
दिल लेकर फिर कपड़े-सा फींचा
अरी, तेरे लिए छोड़ी
बम्हन की पकायी
मैंने घी की कचौड़ी।''[19]

उपर्युक्त कविता में निराला ने व्यंग्यात्मक ढ़ंग से तथाकथित द्विज संस्कृति और उसके दंभ पर चोट की है।

'ककुरमुक्ता' कविता दो भागों में विभक्त है। पहले भाग में एक नवाब के बाग में उगे गुलाब के फूल पर कुकुरमुक्ता के शब्द प्रहार प्रकारान्तर से निराला के द्वारा दूसरों का खून चूसकर खुद बढ़नेवाली पूँजीवादी संस्कृति पर किया गया आक्रमण ही है।

''अबे सुन बे गुलाब,
भूल मत जो पायी खुशबू, रंगोंआब,
खून चूसा खाद का तूने अशिष्ट,
डाल पर इतराता है कैपिटलिस्ट !
कितनों को तू ने बनाया है गुलाम,
माली कर रक्खा, सहाया जाड़ा-घाम,
हाथ जिसके तू लगा,

पैर सर रखकर वह पीछे को भगा
औरत की जानिब मैदान यह छोड़कर,
तबेले को टट्टू जैसे तोड़कर,
शाहों, राजों, अमीरों का रहा प्यारा
तभी साधारणों से तू रहा न्यारा।''[20]

कुकुरमुक्ता गुलाब को याद दिलाता है कि किस मूल्य पर उसने अपनी यह सुंदरता और भव्य-पोषण आदि प्राप्त किये। वह मेहनतकश मज़दूर वर्ग का प्रतीक है और गुलाब उससे निर्मित शोषक धनिकवर्ग का प्रतीक है। कविता का दूसरा भाग तो पहले भाग का पूरक है और इसके द्वारा निराला ने मेहनतकश लोगों की स्तुति करते हुए यह सिद्ध करते हैं कि लोगों में सच्चा नवाब तो रईस लोग नहीं, बल्कि उनके जीवन में सारे सुख-भागों के दाता, निर्माणकारी मेहनतकश वर्ग के लोग हैं। इस कविता में जिन बिंबों और प्रतीकों की रचना की गयी है, वह हिन्दी काव्य की प्रयोग धर्मिता का एक नया पहलू है। इतना ही नहीं 'ककुरमुक्ता' निराला की भाषिक विविधता का भी अच्छा उदाहरण है। उन्होंने इस कविता में उर्दू, फारसी तथा अंग्रेज़ी के मेल से बने रचना-विधान का उपयोग किया है। जिस कवि ने हिन्दी काव्य को क्लैसिकल शैली का उत्कृष्ट रूप दिया हो, वही कवि इस प्रकार भाषा का वैविध्यपूर्ण प्रयोग करें, यह सचमुच अनोखी बात है। यह भी ध्यान देने की बात है कि 'ककुरमुक्ता' की भाषा सीधी और ठेठ भाषा है।

हिन्दी काव्य में 'कुकुरमुक्ता' कितना महत्वपूर्ण काव्य-संग्रह है, इसका स्पष्टीकरण दूधनाथ सिंह जी की निम्न पंक्तियों से होता है -

''विषयवस्तु, शिल्प, संवेदनागत एकतानता और बदलाव, भाषिक-संरचना और अभिव्यक्ति की सर्वथा नयी एकान्विति के कारण 'कुकुरमुक्ता' के पहले संस्करण की कविताओं का चयन अद्‌भुत रूप से महत्वपूर्ण है। इन आठों कविताओं का मिज़ाज बिल्कुल एक-सा है। उनकी ताज़गी, उनमें शब्द-बंध के नये प्रयोग, उनकी गद्यात्मकता और सपाट अकाव्यात्मकता में से रिसने वाला नये ढ़ंग का कवित्व, भाषा का छिदरा -खुला संघटन, अंदर तक चीरता हुआ व्यंग्य, उन्मुक्त हास्य और कठोरता के कवच में छिपी अगाध, अप्रत्यक्ष करूणा तथा उपेक्षित के उन्नयन के प्रति गहरी आस्था- निराला की रचना-सक्षमता और काव्य-दृष्टि के इस नये आयाम को अपने सफलतम रूप में हमारे सामने उद्‌घाटित

करती हैं। सामान्य के संस्पर्श से अभिषिक्त सच्ची कविताओं का इतना लघु किंतु सर्वांग-संपूर्ण संग्रह उस युग में और उसके बाद भी दूसरा नहीं प्रकाशित हुआ। इस संग्रह की कविताएँ जैसी हिन्दी कविता की भाव-संपदा की संपूर्ण परंपरा, कल्पना की उच्छलता और तथाकथित अनुभव-समृद्धि के छलावे पर सामूहिक रूप से प्रहार करती हैं।''[21]

'अणिमा' में कुछ कविताएँ निराला की वेदान्त में आस्था, भारत पर अनुराग और सामाजिक यथार्थवाद का पता देती हैं। उन्होंने भारत ही जीवन धन कविता में लिखा :

''भारत ही जीवन-धन
ज्योतिर्मय परम-रमण
सर-सरिता वन-उपवन।
    तपः-पुंज गिरि-कंदर
    निर्झर के स्वर पुष्कर,
    दिक्प्रान्तर मर्म-मुखर,
    मानव मानव-जीवन
    .... नहीं कहीं जड़-जघन्य
        नहीं कहीं अहम्मन्य
        नहीं कहीं स्तन्य-वन्य,
        चिन्मय केवल चिंतन।''[22]

यहाँ भारत को 'निराकार ब्रह्म का परम-रमण' कहकर निराला देशप्रेम को वेदान्त से जोड़ते हैं।

इस काव्य-संग्रह में कहीं कहीं उनकी वैयक्तिक जीवन की असफलताओं का प्रतिफलन भी जरूर मिलता है।

''मैं अकेला,
देखता हूँ, आ रही मेरे दिवस की सांध्य वेला।
पके आधे बाल मेरे,
हुए निष्प्रभ गाल मेरे,
चाल मेरी मंद होती आ रही,
हट रहा मेला।''[23]

'युगप्रवर्तिका श्रीमति महादेवी वर्मा के प्रति' नामक कविता 'अणिमा' में संकलित है जो उस महान कवइत्री पर निराला की श्रद्धा का प्रतीक है। इस कविता में उन्होंने महादेवी की काव्य-पुस्तकों के नामों का ही प्रयोग करके उनकी भूरि-भूरि प्रशंसा की है। इस काव्य-संग्रह में एक और प्रसिद्ध कविता 'स्वामी प्रेमानंद जी महाराज' है जिसमें निराला ने अपने जीवन के प्रथम चरण में महिषादल राज्य में पधारे स्वामी प्रेमानंद जी की यात्रा का स्मरण करते हुए उनके प्रति अपनी भक्ति व्यक्त की। इस कविता में ब्राह्मण लोगों की दंभता का उल्लेख मिलता है जब उन्होंने कायस्थ लोगों के साथ मिलकर एक ही पंक्ति में भोजन करने से इनकार कर दिया। 'अणिमा' की कुछ कविताओं को छोड़कर यह काव्य-संग्रह 'कुकुरमुत्ता' से भिन्न जरूर लगता है। क्योंकि इसमें निराला की वैयक्तिक वेदना करुण रस सिक्त प्रार्थना परक कविताओं तथा गीतों के रूप में प्रकट होती है। इस संकलन में निराला ने भक्ति, करुणा एवं प्रशस्ति पूर्वक कविताओं को ज़्यादा स्थान दिया है। जयशंकर प्रसाद, आचार्य रामचंद्र शुक्ल, गौतम बुद्ध आदि पर उन्होंने प्रशस्तिपरक कविताएँ लिखीं जो इसमें संकलित हैं।

बाद का क्रम 'नये पत्ते' और 'बेला' काव्य-पुस्तकों का है। निराला का सामाजिक यथार्थवाद, जिसका आधार व्यंग्यात्मक शैली है 'नये पत्ते' और 'बेला' में खुलकर सामने आता है। इस दौर में उन्होंने ऐसी कविताएँ लिखीं जिनका उद्देश्य वर्तमान सामाजिक परिस्थितियों का विरोध करके, जन-सत्ता की स्थापना करना था। ''....जैसा कि संकेत किया जा चुका है, निराला का यथार्थवाद 'नये पत्ते' की 'कुत्ता भौंकने लगा', 'झींगुर डटकर बोला', 'छलाँग मारता चला गया', 'डिप्टी साहब आये' और 'महगू महगा रहा' - जैसी कविताओं में बुलंदी पर पहुँचता है। 'बेला' के गीतों और ग़ज़लों में यदि उनका रहस्यवाद है, तो यथार्थवाद भी है। यहाँ स्मरणीय है कि 'बेला' की ही एक ग़ज़ल में निराला ने सत्य को पा लेने की यह घोषणा की है -

''खुला भेद, विजयी कहाये हुए जो
लहू दूसरे का पिये जा रहे हैं।''[24]

निराला ने 'कुकुरमुत्ता' में जिस परंपरा का आरंभ किया उसका पूर्ण विकास 'नये पत्ते' और 'बेला' में मिलता है। उनकी कविता 'राजे ने रखवाली की' बताती है कि साहित्य, राजनीति, संस्कृति तथा विज्ञान- ये सब समाज के पूँजीवादी शोषक वर्ग के चेले बन चुके हैं और इनका उपयोग आजकल जनता की आँखों में धूल झोंकने के लिए ही हो रहा है।

''राजे ने अपनी रखवाली की,
क़िला बनाकर रहा।
बड़ी-बड़ी फ़ौजें रखीं।
चापलूस कितने सामंत आये।
मतलब की लकड़ी पकड़ी हुए।
कितने बाह्मण आये
पोथियों में जनता को बाँधे हुए।
कवियों ने उसकी बहादुरी के गीत गाये,
लेखकों ने लेख लिखे....''[25]

निराला देखते हैं जिसके पास धन है, वही बलवान है, शक्तिशाली है, साहित्य भी उसकी प्रशंसा में लगा हुआ है। इसप्रकार उनका काव्यगत यथार्थवाद उत्कर्ष को प्राप्त होता है।

'कुत्ता भौंकने लगा', 'झींगुर डटकर बोला', छलाँग मारता चला गया, 'डिप्टी साहब आए' जैसी कविताएँ निराला की सामाजिक चेतना के प्रतिरूप हैं। इनमें उन्होंने किसानों की कारुणिक स्थिति का चित्रण करते हुए उन पर गाँवों में सामंतवादी व्यवस्था के आधारस्तंभ जमींदारों के अत्याचारों का आँखों देखा वर्णन किया है। 'नये पत्ते' के बारे में रामविलास शर्मा जी ने लिखा कि

''... 'नये पत्ते' की कविताओं के गाँव में यह संघर्ष और तेज होता है। गाँव में डिप्टी, दारोगा और अन्य कई अफसर आते हैं। जमींदार का गोड़इत दूध इकट्ठा करने निकलता है। बदलू अहीर से झगड़ा होता है। गोड़इत नाक पर घूँसा खाकर गिर पड़ता है, बदलू अहीर के तरफदार इकट्ठा हो जाते हैं।

'मन्नी कुम्हार, कुल्ली तेली, भकुआ चमार,
लुच्छू नाई, बली कहार, कुल टूट पड़े,
कुछ नहीं हुआ, कुछ नहीं हुआ, होने लगा।'

('डिप्टी साहब आए')

इस घटना का यह अर्थ नहीं कि किसान विजयी हुए और जमींदारी-प्रथा का खात्मा हो गया। वह घटना इस बात की ओर संकेत भर करती है कि किसानों की चेतना में परिवर्तन

हुआ है, उनका संगठन किया जा सकता है और वे संघर्षों को नयीं मंज़िलें पार कर सकते हैं। जमींदार का आतंक अपनी जगह कायम है।

'जमींदार के सिपाही की
लाठी का गूला, लोहा बँधा,
दरवाज़े गढ़ा कर जाता है।'

(छलाँग मारता चला गया)

लाठी का यह लोहा बँधा गूला जो किसान के दरवाज़े गढ़ा कर जाता है, जमींदारी आतंक का प्रतीक है और वस्तुस्थिति का सही प्रतीक है।

'झींगुर डटकर बोला' कविता में जमींदार का सिपाही किसान-सभा के सदस्यों पर गोली चलाता है।''[26]

ख़ून की होली जो खेली कविता में निराला ने '46 में इलाहाबाद विद्यार्थियों द्वारा सामंतवाद के खिलाफ उठाये गये विद्रोही कदम की प्रशंसा की है। इस प्रकार 'नये पत्ते' काव्य-संकलन निराला के वात्सविकता बोध का अत्यंत सफल प्रमाण माना जा सकता है।

'बेला' में निराला की एक कविता है 'जल्द-जल्द पैर बढ़ाओ' जिसमें उन्होंने समाज के धनीवर्ग पर आक्रमण करके धन-दौलत को छीनकर जन-संपत्ति बनाने की भावना व्यक्त की है।

''जल्द जल्द पैर बढ़ाओ, आओ, आओ।
आज अमीरों की हवेली
किसानों की होगी पाठशाला,
    धोबी, पासी, चमार, तेली
    खोलेंगे अँधेरे का ताला,
    एक पाठ पढ़ेंगे टाट बिछाओ।..''[27]

इस प्रकार निराला ने सारी संपत्ति देश की हो वाली भावना व्यक्त करके सामाजिक क्रान्ति का निमंत्रण दिया है। इसी संकलन में उन्होंने तू कभी न ले दूसरी आड़ कविता में व्यक्ति का आह्वान किया है कि वह दृढ़ बन जाये और चट्टान की तरह खडे रहकर मुश्किलों का सामना करे। निराला के अनुसार व्यक्ति की दृढ़ता में ही सकल शक्तियाँ समाविष्ट होती हैं।

'नये पत्ते', 'बेला' निराला के सर्वाधिक प्रगतिशील काव्य-संग्रह हैं। इनमें निराला झींगुर, बदलू, लुकुआ तथा महंगू आदि को नये काव्य - नायक बनाते हैं और नयी भाषा में, अटपटे छंदों में या लगभग गद्य में एक नयी वर्ग-चेतना का प्रतिपादन करते हैं।

4.1.3 निराला-काव्य का तृतीय चरण

निराला-काव्य का अंतिम चरण मुख्यतः गीतों तथा प्रार्थनाओं से भरा पड़ा है। इस समय प्रकाशित उनके काव्य संग्रह है - 'अर्चना', 'आराधना', 'गीत-गुंज' और 'सांध्य काकली'। इन काव्यों में एक भी गीत ऐसा नहीं मिलेगा जो भक्ति और समर्पण भाव के संस्पर्श से रहित हो। डॉ.नंदकिशोर नवल ने लिखा कि ''आमतौर पर यह समझा जाता है कि निराला के काव्य का तीसरा चरण उनके दूसरे चरण के यथार्थवादी काव्य से भिन्न है, क्योंकि इसमें वे पुनः भक्ति और अध्यात्म के गीत रचने लगते हैं। वास्तविकता यह है कि वे 'कुकुरमुक्ता' (प्रथम संस्करण) और 'नये पत्ते' की कविताओं की रचना के दौर में भी भक्ति और अध्यात्म के गीत रच रहे थे, जो कि 'अणिमा' और 'बेला' में संकलित हैं। 'अणिमा' और 'बेला' के गीतों का ही विकास निराला के तीसरे चरण के गीति-काव्य में देखने को मिलता है। .... इस चरण में गीतों का एक ही दौर दिखलायी पड़ता है, जो 'सांध्य काकली' के अंतिम गीतों तक चलता रहा है।''[28]

आध्यात्मिक, श्रृंगारिक और प्रकृति परक गीत 'अर्चना' में संकलित हैं। इस काव्य का मूलस्वर तो भक्ति है और इन गीतों में भक्तिकालीन कवियों के समान आराध्य के प्रति संपूर्ण समर्पण भाव पाया जाता है। ध्यान रहे- अब तक निराला अपने जीवन तथा साहित्यिक संघर्ष में थक चुके थे। इसलिए वे अपने जीवन की सांध्य बेला में प्रभु से बार-बार संसार सागर से पार करने के लिए प्रार्थना करते हैं। वे लिखते हैं -

''भव सागर से पार करो हे!
गह्वर से उद्धार करो हे!
कृमि से पतित जन्म होता है,
शिशु दुर्गन्ध - विकल रोता है,
ठोकर से जगता-सोता है,
प्रभु उसका निर्वार करो हे!

..... विपुल काम के जाल बिछाकर,
जीते हैं जन जन को खाकर,
रहूँ कहाँ मैं ठौर न पाकर,
माया का संहार करो हे !''[29]

यहाँ निराला प्रार्थना करते हैं कि जन-जन को स्वार्थी लोग खाये जाते हैं और उन्हें नहीं मालूम कि इस स्वार्थ एवं मायापूर्ण संसार में अपने लिए जगह कहाँ है। इस प्रकार हम देखते हैं कि उनके प्रपत्ति भाव भरे गीतों में सामाजिक अन्याय का बोध पूरी तरह से ओझल नहीं हो जाता। उनका मन अब पूरी तरह हरि की शरण में जाने को तत्पर हो जाता है -

''भजन कर हरि के चरण, मन
पार कर मायावरण, मन !
कलुष के कर से गिरे हैं,
देह-क्रम तेरे फिरे हैं,
विपथ के रथ से उतरकर
बन शरण का उपकरण, मन !

अन्यथा है वन्य कारा
प्रबल पावस, मध्य धारा,
टूटते तन से पछड़कर
उखड़ जायेगा तरण, मन !''[30]

बाँधो न नाव इस ठाँव बंधु जैसे गीत लोक संगीत के माधुर्य एवं लोक जीवन की सरलता के सुंदर उदाहरण हैं।

''बाँधो न नाव इस ठाँव बंधु!
पूछेगा सारा गाँव बंधु!

यह घाट वही जिस पर हँसकर,
वह कभी नहाती थी धँसकर,

आँखें रह जाती थीं फँसकर,
काँपते थे दोनों पाँव, बंधु!''[31]

उपर्युक्त गीत में निराला के प्रारंभिक सृजनकाल की भांति फिर से सौंदर्य, सच्चा प्रेम तथा निष्ठा का स्तवन देखने को मिलता है।

'अर्चना' के कई गीत निराला की भाषिक शक्ति के उदाहरण हैं।

''नील जलधि जल,
नील गगन-तल,
नील कमल-दल,
नील नयन द्वय ।

नील मृत्ति पर
नील मृत्यु-शर,
नील अनिल-कर,
नील निलय-लय।

नील मोर के
नील नृत्य रे,
नील न कृत्य से
नील शवाशय।

नील कुसुम-मग,
नील नग्न-नग,
नील शील-जग
नील कराभय।''[32]

इस प्रकार के गीतों में निराला गीत-काव्य की प्रकृति परक सौंदर्यात्मकता अपने उत्कर्ष को पहुँचती है।

'आराधना' और 'गीत-गुंज' में भी निराला की भक्ति भावना का सुंदर प्रस्तुतीकरण हुआ है। 'आराधना' का एक गीत अपने थके-हारे जीवन में निराला को भक्ति की सांत्वना कैसी मिली- इसका चित्रण करनेवाला है।

''मरा हूँ हजार मरण
पायी तब चरण-शरण

फैला जो तिमिर-जाल
कट-कटकर रहा काल,
आँसुओं के अंशुकाल,
पड़े अमित सिताभरण''[33]

'कृष्ण कृष्ण राम राम' तथा 'राम के हुए तो बने काम' आदि गीतों में प्राचीन भक्ति काव्य के कीर्तन-संप्रदाय का स्वस्थ निर्वाह हुआ है।

''राम के हुए तो बने काम,
सँवरे सारे धन, धान, धाम।
    पूछा जग ने, वह राम कौन ?
    बोली विशुद्धि जो रही मौन,
    वह जिसके दून, नड्योढ़-पौन,
    जो वेदों में है सत्य, साम।
वह सूर्य्यवंश संभूत तभी,
जीवन की जय का सूत तभी,
कृष्णार्जुन हारण पूत तभी,
जो चरण विचारण बिना दाम।''[34]

कहीं-कहीं यह परंपरा रहस्यवाद का रूप भी लेता दिखायी पड़ती है। लेकिन इन काव्यों में केवल भक्ति ही एकमात्र विषय नहीं, मातृभूमि के सुख-सौभाग्य के लिए संघर्ष का आह्वान भी मिलता है।

'आराधना' और 'गीत-गुंज' में भी निराला के 'मैं हूँ अकेला' जैसे विषादात्मक गीत

मिल जाते हैं। दुखता रहता है अब जीवन, तथा भग्न तन, रूग्ण मन, जीवन विषण्ण वन कहकर निराला अपने जीवन की अनंतव्यथा को शब्दबद्ध कर देते हैं।

''भग्न तन, रूग्ण मन,
जीवन विषण्ण वन।
क्षीण क्षण-क्षण देह,
जीर्ण सज्जित गेह,
घिर गये हैं मेह,
प्रलय के प्रवर्षण।
चलता नहीं हाथ,
कोई नहीं साथ,
उन्नत, विनत माथ,
शरण, दोषरण।''[35]

इस गीत में निराला फिर से कहते हैं कि उनका जीवन हमेशा संघर्षरत रहा है और इस जीवन संघर्ष में उनका शरीर क्षीण हो चुका है। यदि संग्राम न्यायपूर्ण हो तो निराला को इतना दुख नहीं होता। लेकिन यह समर अन्यायपूर्ण है। इस दोषरण में उनका साथ देनेवाला कोई नहीं है।

'आराधना' में संकलित एक गीत है - 'नाचो हे रुद्र ताल'। इस गीत में निराला का अपराजेय मन फिर से सजग उठा दिखायी पड़ता है। वे इस गीत में उस महारुद के प्रलयंकारी रूप का आह्वान करते हैं और पुरानी जीर्ण व्यवस्था का लय करने की प्रार्थना करते हैं।

''नाचो हे रुद्रताल,
आँचो जग ऋज-अराल।
झरे जीव जीर्ण-शीर्ण,
उद्भव हो नव-प्रकीर्ण,
करने को पुनः तीर्ण,
हो गहरे अंतराल।
फिर नूतन तन लहरे,

मुकुल-गंध बन छहरे,

उर तरु-तरु का हहरे,

नव मन, सायं-सकाल।''[36]

रुद्र के इस प्रलयंकारी चित्रण से स्पष्ट है कि निराला ने कभी अपना पौरुष नहीं खोया तथा व्यथा और हार का अनुभव करते हुए स्वयं को जन-चेतना से निरंतर जोड़ा। इस प्रकार के गीतों में निराला पुराने गलित प्राचीन परंपरा को ठुकराते हुए नये विद्रोह का आह्वान रुद्र के माध्यम से करते हैं।

'गीत-गुंज' और 'सांध्य काकली' के गीतों में निराला भक्ति के साथ-साथ प्रकृति की ओर आकृष्ट होते नज़र आते हैं। लेकिन यह भक्ति पलायनवाद का मुखौटा नहीं है, शुद्ध मन से निराला अपने साहित्य में आरंभिक काल से आती हुई आध्यात्मिक शक्ति को पूजते दिखायी देते हैं। उनके इस समय के गीतों में भक्ति के प्रति झुकाव को समझने के लिए नंदकिशोर नवल की ये पंक्तियाँ पर्याप्त हैं -

''निराला के तीसरे चरण के काव्य से यह भ्रम हो सकता है कि उसमें वे पीछे की ओर लौट गये हैं।....धर्म-भावना निराला में पहले भी थी, वह उनमें अंत-अंत तक बनी रही। उनके इस चरण के धार्मिक काव्य की विशेषता यह है कि वह हमें उद्विग्न करता है, आध्यात्मिक शांति नहीं प्रदान करता। वह शांति निराला को कभी मिली भी नहीं, क्योंकि इस लोक से उन्होंने कभी मुँह नहीं मोडा, बल्कि इसी लोक को अभाव और पीड़ा से मुक्त करने के लिए वे कभी सामाजिक और राजनीतिक आंदोलनों की ओर देखते रहे और कभी ईश्वर की ओर। उनकी यह व्याकुलता ही उनके काव्य की सबसे बड़ी शक्ति है। उन पर वेदांत का गहरा असर है, लेकिन अनेक बार उन्होंने उसका अतिक्रमण भी किया है। यदि ऐसा न होता, तो वे अंत में यह न कहते कि 'नयी शक्ति, अनुराग जगा दो/ विकृत भाव से भक्ति भगा दो/ उत्पादन के मार्ग लगा दो/ साहित्यिक-वैज्ञानिक के बल।' जो कवि इस लोक को माया समझेगा, वह यह कभी नहीं चाहेगा कि साहित्य और विज्ञान दोनों का उपयोग उत्पादन-वृद्धि और फिर उससे होनेवाले समाज-कल्याण के लिए हो। मार्क्स ने लिखा कि धार्मिक वेदना एक साथ ही वास्तविक वेदना की अभिव्यक्ति और वास्तविक वेदना के विरुद्ध विद्रोह भी है। निराला के इस चरण के काव्य को हमें इसी आलोक में देखना चाहिए। उसकी एक अन्यतम

विशेषता यह है कि वह ग्राम-जीवन के बिलकुल निकट स्थित है। इस काल में निराला ने ग्राम-जीवन और ग्राम-संस्कृति का अद्‌भुत आत्मीयता के साथ वर्णन किया है। यशस्वी कवि और समीक्षक डा.केदारनाथ सिंह उचित ही निराला की इस चरण की कविता को परदेश से घर लौटे हुए कवि की कविता कहते हैं।''[37]

उनके अंतिम समय का काव्य ज़्यादातर गीतों के रूप में है जो गीत-गुंज तथा उनके मरणोपरांत 'सांध्य काकली' में संकलित है। इन गीतों में सौंदर्य परक गीत, प्रकृति चित्रण से संबंधित गीत, दार्शनिक-रहस्यात्मक, प्रार्थना परक या आत्मनिवेदन के गीत एवं मृत्यु-बोध के गीत आदि कई प्रकार हैं। सांध्यकाकली में संकलित गीत निराला की मृत्यु के निकट पूर्व लिखे गये हैं। इन गीतों में निराला मृत्यु को बहुत निकट से देखते हैं।

''जय तुम्हारी देख भी ली
रूप की गुण की, रसीली।
वृद्ध हूँ मैं, ऋद्धि की क्या,
साधना की, सिद्धि की क्या,
खिल चुका है फूल मेरा,
पखड़ियाँ हो चलीं ढ़ीली।
..... आग सारी फुक चुकी है,
रागिनी वह रूक चुकी है,
स्मरण में है आज जीवन,
मृत्यु की है रेख नीली।''[38]

यह माना जाता है कि निराला की अंतिम कविता 'पत्रोत्कण्ठित जीवन का विष बुझा हुआ है' है।

इस प्रकार निराला के काव्य का विवेचन करने पर स्पष्ट होता है कि उन्होंने 'जन्मभूमि' के प्रिय पुत्र के रूप में अपनी कविता-यात्रा का आरंभ किया, 'भारति जय विजय करे' कहकर भारतभूमि का यशोगान किया। निराला 'तुलसीदास' और 'राम की शक्तिपूजा' जैसे उदात्त काव्यों के सर्जक हैं। 'ककुरमुत्ता' के तीक्ष्ण व्यंग्य-प्रयोक्ता हैं और आध्यात्मिक गीतों के निश्छल रचनाकार हैं। 'परिमल' से लेकर 'सांध्य काकली' तक उनके काव्य ने

अनेक मोड़ लिये लेकिन किसी भी मोड़ पर निराला का मानवतावादी स्वर चूकता नहीं दिखायी पड़ता। उनके काव्य का मूल्यांकन शायद निराला काव्य के निष्ठावान अध्येता रामविलास शर्मा की इस कविता के द्वारा ही सही ढ़ंग से हो पाता है -

''यह कवि अपराजेय निराला,
जिसको मिला गरल का प्याला,
ढ़हा और तन टूट चुका है,
पर जिसका माथा न झुका है,
शिथिल त्वचा, ढ़लढ़ल है छाती,
लेकिन अभी सँभाले थाती,
और उठाये विजय पताका --
यह कवि है अपनी जनता का।''

4.2 निराला के काव्य में राष्ट्रीय जागरण की अभिव्यक्ति

निराला की प्रथम कविता जो उनके किसी भी काव्य में संकलित नहीं हुई- जन्मभूमि नाम से लिखी गयी। उस कविता पर बंगाल के कवि डी.एल.राय का प्रभाव स्पष्टतः देखा जा सकता है। इस कविता में निराला मातृभूमि की वंदना करते हैं और इस कविता में भारत की भौगोलिक स्थितिगतियों का रेखांकन भी मिलता है। निराला की प्रथम कृति होने के बावजूद इसमें निराला के भाषा-वैदुष्य के प्रमाण आसानी से मिल जाते हैं।

''बंदू मैं अमल कमल-
चिरसेवित चरण युगल-
शोभामय शांतिनिलय पाप ताप हारी,
मुक्त बंध, घनानंद मृदु मंगलकारी ।।
वधिर विश्व चकित भीत सुन भैरव वाणी।
जन्मभूमि मेरी है जगन्महारानी।। 1।।
मुकुट शुभ्र हिमागार।
हृदय बीच विमल हार-
पंचसिन्धु ब्रह्मपुत्र रवितनया गंगा।

विंध्य विपिन राजे घन घेरि युगल जंघा।।
वधिर विश्व चकित भीत सुन भैरव वाणी।
जन्मभूमि मेरी है जगन्महारानी।।2।।

त्रिदश कोटि नर समाज,
मधुर-कण्ठ-मुखर आज।।
चपल चरणभंग नाच तारागण सूर्यचंद्र।
चूम चरण ताल मार गरज जलधि मधुर मंद्र।।
वधिर विश्व चकित भीत सुन भैरव वाणी।
जन्मभूमि मेरी है जगन्महारानी।।3।।[39]

यह कविता प्रभा मासिक, कानपुर में 1, जून 1920 को प्रकाशित हुई थी। इस कविता में निराला ने मुक्तकण्ठ से भारतभूमि की मातृभूमि के रूप में स्तुति की है। हिमालय, पंचनद, ब्रह्मपुत्र एवं गंगा जैसी नदियों को, विंध्य जैसे पर्वतों को उस जन्मभूमि के शरीर के अंग बतलाते हुए जन्मभूमि को जगन्महारानी कहा। यह उक्ति अपने राष्ट्र के प्रति असीम श्रद्धा एवं गौरव से ही उत्पन्न हुई है। हिमालय को भारतमाता का मुकुट, गंगा आदि नदियों को उस माता के गले में सुशोभित हार कहकर निराला ने उस भूमि के चरण चूमनेवाले जलधि का भी अंकन किया है।

उच्च स्तर की राष्ट्रीय कविता वही है जो देश विशेष के भूभाग को , प्रजा, भाषा एवं साहित्य के प्रति अनुराग प्रकट करते हुए राष्ट्रीय भावनाओं को पुष्ट करती हो। इस कविता में उक्त सभी लक्षण मिल जाते हैं। निराला कहते हैं कि भारत को देखकर, इस राष्ट्र के भैरव राग का अलाप सुनकर सारा विश्व बधिर हो चुका है इस राष्ट्र के पराक्रम से आतंकित तथा इस राष्ट्र की महिमा से चकित हो गया है। इस प्रकार निराला ने अपनी इस निश्छल प्रार्थना परक कविता में राष्ट्र पर गर्व की अनुभूति व्यक्त की है।

ध्यान रहे, यह वह समय था जब अंग्रेज़ों के विरुद्ध जनता में असंतोष भरा हुआ था तथा असहयोग आंदोलन के रूप में सारा देश एक बनकर साम्राज्यवाद के साथ संघर्ष में लगा हुआ था। निराला की इस कविता से स्पष्ट है कि वे भारत की स्वतंत्रता को लेकर पहले ही

सोच रहे थे और राष्ट्र-मुक्ति की ओर से वे हमेशा सचेत थे। इसलिए उन्होंने कविता में मुक्त बंध घनानंद मृदुमंगलकारी लिखकर भारतमाता की कल्पना बंधनों से विमुक्त रूप में की।

दूधनाथ सिंह इस गीत के बारे में लिखते हैं :''मेरा ख्याल है कि यह कविता लिखते वक्त निराला के दिमाग में रवींद्रनाथ की प्रसिद्ध कविता और आज का राष्ट्र गान जन-गण-मन है। रवींद्रनाथ की कविता भी एक प्रकार का भौगोलिक रेखांकन है। निराला की इस कविता से उनकी भारत की भौगोलिक धारणा ही अधिक स्पष्ट होती है। रवींद्रनाथ की कविता की तरह इसमें भी हिमालय से लेकर पंचनदियों, गंगा, विंध्याचल और समुद्र का वर्णन है। इसके अतिरिक्त जो इस कविता में है, वह निराला की मातृभूमि के प्रति उच्छल गर्व की अनुभूति है। वे उसे 'जगन्महारानी' कहकर उद्बोधित और गर्वित होते हैं, साथ ही यह स्वप्न-परिकल्पना भी करते हैं कि सारा संसार उसके भैरव-राग को सुनकर चकित है। यह गर्वोक्ति सच भले न हो, कवि की इस इच्छा का संकेतक तो है ही। इसे मात्र अपरिपक्व और भावुक अभिव्यक्ति मान लेना उचित न होगा।''[40]

निराला के काव्य में राष्ट्रीय उद्बोधन का स्वर पहले पहल इसी कविता में हुआ, इसमें कोई संदेह नहीं।

निराला ने एक कविता लिखी जो उपर्युक्त कविता की तरह किसी संकलन में स्थान नहीं पा सकी। यह कविता 'नहीं डरेंगे' मारवाड़ी-सुधार जनवरी, 1923 वाले अंक में प्रकाशित हुई। यह कविता भी निराला की राष्ट्रीय चेतना का प्रतीक है। उन्होंने इस कविता में स्वतंत्रता शब्द का खुले रूप से प्रयोग किया।

> ''नहीं डरेंगे चाहे जैसे चित्रित करो दुःख के चित्र।
> प्यारे, उनको समझेंगे हम इष्ट-सिद्धि के साधक मित्र।।
> छेड़ रहा इतिहास हमारा यही हृदय-तंत्री से तान।
> स्वतंत्रता पर इस भारत ने किये निछावर अपने प्राण ।।1।।
>
> मार अनात्म भाव अजरामर परमात्मा से नाता जोड़।
> स्वतंत्रता का पुण्य पाठ हम करते दुःख के बंधन तोड़।।
> अहंकार को भी मन को भी जीता जब हमने संपूर्ण।

उनसे अधिक प्रबल क्या होगा जिसे न हम करते [हैं] चूर्ण।।2।।[41]

निराला इसमें भारत के स्वतंत्रता-संग्राम का स्पष्ट चित्रण करते हैं। वे याद दिलाते हैं कि भारत का इतिहास साक्षी है कि स्वतंत्रता के लिए इस राष्ट्र के कई वीरों ने अपने प्राण न्योछावर किये। इसमें वे कहते हैं कि स्वतंत्रता-सिद्धि के लक्ष्य के लिए उपस्थित दुःखों से हम डरनेवाले नहीं हैं। मजे की बात है कि इस कविता में वे स्वतंत्रता-संग्राम को अद्वैतवाद से जोड़ते हुए दिखायी देते हैं। वे कहते हैं कि अनात्म भाव को मारकर अजरामर परमात्मा से नाता जोड़ना ही हमारा कर्तव्य है। निराला के अनुसार मन और अहंकार को संपूर्ण रूप से जीतने से बड़ी विजय हो न सकती। निराला इस समय तक स्वामी प्रेमानंद के साथ मिल चुके और रामकृष्ण परमहंस तथा स्वामी विवेकानंद के सिद्धांतों से प्रभावित हो चुके। इसीलिए वे इस कविता में स्वतंत्रता संग्राम में अद्वैतवाद को गुंफित करते हैं।

'मतवाला' 26, अगस्त 1923 वाले अंक में निराला के नाम से छपी पहली कविता राष्ट्रीय आत्मसम्मान का भाव जगाने के उद्देश में रक्षाबंधन के नाम पर लिखी गयी है। यह अंक 'मतवाला' पत्रिका का पहला अंक भी है।

''बढ़ गयी शोभा सखी सावनी सलोनी हुई
बड़े भाग्य भारत के गये दिन आये फिर !
'रक्षा' से बंधे हैं भारतीयों के कोमल कर,
मंगल मनाती क्यों न, रहा क्यों कलेजा चिर ?
तारों इन सुनहलों के आगे सितारे मात
अथवा प्रकाश रहा बादल-दलों से घिर ?
देख करतूत ऐसी वीरवर सपूतों की
भारत का गर्व से उठेगा या झुकेगा सिर ?

कंगालों का कत्ल अहो इस 'राखी' के रंग में छिपा,
भूत, भविष्यत्, वर्तमान है दीनों का तीनों लिपा !''[42]

इस कविता में निराला ने जनता में राजनैतिक बोध जगाने के लिए राखी का शुभ अवसर चुना है। इसके साथ साथ इसी समय पर कृष्ण महातम नामक ब्रजभाषा में लिखी कविता में भी उनकी यही प्रवृत्ति देखने को मिलती है। इस कविता में कृष्ण काले हैं तो राधा

और अन्य गोपियाँ गोरे हैं। इन दोनों कविताओं के बारे में रामविलास शर्मा जी ने लिखा कि ''भावबोध और कला की दृष्टि से निराला- साहित्य के अनेक स्तर हैं। इनमें एक स्तर विशुद्ध प्रचारात्मक हैं जहाँ उनकी निगाह हिन्दी के उन पाठकों पर है जो बहुत कम पढ़े-लिखे हैं किन्तु जिनकी राजनीतिक चेतना को निखारना वह अपना कर्तव्य समझते हैं। 'मतवाला' में 'निराला' नाम के साथ जो पहली कविता छपी है, वह इसी प्रचारात्मक स्तर पर लिखी गयी है........उस समय जिस तरह की भाषा और शैली में राजनीतिक कविताएँ लिखी जाती थीं, राखी पर निराला की रचना उन्हीं के अनुरूप है। त्योहारों, पौराणिक वीरों के बहाने राष्ट्रीय आत्मसम्मान का भाव जगाने और अंग्रेजों का विरोध करने की प्रवृत्ति भी उस समय की कविताओं में देखी जाती है। यही प्रवृत्ति राखी पर, 'मतवाला' के दूसरे अंक में कृष्ण महातम पर कविताओं में है। कृष्ण महातम ब्रजभाषा में है, कवि का नाम छपा है- पुराने महारथी।''[43]

'मतवाला' में 'गये रूप पहचान' शीर्षक से छपी एक और कविता में निराला ने राष्ट्रभाषा की दुहाई देते हुए जनता को छलनेवाले लोगों की कड़ी भर्त्सना की -

''चूम चरण मत चोरों के तू,
गले लिपट मत गोरों के तू,
झटक पटक झंझट को झटपट झोंक भाड़ में मान।
मिटी मोह-माया की निद्रा गये रूप पहचान ।।''[44]

निराला की यह अभिव्यक्ति गुलामी के विरुद्ध जनता को सचेत करने की है जो प्रकारांतर से राष्ट्रीय जागरण की ही सशक्त पुकार है।

पौराणिक गाथाओं तथा प्राचीन काव्यों को आधार बनाकर जनता को अपनी बीती हुई सांस्कृतिक विरासत का बोध कराना भी राष्ट्रीय जागरण का एक अंग था। यही पवृत्ति उन्नीसवी सदी के उत्तरार्थ में भारतीय साहित्य की एक प्रमुख विशेषता बनी हुई थी। दरअसल साहित्य में इस प्रवृत्ति का आरंभ प्रायः बंगाल के माइकेल मधुसूदन दत्त की रचनाओं में देखने को मिलता है। रामायण के आधार पर मधुसूदन दत्त ने सन् 1860 ई. में 'मेघनाद वध' शीर्षक से एक काव्य लिखा। उसमें लंका-नरेश के पुत्र इंद्रजित, (जिसका असली नाम मेघनाद है) को पिता के राज्य की रक्षा के लिए राम की सेना से लड़नेवाले वीर देशभक्त के रूप में चित्रित किया गया। यह पौराणिक आख्यान नितांत नवीन था और वर्तमान परिस्थितियों से

तथा राष्ट्र के सामाजिक-राजनैतिक जीवन के तात्कालिक महत्व की समस्याओं से जोड़नेवाला था। बंगाल के प्रमुख उपन्यासकार बंकिमचंद्र चट्टोपाध्याय तथा मराठी के उपन्यासकार हरिनारायण आप्टे जैसे लेखकों ने अपने ऐतिहासिक उपन्यासों द्वारा अपने देशवासियों में राष्ट्रीय अभिमान जगाकर अंग्रेज़ों के खिलाफ़ संघर्ष करने की प्रेरणा प्रदान की। इस दृष्टि से हिन्दी साहित्य में ऐसे जागरूक कवियों का हमेशा उन्मेष होता आया जिन्होंने अपनी प्रजा को अतीत के गौरव से परिचित कराकर वर्तमान परिस्थितियों को सुधारने में उन्हें प्रेरणा प्रदान की। भारतेंदु हरिश्चन्द्र से आरंभ इस भव्य परंपरा का निर्वाह मैथिली शरणगुप्त, नाथूरामशर्मा शंकर जैसे कवियों ने किया। निराला भी इस परंपरा को आगे बढ़ाते हैं।

भारत के संबंध में राष्ट्रीय उद्बोधन के दौरान पौराणिक अध्यायों के आधार पर अतीत का स्मरण करना एकतरह से अनिवार्य हो गया। क्योंकि किसी भी राष्ट्र का अभिमान उस राष्ट्र का प्राचीन इतिहास और काव्य - परंपरा ही होते है। भारत भी इसका अपवाद नहीं है। भारत के लोग मानते हैं कि रामायण, महाभारत जैसे काव्य मात्र पुराण (प्राचीन) ही नहीं बल्कि ऐतिह्य (जिसका संबंध इतिहास से हो) हैं। निराला ने इन पौराणिक आख्यानों के माध्यम से बीते हुए अध्यायों का स्मरण कराकर जनता को उन गौरवशाली युगों से पुनः नाभिनालबद्ध बनाने का प्रयास किया। उनकी खण्डहर के प्रति, दिल्ली जैसी कविताएँ इस उक्ति के प्रमाण हैं।

एक शिथिल निर्माण को देखकर निराला को प्राचीन भारत का गौरवशाली अतीत सहसा स्मरण हो आता है। वे लिखते हैं कि

> ''खण्डहर ! खड़े हो तुम आज भी ?
> अद्भुत अज्ञात उस पुरातन के मलिन साज !
> विस्मृति की नींद से जगाते हो क्यों हमें-
> करूणाकर, करूणामय गीत सदा गाते हुए ?
> पवन-संचरण के साथ ही परिमल-पराग-सम अतीत की विभूति-रज-
> आशीर्वाद पुरुष-पुरातन का
> भेजते सब देशों में,
> क्या है उद्देश्य तव ?
> बंधन-विहीन भव !''[45]

अंग्रेज़ों के चरण-तले भारतमाता पराधीन बनकर त्रस्त है। उस भारत के अतीत की महिमा का अब कहीं नामो-निशान नहीं रह गया। निराला इस स्थिति से चिंतित है कि खण्डहर उस पुरातन का मलिन साज बन चुका है और उन्हें लगता है कि वह खण्डहर अपनी करूणापूरित दुस्थिति से वर्तमान पीढ़ियों को अतीत का गौरव याद दिला रहा है। उन्हें मालूम होता है उस खण्डहर का उद्देश्य बंधन-विहीन भव ही है अर्थात् दास्य-श्रृंखलाओं से भारतमाता की मुक्ति दिलाना ही जनता को खण्डहर का संदेश है। विस्मृति की नींद से शब्द का प्रयोग राष्ट्रीय जागरण की ओर स्पष्ट संकेत करता है। निराला खण्डहर के माध्यम से भारत में उत्पन्न जनक जैसे राजर्षियों और जैमिनि जैसे महा ऋषियों को याद दिलाते हैं।

"आर्त भारत ! जनक हूँ मैं
जैमिनि-पतंजलि-व्यास-ऋषियों का,
मेरी ही गोद पर शैशव-विनोद कर
तेरा है बढ़ाया मान
राम-कृष्ण भीमार्जुन-भीष्म नरदेवों ने।
तुमने मुख फेर लिया,
सुख की तृष्णा से अपनाया है गरल,
तो बसे नव छाया में
नव स्वप्न ले जगे,
भूले वे मुक्त प्रान, साम-गान, सुधा-पान।"[46]

खण्डहर का रूप लेकर मानों प्राचीन भारत ही वर्तमान भारत से कह रहा हो 'हे आर्त भारत .... इस भूमि पर अनेक महानुभावों का उदय हुआ। राम, कृष्ण, भीम, अर्जुन और भीष्म जैसे महा पुरुषों ने इस देश का मान बढ़ाया। लेकिन तुम उस महान परंपरा से अपने आप दूर हो गये हो और सुख-भोग की लालसा में पाश्चात्य जगत की मोह माया में पड़े स्वप्नों में खो गये हो।'

इस कविता में निराला देशभक्ति और देशप्रेम पर जोर देते हुए पाश्चात्य लोगों का अंधानुकरण करके अपनी संस्कृति को भुलानेवाले लोगों की निंदा करते हैं।

इसी कोटि की एक और कविता दिल्ली है। उपर्युक्त कविता में जिन महानुभावों का प्रसंग आता है, वह पुनः दिल्ली कविता में भी प्रकट होता है।

''क्या यह वही देश है -
भीमार्जुन आदि का कीर्तिक्षेत्र,
चिरकुमार भीष्म की पताका ब्रह्मचर्य दीप्त
उड़ती है आज भी जहाँ के वायुमण्डल में
उज्ज्वल, अधीर और चिरनवीन?
श्रीमुख से कृष्ण के सुना था जहाँ भारत ने
गीता-गीत-सिंहनाद-
मर्मवाणी जीवन-संग्राम की-
सार्थक समन्वय ज्ञान-कर्म-भक्ति-योग का?[47]

निराला पूछते हैं- ''क्या, वह यही देश है, जहाँ निर्मित थे भव्यतम स्मारक, प्रासाद और समाधिस्थल और जहाँ श्रीकृष्ण के श्रीमुख से भारत ने गीता का सिंहनाद सुना था। भीमार्जुन जैसे प्रतापी योद्धाओं का देश क्या सचमुच यही है ? क्या यह वही भूमि है, जहाँ दिल्ली के अंतिम हिन्दू सम्राट पृथ्वीराज चौहान की चिता पर सती संयोगिता ने प्राणाहुति दी थी ? यह बात कहते हुए इतिहास के सत्य को निराला नहीं भूलते। वे यह स्वीकार करते हैं कि इस देश में सैकडों महीप-भाल के किरीट बदले हैं और आज भारत सिर्फ हिन्दुओं का नहीं है बल्कि हिन्दोस्तान की प्रगति में मुगल सल्तनत का योगदान अविस्मरणीय है। इसलिए वे यहाँ पर भीमार्जुन और भीष्म की परंपरा में मुगल कालीन भारत-वैभव को भी जोड़ते हैं।

''आज वह 'फ़िरदौस'
सुनसान है पड़ा।
शाही दीवान-आम स्तब्ध है हो रहा,
दुपहर को, पार्श्व में,
उठता है झिल्लीरव,
बोलते हैं स्यार रात यमुना-कछार में,
लीन हो गया है रव
शाही अंगनाओं का,
निस्तब्ध मीनार,
मौन हैं मकबरेः-
भय में आशा को जहाँ मिलते थे समाचार,
टपक पड़ता था जहाँ आँसुओं में सच्चा प्यार!''[48]

निराला दिल्ली के दरबार में गाये गये राग-रागिनियों का स्मरण दिलाते हैं और आज यमुना की कल-कल-ध्वनि स्थाने झिल्लीरव और स्यार की आवाज पर चिंतित होते हैं। आज मीनार भी स्तब्ध हैं और मकबरे भी मौन हैं। फिरदौस का स्मरण करके निराला वर्तमान भारतीय पतनावस्था को कारुणिक ढंग से चित्रित करते हैं। निराला की चिंता केवल अवसाद को प्राप्त होनेवाली नहीं बल्कि राष्ट्र-जनों को वर्तमान दुर्गति से अवगत करानेवाली है।

निराला के राष्ट्रीय जागरण संबंधी काव्य में मिलनेवाले पौराणिक संदर्भों को रेखांकित करते हुए ये.पे.चेलिशेव लिखते हैं कि ''...मानव-व्यक्तित्व को बंधन-मुक्त प्रतिष्ठित करने तथा आत्म-सम्मान, नागरिक-कर्तव्य, देश-भक्ति, स्वदेश-निष्ठा और देश के भाग्य के प्रति उत्तरदायित्व की भावना लोगों में बढ़ाने की समस्या राष्ट्रीय जागरण-काल के इन लेखकों के ध्यान का केंद्र थी। इस बात पर ध्यान दिए बिना नहीं रहा जा सकता कि ये सब लेखक देशभक्तिपूर्ण आदर्शों की प्रतिष्ठापना करने के लिए धर्म में आधार ढूँढ़ते थे। उसे भारत के राष्ट्रीय हितों की रक्षा के लिए देश-वासियों को एकताबद्ध करने का विश्वसनीय साधन मानते थे। इन लेखकों की दृष्टि में देश की सेवा और उसे दास बनाए हुए लोगों के विरुद्ध निःस्वार्थ संग्राम धार्मिक एवं नैतिक कर्तव्य-पालन था। बंकिमचंद्र को कभी-कभी भारत में अपने ढ़ंग के 'देशभक्ति-धर्म' का प्रवर्तक माना जाता है। भारत के प्रसिद्ध साहित्यविद् नगेंद्र के शब्दों में सामाजिक जीवन और साहित्य में सच्ची क्रांति मचानेवाले इन लेखकों की रचनाओं ने तथा स्वातंत्र्य-संग्राम के लिए भारत के पौराणि अतीत से प्रेरणा पाने और पूर्वजों से वीरता सीखने के विवेकानंद के उपदेशों ने देश के सार्वजनिक प्रतिनिधियों को बहुत प्रभावित किया। अपने सृजनपथ के आरंभ में निराला भी इनके प्रभाव में आये। बीसवीं सदी के शुरू में ऐतिहासिक एवं पौराणिक विषयों पर देशभक्तिपूर्ण काव्य भारत-भारती, साकेत, यशोधरा रचनेवाले मैथिलीशरण गुप्त तथा ऐतिहासिक नाटकों के रचयिता जयशंकर प्रसाद का अनुकरण करते हुए निराला ने भी भारत के पौराणिक काल के दृश्य पुनः प्रस्तुत किए।''[49]

निराला भूले हुए उस अतीत को और भी मार्मिक ढ़ंग से चित्रित करते हैं - आदान-प्रदान नामक कविता में। इसमें प्राचीनता और नवीनता का संबंध माता और शिशु के रूपक में बांधकर नितांत नया काव्य-सौंदर्य आविष्कृत करते हैं।

"कठिन श्रृंखला बजा-बजाकर
गाता हूँ अतीत के गान,
मुझ भूले पर उस अतीत का
क्या ऐसा ही होगा ध्यान ?
शिशु पाते हैं माताओं के
वक्षःस्थल पर भूला गान,
माताएँ भी पातीं शिशु के
अधरों पर अपनी मुसकान।"[50]

इससे स्पष्ट है कि निराला जिस अतीत का गौरवशाली गाना गाकर राष्ट्र को सचेत बनाना चाहते हैं- वह जीर्ण मूल्यों की पुनःस्थापनावाली सडी-गली विचारधारा की उपज नहीं, अपितु वर्तमान राष्ट्र को प्रेरणा प्रदान करनेवाला ही है।

राष्ट्रीय जागरण के उत्थान-काल में निराला ने साहित्य के क्षेत्र में एक मौलिक काम किया। निराला मूलतः क्रान्ति के कवि हैं, उनका लक्ष्य भारत को विदेशी शासन से मुक्त करना ही नहीं, जनता के सामाजिक जीवन में आमूल परिवर्तन लाने तक विस्तृतरूप में व्यापित भी है। ध्यान दें- राष्ट्रीय जागरण का लक्ष्य ठीक यही था। राष्ट्रीय जागरण के ईमानदार कर्णधार यह अच्छी तरह जानते थे कि मात्र शासन की गद्दी बदलकर विदेशी राजा के स्थान पर स्वदेशी राजा को बिठाने से भारत का सामाजिक नक्षा बदल नहीं जाता। इसलिए समाज में व्यप्त जीर्ण-शीर्ण मूल्यों को तिलांजलि देकर नयी मानवता की प्रतिष्ठा करना भी इनका लक्ष्य था और राष्ट्रीय जागरण का यही अत्यंत महत्वपूर्ण पहलू था। निराला इसी पहलू से बार-बार जुड़ते आये। वे समाज के जीर्ण-सड़ी चीजों को एक झटके से साफ देना चाहते हैं और अपनी कविताओं में इसी क्रान्तिकारी परिवर्तन की ओर लक्षित करते हैं। यहीं पर निराला का छायावादी कवि अपना प्रताप दिखाता है और प्रकृति के धारा और बादल को प्रतीक बनाकर अत्यंत रसात्मक शब्दों में राष्ट्र के क्रांतिकारी पुननिर्माण का आह्वान करता है।

धारा नामक कविता में उन्होंने बल तथा ऊर्जा से उद्वेलित प्रचण्ड जल-धारा का चित्रण किया जो सड़ी-गली चीजों को पल भर में उडा देती है और जमीन को साफ कर देती है। जितनी बड़ी वस्तु हो, उस प्रलयंकारी धारा के सामने घुटने टेक देती है।

"सुना, रोकने उसे कभी कुंजर आया था,
दशा हुई फिर क्या उसकी?-
फल क्या पाया था?
तिनका-जैसा मारा-मारा
फिरा तरंगों में बेचारा
गर्व गँवाया-हारा,
अगर हठ-वश आओगे,
दुर्दशा करवाओगे- बह जाओगे।"[51]

निराला इस कविता में जिस कुंजर का जिक्र करते हैं, व्याख्यायित करने की जरूरत नहीं- वह तो सर्वशक्तिशाली अंग्रेज़ राज ही था। क्योंकि उन दिनों राष्ट्र में अंग्रेज़ों के खिलाफ जो क्रान्ति की धारा फूट पड़ी उसमें कुंजर समान साम्राज्यवाद को उड़ा देने की शक्ति विद्यमान थी। इस प्रकार यह कविता राष्ट्रीय जागरण के समय तरंगोमंगित जनता के उत्साह के परिप्रेक्ष्य में और भी युक्तिसंगत मालूम पड़ती है। क्योंकि कविता में निराला ने धारा के कारण सारे बंधन ढीले होकर सारे प्राण मुक्त हो जाने की बात अनायास ही कह देते हैं और सारे विश्व को इस धारा के प्रलयरूप के सामने झुककर प्रणाम करने की बात भी जोड़ देते हैं।

"आज हो गये ढ़ीले सारे बंधन,
मुक्त हो गये प्राण,
रूका है सारा करूणा-क्रंदन।
बहती कैसी पागल उसकी धारा !
हाथ जोड़कर खड़ा देखता दीन
विश्व यह सारा।"[52]

बहुत छोटे आकार में आरंभ यह धारा देखते ही देखते भीमाकार ग्रहण कर लेती है और उसे बालिका समझकर रास्ते की बाधा बनने के उद्देश्य से खडे महान भूधर को भी ढ़हाकर शिला-कणों में बदल देती है। अत्यंत वेग से आगे बढ़ती इस धारा में निराला पुनः पौराणिक आख्यान जोड़ देते हैं तथा उस धारा की उच्छृंखलता को नग्न प्रलय का-सा ताण्डव तथा धारा को नर-मुण्ड-मालिनी कालिका कह देते हैं।

कविता के अंत में निराला की मौलिकता पुनः स्पष्ट हो जाती है जब वे लिखते हैं -

"छुटी लट इधर-उधर लटकी है,
श्याम वक्ष पर खेल रही है
स्वर्ण किरण-रेखाएँ।
एक पर दृष्टि जा अटकी है,
देखा, एक कली चटकी है।
लहरों पर लहरों का चंचल नाच,
याद नहीं थी, करना उसकी जाँच,
अगर पूछता कोई तो वह कहती,
उसी तरह हँसती पागल-सी बहती-
"यह जीवन की प्रबल उमंग,
जा रही मैं मिलने के लिए,
पार कर सीमा,
प्रियतम असीम के संग।"[53]

उपर्युक्त पंक्तियों से स्पष्ट है कि निराला जिस क्रान्तिकारी परिवर्तन की ओर राष्ट्र को ले जाना चाहते हैं, वह क्रान्ति मात्र विध्वंस की न होकर निर्माणात्मक है। इसलिए उस प्रलयंकारी धारा में भी निराला स्वर्ण-किरण-रेखाओं को तिरते हुए देखते हैं और एक कली को चटकते निहारते हैं। अंतिम पंक्तियों में प्रियतम असीम का प्रसंग निराला के व्यक्तित्व पर छायी आध्यात्मिक पुट का पता देता है। कविता की ये ही पंक्तियाँ एक औसत कविता से निराला की काव्यात्मक प्रतिभा को अलग साबित करती हैं।

प्रकृति के माध्यम से राष्ट्रीय जागरण का समर्थन करनेवाली उनकी एक और सशक्त कविता बादलराग है। इसमें निराला ने पुराने जगत के ध्वंस और राष्ट्रीय मुक्ति संग्राम के लिए बादल को क्रान्तिकारी निमंत्रण देते हैं। निराला की वाणी में जल की धारा जमीन पर बहती हुई जितनी निर्माणात्मक और लयात्मक दिखायी देती है, आसमान से बरसते हुए भी उतनी ही सशक्त और तीव्र सिद्ध होती है।

"तिरती है समीर-सागर पर
अस्थिर सुख पर दुख की छाया-
जग के दग्ध हृदय पर
निर्दय विप्लव की प्लावित माया-

यह तेरी रण-तरी
भरी आकांक्षाओं से,
घन, भेरी-गर्जन से सजग सुप्त अंकुर
उर में पृथ्वी के, आशाओं से
नवजीवन की, ऊँचा कर सिर,
ताक रहे हैं, ऐ विप्लव के बादल !
फिर-फिर।
बार-बार गर्जन
वर्षण है मूसलधार,
हृदय थाम लेता संसार,
सुन-सुन घोर वज्र-हुंकार।''[54]

निराला इस कविता में बादल को विप्लववीर कहते हैं और पृथ्वी के उर में सुप्त अंकुरों में नवजीवन की आशाएँ भरनेवाले रण-भेरी वादक के रूप में बादल को चित्रित करते हैं। कहने की जरूरत नहीं कि सोयी हुई अवस्था में मृतवत् पड़ी जनता को हिलाकर जगाने के लिए रण-भेरी की कितनी आवश्यकता है। वह रण-भेरी निराला ने इस कविता में खूब बजायी है।

निराला अपने सृजन-काल के आरंभ से इस बात से वाकिफ़ थे कि राष्ट्रीय जागरण का केंद्र गाँवों में बसे किसान, पीडित एवं प्रताड़ित सामान्य भूखे जन होने चाहिए - सत्ता के परिवर्तन के लिए घात लगाये बैठे सामंतवादी समर्थक नहीं। इसलिए वे बादल को सामंतवाद के खिलाफ़ और सामान्य जनों के समर्थक के रूप में आंकते हैं -

''रुद्ध कोष है, क्षुब्ध तोष,
अंगना-अंग से लिपटे भी
आतंक-अंक पर काँप रहे हैं
धनी, वज्र-गर्जन से बादल!
त्रस्त नयन-मुख ढाँप रहे हैं।
जीर्ण बाहु, है शीर्ण शरीर,
तुझे बुलाता कृषक अधीर,
ऐ विप्लव के वीर !

चूस लिया है उसका सार,
हाड़-मांस ही है आधार
ऐ जीवन के पारावार!''[55]

बादल उन अमीरों की हवेली के लिए तो प्रलयंकारी गर्जनाएँ सुनाता है लेकिन उससे अपार शस्य और छोटे पौधे हँसते हैं तथा विप्लव-रव से छोटे लोग ही शोभा पाते हैं। निराला मानते हैं कि जिनकी भुजाओं पर राष्ट्र का भाग्य लदा हुआ है- उन किसान लोगों की मुक्ति ही राष्ट्र की असली मुक्ति है। वे कृषक- जिनकी केवल हड्डियाँ शेष रहीं, जिनका शरीर लगभग कंकाल बन चुका, जिनका शोषण सदियों से चला आ रहा है- निराला अपने काव्यनायक बादल को उन किसानों के समर्थन में खडा कर देते हैं। इसलिए बादल के आतंक से किसान भयभीत नहीं, बल्कि प्रसन्न हैं। पर उसी बादल के घन घोर गर्जन से धनी-शोषक सामंतवादी लोग, जो अंग्रजों के साम्राज्यवाद की शरण में पले हैं - काँप रहे हैं। पर मजे की बात है कि उन्हीं अंग्रेज़ों के गौरवशाली कवि शेली से निराला की इस कविता को प्रेरणा मिली, इस बात को नकारा नहीं जा सकता। ये.पे.चेलिशेव लिखते हैं कि

''निराला की रचनाओं में 'बादल राग' का विशेष स्थान है। शेली के 'पछुवा का संबोध-गीत' [Owed to the West wind] और 'बादल' शीर्षक मुक्तकों से इसकी तुलना करने पर इसका क्रांतिकारी तात्पर्य बहुत स्पष्ट हो जाता है। भारत के कुछ साहित्य-विज्ञों के अनुसार शेली की इन रचनाओं से तरुण निराला को प्रेरणा मिली और उनके विद्रोही मन में इनकी गूंज उठी। हिन्दी साहित्य के इतिहासकार डॉ.रवींद्रसहाय वर्मा लिखते हैं, निराला के 'बादल-राग' और शेली के 'ओड टु द वेस्ट विण्ड' में बहुत साम्य है। शेली की विद्रोही आत्मा को अपनी अभिव्यक्ति के लिए पश्चिमी प्रभंजन का प्रतीक मिला था और निराला को बादल का।

हिन्दी और अंग्रेज़ी के इन कवियों की रचनाओं की समानता की चर्चा करते हुए डा.वर्मा प्रथमतः इस बात की ओर ध्यान दिलाते हैं कि पछुवा की प्रतिमा में और सावन के बादल की प्रतिमा में विनाशकारी और निर्माणकारी तत्वों का समावेश है। डॉ.वर्मा के अनुसार, जिस प्रकार शेली चाहते हैं कि पश्चिमी हवा में मिलकर एक हो जाएं, स्वच्छंद विश्व-भ्रमणों में उसका साथी और सहयात्री बनें, ठीक उसी प्रकार निराला बादल से अनुरोध करते हैं कि उन्हें अपने साथ उस जगत में ले जाए, जहाँ मेघ गरजते और बिजलियाँ चमकती

हैं। डॉ.वर्मा कुछ विशेषणों का साम्य दिखाते हैं, जिन्हें शेली पछुवा के लिए और निराला बरसाती बादल के लिए प्रयुक्त करते हैं।

ये सब सादृश्य बहुत ही दिलचस्प है और इनको लगातार बढ़ाया जा सकता है। किंतु हम समझते हैं कि निराला और शेली की कविताओं का प्रधान साम्य प्रथमतः अनुभव होता है, उनकी विचारधारा की एकरूपता में, उस क्रान्तिभावना में- जिससे ये दोनों कविताएँ ओतप्रोत हैं, वास्तविकता के प्रति उनके संघर्षशील, अनम्य रूख में तथा उसे आमूल बदलने की उत्कट अभिलाषा में।''[56]

अंग्रेज़ों की दमन नीति के साथ-साथ राष्ट्रीय जागरण के निर्माण में अंग्रेज़ी साहित्य भी कुछ हद तक सहायक जरूर था। निराला शेली की कविता से प्रभावित जरूर हुए होंगे लेकिन उनकी मौलिकता राष्ट्रीय जागरण के संदर्भ में इस कविता को अप्रतिम बना देती है- इसमें कोई संदेह नहीं।

निराला के सृजनकाल का अत्यधिक समय स्वाधीनता संग्राम के उत्थान तथा राष्ट्रीय मुक्ति आंदोलन से गुजरा है। निराला इस स्वाधीनता संग्राम में मानसिक रूप से लीन हुए थे और उनकी कविता में कई बार स्वाधीनता को लेकर चर्चा चलती है। उन्होंने 'स्वाधीनता पर' शीर्षक से एक कविता लिखी जो दो भागों में 'मतवाला', 23 और 30 अगस्त, 1924 वाले अंकों में निकली थी। निराला इस कविता में स्वाधीनता को लेकर बहुत गंभीरता से चिंतन करते हैं। वे अब तक अपने जीवन में कई दुःखद घटनाओं का अनुभव कर चुके और उन अनुभवों से राहत पाने हेतु वेदांत की ओर आकर्षित हुए। ध्यान रहे, पत्नी मनोहरा देवी समेत समस्त बंधुओं की असमय मौत के बाद जब निराला मानसिक रूप से घायल हुए थे तब स्वामी प्रेमानंद जैसे लोगों के संपर्क में उन्हें विशेष राहत महसूस हुई। वेदांत और शास्त्र तो सारी दुनिया को माया कहते हैं। लेकिन महिषादल राज्य में अंग्रेज़ों की रक्षा में पलते सामंतवादी व्यवस्था के चलते सामान्य जनों की क्या हालत होती है, यह निराला बहुत समीप से देख चुके। इसी समय राष्ट्र की मुक्ति की समस्या से भी वे अवगत होने लगे। इसलिए वे अपने आप में विचार-मंथन करने लगते हैं कि आखिर यह स्वाधीनता कौन-सी बला है?

> ''स्वाधीन -
> स्वाधीन है यह विश्व

अथवा है पराधीन ?
आज तक कितने ही गूढ़ मस्तिष्कों में
आया यह प्रश्न,
पर उत्तर अज्ञात-
अज्ञात ही बना रहा!
पल्लव झड़ते हैं जब
तरू के अति जीर्ण तनु को देखते हैं एक बार,
किन्तु शास्त्र कहते हैं-
'गमन और आगम का
चक्रवत् परिवर्तन नियम है अविनाशी,
पल्लव जब आये थे,
आये स्वाधीन.,
जाते हैं पनी ही इच्छा से मुक्त-स्वाधीन!''[57]

शास्त्र तो मानव समेत प्रकृति के समस्त पदार्थों को स्वाधीन कहते हैं और प्रकृति के कण-कण में निराला को कहीं भी बंधन दिखायी नहीं देते।

''भ्रमर का गुंजार,
वह भी स्वाधीन,
पक्षियों का कलरव,
वह भी स्वाधीन
उदय-अस्त दिनकर का,
तिमिर-हर के अंतर से
तिमिर का उद्गम
और तम के हृदय से
निशानाथ का प्रकाश,
सब हैं स्वाधीन .... ''[58]

लेकिन जिन परिस्थितियों से निराला गुजर रहे हैं, जिस वास्तविकता का उन्हें बोध है, उसके अनुरूप तो यह कथन उन्हें बिलकुल भिन्न लगता है। इसलिए वे चिंतित हैं -

"मेरे साथ मेरे विचार-
मेरे जाति-
मेरे पददलित-
मौन हैं- निद्रित हैं-
स्वप्न में भी पराधीन!
कितनी बड़ी दुर्बलता!"[59]

निराला तो पहले से ही अनेक बंधनों में बंधित हैं, वे स्वयं के साथ अब अपनी जाति और समस्त जनों की ओर नज़र दौड़ाते हैं और पाते हैं कि इस संसार में उनके साथ वे भी पराधीन हैं। राष्ट्रीय जागरण से प्रेरित साहित्य की यह विशेषता रही कि साहित्यकार अपनी जाति की समस्याओं से अवगत होकर साहित्य का निर्माण करता है और उन समस्याओं से जूझने का संदेश भी वह अपनी जाति को संप्रेषित करता है। निराला इस बिंदु पर ठीक यही काम करते हैं। वे अपने जाति-जनों को पददलित देखते हैं और उन पर जितने भी अत्याचार किये जायें, वे तो बस मौन ही साधे हुए हैं। निराला को सबसे खलनेवाली बात यहाँ पर निद्रा है। उनके देश के लोग निद्रामग्न हैं और स्वप्न में भी पराधीन बने हुए हैं। इसका समाधान निराला खुद ढूँढ़ निकालते हैं -

"समझा मैं,
भय ही व्यवस्था का जनक है,
निर्भय अपने को
और दुर्बल समाज को
करके दिखाना है-
'स्वाधीन' का ही
एक और अर्थ 'निर्भय' है।"[60]

निराला इस नींद से, भय से अपने समाज को मुक्त करना चाहते हैं, राष्ट्र को जगाना चाहते हैं, यही तड़प उनकी कविता में व्यक्त होती है। अपने राष्ट्र-जनों की मुक्ति के लिए काव्य-क्षेत्र के अंतर्गत उनकी यह छटपटाहट राष्ट्रीय जागरण का सशक्त प्रमाण है।

निराला की राष्ट्रीय जागरण संबंधी कविताओं में जागो फिर एक बार कविता का विशेष स्थान है। यह कविता दो खण्डों में विभाजित है। प्रथम खण्ड में निराला भारतीय दर्शन,

इतिहास तथा संस्कृति के प्रतीकात्मक प्रयोग से समस्त भारतीयों को जागृत करने का प्रयास करते हैं। इस प्रथम खण्ड की विशेषता यह है कि इसमें निराला ने छायावादी विशेष शैली का प्रयोग किया है और लिखा कि आकाश के तारे, प्रभात की किरणें, यामिनी गंधा और रात्रि आदि सभी प्राकृतिक उपादान आदिकाल से ही संपूर्ण जगत में जागरण का कार्य निभाते आये हैं। इनके माध्यम से निराला सारे देशवासियों को अपनी स्वतंत्रता प्राप्त करने के लिए जगाना चाहते हैं।

''जागो फिर एक बार!
प्यारे जगाते हुए हारे सब तारे तुम्हें
अरुण-पंख तरुण-किरण
खड़ी खोलती है द्वार-
जागो फिर एक बार! ''[61]

इसी कविता में निराला कहते हैं - सूर्योदय हो चुका है, प्रकृति के कण-कण में निरंतर चेतना विद्यमान है। समय का चक्र बिना किसी बाधा के, आगे ही चलता जा रहा है। इस प्रकार सारा परिवेश चेतनशील हो उठा है। ऐसी स्थिति में भारत को भी अब अपनी नींद से जागने की आवश्यकता है, उसे हजार वर्षों की इस पराधीन स्थिति से निकलकर बाहर आना अब ज़रूरी है।

''उगे अरुणाचल में रवि
आयी भारती-रति कवि-कण्ठ में,
क्षण-क्षण में परिवर्तित
होते रहे प्रकृति-पट,
गया दिन, आयी रात,
गयी रात, खुला दिन,
ऐसे ही संसार के बीते दिन,पक्ष,मास,
वर्ष कितने ही हजार-
जागो फिर एक बार!''[62]

कविता के दूसरे खण्ड में निराला राष्ट्रीय जागरण की अभिव्यक्ति के लिए किसी प्राकृतिक प्रतीक या रहस्यात्मक शब्द-विधान का सहारा नहीं लेते। वे सीधी शब्दावली में

राष्ट्र-जनों की अलसता एवं सुषुप्तावस्था पर चोट करते हैं और स्वतंत्रता की प्राप्ति के लिए जनों को उत्साहित करते हैं। इस प्रयास में अनायास ही गुरु गोविंदसिंह जैसे वीर योद्धा का स्मरण निराला कर जाते हैं। इस देश के जनों का अतीत महान है, यह स्फुरण पुनः इस कविता में हो जाता है। इस देश के वीरों ने सैंधवाश्वों पर चलकर चतुरंग सेनाओं के साथ कई युद्ध किये थे।

"जागो फिर एक बार !
समर में अमर कर प्राण,
गान गाये महासिन्धु- से
सिन्धु-नद-तीरवासी -
सैंधव तुरंगों पर
चतुरंग चमू संग
'सवा-सवा लाख पर
एक को चढ़ाऊँगा,
गोविंद सिंह निज
नाम जब कहाऊँगा।'
किसने सुनाया यह
वीर-जन-मोहन अति
दुर्जय संग्राम-राग,
फाग का खेला रण
बारहों महीनों में ?
शेरों की माँद में
आया है आज स्यार-
जागो फिर एक बार!"[63]

गुरु गोविंद सिंह ऐसे प्रतापी वीर पुरुष थे जिन्होंने अपने जनों की स्वाधीनता के लिए अराजकता के विरुद्ध बारहों महीने खून की होली खेली थी। निराला ने काव्य में पौरुष के प्रतीक के रूप में बार-बार सिंह शब्द का प्रयोग किया है। वही इस कविता में भी दिखायी देता है। राष्ट्रीय पौरुष के प्रतीक के रूप में गुरु गोविंद सिंह के साथ सिंह-समूह का प्रयोग भी अत्यंत सार्थक मालूम पड़ता है। अमृत-सन्तान कहकर राष्ट्र जनों को पुकारकर निराला उन्हें

स्वाधीनता प्राप्त करने का आह्वान देते हैं। सिंह-प्रतापी भारतीय जनों के मध्य आज अंग्रेज़ रूपी स्यार आया, उसे भगाने तक आज हमें विराम नहीं लेना चाहिए। यह देश मेष-माता नहीं, जो अपनी संतान को छिन जाना देखकर दुर्बल बनकर आँसू बहाते रहे।

"सिंही की गोद से
छीनता रे शिशु को ?
मौन भी क्या रहती वह
रहते प्राण ? रे अजान !
एक मेषमाता ही
रहती है निर्निमेष-
दुर्बल वह-
छिनती संतान जब
जन्म पर अपने अभिशप्त
तप्त आँसू बहाती है,-"[64]

निराला इस कविता को सुप्त भारतीय शक्ति के जागरण में विनियोग करते हैं। कई विद्वानों का मत है कि अंग्रेज़ों के आगमन से ही भारतीय जनता को संस्कृति या सभ्यता का समाचार मिला या अंग्रेज़ों के ही कारण भारत ने जीवन जीना सीखा। निराला इस वाद से पहले से ही सहमत नहीं हैं। वे मानते हैं कि भारतीयों की आत्मशक्ति के आगे सारा विश्व झुक सकता है। इस आत्मशक्ति का आधार वे भगवद्गीता को मानते हैं। भगवद्गीता का वाक्य कहता है- संसार में कर्म करना मानवमात्र का कर्तव्य है। कर्तव्य पालन ही मानव जीवन की सफलता की कुंजी है। भारतीय जन इस सत्य को- जो इस धरती का ही दिया हुआ सत्य है- भूल चुके और सदियों पहले आलसी बनकर, आपसी कलहों में खोकर पराधीनता के चक्र में चले गये।

"किन्तु क्या,
योग्य जन जीता है,
पश्चिम की उक्ति नहीं-
गीता है, गीता है-
स्मरण करो बार-बार -
जागो फिर एक बार!' "[65]

निराला अंग्रेज़ों के सामने अपने राष्ट्र को घुटने टेकते देखकर विचलित हो जाते हैं। उन्हें लगता है कि इस महान राष्ट्र के पद-रज के सामने पूरा विश्व भी तुल नहीं सकता। इन पंक्तियों से स्पष्ट हो जाता है कि निराला राष्ट्र की मुक्ति में गांधीजी से प्रवर्तित अहिंसावादी आंदोलन की जगह संघर्ष के क्रांतिकारी रूख पर ज़्यादा जोर देते हैं।

“तुम हो महान, तुम सदा हो महान।
है नश्वर यह दीन भाव,
कायरता, कामपरता,
ब्रह्म हो तुम,
पद-रज-भर भी है नहीं
पूरा यह विश्व-भार --
जागो फिर एक बार!”[66]

इसी कोटि की एक और कविता ‘महाराज शिवाजी का पत्र’ है। यह कई कारणों के चलते निराला के राष्ट्रीय-बोध के संबंध में अत्यंत महत्वपूर्ण, कुछ हद तक विवादास्पद भी है। निराला ने इस कविता के संबंध में लिखाः“श्रीकृष्ण संदेश में शिवाजी के पत्र का गद्य में छपा हुआ अनुवाद पढ़कर उसे स्वच्छंद-छंद में पद्यबद्ध करने की मुझे लालसा हुई। पत्र के भावों पर मैंने स्वयं भी अर्थों के अनुसार कल्पना की है। इसलिए आकार कुछ बढ़ गया है।”[67]

निराला ने जिस पत्र को श्रीकृष्ण संदेश में पढ़ने का उल्लेख किया है, उस पत्र का संक्षिप्त रूप (गोविंद सखाराम सरदेसाई की किताब मराठों का इतिहास के आधार पर) कुछ इस प्रकार है -

मिर्जा जयसिंह को शिवाजी ने एक पत्र लिखा- “ओ महाराज, यद्यपि आप एक बड़े क्षत्रिय हैं, तथापि अपनी शक्ति का प्रयोग बाबर के वंश की वृद्धि के लिए करते आये हैं और मुसलमानों को विजयी बनाने के लिए हिन्दुओं का खून बहा रहे हैं। क्या आप इस बात को नहीं समझ पा रहे है कि इस तरह से आप पूरे जगत के सामने अपनी कीर्ति को कलंकित कर रहे हैं ? यदि आप मुझे जीतने के लिए आये हैं तो मैं आपकी राह में अपना सिर बिछा देने के लिए तैयार हूँ, पर चूंकि आप सम्राट् के प्रतिनिधि होकर आये हैं, इसलिए मैं इस बात का निश्चय नहीं कर पा रहा हूँ कि आपके साथ कैसा व्यवहार करूँ? यदि आप हिन्दू धर्म की

ओर से लडें तो मैं आपके साथ सहयोग करने और आपकी सहायता करने के लिए तैयार हूँ। आप वीर एवं पराक्रमी हें। एक शक्तिशाली हिन्दू राजा की हैसियत से आप के लिए सम्राट् के विरुद्ध नेतृत्व ग्रहण करना ही शोभा देता है। आइये, हम लोग चलें और दिल्ली के ऊपर विजय प्राप्त कर लें। हमारा मूल्यवान रक्त अपने प्राचीन धर्म की रक्षा और अपने प्यासे पूर्वजों को संतुष्ट करने के लिए बहे। यदि दो दिल मिल सकें तो वे कठोर से कठोर अवरोध को तोड़ कर फेंक देंगे। मुझे आपसे किसी प्रकार की शत्रुता नहीं है और मैं आप के साथ लड़ने का इच्छुक नहीं हूँ। मैं आपके पास अकेले आने और भेंट करने के लिए तैयार हूँ। तब मैं आपको वह पत्र दिखाऊंगा जो मैंने शाइस्ताखां की जेब से जबरदस्ती छीन लिया था। यदि आप मेरी शर्तें स्वीकार नहीं करते तो तलवार उद्यत है।''[68]

शिवाजी ने इस पत्र में राजा जयसिंह को सूचित किया कि 'औरंगजेब को सहायता करने के बजाय अगर आप मुझसे मिल जाते तो दिल्ली पर विजय प्राप्त कर सकते हैं।' शिवाजी को जयसिंह से लड़ना इसलिए पसंद नहीं था कि वे भी एक हिन्दू थे। निराला ने इसके माध्यम से राष्ट्रीय जागरण के संबंध में उसका काव्यरूप प्रस्तुत किया। महाराज शिवाजी याद दिलाते हैं कि हमारी शक्ति के सामने मेरु पर्वत भी चूर चूर हो जायेगा अतः हमें मिलकर काम करना चाहिए।

> ''....सोचो तुम
> उठती जब नग्न तलवार है स्वतंत्रता की,
> कितने ही भावों से
> याद दिला चोर दुःख दारुण परतंत्रता का,
> फूँकती स्वतंत्रता निज मंत्र से
> जब व्याकुल कान,
> कौन वह सुमेरू
> रेणु-रेणु जो न हो जाय?
> इसीलिए दुर्जय है हमारी शक्ति!''[69]

शिवाजी जयसिंह को याद दिलाते हैं कि अगर हम दोनों आपस में लडाई करके मर जायेंगे तो विदेशी सत्ता को ही इससे लाभ होगा।

"तुम्हें यहाँ भेजा जो,
कारण क्या रण का ?
एक यही निस्संदेह,
हिन्दुओं में बलवान
एक भी न रह जाय।
लुप्त हो हमारी शक्ति
तुर्कों के विजय की।
आपस में लड़कर
हो घायल मरेंगे सिंह,
जंगल में गीदड़ ही
गीदड़ रह जायेंगे-
भोगेंगे राज्य-सुख।"[70]

निराला इस कविता में जिस जयसिंह चित्रण करते हैं, वह साम्राज्यवाद का सहायक एवं विश्वासघाती आंभीक और जयचंद्र की परंपरा की एक और कडी है- जो स्वार्थ के लोभ में अपने ही जनों से धोखा करने को तैयार है। जयसिंह के द्वारा निराला ने उन लोगों की ओर राष्ट्र का ध्यान आकृष्ट करना चाहते हैं जो राष्ट्रीय स्वतंत्रता संग्राम में उदासीन रहते हैं या अंग्रेज़ों के पक्षधर बनकर अपनी ही जाति को अंगूठा दिखाते हैं। निराला शिवाजी के मुँह से राष्ट्र के सारे जनों को ललकार रहे हैं -

"बाहुओं में बहता है
क्षत्रियों का खून यदि,
हृदय में जागती है वीर, यदि
माता क्षत्राणी की दिव्य मूर्ति,
स्फूर्ति यदि अंग-अंग को है उकसा रही,
आ रही है याद यदि अपनी मरजाद की,
चाहते हो यदि कुछ प्रतिकार
तुम रहते तलवार के म्यान में,
आओ वीर, स्वागत है,
सादर बुलाता हूँ।"[71]

इन पंक्तियों में जयसिंह केवल प्रतीक मात्र है, लेकिन निराला का आशय इन पौरुषवचनों के द्वारा राष्ट्र-जनों में राष्ट्र के प्रति अभिमान जगाना ही है।

> ''हैं जो बहादुर समर के,
> वे मरके भी माता को बचायेंगे।
> शत्रुओं के खून से
> धो सके यदि एक भी तुम माँ का दाग,
> कितना अनुराग देशवासियों का पाओगे !-
> निर्जर हो जाओगे-
> अमर कहलाओगे।''[72]

निराला उपर्युक्त पंक्तियों में लोगों को देश की स्वतंत्रता के लिए मर मिटने का संदेश देते हैं। राष्ट्र को माता के रूप में चित्रित करने उसकी रक्षा करनेवाले को ही सच्चा बहादुर कहते हैं। निराला के अनुसार उसी वीर योद्धा को राष्ट्र सदा के लिए याद रखेगा। आगे वे कहते हैं -

> ''...देखो परिणाम फिर
> स्थिर न रहेंगे पैर यवनों के
> ध्वस्त होगा साम्राज्य।
> जितने विचार आज
> मारते तरंगें हैं
> साम्राज्यवादियों की भोग-वासनाओं में
> नष्ट होंगे चिरकाल के लिए।
> आयेगी भाल पर
> भारत की गयी ज्योति,
> हिन्दुस्तान मुक्त होगा घोर अपमान से,
> दासता के पाश कट जायेंगे।''[73]

इससे स्पष्ट है कि निराला का अभीष्ट साम्राज्यवाद का नष्ट ही है जो वर्तमान काल में अंग्रेज़ों का रूप लेकर भारत पर छाया हुआ है। संपूर्ण कविता में राष्ट्रीय मुक्ति की ओर निराला का ध्यान केंद्रित रहा है और उनके सहज ओज एवं पौरुष का उदात्त प्रकटीकरण हर एक पंक्ति में विद्यमान है।

'महाराज शिवाजी का पत्र' कविता को लेकर कुछ विद्वानों का मत है कि निराला ने इस कविता में हिन्दू राष्ट्रवाद का समर्थन किया है और औरंगजेब - शिवाजी के संघर्षकालीन इतिवृत्त से वर्तमान भारत की सांप्रदायिक सद्भावना को ठेस पहुँचने का खतरा भी है। दूधनाथ सिंह ने तो यहाँ तक कह दिया कि "...शिवाजी के प्रसंग में हिन्दू-मुसलमान की यह जातिगत धारणा चाहे कितनी भी सच क्यों न हो, इसे इस रूप में कविता में लाना निहायत ख़तरनाक है। जिन्ना की तरह निराला भी गांधी जी पर अपने एक इन्टरव्यू में यह आरोप लगाते हैं कि 'मैं समझता हूँ, नेता हिन्दुओं का नेता तो बन ही चुका था, मुसलमानों का भी बनना चाहता था।' यही आरोप निराला पर भी लगाया जा सकता है कि 'वह हिन्दुओं का कवि था'।

लेकिन ध्यान रहे, निराला ने जागो फिर एक बार-2, महाराज शिवाजी का पत्र इन दोनों कविताओं को कुछ विशेष मानसिक स्थिति में लिखा था। उन्हें एक ओर 'मतवाला' संपादकों को भी खुश करना था और हिन्दू-मुसलमान संबंधों को दरार न पहुँचाने की अपनी साहित्यिक नीति को भी बरकरार रखना था। इसके अलावा यदि निराला हिन्दू राष्ट्रवाद के ही प्रबल समर्थक होते तो वे लगभग उसी समय 'समन्वय' पत्रिका में 'साहित्य की समतल भूमि' शीर्षक से लेख नहीं लिखते जिसका उद्देश्य कलकत्ते के विष भरे वातावरण में उठे हिन्दू-मुसलमान लोगों के बीच तनाव को कम करना था। निराला ने इस कविता में औरंगजेब को लेकर जो उपमाएँ लिखीं, इतिहास साक्षी है कि उसकी धार्मिक कट्टरता के चित्रण के लिए वे कुछ कम ही पड़ती हैं। रामविलास शर्मा के शब्दों में - "....निराला ने अब तक ऐसा कुछ न लिखा था जिसे हिन्दू-संगठन के समर्थक अपने पक्ष में इस्तेमाल करते। महादेवप्रसाद सेठ, राधामोहन गोकुल जी, नवजादिकलाला श्रीवास्तव सभी का आग्रह था कि निराला ऐसा कुछ लिखें जो सोते हुए हिन्दुओं के खून में जोश पैदा कर दे। निराला ने घोखना शुरू किया। रवींद्रनाथ ने ऐसा क्या लिखा है जहाँ से 'आइडिया' लेकर आज की परिस्थिति के अनुकूल कुछ लिखा जा सके ? रवींद्रनाथ की प्रसिद्ध कविता 'बंदी बीर' याद आयी- 'पंच नदीर तीरे/ बेनी पाकाइया शिरे' उन्होंने गुरु गोविंदसिंह को लेकर एक कविता लिखी- जागो फिर एक बार।.........इसी समय श्रीकृष्ण संदेश नाम के पत्र में मिर्ज़ा राजा जयसिंह के नाम शिवाजी के पत्र का गद्य में अनुवाद छपा। रवींद्रनाथ शिवाजी पर एक कविता लिख चुके थे। निराला

ने उस पत्र को पद्यबद्ध कर डाला, अपनी ओर से वेदान्त के भाव जोडे, हिन्दू समाज में शूद्रों पर अत्याचार का उल्लेख किया। साम्राज्यवाद के विरुद्ध संघर्ष और भारत की स्वाधीनता का उल्लेख किया। पंचवटी प्रसंग के बाद वर्णिक मुक्तछंद में लिखी हुई निराला की यह सबसे लंबी कविता थी। 'मतवाला' के पाँच अंकों में वह छपी। निराला मित्रों के बीच बड़े ओजपूर्ण ढ़ंग से इसका पाठ करते, ध्वनियों के आवर्त, वक्तृता का अजस्र प्रवाह श्रोताओं को मोह लेता।......निराला ने जान-बूझकर दोनों कविताएँ औरंगजेब के समय को लेकर लिखीं। औरंगजेब की धार्मिक कट्टरता जग-जाहिर थी। उसका विरोध न्याय-संगत ही माना जाता। साथ ही कविताओं से ब्रिटिश साम्राज्य के विरुद्ध् क्रान्तिकारी संघर्ष चलाने का निष्कर्ष भी निकलता था।''[74]

अतः हम कह सकते हैं कि इस कविता में प्रस्तुत ऐतिहासिक परिस्थिति विशेष प्रकार का रूपक मात्र है, जिसके सहारे निराला को राष्ट्रीय जागरण पर अपने विचार व्यक्त करने का अवसर मिला था। निराला शिवाजी के द्वारा राजा जयसिंह को की गयी अपील से यही बताने की चेष्टा कर रहे थे कि विदेशी लोग भीतरी झगडों का लाभ उठाकर भारतीयों में आपसी वैर भडकाने का प्रयास करते हैं जिससे देश पंगु हो जायेगा। इसलिए पारस्परिक झगडे भूलकर एक हो जाने पर ही मातृभूमि की मुक्ति के संघर्ष में विजय प्राप्त की जा सकती है।

'राम की शक्तिपूजा' कविता में भी राष्ट्रीय उद्बोधन के लिए कुछ हद तक स्थान मिलता है। यह कविता मात्र राम -रावण का संग्राम को ही नहीं, निराला के वैयक्तिक अनुभवों के संग्राम को तथा राष्ट्र के तत्कालीन संघर्ष को भी चित्रित करती है। इसमें निराला जिस विजय की ओर संकेत किया है- वह अस्पष्ट रूप से ही सही, राष्ट्र की साम्राज्यवादी शक्तियों पर विजय ही है। निराला ने रावण पर राम की विजय के द्वारा प्रकारान्तर से अंग्रेज़ी शासन पर साधारण भारतीय जनों की विजय को ही दर्शाया है। यदि भारतीय जनता राम है, तो भारतीय राष्ट्रीय आंदोलन ही राम-रावण युद्ध और राष्ट्र की मुक्ति ही सीता-प्राप्ति हैं। निराला इन प्रतीकों के माध्यम से बताते हैं कि राष्ट्रीय मुक्ति की समस्या का हल हमारे अंदर ही है और आत्मान्वेषण करके दीक्षा एवं अचचंल मनोस्थैर्य के द्वारा प्रतिकूल परिस्थितियों पर काबू पा सकते हैं।

निराला ने राष्ट्रीय जागरण के उत्थान काल में एक कविता लिखी - 'खून की होली

जो खेली’। इलाहाबाद के छात्रों ने अंग्रेज़ों की दमननीति का डटकर विरोध किया और यह रवैया निराला को बड़ा पसंद आया। इस संदर्भ में जो खून बहा वह निराला को प्रकृति को सुंदर बनाता दिखायी देता है।

“युवकजनों की है जान,
खून की होली जो खेली।
पाया है लोगों में मान,
खून की होली जो खेली।
रँग गये जैसे पलाश,
कुसुम किंशुक के, सुहाये,
कोकनद के पाये प्राण,
खून की होली जो खेली।
निकले क्या कोंपल लाल,
फाग की आग लगी है,
फागुन की टेढ़ी तान,
खून की होली जो खेली।”[75]

इसमें निराला मातृभूमि के लिए खून बहानेवालों की भूरि भूरि प्रशंसा करते हैं और उन्हीं को जगत में मान्य घोषित करते हैं। उन्हें अब प्रकृति का रग-रग खून की होली में रंगी दिखायी पड़ता है। निराला के शब्दों में कहें तो ‘46 के विद्यार्थियों के देशप्रेम के सम्मान में उन्होंने यह कविता लिखी।

निराला की राष्ट्रीय भावना की विशेषता यह है कि उनकी दृष्टि में समाज से राष्ट्र कभी अलग नहीं था। अतः सिर्फ राष्ट्र की मुक्ति को वे पर्याप्त नहीं समझते। जब तक सामाजिक बंधनों से साधारण जनता मुक्त नहीं होगी तब तक राष्ट्रीय जागरण का लक्ष्य पूरा नहीं होगा- यह वे अच्छी तरह समझते थे। इसलिए उन्होंने राष्ट्र-वंदना करते समय कभी जनसामान्य को विस्मृत नहीं किया। यही कारण है कि राष्ट्रीय जागरण को लक्षित करके निराला ने जो भी रचनाएँ कीं, उसी समय उन्होंने इस राष्ट्र की सामाजिक विषमताओं को भी रेखांकित किया। एक तरफ ‘जन्मभूमि मेरी जगन्महारानी’ कहते निराला दूसरी तरफ ‘अधिवास’ में घोषित करते हैं -

''मैंने 'मैं'- शैली अपनायी
देखा दुखी एक निज भाई।
दुःख की छाया पड़ी ह्रदय में मेरे,
झट उमड़ वेदना आयी।''[76]

साधारण जनों को गले लगाकर निराला इस स्थिति को मायाजनित नहीं, सत्य समझते हैं और इसीमें अपना सच्चा मोक्ष मानते हैं। इसलिए कहते हैं तथाकथित मोक्ष मिले या न मिले वे उसका परवाह नहीं करते।

''छूटता है यद्यपि अधिवास,
किन्तु फिर भी न मुझे कुछ त्रास।''[77]

निराला सामान्य जन के लिए अपना सबकुछ मिटाने के लिए तैयार हैं। क्योंकि वे जानते हैं कि इन्हीं की मुक्ति राष्ट्र की असली मुक्ति है। रामविलास शर्मा के शब्दों में कहें तो ''कांग्रेसी स्वाधीनता आंदोलन और निराला की राजनीतिक चेतना में यह अंतर भी है कि निराला के लिए स्वाधीनता आंदोलन अभिन्न रूप से सामाजिक क्रान्ति से जुड़ा हुआ है। देश के नाम पर वह देश की जनता को भूलते नहीं, देश को स्वाधीन होना है इसी जनता के सुखी समृद्ध जीवन के लिए। इसी कारण स्वाधीनता आंदोलन और सामाजिक क्रान्ति परस्पर संबद्ध हैं।''[78]

इसलिए निराला 'विधवा', 'भिक्षुक', 'तोड़ती पत्थर' आदि कविताओं के द्वारा उन्हीं सामाजिक और आर्थिक विषमताओं की ओर संकेत करते हैं और उन पर करूणापूर्ण नज़र दौड़ाकर उन्हें काव्य-वस्तु बनाने में ही अपनी सच्ची जिम्मेदारी मानते हैं।

''वह आता-
दो टूक कलेजे के करता पछताता
पथ पर आता।
पेट-पीठ दोनों मिलकर हैं एक,
चल रहा लकुटिया टेक,
मुट्ठी भर दाने को - भूख मिटाने को
मुँह फटी पुरानी झोली का फैलाता-''[79]

आधुनिक हिन्दी काव्य-युग में अत्यंत करुणरसाप्लावित इस कविता में भिक्षुक का चित्रण अंग्रेज़ी शासन तथा सामंतावादी शोषण के कारण डगमगाती आधुनिक भारत का आर्त दृश्य हमारे सामने रख देता है। भिक्षुक के साथ-साथ ऐसे लोग भी मौज़ूद हैं जिनके परिश्रम के बिना सड़कों या भवनों का निर्माण असंभव है, लेकिन उन्हीं को विश्राम के लिए ठीक जगह भी नहीं मिलती।

''कोई न छायादार
पेड़ वह जिसके तले बैठी हुई स्वीकार,
श्याम तन, भर बँधा यौवन,
नत नयन, प्रिय कर्म-रत-मन,
गुरु हथौडा हाथ,
करती बार-बार प्रहारः-
सामने तरु-मालिका अट्टालिका प्राकार।''[80]

निराला की दृष्टि ऐसी अभाग्य जनता पर जाती है जो खून-पसीना एक करके सडकें तो बनाती हैं लेकिन जिनके लिए उन सडकों पर छायादार जगह भी नहीं है। सबसे खेद की बात है- उनके द्वारा बनी सडकों पर दूसरों की गाडियाँ दौडती हैं और उनसे बने बंगलों में दूसरे लोग रहते हैं लेकिन वे तो हमेशा मज़दूर ही रह जाते हैं। 'सेवा-प्रारंभ' कविता में निराला अकाल पीडित बंगाल के मर्मांतक दृश्यों से कविता को भर देते हैं और उनकी राष्ट्रीयता सामाजिक विषमताओं को समाप्त करने की दृष्टि से आगे बढ़ती है।

''आया स्टीमर, उतरे प्रांत पर, चले
देखा, हैं दृश्य और ही बदले,-
दुबले-दुबले जितने लोग,
लगा देश-भर को ज्यों रोग,
दौड़ते हुए दिन में स्यार
बस्ती में- बैठे भी गीध महाकार,
आती बदबू रह-रह,
हवा बह रही व्याकुल कह-कह,
कही नहीं पहले की चहल-पहल,
कठिन हुआ यह जो था बहुत सहल।''[81]

निराला उन लोगों को बड़ी वेदना से देखते हैं जो अकाल जैसी महान विपत्ति के पाले पड़ते हैं और जिन्हें सरकार की मदद भी नहीं मिलती।

> ''ईश्वर की गाज
> यहाँ है गिरी, है बिपत बड़ी,
> पड़ा है अकाल,
> लोग पेट भरते हैं खा-खाकर पेड़ों की छाल।
> कोई देता नहीं सहारा,
> रहता हर एक यहाँ न्यारा,
> मदद नहीं करती सरकार...''[82]

पीड़ितों को सरकार मदद नहीं करती, पीड़ितों की तरफ महान नेता भी मुड़कर नहीं देखते। निराला को राजनैतिक क्षेत्र सामाजिक सच्चाई से दूर खिंचता हुआ दिखायी देता है। इसी क्षोभ से उन्होंने लोक गीत कजली की धुन पर एक कविता लिखी काले-काले बादल छाये। इस कविता का सीधा संबंध राष्ट्रीय जागरण से है। जापानी आक्रमण के कारण अंग्रेज़ शासन भारत में जरा डगमगा रहा था। क्रिप्स कमिशन का आगमन भारत में हुआ लेकिन उससे असंतुष्ट कांग्रेस ने भारतीय सामान्य जनता को भारत छोड़ो आंदोलन में उतारा। अंग्रेज़ों ने इस समय जघन्य रूप से सामान्य जनता का दमन किया तथा कांग्रेसी सभी नेता लोग जेल में दाखिल किये गये। जब इन लोगों का छुटकारा हुआ तब जनता आशा कर रही थी कि पिछले दमनकाण्ड का विरोध भारी रूप में होगा। लेकिन जनता की आशा के विरुद्ध देश में एक प्रकार की स्तब्धता छा गयी। लोग भरमाए हुए हैं और वीर जवाहर की प्रतीक्षा कर रहे हैं कि वे आकर उन्हें अंग्रेज़ी शासन से मुक्त करेंगे। लेकिन ऐसा हुआ नहीं।

> ''काले-काले बादल छाये, न आये वीर जवाहरलाल!
> कैसे-कैसे नाग मँडलाये, न आये वीर जवाहरलाल!''[83]

निराला देखते हैं कि राष्ट्रीय जागरण के कर्णधार बनने की जिम्मेदारी जिन पर है, वे राजनैतिक नेता लोग अब आभिजात्य वर्ग के प्रतिनिध बन गये हैं जनता की वेदनाओं से उनका कोई सरोकार नहीं है।

> ''महँगाई की बाढ़ बढ़ आयी, गाँठ की छूटी गाढ़ी कमाई,
> भूखे-नंगे खडे शरमाये, न आये वीर जवाहरलाल !

कैसे हम बच पायें निहत्थे, बहते गये हमारे जत्थे,
राह देखते हैं भरमाये, न आये वीर जवाहरलाल।''[84]

रामविलास शर्मा ने इस गीत के बारे में जो लिखा उससे स्पष्ट हो जाता है कि निराला की राष्ट्रीयता तथाकथित राष्ट्रकवियों के द्वारा देशभक्ति के नाम पर नेताओं की स्तुति में लिखे सतही गीतों की राष्ट्रीयता से कैसे भिन्न और श्रेष्ठ है। ''..... अंग्रेज़ शासकों ने जब-जब राष्ट्रीय आंदोलन को दबाया और काँग्रेसी नेताओं को जेल में डाला, निराला ने शासकों का विरोध किया और नेताओं का पक्ष लिया। सन्'43 में भारतीय जनता आशा कर रही थी कि जेल से छूटने पर नेता उसकी समस्याएँ हल करेंगे, उस आशा की सही झलक निराला के गीत में है। किंतु गीत में जनता की यह आशा ही नहीं व्यक्त की गयी, नेताओं को संकेत से यह बता भी दिया गया है कि समस्याओं को हल करने में कितनी कठिनाइयाँ हैं।....जनता निहत्थी है, अंग्रेज़ सशक्त है, राह देखते भरमाए हुए लोग 'वीर' जवाहरलाल को पुकार रहे हैं। एक तरह से ये पंक्तियाँ जनता के लिए चेतावनी भी हैं - रास्ता पहचानो, दूसरों की राह न देखो।''[85]

तेलुगु के नवजागरण कालीन कवि श्री गुरजाड अप्पारावु ने लिखा कि 'देशमंटे मट्टि कादोय- देशमंटे मनुषुलोय।'

अर्थात् देश का मतलब सिर्फ मिट्टी से नहीं है- देश माने जनता है। निराला भी सिर्फ मिट्टी को या सिर्फ प्रदेश विशेष को राष्ट्र नहीं मानते, उनके लिए असली राष्ट्र तो जनता ही है। निराला को अपने राष्ट्र से अपार प्रेम है। वे इस धरती के लोगों को भुखमरी से, आर्थिक अभाव से, तंगी से दम तोडते देख नहीं सकते। जिन कवियों की दृष्टि इन लोगों पर न जाकर 'राष्ट्र..राष्ट्र' कहकर चिल्लाने तक सीमित होती है- ऐसे कवियों की राष्ट्रीयता से निराला की राष्ट्रीयता नितांत भिन्न है।

राष्ट्र के प्रति निराला आदि से ही सजग थे और उन्होंने अपने बचपन में ही देख लिया कि भारत पर कब्जा करने हेतु साम्राज्यवाद ने सामंतवाद को अपना चेला बना दिया। महिषादल राज्य में सामान्य जनों पर अत्याचारों ने निराला को यह सिखाया कि जनता का कल्याण राजा-महाराजाओं का लक्ष्य कदापि नहीं। इसलिए निराला को लगा कि अंग्रेज़ों से पहले इन राजाओं की दासता से सामान्यजनों को विमुक्ति दिलाना ही सच्ची राष्ट्र-मुक्ति

कहलायेगी। उनकी कविताओं में इसी लक्ष्य की ओर संकेत करती हुई सामंतवादी विरोधी चेतना कई रूपों में व्यक्त होती है। 'कुत्ता भौंकने लगा', 'झींगुर डटकर बोला', छलाँग मारता चला गया, 'डिप्टी साहब आए' आदि कविताओं में इसी चेतना का स्वर बलवती रूप में सुनायी पड़ता है। इस दौरे में निराला ने गाँवों में किसान-मुक्ति को लक्ष्य करके जो कविताएँ लिखीं, वे राष्ट्रीय जागरण की लक्ष्य-सिद्धि में भरसक प्रयत्न करनेवाली हैं। निराला अंग्रेज़ों से पहले उन जमींदारों तथा अमीरों की हवेली पर धावा बोलना चाहते हैं।

''जल्दी जल्दी पैर बढ़ाओ, आओ, आओ।
आज अमीरों की हवेली
किसानों की होगी पाठशाला,
धोबी, पासी, चमार, तेली
खोलेंगे अँधेरे का ताला,
एक पाठ पढ़ेंगे टाट बिछाओ।..''[86]

राष्ट्रीयता के नाम पर ढ़ोगी रचनाएँ करनेवाले कवियों तथा निराला की आचरणात्मक कविताओं में बहुत अंतर है। निराला हिन्दी साहित्य में ऐसे कवि हैं जो यह मानते आये कि सामंतवाद ही अंग्रजी साम्राज्यवाद की जड़ है और सामंतवाद का कारा तोडने से ही राष्ट्र को सच्ची स्वतंत्रता मिलेगी। अंग्रजों के साम्राज्यवाद और देशी राजाओं, जमींदारों, ताल्लुकेदारों के सामंतवाद का समझौता ही निराला की नज़र में देश की स्वतंत्रता के मार्ग में असली बाधा है।

4.3. निराला के गीतों में राष्ट्रीय जागरण की अभिव्यक्ति

निराला के गीत भी राष्ट्रीय जागरण से प्रभावित दिखायी देते हैं। वे अपने गीतों में भी मातृभूमि के प्रति उत्कट प्रेम और गर्व की भावना करते हैं। 'गीतिका' में संकलित उनके कुछ गीत इस बात के प्रमाण हैं। नर जीवन के स्वार्थ सकल शीर्षक गीत में वे लिखते हैं:

''नर-जीवन के स्वार्थ सकल
बलि हों तेरे चरणों पर, माँ,
मेरे श्रम - संचित सब फल।''[87]

इस गीत में निराला भारत को माँ के रूप में देखते हैं और उनके चरणों में सारे मनुष्यों के जीवन के स्वार्थ और अपने जीवन के सारे इकट्ठे किए श्रम-फल समर्पित करना

चाहते हैं। राष्ट्र के लिए दो लोगों का श्रम बहुत आवश्यक होता हैः एक- सिपाही का श्रम जो देश को बाह्य शत्रुओं के आक्रमणों से बचाता है। दूसरा- साहित्यकार का श्रम जो देशवासियों को उनके आंतरिक शत्रुओं को बचाता है। आलसीपन, निद्रा, अज्ञान, निरुत्साह और निराशा- ये ही राष्ट्र जनों के लिए भयानक शत्रु हैं। सच्चे कलाकार का कर्तव्य यह होता है कि अपने सारे साहित्य-श्रम का फल राष्ट्रीय जागरण के लिए नियुक्त करे और राष्ट्र की उन्नति के लिए अपनी जिम्मेदारी का पालन करे। इसलिए निराला कहते हैं कि वे अपना साहित्य-श्रम राष्ट्र को ही समर्पित करना चाहते हैं। निराला की कविता हमेशा राष्ट्र को ध्यान में रखकर ही लिखी गयी, यह गीत इस बात का प्रमाण है। इतना ही नहीं वे आगे कहते हैं कि -

> ''जीवन के रथ पर चढ़कर,
> सदा मृत्यु-पथ पर बढ़कर,
> महाकाल के खरतर शर सह
> सकूँ, मुझे तू कर दृढ़तर,
> जागे मेरे उर में तेरी
> मूर्ति अश्रुजल-धौत विमल,
> दृग-जल से पा बल, बलि कर दूँ
> जननि, जन्म-श्रम-संचित फल।''[88]

निराला को मालूम है कि राष्ट्र की मुक्मि का यह संग्राम आसान नहीं है और इस लक्ष्य की प्राप्ति के लिए मौत के पथ पर आगे बढ़ना होगा। इस कंटकाकीर्ण मार्ग में वे घोर से घोरतम कष्ट को भी सहने को उद्यत हैं और इन कष्टों को सहने की शक्ति वे पुनः राष्ट्र माता से ही माँगते हैं। आँसुओं में पवित्र हुई भारतमाता की मूर्ति निराला को इस पथ पर आगे बढ़ाने के लिए हमेशा प्रेरणा देती है। भारतमाता की आँखें से बहनेवाले अश्रुकण ही निराला को इस संग्राम के लिए नैतिकबल प्रदान करते हैं। वे भारतमाता को अश्रुजल-धौत विमल इसलिए कहते हैं कि अपनी संतान की दीनता से अवगत भारतमाता की मूर्ति निराला को हमेशा रोदन-मुद्रा में ही दिखायी देती है। गीत का अंतिम भाग निराला को राष्ट्र प्रेम से भरे सच्चे कलाकार के रूप में प्रतिष्ठा करनेवाला है जब वे कहते हैं -

''बाधाएँ आयें तन पर,
देखूँ, तुझे नयन-मन भर,
मुझे देख तू सजल दृगों से
अपलक, उर के शतदल पर,
क्लेदयुक्त अपना तन दूँगा,
मुक्त करूँगा तुझे अटल,
तेरे चरणों पर देकर बलि
सकल श्रेय-श्रम संचित फल।''[89]

भारतमाता को मुक्त करने के लिए निराला कितने लालायित हैं, यह उनकी उपर्युक्त पंक्तियों से मालूम होता है। वे भारतमाता से इतना ममत्वपूर्ण संबंध स्थापित करते हैं कि वे उनसे प्रार्थना करते हैं कि हमेशा वे अपने बेटे की तरफ अपलक देखते रहे।

भारती-वंदना के माध्यम से भारत-वंदना करनेवाला एक और निराला का गीत वीणावादिनि वर दे शीर्षक से अत्यंत प्रसिद्ध है। वे वीणावादिनि वाणी से प्रार्थना करते हैं -

''वर दे, वीणावादिनि वर दे !
प्रिय स्वतंत्र - रव अमृत-मंत्र नव भारत में भर दे!" [90]

इस गीत में निराला की राष्ट्र-स्वतंत्रेच्छा पुनः बहिर्गत होती है। उनके अनुसार स्वतंत्रता का शब्द ही अपने आप में अमृत मंत्र है जो मृतप्राय राष्ट्र जनों में पुनः प्राणों का संचार करेगा। इसलिए वे शारदा माता से ऐसे स्वतंत्रता मंत्र को नवीन भारत में भरने की प्रार्थना करते हैं। इससे स्पष्ट है कि निराला नव भारत निर्माण का सपना देख रहे थे जिसकी सर्वप्रथम पहचान होगी- स्वतंत्रता। निराला निश्छल मन से प्रार्थना करते हैं कि सारे भेद भाव दूर हो जायें, जो राष्ट्रीय वातावरण को कलुष बना देते हैं और अंधकार को जगह देते हैं। इसलिए वे कहते हैं -

''काट अंध-उर के बंधन - स्तर
बहा जननि, ज्योतिर्मय निर्झर,
कलुष भेद-तम हर / प्रकाश भर
जगमग जग कर दे!"[91]

निराला तो नवीनता के दार्शनिक थे, ताजगीपन और अर्वाचीनता के सच्चे कवि थे। वे राष्ट्र के हर क्षेत्र में नवीनता चाहते थे। अंग्रेज़ों के शासन काल में जो प्राचीन रूढ़ियाँ देश को जर्जर बना रही हैं, उनके सख्त विरोध में निराला हर चीज में नवीनता का स्वप्न देखते हैं -

“नव गति नव लय ताल-छंद नव,
नवल कण्ठ, नव जलद-मंद्र रव
नव नभ के नव विहग-वृंद को
नव पर, नव स्वर दे!"[92]

निराला इस गीत के माध्यम से छायावादी शैली का अप्रतिम उदाहरण स्थापित किया है। यह गीत ‘राष्ट्र’ के नाम से लिखी गयी अनेक कविताओं से अनेक गीतों से भिन्न है और निराला के स्वभाव की भावुकता एवं स्वप्नशीलता का सुंदर शब्दाभिव्यक्ति है।

इसी कोटि का एक और गीत भारति, जय विजयकरे शीर्षक से ‘गीतिका’ में संकलित है। यह गीत भी निराला की राष्ट्रीय चेतना का सुंदर प्रमाण है। इस गीत की विशेषता यह है कि इसमें निराला ने भारत की भौगोलिक रेखाओं के साथ साथ इस राष्ट्र की सांस्कृतिक विशेषताओं का भी अंकन किया है।

“भारति, जय, विजय करे!
कनक-शस्य-कमल धरे !
लंका पदतल शतदल
गर्जितोर्मि सागर-जल,
धोता शुचि चरण युगल
स्तव कर बहु-अर्थ-भरे
तरु-तृण-वन लता वसन,
अंचल में खचित सुमन,
गंगा ज्योतिर्जल-कण
धवल-धार हार गले।
मुकुट शुभ्र हिम-तुषार,
प्राण प्रणव ओंकार,
ध्वनित दिशाएँ उदार,
शतमुख-शतरव- मुखरे![93]

निराला इस गीत में भारतमाता का रूप बहुत ही निराले ढ़ंग से चित्रित करते हैं। भारत के भौगोलिक नक्शे की सुंदर मूर्तिमान कल्पना करके निराला देखते हैं कि लंका द्वीप कनक-शस्य धारण करनेवाली भारतमाता के चरणों के तले रखा गया शतदल पद्म है। हिन्द महासागर का जल भारत माता के चरणों को धोता है और भारत के सघन वन, पेड और सारे लता-गुल्म आदि उस माता के वस्त्र हैं। गंगा नदी का दिव्य जलप्रवाह उस माता का कण्ठ हार बना हुआ है और भारत माता का मुकुट तो हिमालय है। निराला की यह कल्पना इस गीत को अन्य राष्ट्रीय गीतों से अलग कर देती है। इस प्रकार की कल्पना तो अन्य राष्ट्र गीतों में भी मिल सकता है, लेकिन इस गीत को उनसे अलग ठहरानेवाला तत्त्व निराला की सांस्कृतिक दृष्टि है जो भारत की परिकल्पना में एक नया पहलू है।

यह गीत किस प्रकार भारत की सांस्कृतिक छवि को उजागर करता है, इस संदर्भ में दूधनाथ सिंह ने लिखा है कि "निराला के दिमाग़ में भारत की परिकल्पना केवल एक भौगोलिक सीमा के रूप में ही नहीं है। भारत उनके लिए मुख्यतः एक 'सांस्कृतिक इकाई' है। एक ऐसी सांस्कृतिक इकाई, जिसे मिटाया नहीं जा सकता, जिसकी समता और तुलना नहीं की जा सकती, जो बावजूद अनेक झंझावतों के भी अडिग और अमिट है। इसीलिए उनकी भारत की कल्पना अधिक महत्वपूर्ण है। वे इस देश को सिर्फ़ नदियों, पहाडों, समुद्रों और मैदानों की सीमा में ही नहीं बाँधते। यह तो एक प्रकार से किसी भी देश के नक्शे का एक प्रारंभिक रेखा-चित्र होता है, जिसके आधार पर पूरे चित्र की परिकल्पना की जाती है। निराला इस इकहरे और अमूर्त रेखांकन में विश्वास नहीं करते, इसीलिए उन्होंने इससे आगे बढ़कर भारत की कल्पना एक सांस्कृतिक इकाई के रूप में की है। इस कविता में 'प्राण-प्रणव ओंकार' कहकर सारे प्रार्थना-परक भौगोलिक रेखांकन को कवि एक पूर्ण सांस्कृतिक चित्र के रूप में प्रतिमूर्त कर देता है। भारतीय राष्ट्र की इस सांस्कृतिक परिकल्पना को ही आगे की अपनी कविताओं में उन्होंने बार-बार उठाया है और इस प्रयत्न में भौगोलिक रेखांकन धीरे-धीरे उनके लिए गौण होता गया है।"[94]

राष्ट्र की परिकल्पना इस प्रकार एक नये ढ़ंग से करके निराला ने राष्ट्रीय जागरण के संदर्भ में एक अभूतपूर्व गीत की सर्जना की है।

एक अन्य गीत में निराला माँ भगवती से प्रार्थना करते हैं कि वह सारी पुरानी चीजों

का नाश कर दे और भारत की भूमि में देवव्रत जैसे भीषण दीक्षावान लोगों को पैदा करे जो इस देश में नवीन शक्ति जगाये।

''जला दे जीर्ण-शीर्ण प्राचीन,
क्या करूँगा तन जीवन हीन ?
माँ, तू भारत की पृथ्वी पर
उतर रूपमय माया तन धर,
देवव्रत नरवर पैदा कर,
फैला शक्ति नवीन -
फिर उनके मानस-शतदल पर
अपने चारू चरण युग रखकर,
खिला जगत तू अपनी छवि में दिव्य ज्योति हो लीन!''[95]

निराला की कविताओं में बार-बार देवव्रत भीष्म का उल्लेख मिलता है। शायद भीष्म के चरित्र की उद्दण्ड दीक्षा और लगन से निराला प्रभावित हैं इसलिए वे बार-बार भीष्म जैसे लोगों को ही राष्ट्रीय उन्नति के लिए साधन मानते हैं। इस गीत में निराला से की गयी प्रार्थना से स्पष्ट है कि वे भारत की भूमि पर नवीनता के पक्षधर हैं और उन्हें विश्वास है कि यह शक्ति तो शक्ति-स्वरूपिणी माता से ही प्राप्त होगी।

निराला हमेशा भारत माता को एक भावुक कवि की दृष्टि से ही नहीं बल्कि वास्तविक परिस्थितियों से अवगत एक भौतिकवादी की दृष्टि से भी देखते हैं। उन्हें मालूम है कि राष्ट्र की उन्नति तभी संभव है जब राष्ट्र में भौतिक वस्तुओं की समृद्धि हो। वे इस तथ्य से मुख नहीं मोड़ लेते कि धन और व्यापार ही किसी राष्ट्र की भौतिक समृद्धि के मुख्य तत्व हैं। इसलिए वे एक गीत में समृद्धि की अधिनेत्री माँ लक्ष्मी से प्रार्थना करते हैं कि वह राष्ट्र जनों को सुख - चैन से जीवन बिताने लायक जीवनोपाय प्रदान करे।

''जागो जीवन धनिके!
विश्व-पण्य-प्रिय वणिके!
दुःख-भार भारत तम-केवल,
वीर्य-सूर्य के ढ़के सकल दल,
खोलो उषा-पटल निज कर अयि,
छविमयि, दिन-मणिके!''[96]

जीवन में जो लक्ष्मी धनिका के रूप में वर्तमान है, उसके लिए निराला यह गीत लिखते हैं और उसे 'विश्व भर के समस्त द्रव्यों से प्यार करनेवाली' कहते हैं। निराला को मालूम है कि भूखे लोगों को भगवान दिलाने के बजाय उन्हें रोटी खिलाना ही बुद्धिमत्ता कहलायेगी। इसलिए निराला कभी भौतिक वस्तुओं को नज़र अंदाज नहीं करते। निराला देखते हैं कि संपत्ति की यह लक्ष्मी राष्ट्र के वीर्य-सूर्य के कमल दलों को अपनी किरणों के माध्यम से खोल सकती है तो समस्त दुःख का भारवहन करनेवाली भारतमाता का तम तभी दूर होगा। इतना ही निराला उस देवी को मात्र सुख-समृद्धि की देवी के रूप में ही नहीं, ज्ञान का बाजार भारत के लिए खोलनेवाली भारती के रूप में भी देखते हैं। उस देवी की कृपा से राष्ट्र जनों के सकल जीवनोपयोगी वस्तुएँ अबाधगति से प्राप्त हो सकेंगी। निराला उस माता से प्रार्थना करते हैं कि सारे जनों के घर भर दे और ज्ञान के वर फिर भारत को लौटा दे।

> ''गह कर अकल तूलि, रँग-रँगकर
> बहु जीवनोपाय, भर दो घर,
> भारति, भारत को फिर दो वर
> ज्ञान-विपणि-खनि के।
> दिवस-मास ऋतु-अयन-वर्ष भर
> अयुत-वर्ण युग-योग निरंतर
> बहते छोड़ शेष सब तुम पर
> लव-निमेष-कणिके।''[97]

सामान्यतः समझा जाता है कि ज्ञान और संपत्ति दोनों परस्पर विरोधी-तत्व हैं। लेकिन निराला जानते हैं कि राष्ट्र के लिए संपत्ति और भौतिक उन्नति भी उतना ही आवश्यक है जितना कि ज्ञान। दर असल वे भारतभूमि के ज्ञान तत्व को कर्मतत्व से मिलाने के पक्ष में नज़र आते हैं। भारत की आध्यात्मिक उन्नति को आधुनिक वैज्ञानिक युग की भौतिक उन्नति के मिलाप से ही समग्र मानते जान पड़ते हैं। इसलिए यहाँ पर उन्होंने संपत्ति को ज्ञान देनेवाली माता के रूप में कहा और अपने राष्ट्र-जनों को इन दोनों तत्वों से समृद्ध बनाने की प्रार्थना की।

इस संदर्भ में रामविलास शर्मा के ये शब्द ध्यातव्य हैं कि ''निराला और अन्य वेदांती क्रान्तिकारियों में अंतर यह है कि निराला भौतिक समृद्धि को वांछनीय समझते हैं। व्यापार, उद्योगीकरण, अन्य देशों से आर्थिक संबंध- ये सब निराला के चिंतन में सफल क्रान्ति के

अंतर्गत हैं। ....जागो, जीवन - धनिके गीत में धनिका, वणिका, विश्व-पण्य प्रिया- ये शब्द सार्थक हैं। समृद्धि की इस देवी से निराला की प्रार्थना है कि वह जनता के लिए 'बहु जीवनोपाय' प्रस्तुत करे। जीवनोपाय जुटाने के लिए विश्व-पण्य की ओर ध्यानदेना आवश्यक है। लोग कहते हैं कि सरस्वती और लक्ष्मी में वैर है किन्तु निराला इस वैर-भाव की धारणा को स्वीकार नहीं करते। सच्चा ज्ञान जनता की भौतिक उन्नति का विरोधी नहीं, भौतिक उन्नति के नये मार्ग दिखानेवाला है। जिसे वह वणिके और धनिके कहकर संबोधित करते हैं, उसी को भारती, ज्ञान की देवी भी मानते हैं।''[98]

इससे स्पष्ट है कि निराला की राष्ट्रीय विचारधारा तत्कालीन तथाकथित राष्ट्र प्रेमियों की विचारधारा से बिल्कुल अलग है और मात्र भावुक न होकर वास्तविक है। निराला देखते हैं: विश्व- व्यापार के माध्यम से ही भारत पुनः विश्वविजयी हो सकता है और वैज्ञानिक युग के क्रान्तिकारी परिवर्तनों से दूर रहकर राष्ट्र कभी उन्नत नहीं हो सकता। ऐसे संदर्भों में निराला सच्चे अर्थ में जागे हुए कवि मालूम देते हैं। जीवन की तरी खोल दे रे शीर्षक एक और गीत में वे राष्ट्र-जनों को भारत की वर्तमान दुस्थिति की ओर सचेत बनाते हैं। इस गीत का उद्देश्य जीवन के प्रति जाति-जनों का उत्साह बढ़ाकर उन्हें पुनः सचेतन बनाना है।

''जीवन की तरी खोल दे रे
जग की उत्ताल तरंगों पर,
दे चढ़ा पाल कलधौत-धवल,
रे सबल, उठा तट से लंगर।''[99]

कहकर वे राष्ट्र के प्रत्येक जन को जीवन के कर्मक्षेत्र में उतर जाने का आह्वान भेजते हैं, समस्त जगत को एक समुंदर के समान बताते हुए इस समुद्र को पार जाने का संदेश देते हैं। अंग्रेज़ी शासन के समय व्याप्त अकर्मण्यता के रोग से राष्ट्र को पूरी तरह से मुक्ति दिलाना ही निराला का साहित्यिक लक्ष्य था। इसलिए वे कहते हैं:

''क्यों अकर्मण्य सोचता बैठ,
गिनता समर्थ हो व्यर्थ लहर,
आये कितने, ले गये अर्थ,
बढ़ विषम बाडवानल-जल तर।''[100]

अकर्मण्य बनकर पड़े रहने से क्या दुष्फल हो सकते हैं- यह सारा देश देख चुका है। निराला इस स्थिति से जाति-जनों को उठाना चाहते हैं। भारतीय जन अब तक समुंदर की लहरों को ही देखते तट पर रह गये हैं, लेकिन अब उन्हें उस अथाह सागर में डुबकी मारकर उसे पार कर जाने की अपरिहार्य आवश्यकता है। सबसे खेद की बात यह है कि जो समर्थ है, वही अपनी समर्थता पर शक लगाकर व्यर्थ लहरों को गिन रहा है। किसी भी जिम्मेदार कलाकार की यह निबद्धता होती है कि वह इस स्थिति में पड़े देशवासियों को चेतनायुक्त बनाये। निराला ने इस गीत के द्वारा वही काम किया। इतना ही नहीं, उन्हें पूरा विश्वास है कि समर्थ के लिए हमेशा भगवान की सहायता मिलती है। मेहनतकश नाविक के अनुकूल ही हवा बहती है। इसलिए निराला अपने गीत में जाति-जनों को विश्वास दिलाते हैं कि पराजय शाश्वत नहीं होती और जय निश्चय ही मिलनेवाली है। वे यह भी आशा करते हैं कि राष्ट्र सभी बंधनों से मुक्त हो जाय और राष्ट्र-जन अपनी शक्ति पुनः संचित करके जीवन रूपी सागर को तर जायें।

> ''बहती अनुकूल पवन, निश्चय
> जय जीवन की है जीवन पर,
> निरभ्र नभ, ऊषा के मुख पर
> स्मिति किरणों की फूटी सुंदर।
> अपने ही जल से जो व्याकुल,
> ले शक्ति, शान्ति, तर वह सागर,
> तू तर्ण और हो पूर्ण सफल,
> नव-नवोर्मियों के पार उतर।''[101]

इस प्रकार निराला हमेशा उत्साह और आशा में ही जीवन को संचालित मानते हैं और उनकी कविताओं में भी आशा का यही स्वर सुनायी देता है। निराला को आशा है कि जाति जीवन में पुनः वह घडी आयेगी जहाँ देश के सब लोग शक्ति संचित करेंगे और पूर्ण होकर जीवन में सार्थक कहलायेंगे।

फूटो फिर शीर्षक गीत में भी वे इसी प्रकार की आशा को झंकृत करते हैं। इस देश की वैभव-गाथा जिसे अब सारे लोग लगभग विस्मृत कर चुके हैं, निराला उस वैभव को पुनः फूटते देखना चाहते हैं। साम-गान के प्रतीक के रूप में वे देश की शक्ति को जागृत करना

चाहते हैं। इस गीत में वे इस मर्मान्तक सत्य की ओर भी इशारा करते हैं कि जो ज्ञान सरस अथवा आधुनिक दिखायी पड़ता हो, वही लोगों का खून पी रहा है। निराला का संकेत जरूर आधुनिक वैज्ञानिक प्रगति से विच्छिन्न राष्ट्र की ग्रामीण अर्थ-व्यवस्था पर है।

"फूटो फिर, फिर से तुम,
रुद्ध-कण्ठ साम-गान !
दूर हो दुरित, जो जग
जागा तृष्णार्त ज्ञान !
करूण कवल में दुष्कर
भरे प्राण रे पुष्कर,
सरस-ज्ञान अनवरोध
करता नर-रुधिर-पान!"[102]

निराला राष्ट्र का ध्यान उन लोगों की तरफ आकृष्ट करना चाहते हैं जो देशवासियों के तन, धन, जीवन और अन्य प्रकार की संपत्ति हरकर ले जाते हैं।

"देश, देश के प्रति, तन,
हरता धन, जन, जीवन,
व्याध, बेध शर से, दे
रहा रे अशेष ज्ञान !
जागो, हे त्याग तरुण !
प्राची के, उगो, अरुण !
दृग-दृग से मिलो, खिलो
पुष्प-पुष्प वन्य प्राण!"[103]

निराला एक और गीत में भारतमाता का मुक्तकण्ठ से स्तवन करते हैं :

"भारत ही जीवन-धन,
ज्योतिर्मय परम-रमण,
सर-सरिता वन-उपवन।
तपःपुंज गिरि-कंदर,
निर्झर के स्वर पुष्कर,
दिक्प्रान्तर मर्म-मुखर,
मानव-मानव जीवन।"[104]

निराला की देशभक्ति की विशेषता यह है कि उनकी राष्ट्रीय विचारधारा में कहीं उत्थान या कहीं पतन दिखायी नहीं पड़ता। वे जिस अइडिया को लेकर कविता या गीत लिखते हैं, सालों गुजरने के बाद भी उनके मूल स्वर में कोई भेदभाव मालूम नहीं होता। उन्होंने अपने सृजलकाल के आरंभ में जन्मभूमि पर गीत लिखे हैं, यह प्रवृत्ति उनकी आगे की कविताओं में भी विद्यमान है। इसलिए जिस भारतमाता की स्तुति मुकुट शुभ्र हिमागार कहकर आये, उसी भारत का हर पहाड़, हर नदी और वृक्ष-गुल्म निराला के लिए पवित्र बन जाते हैं। इस भारत भूमि में सुरभित हर पुष्प और पल्लवित हर ऋतु निराला के लिए शांति प्रदान करते हैं।

''धौत-धवल ऋतु के पल,
संचारण चरण चपल,
कारण-वारण, वल्कल-
धारण, सुकृतोच्चारण।
नहीं कहीं जड़-जघन्य
नहीं कहीं अहम्मन्य
नहीं कहीं स्तन्य-वन्य,
चिन्मय केवल चिंतन।''[105]

निराला के लिए अब देश सारी जड़ता से विमुक्त और चिंतन से पूरित दिखायी पड़ता है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि निराला के गीत एक तरफ छायावादी काव्य शैली के अप्रतिम उदाहरण हैं और दूसरी तरफ राष्ट्रीय जागरण के संबंध में निराला के कर्तव्य-पालन के भव्य उदाहरण हैं।

4.4. 'तुलसीदास' काव्य में राष्ट्रीय जागरण की अभिव्यक्ति

निराला ने राष्ट्रीय जागरण के उभार के समय महाकवि तुलसीदास की जीवनी को लेकर अपनी महत्त्वपूर्ण कृति 'तुलसीदास' की रचना की। निराला ने अपने 'तुलसीदास' काव्य में तुलसीदास को भारत के सांस्कृतिक जागरण के नेता के रूप में चित्रित किया। तुलसीदास के समय और राष्ट्रीय जागरण के समय को लेकर कुछ समानताएँ अवश्य हैं। लोग तब भी जीवन के प्रति आशा खो बैठे और सत्ताधारी लोग तब भी जन-पीडक रहे। इस स्थिति में निराला ने तुलसीदास के समय देश के सांस्कृतिक वातावरण में छाये अंधकार का

ऐसा चित्रण करते हैं जिसे पढ़ते ही पाठक को वर्तमान भारत पर अंग्रेज़ी शासन के कारण छाये घने दुख के बादल याद आ जाते हैं। आलंकारिक रूप में निराला ने भारत पर मुगलों का आक्रमण चित्रित करते हुए लिखा कि भारतीय संस्कृति का सूर्य अस्त हो चुका है और संध्या का समय आ गया है। भारतीय संस्कृति पर मुसलमान संस्कृति का पलडा भारी हो गया तभी तुलसीदास का जन्म होता है।

''भारत के नभ का प्रभापूर्य
शीतलच्छाय सांस्कृतिक सूर्य
अस्तमित आज रे- तमस्तूर्य दिग्मणडल,
उर के आसन पर शिरस्त्राण
शासन करते हैं मुसलमान,
है उर्मिल जल, निश्चलत्प्राण पर शतदल।''[106]

निराला यहाँ पर प्रकारान्तर से भारतीय संस्कृति पर छाये अंग्रेज़ी शासन का ही चित्रण करते हैं। सच में भी अंग्रेज़ों के शासनकाल में भारतीय सांस्कृतिक सूर्य का अस्त हो गया। भारत का एक एक प्रदेश स्वदेशी राजाओं के हाथों से चलता बना और एक प्रांत के बाद दूसरा प्रांत मुसलमानों की छत्र-छाया में आ गया। अब अंग्रेज़ों ने भी भारत के एक एक राजा को जीतते अपने साम्राज्य को विस्तृत बना दिया और देखते ही देखते सारा भारत अंग्रेज़ों के अधीन हो गया। उस समय भारत की रक्षा के लिए जो लोग खडे थे वे या तो मारे गये या मुगलों के प्रशंसक बनकर रह गये- यह स्थिति भी राष्ट्रीय जागरण के समय अंग्रेज़ों की दासता में लगे सामंतवादी लोगों के चित्रण के लिए निराला को युक्तिसंगत प्रतीत हुआ।

''लड़-लड़ जो रण बाँकुरे, समर,
हो शयित देश की पृथ्वी पर,
अक्षर, निर्जर, दुर्धर्ष, अमर, जगतारण
भारत के उर के राजपूत,
उड़ गये आज वे देवदूत,
जो रहे शेष, नृपवेष सूत-बंदीगण।''[108]

भारत पर मुगलों का राज्य स्थिर हो गया और लोगों को विलासमय जीवन से समय ही कहाँ मिलता कि वे अपने इस दुर्भाग्य के बारे में सोचे, खुद पर घृणा करें और स्वतंत्रता

के लिए उद्यमी बनें ? जिस प्रकार पानी में बहता फूल अपनी गति भूलकर बह जाता है उसी प्रकार देश भी मुगलों के इस सभ्यता-प्रवाह में दिशाविहीन हो गया।

''भूला दुख, अब सुख-स्वरित जाल
कामिनी-कुमुद-कर-कलित ताल पर चलता,
प्राणों की छवि मृदु-मन्द-स्पंद,
लघु-गति, नियमित-पद, ललित छंद,
होगा कोई, जो निरानंद, कर मलता।''[109]

निराला ने इस कविता में नवीन विदेशी सभ्यता के मोह में पड़े भारतीय लोगों का विलास जान-बूझकर चित्रित किया। क्योंकि निराला का समय वह समय था जब थोडी अंग्रेज़ी पढ़े-लिखे लोग भी पाश्चात्य संस्कृति की दुहाई देकर भारतीय संस्कृति को तिरस्कार की दृष्टि से देखते थे और पाश्चात्य जगत को ही सबकुछ मानकर उसका अंधानुकरण करते थे। अंग्रेज़ों का आगमन ही भौतिक सुख-सुविधाओं की प्राप्ति के लिए हुआ था। निराला भारत के इतिहास से भली-भाँति परिचित हैं और जानते हैं कि आज अंग्रेज़ों की तरह पुराने जमाने भी कई लोगों ने इस धरती पर आक्रमण किये थे और यहाँ की संपत्ति को लूटकर ले गये थे। भारत पर बार-बार होते इन आक्रमणों का मूल कारण भी निराला इस कविता में बताते हैं -

''दीनों की भी दुर्बल पुकार
कर सकती नहीं कदापि पार
पार्थिवैश्वर्य का अंधकार पीड़ाकर,
जब तक कांक्षाओं के प्रहार
अपने साधन को बार-बार
होगे भारत पर इस प्रकार तृष्णापर।''[110]

निराला मानते हैं कि जब तक मानव की तृष्णा खतम नहीं होगी तब तक अपनी इच्छाओं की पूर्ति के लिए भारत पर आक्रमण करना बंद नहीं होगा।

निराला की मौलिकता यह है कि उन्होंने तुलसीदास में अपने कविमानस का आरोप किया और तुलसीदास के समय जो मुगलकालीन सामाजिक अवनति थी, उसका वर्तमान भारत की सामाजिक पतनावस्था को चित्रित करने में खूब इस्तेमाल किया। तुलसीदास देखते हैं कि क्षत्रिय, ब्राह्मण और वैश्य सब पतित हो गये और पर्णकुटियों के वासी निम्नवर्ग और

निर्धन लोगों की दशा अत्यंत दयनीय हो गयी। वे उच्च-वर्गों की दमननीति के शिकार बन गये। निराला ने इस संदर्भ में वर्णाश्रम व्यवस्था की वर्तमान विकृतियों का सजीव चित्र अंकित कर दिया है।

''विधि की इच्छा सर्वत्र अटल,
यह देश प्रथम ही था हत-बल,
वे टूट चुके थे ठाट सकल वर्णों के,
तृष्णोद्धत, स्पर्धागत, सगर्व
क्षत्रिय रक्षा से रहित सर्व,
द्विज चाटुकार हत इतर वर्ग पर्णों के।''[111]

वर्तमान राष्ट्र की दुरवस्था का कारुणिक चित्रण भी राष्ट्रीय जागरण के लिए एक प्रधान साधन था। निराला ने मुगल कालीन भारत का कारुणिक चित्र अंकित करके मानों अंग्रेज़ी शासन से पीडित भारत का ही चित्रण किया है। इतना ही नहीं, आपसी कलहों में मग्न जमींदारों के लिए-जिनका प्रतीक इस कविता में क्षत्रिय है, साम्राज्यवाद की चाटुकारिता में लगे विद्वानों के लिए- जिनका प्रतीक द्विज वर्ग है, पेट की समस्या नहीं है। खेद की बात यह है कि मुगल काल से लेकर आधुनिक काल तक भारतीय समाज का शूद्र वर्ग ही पर्णकुटियों में वासकरके दिन भर जीवनोपाय के लिए भटकते- जीवन संग्राम कर रहा है। निराला ने इस वास्तविकता का सजीव अंकन कर दिया।

''चलते-फिरते, पर निस्सहाय,
वे दीन, क्षीण कंकालकाय,
आशा-केवल जीवनोपाय उर-उर में,
रण के अश्वों से शस्य सकल
दलमल जाते ज्यों, दल के दल
शूद्रगण क्षुद्र-जीवन-संबल, पुर-पुर में।''[112]

निराला मानते हैं कि मुक्ति ही प्राणिमात्र के लिए जीवन है और वही सत्य है। बंधविहीन होने के लिए हर एक प्राणी को छटपटाना चाहिए इस माया के अंधकार से बाहर आकर सत्य का द्वार खोलने के लिए सबको परिश्रम करना चाहिए। यही संदेश वे इन पंक्तियों के द्वारा देते हैं -

''करना होगा यह तिमिर पार-
देखना सत्य का मिहिर-द्वार-
बहना जीवन के प्रखर ज्वार में निश्चय-
लड़ना विरोध से द्वंद्व-समर,
रह सत्य-मार्ग पर स्थिर निर्भर-
जाना, भिन्न भी देह, निज घर निःसंशय।''[113]

यहाँ जिस तिमिर की ओर निराला इंगित करते हैं वह देश की परतंत्रता और उस परतंत्रता के कारण उत्पन्न भयानक सामाजिक-आर्थिक दासता ही है। तुलसीदास ने अपना समर जीत लिया। उन्होंने अपने समय में जो अशांतिपूर्ण व्यवस्था थी, उसे शांत करने के लिए मानस की सर्जना की। अब राष्ट्र की बारी है कि उस महाकवि से प्रेरणा पाकर वर्तमान परिस्थितियों से जूझे और आमरण सत्यमार्ग पर निर्भय रहकर असत्य के साथ संघर्ष करें।

रत्नावली के वचनों से तुलसीदास में आये परिवर्तन वाले प्रसंग में निराला ने अज्ञान की रात बीतने पर ज्ञान का प्रभाव किस प्रकार छाया - इसका भव्य वर्णन करते हैं।

''जागो, जागो, आया प्रभात,
बीती वह, बीती अंध रात,
झरता भर ज्योतिर्मय प्रपात पूर्वाचल,
बाँधो, बाँधो किरणें चेतन,
तेजस्वी, हे तमजिज्जीवन,
आती भारत की ज्योतिर्धन महिमाबल।''[114]

इस संदर्भ में यह तुलसीदास के ज्ञानोदय से ज़्यादा राष्ट्रीय उद्‌बोधन का जागरण गीत-सा ही ज़्यादा सुनायी देता है। निराला देखते हैं कि भारत पर युगों का अंधकार जो छाया हुआ था, उसके बीतने का समय अब आ चुका है। राष्ट्रीय जागरण से ओत प्रोत निराला प्रभात की आशा-किरण को देखते हैं और भारत की ज्योतिर्धन महिमा का लौट आना अब अति शीघ्र मानते हैं। लेकिन निराला के अनुसार यह इतना आसान नहीं है। जो संघर्ष भारत को करना है, उसे भी तुलसीदास के सांस्कृतिक-समर के साथ जोड़कर निराला प्रतीकात्मक ढ़ंग से राष्ट्र को स्वतंत्रता के संग्राम के लिए तैयार करते नज़र आते हैं।

''होगा फिर से दुर्धर्ष समर
जड़ से चेतन का निशिवासर,
कवि का प्रति छवि से जीवनहर, जीवन-भर,
भारती इधर, हैं उधर सकल
जड़ जीवन के संचित कौशल,
जय, इधर ईश, हैं उधर सबल माया-कर।''[115]

निराला जिस संग्राम की ओर बार-बार संकेत करते हैं, वह मात्र राजनैतिक सत्ता प्राप्त करने के लक्ष्य से चलनेवाला स्वतंत्रता संग्राम ही हो- सो बात नहीं है। निराला राष्ट्र जनों को अपनी इस प्रतिनिधि कविता के माध्यम से उत्साहित करते हैं कि अब भारत का अंधकार दूर होनेवाला है और जड़ से चेतन के समर में निश्चय जय हमारी ही होगी। जागरण का अर्थ ही चेतना है, नींद का अर्थ ही जड़ता है। राष्ट्र की निद्रावस्था को अब निराला सहन नहीं कर सकते। तुलसीदास कविता के राष्ट्रीय जागरण के संदर्भ में ये.पे.चेलिशेव का मानना है कि -

''उज्वल भविष्य के रोचक स्वप्नों से प्रेरित तथा जनता के सुख के लिए निःस्वार्थ संघर्ष करने का आह्वान करनेवाले तुलसीदास काव्य की रचना जोर पकडते हुए स्वतंत्रता-आंदोलन की ही परिस्थिति में हो सकती थी। वीरता और मातृभूमि के हितार्थ स्वार्थत्याग के उदाहरण अतीत में पाने के निराला के प्रयत्न उस समय हुए जब भारत के जनवादी मनोवृत्ति वाले बुद्धिजीवी तबके, जो स्वातंत्र्य-संग्राम को अपने धार्मिक एवं नैतिक कर्तव्य का पालन समझते थे, ऐसी ही खोजों में संलग्न थे।''[116]

इतना ही नहीं, तुलसीदास को काव्यनायक बनाने के पीछे निराला की राष्ट्रीयता को हिन्दी प्रेम से अलग करके देख नहीं सकते। उन्होंने ढ़ोल-गँवार-शूद्र-पशु-नारी कहकर आधुनिक युग में कई साहित्यकारों की आलोचना का केंद्र बने गोस्वामी जी को शूद्र जनों की वेदना को देखकर तडपने वाले युगकवि के रूप में चित्रित किया और उन्हें जनकवि सिद्ध किया। रामविलास शर्मा ने लिखा कि '' ....उसने तुलसीदास पर अपनी अमर कृति से सिद्ध कर दिया कि हिन्दी का नया साहित्य भक्त कवियों की जनवादी संस्कृति को अपने में समेटकर आगे बढ़ रहा है।....यही नहीं, निराला आरंभ से हिन्दी भाषा और साहित्य के मान-सम्मान का रक्षक बनकर आया। ...जब हिन्दी के कुछ अर्द्धशिक्षित कवियों ने हिन्दी शब्दों,

हिन्दी छंदों और प्राचीन हिन्दी कवियों पर कीचड़ उछाला और अंग्रेज़ी शब्द-चमत्कार के गीत गाये, तब निराला ने इन कविपुंगवों से लोहा लिया और हिन्दी के गौरव की रक्षा की।''[117]

निराला के संपूर्ण काव्य को देखने पर मालूम होता है कि उन्होंने जो बातें जिस भावावेश से अपने काव्य-सर्जनाकाल के पहले दिनों में लिखीं, उन बातों से जीवन पर्यन्त जुड़ते आये। राष्ट्र-प्रेम उन बातों में एक है। अपने राष्ट्र के प्रति ममता, अपने राष्ट्र-जनों की सर्वांगीण मुक्ति की कामना निराला-काव्य के पहले चरण की कविताओं में जिस प्रकार दिखायी पड़ती है, उसी मात्रा में अंतिम चरण की कविताओं में भी। हाँ, अभिव्यक्ति की शैली में परिवर्तन जरूर हुआ। उनकी आरंभिक कविताओं में साम्राज्यवाद के विरुद्ध तीखा विरोध मिलता है जबकि अंतिम चरण की कविताओं में सामंतवाद और झूठे राजनीतिज्ञों पर करारा व्यंग्य। उन्होंने अपने पहले दौर की कविताओं में भारतमाता की भावावेशमयी वंदना की तो बदलती परिस्थितियों के परिप्रेक्ष्य में लिखी गयी परवर्ती दौर की कविताओं में अपने स्वार्थ के कारण राष्ट्रीय मूल्यों के विरुद्ध चलनेवाली शक्तियों पर अचूक शब्द-प्रहार भी किया। इन दोनों संदर्भों में निराला की राष्ट्रीय सक्रिय दिखायी देती है। राष्ट्रीय जागरण का ओजपूर्ण स्वर पूरी ईमानदारी और यथार्थता से निराला के काव्य में आदि से अंत तक प्रतिध्वनित हुआ। निराला का संपूर्ण काव्य इस उक्ति की बानगी है।

संदर्भ-सूची

1. निराला रचनावली भाग-1, सं.नंदकिशोर नवल, पृ.19
2. निराला रचनावली भाग-1, सं.नंदकिशोर नवल, 'बादल राग', पृ.136
3. निराला रचनावली भाग-1, सं.नंदकिशोर नवल, पृ.22
4. निराला रचनावली भाग-1, सं.नंदकिशोर नवल, 'प्रिय यामिनी जागी', पृ.253
5. निराला रचनावली भाग-1, सं.नंदकिशोर नवल, 'मौन रही हार', पृ. 254
6. निराला रचनावली भाग-1, सं.नंदकिशोर नवल, 'भारति जय विजय करे', पृ.246
7. निराला रचनावली भाग-1, सं.नंदकिशोर नवल, पृ.445
8. महाकवि निराला और उनका तुलसीदास, पृ.26
9. निराला रचनावली भाग-1, सं.नंदकिशोर नवल, पृ.305
10. निराला रचनावली भाग-1, सं.नंदकिशोर नवल, पृ.305
11. निराला रचनावली भाग-1, सं.नंदकिशोर नवल, 'सरोज-स्मृति' पृ.315-316
12. निराला रचनावली भाग-1, सं.नंदकिशोर नवल, 'सरोज-स्मृति' पृ.323-324
13. निराला रचनावली भाग-1, सं.नंदकिशोर नवल, पृ.329
14. निराला रचनावली भाग-1, सं.नंदकिशोर नवल, 'दान' पृ.309
15. निराला रचनावली भाग-1, सं.नंदकिशोर नवल, 'तोड़ती पत्थर', पृ.343
16. निराला रचनावली भाग-1, सं.नंदकिशोर नवल, 'खेवा' पृ.201
17. निराला रचनावली भाग-2, सं.नंदकिशोर नवल, भूमिका, पृ.15
18. निराला रचनावली भाग-2, सं.नंदकिशोर नवल, पृ.35
19. निराला रचनावली भाग-2, सं.नंदकिशोर नवल, पृ.47
20. निराला रचनावली भाग-2, सं.नंदकिशोर नवल, पृ.50
21. निराला : आत्महन्ता आस्था, दूधनाथ सिंह, पृ.179
22. निराला रचनावली भाग-2, सं.नंदकिशोर नवल, पृ.92-93
23. निराला रचनावली भाग-2, सं.नंदकिशोर नवल, पृ.47-48
24. निराला रचनावली भाग-2, सं.नंदकिशोर नवल, भूमिका, पृ.15
25. निराला रचनावली भाग-2, सं.नंदकिशोर नवल, पृ.184
26. निराला रचनावली भाग-2, सं.नंदकिशोर नवल, पृ.26
27. निराला रचनावली भाग-2, सं.नंदकिशोर नवल, पृ.167-168
28. निराला रचनावली भाग-2, सं.नंदकिशोर नवल, पृ.17
29. निराला रचनावली भाग-2, सं.नंदकिशोर नवल, पृ.346-347

30. निराला रचनावली भाग-2, सं.नंदकिशोर नवल, पृ.388
31. निराला रचनावली भाग-2, सं.नंदकिशोर नवल, पृ.364-365
32. निराला रचनावली भाग-2, सं.नंदकिशोर नवल, पृ.387
33. निराला रचनावली भाग-2, सं.नंदकिशोर नवल, पृ.413
34. निराला रचनावली भाग-2, सं.नंदकिशोर नवल, पृ.420
35. निराला रचनावली भाग-2, सं.नंदकिशोर नवल, पृ.441-442
36. निराला रचनावली भाग-2, सं.नंदकिशोर नवल, पृ.437-438
37. निराला रचनावली भाग-2, सं.नंदकिशोर नवल, भूमिका, पृ.18-19
38. निराला रचनावली भाग-2, सं.नंदकिशोर नवल, पृ.476-477
39. निराला रचनावली भाग-1, सं.नंदकिशोर नवल, पृ.39
40. निराला:आत्महन्ता आस्था, दूधनाथ सिंह, पृ.137-138
41. निराला रचनावली भाग-2, सं.नंदकिशोर नवल, पृ.44-45
42. निराला रचनावली भाग-2, सं.नंदकिशोर नवल, पृ.66-67
43. निराला की साहित्य-साधना-2, डॉ.रामविलास शर्मा, पृ.148
44. निराला रचनावली भाग-2, सं.नंदकिशोर नवल, पृ.67
45. निराला रचनावली भाग-2, सं.नंदकिशोर नवल, पृ.81
46. निराला रचनावली भाग-2, सं.नंदकिशोर नवल, पृ.81
47. निराला रचनावली भाग-2, सं.नंदकिशोर नवल, 'दिल्ली' पृ.99
48. निराला रचनावली भाग-2, सं.नंदकिशोर नवल, 'दिल्ली', पृ.101-102
49. सूर्यकान्त त्रिपाठी निराला, ये.पे.चेलिशेव, पृ.54-55
50. निराला रचनावली भाग-2, सं.नंदकिशोर नवल, 'आदान-प्रदान' पृ.101-102
51. निराला रचनावली भाग-2, सं.नंदकिशोर नवल, 'धारा' पृ.84
52. निराला रचनावली भाग-2, सं.नंदकिशोर नवल, पृ.84
53. निराला रचनावली भाग-2, सं.नंदकिशोर नवल, 'धारा' पृ.84
54. निराला रचनावली भाग-2, सं.नंदकिशोर नवल, 'बादल-राग [6]' पृ.135
55. निराला रचनावली भाग-2, सं.नंदकिशोर नवल, पृ.136
56. सूर्यकान्त त्रिपाठी निराला, ये.पे.चेलिशेव, पृ.63
57. निराला रचनावली भाग-1, सं.नंदकिशोर नवल, 'स्वाधीनता पर[1]' पृ.131
58. निराला रचनावली भाग-1, सं.नंदकिशोर नवल, पृ.132
59. निराला रचनावली भाग-1, सं.नंदकिशोर नवल, पृ.133
60. निराला रचनावली भाग-1, सं.नंदकिशोर नवल

61. निराला रचनावली भाग-1, सं.नंदकिशोर नवल, 'जागो फिर एक बार[1]' पृ.148
62. निराला रचनावली भाग-1, सं.नंदकिशोर नवल, पृ.149
63. निराला रचनावली भाग-1, सं.नंदकिशोर नवल, 'जागो फिर एक बार[2]' पृ.152-153
64. निराला रचनावली भाग-1, सं.नंदकिशोर नवल, पृ.153
65. निराला रचनावली भाग-1, सं.नंदकिशोर नवल, पृ.153
66. निराला रचनावली भाग-1, सं.नंदकिशोर नवल, पृ.154
67. निराला रचनावाली, भाग-1, सं.नंदकिशोर नवल, 'महाराज शिवाजी का पत्र' शीर्षक कविता के आरंभ में निराला के वाक्य, पृ.156
68. आधुनिकता और राष्ट्रीयता, डॉ.राजमल बोरा, पृ.82
69. निराला रचनावली भाग-1, सं.नंदकिशोर नवल, 'महाराज शिवाजी का पत्र' पृ.160-161
70. निराला रचनावली भाग-1, सं.नंदकिशोर नवल, पृ.161
71. निराला रचनावली भाग-1, सं.नंदकिशोर नवल, पृ.162
72. निराला रचनावली भाग-1, सं.नंदकिशोर नवल, पृ.162-163
73. निराला रचनावली भाग-1, सं.नंदकिशोर नवल, पृ.162-163
74. निराला की साहित्य-साधनाःभाग-1, डॉ.रामविलास शर्मा, पृ.105-106
75. निराला रचनावली भाग-2, सं.नंदकिशोर नवल, 'खून की होली जो खेली' पृ.206
76. निराला रचनावली भाग-1, सं.नंदकिशोर नवल, 'अधिवास' पृ.48
77. निराला रचनावली भाग-1, सं.नंदकिशोर नवल, 'अधिवास' पृ.48
78. निराला की साहित्य-साधना, भाग-2, डॉ.रामविलास शर्मा, पृ.153
79. निराला रचनावली भाग-1, सं.नंदकिशोर नवल, 'भिक्षुक' पृ.76
80. निराला रचनावली भाग-1, सं.नंदकिशोर नवल, 'तोड़ती पत्थर' पृ.343
81. निराला रचनावली भाग-1, सं.नंदकिशोर नवल, 'सेवा-प्रारंभ' पृ.356
82. निराला रचनावली भाग-1, सं.नंदकिशोर नवल, 'सेवा-प्रारंभ' पृ.358
83. निराला रचनावली भाग-2, सं.नंदकिशोर नवल, 'काले-काले बादल छाये' पृ.137
84. निराला रचनावली भाग-2, सं.नंदकिशोर नवल, 'काले-काले बादल छाये' पृ.137
85. निराला की साहित्य-साधना भाग-2, डॉ.रामविलास शर्मा, पृ.89
86. निराला रचनावली, भाग-2, सं.नंदकिशोर नवल, पृ.168
87. निराला रचनावली भाग-1, सं.नंदकिशोर नवल, 'नर जीवन के स्वार्थ सकल' पृ.223
88. निराला रचनावली भाग-1, सं.नंदकिशोर नवल, 'नर जीवन के स्वार्थ सकल' पृ.223
89. निराला रचनावली भाग-1, सं.नंदकिशोर नवल, 'नर जीवन के स्वार्थ सकल' पृ.223
90. निराला रचनावली भाग-1, सं.नंदकिशोर नवल, 'वर दे,वीणा वादिनि' पृ.224

91. निराला रचनावली भाग-1, सं.नंदकिशोर नवल, ‘वर दे,वीणा वादिनि’ पृ.224
92. निराला रचनावली भाग-1, सं.नंदकिशोर नवल, ‘वर दे,वीणा वादिनि’ पृ.225
93. निराला रचनावली भाग-1, भारति, जय, विजय करे गीत से पृ.246-247
94. निराला-आत्महन्ता आस्था पुस्तक से पृ.140
95. निराला रचनावली भाग-1, सं.नंदकिशोर नवल, ‘जला दे, जीर्ण शीर्ण प्राचीन’ पृ.258-259
96. निराला रचनावली भाग-1, सं.नंदकिशोर नवल, ‘जागो, जीवन धनिके’ पृ.256
97. निराला रचनावली भाग-1, सं.नंदकिशोर नवल, ‘जागो, जीवन धनिके’ पृ.256
98. निराला की साहित्य-साधना, भाग-2, डॉ.रामविलास शर्मा, पृ.159-160
99. निराला रचनावली भाग-1, सं.नंदकिशोर नवल, ‘जीवन की तरी खोल दे रे’ पृ.262
100. निराला रचनावली भाग-1, सं.नंदकिशोर नवल, पृ.263
101. निराला रचनावली भाग-1, सं.नंदकिशोर नवल, ‘फूटो फिर गीत’ पृ.267
102. निराला रचनावली भाग-1, सं.नंदकिशोर नवल, ‘फूटो फिर गीत’ पृ.267
103. निराला रचनावली भाग-1, सं.नंदकिशोर नवल, ‘फूटो फिर गीत’ पृ.267
104. निराला रचनावली भाग-2, सं.नंदकिशोर नवल, ‘भारत ही जीवन धन’ पृ.92-93
105. निराला रचनावली भाग-2, सं.नंदकिशोर नवल, पृ.93
106. निराला रचनावली भाग-1, सं.नंदकिशोर नवल, ‘तुलसीदास’ पृ.281
107. निराला रचनावली भाग-1, सं.नंदकिशोर नवल, पृ.282
108. निराला रचनावली भाग-1, सं.नंदकिशोर नवल, पृ.282
109. निराला रचनावली भाग-1, सं.नंदकिशोर नवल, पृ.283
110. निराला रचनावली भाग-1, सं.नंदकिशोर नवल, पृ.288
111. निराला रचनावली भाग-1, सं.नंदकिशोर नवल, पृ.287
112. निराला रचनावली भाग-1, सं.नंदकिशोर नवल, पृ.287
113. निराला रचनावली भाग-1, सं.नंदकिशोर नवल, पृ.289
114. निराला रचनावली भाग-1, सं.नंदकिशोर नवल, पृ.305
115. निराला रचनावली भाग-1, सं.नंदकिशोर नवल, पृ.305
116. सूर्यकान्त त्रिपाठी निराला, ये.पे.चेलिशेव, पृ.76
117. सूर्यकान्त त्रिपाठी निराला, ये.पे.चेलिशेव, पृ.76

पंचम अध्याय

राष्ट्रीय जागरण और निराला का गद्य

पंचम अध्याय
राष्ट्रीय जागरण और निराला का गद्य

5.1 निराला का उपन्यास साहित्य : एक सामान्य परिचय

निराला मात्र कवि ही नहीं, बल्कि कुशल उपन्यासकार भी थे। उनके उपन्यासों की संख्या दस है- 'अप्सरा', 'अलका', 'प्रभावती', 'निरुपमा', 'कुल्ली भाट', 'बिल्लेसुर बकरिहा', 'चोटी की पकड़', 'काले कारनामे', 'चमेली' एवं 'चमेली'। पहले चार उपन्यासों को लेकर कोई विवाद नहीं है लेकिन बाकी दो उपन्यासों को अर्थात् 'कुल्ली भाट' एवं 'बिल्लेसुर बकरिहा' को कुछ विद्वान उपन्यासों की कोटि में न गिनकर लम्बी कथात्मक कृतियाँ कहते हैं। निराला के निष्ठावान अध्येता तथा 'निराला रचनावली' के संपादक नंदकिशोर नवल जी के अनुसार 'कुल्ली भाट' निराला का संस्मरणात्मक उपन्यास है और 'बिल्लेसुर बकरिहा' उनका रेखाचित्रात्मक उपन्यास है। विधा को लेकर किये जाने वाले विवाद इन कृतियों के महत्व को कम नहीं करते, अतः हम इस शोध प्रबंध में इन दोनों कथात्मक कृतियों को उपन्यास ही स्वीकार करते हैं। निराला के अंतिम उपन्यास- 'चोटी की पकड़', 'काले कारनामे', 'चमेली' और 'चमेली' असंपूर्ण हैं। 'चोटी की पकड़' तथा 'काले कारनामे' उपन्यासों में कथा-क्रम कुछ आगे बढ़ता है मगर बाकी दोनों- 'चमेली' और 'चमेली' बिलकुल अधूरे उपन्यास हैं।

निराला हिन्दी उपन्यास साहित्य में प्रेमचन्द युग के उपन्यासकार थे। निराला ने अपना प्रथम उपन्यास सन् 1931 ई. में प्रकाशित किया और उनका अंतिम अधूरे उपन्यास का प्रकाशन-वर्ष सन् 1950 ई. है। निराला का औपन्यासिक रचनाकाल देश में घटित अनेक क्रान्तिकारी परिवर्तनों का साक्षी है और राष्ट्रीय-मुक्ति आंदोलन के उत्थान एवं राष्ट्र की स्वतंत्रता-प्राप्ति का काल है। इस दृष्टि से यह निर्विवाद है कि निराला के उपन्यासों पर उस समय की सामाजिक-आर्थिक एवं राजनैतिक परिस्थितियों का अत्यंत गहरा प्रभाव पड़ा।

'अप्सरा'

यह उपन्यास निराला का सर्वप्रथम उपन्यास है जिसका प्रकाशन सन् 1931 ई. में हुआ। चूँकि यह उनका पहला उपन्यास है और इस समय तक निराला एक कवि के रूप में

लब्धप्रतिष्ठित हो चुके थे। इस उपन्यास में प्रयुक्त गद्य शैली में उनकी काव्यगत शैली का सम्मिश्रण मिलता है। उपन्यास का कथा-काल निराला का समय ही है और कथा-स्थान भी निराला का प्रिय स्थान- कलकत्ता शहर है। उपन्यास की नायिका के स्थान पर निराला ने जान-बूझकर परंपरा के विरुद्ध एक वेश्या-पुत्री को रखा, जिसका नाम है कनक। वह बहुत ही सुंदर, भावपूर्ण एवं ललितमनस्विनी है। उसे छायावादी कविताओं से अपार प्रेम होता है। उसकी माता सर्वेश्वरी कलकत्ता की प्रसिद्ध वेश्या है। वह गायन एवं नर्तन में प्रवीण भी है। उपन्यास के आरंभ में ही कनक पर ईडन गार्डन में पुलिस सुपरिण्टेण्डेण्ट हैमिल्टन वासनाप्रेरित हो- बल प्रयोग का प्रयास करता है तो राजकुमार नामक एक युवक समय पर आकर उसे बचाता है। आपसी कलह में राजकुमार प्रतिद्वंद्वी को उठाकर जमीन पर पटक देता है और इस युवक की देशी युद्धकला कुस्ती के आगे बॉक्सिंग का प्रेमी हैमिल्टन परास्त हो जाता है।

बाद में राजकुमार और कनक कोहिनुर थियेटर में शकुंतला नाटक में साथ-साथ अभिनय करते हैं। तब कनक को मालूम पड़ता है कि राजकुमार वर्मा एम.ए. पढ़ चुका है और अभिनय में अत्यंत कुशल हैं। राजकुमार नाटक में दुष्यंत बनता है तो कनक शकुंतला। नाटक की समाप्ति के बाद ही ईडन गार्डन वाले मामले को लेकर राजकुमार को गिरफ्ततार किया जाता है लेकिन कनक अपनी चालाकी का परिचय देकर उसे छुडाती है। राजकुमार के प्रति सहज ही उसके मन में प्रेम भाव उत्पन्न होता है। लेकिन राजकुमार के हृदय में कनक से प्रेम को लेकर दुविधा है। वह अपने मित्र चंदनसिंह के पुलिस द्वारा पकडे जाने का समाचार पढ़कर भवानीपुर चला जाता है। वह चिंतित होता है कि मित्र चंदन तो देश के लिए जेल की सज़ा भोग रहा है, लेकिन वह स्वयं देश की चिंता न करके साहित्य की सेवा में लगा हुआ है। भवानीपुर में चंदन की भाभी तारा से मिलकर राजकुमार चंदन को पुलिस से बचाने के लिए क्रांतिकारी पुस्तकों को अपने यहाँ ले आता है। पुस्तकों पर लिखे चंदन का नाम काटकर अपना नाम लिख देता है। इधर राजकुमार के द्वारा तिरस्कृत कनक बहुत निराश होती है तथा एक संदर्भ में राजकुमार को तारा के साथ देखकर उनदोनों पर शक करने लगती है। इसी मनोदशा में वह कुँअर साहब के राजतिलक का आह्वान स्वीकार कर लेती है और नर्तकी बनकर विजयपुर जाती है। राजकुमार भी तारा के साथ विजयपुर आता है, क्यों कि तारा के पिताजी विजयपुर के स्टेट में कर्मचारी हैं।

महफिल में कनक गाती है और सब लोग उसकी बड़ी प्रशंसा करते हैं। लेकिन कनक को राजा-महाराजाओं का यह आडंबरपूर्ण किन्तु कूटनीतिक वातावरण अच्छा नहीं लगता। वह देखती है कि जमींदारों का व्यवहार बहुत खराब होता है। वह वहाँ से भाग जाना चाहती है तभी चंदन का प्रवेश होता है। चंदन कनक को बताता है कि तारा उसकी भाभी है और राजकुमार उसे बहूजी कहता है। इस प्रकार चंदन के माध्यम से कनक की गलतफ़हमी दूर हो जाती है। चंदन की सहायता से वह बंगल से बाहर निकलती है। राजकुमार एवं तारा आदि के साथ मिलकर वह रेलवे स्टेशन को जाती है। रेलगाडी में हैमिल्टन और अन्य पुलिस लोगों को चकमा देकर सब लोग कलकत्ता पहुँच जाते हैं। यहाँ राजकुमार और कनक का विवाह संपन्न होता है। पुलिस राजकुमार के घर की तलाशी लेती है और चंदन को राजकुमार समझकर गिरफ्तार कर देती है। असल में चंदन अपने मित्र के स्थान में जेल जाता है ताकि वह अपना वैवाहिक जीवन का आनंद उठा सके। यही पर उपन्यास की समाप्ति होती है।

उपन्यास में निराला के मन की अनेक गहराइयों का प्रकटीकरण होता है। राजकुमार निराला के स्वप्नों का नायक हैं। साहित्य-सेवी, खूब पढ़ा-लिखा, कुश्ती कला में प्रवीण, अंग्रेज़ पुलिस अफसर हैमिल्टन को पकड़कर जमीन पर दे मारनेवाला साहसी- साथ ही शकुंतला नाटक में अभिनय करनेवाला रोमाण्टिक हीरो। राजकुमार साहित्य सेवा करता है तो चंदन सिंह देश की सेवा करनेवाला नायक है। दोनों पात्र निराला के स्वप्निल-नायक पात्र हैं। कनक के माध्यम से निराला ने अपने समय की वेश्या-प्रथा का चित्रण किया और कुँअर साहब दुष्ट जमींदार पात्र है। यद्यपि इस उपन्यास की उपन्यास-कला की दृष्टि से कुछ सीमाएँ हैं लेकिन निराला की प्रथम औपन्यासिक कृति होने के नाते 'अप्सरा' उपन्यास का अपना महत्व है।

'अलका'

यह निराला का दूसरा उपन्यास है और इसका प्रकाशन सन् 1933 ई. में हुआ। इस उपन्यास में 'अप्सरा' की तुलना में यथार्थ जीवन का चित्रण ज्यादा हुआ है और निराला ने इसमें गाँवों में किसानों की स्थिति का सजीव अंकन किया है। जमींदारों के द्वारा सामान्य जनता पर किये जानेवाले अत्याचारों का भी विस्तार से वर्णन 'अलका' में मिलता है।

कथाक्रम के अनुसार गाँव में महामारी फैलने के कारण शोभा नामक युवती के माता-

पिता का देहांत हो जाता है। तब वह अपने पड़ोस के महादेव के घर आश्रय लेती है। इसके पहले ही उसका विवाह विजय नामक युवक के साथ हो जाता है। पर अब तक उसे ससुराल नहीं ले जाया गया। शोभा अपने पति को पत्र लिखती है कि वह आकर उसे ले जाये। इसी बीच उसे पता चलता है कि उसे आश्रय देनेवाले महादेव दुष्ट है और उसे जमींदार मुरलीधर से भी खतरा है। उस स्थिति में वह वहाँ से भाग जाती है और स्नेहशंकर नामक जमींदार के यहाँ पुनः आश्रय लेती है। ये जमींदार बड़े दयालु एवं उदार हैं। वे शोभा को आश्रय ही नहीं देते, उसे पढ़ाकर व्यक्तित्व प्रदान करते हैं और उसका नाम भी बदलकर 'अलका' रखते हैं। उधर शोभा का पत्र मिलते ही विजय उसे साथ लाने के लिए चलता है लेकिन गाँव पहुँचने पर उसे मालूम होता है कि शोभा कहीं चली गयी। वहाँ से लौटते हुए वह अपने मार्ग में ही माता-पिता की मृत्यु का समाचार पाता है, फलस्वरूप वह घर लौटने का विचार छोड़ देता है और ग्राम सेवा का व्रत लेता है।

विजय के मित्र का नाम अजित है। वह भी शोभा की खोज में निकलता है और साधु के वेश में घूमते हुए यह मालूम करता है कि अत्याचारी जमींदार मुरलीधर से बचने के लिए ही शोभा को भाग जाना पड़ा। इसी मुरलीधर से संत्रस्त एक और लड़की वीणा से उसका परिचय होता है और वे दोनों बाद में विवाह करते हैं। जमींदारों की कूटनीति के कारण विजय को जेल जाना पड़ा किन्तु वहाँ से छूटने के बाद वह लखनऊ में प्रभाकर नाम से पुनः देश-सेवा करने लगता है। शोभा उर्फ अलका से उसकी भेंट होती है और प्रभाकर के विचारों वे वह प्रभावित होकर रात्रि-पाठशाला में पढ़ाने लगती है। मुरलीधर अलका का पीछा करता ही रहता है और उसे मालूम हो जाता है कि उस समय उसके हाथ से निकलगयी शोभा ही अलका है। मुरलीधर को एक रात खूब शराब पिलाकर वीणा उसकी पिस्तौल चोरी करदेती है और उसे अलका को देती है। मुरलीधर एक रात अलका के साथ अभद्र व्यवहार करने लगता है और आत्मरक्षा में पहले से ही तैयार अलका पिस्तौल से उसकी हत्या कर देती है। गोली की आवाज सुनकर प्रभाकर घटनास्थल पर पहुँच जाता है और अलका को उसके घर छोड़ने जाता है। सुबह वीणा और अजित जब उसके घर आते हैं- तब नाटकीय ढ़ंग से इस बात का प्रकटीकरण हो जाता है कि प्रभाकर ही अलका का पति विजय है। अदालत में मुरलीधर की हत्या आत्महत्या सिद्ध हो जाती है, क्योंकि पिस्तौल उसकी थी। इस प्रकार उपन्यास का सुखद अंत हो जाता है।

इस उपन्यास में निराला ने गाँवों की यथार्थ स्थिति का चित्रण किया जहाँ के साधारण किसान 'सुराज' का अर्थ भी नहीं जानते। निराला अपने पहले उपन्यास की तरह इसमें भी घटनाओं के चित्रण में नाटकीयता का आश्रय लेते हैं। पर परिवेश के चित्रण एवं कला की दृष्टि से यह उपन्यास 'अप्सरा' विकसित जरूर है। इस उपन्यास की सबसे बड़ी विशेषता है- देश की सामंतवादी व्यवस्था पर निराला का शब्द-प्रहार। उन्होंने इस उपन्यास की रचना से अंग्रेजी साम्राज्यवाद तथा देशी सामंतवाद के घिनौने संबंधों का परदा-फाश कर दिया और मुरलीधर जैसे पात्रों के द्वारा राजा-जमींदार एवं ताल्लुकेदारों की पोल खोल दी। ध्यान रहे, निराला ने स्नेहशंकर का चित्रण भी इसी उपन्यास में किया है, जो राष्ट्रीय मुक्ति आंदोलन के समर्थक जमींदार-वर्ग का प्रतीक है।

'प्रभावती'

निराला का तीसरा उपन्यास 'प्रभावती' का प्रकाशन सन् 1936 ई. में हुआ। इस पर टिप्पणी करते हुए डॉ.नंदकिशोर नवल का लिखना है कि "'प्रभावती' निराला का ऐतिहासिक उपन्यास है। यह पृथ्वीराज - जयचन्दकालीन उत्तर भारत के राजाओं के आपसी संघर्ष को लेकर लिखा गया है, जिसका कारण प्रायः विवाह और कन्यादान हुआ करता था। उसमें एक पक्ष वीर नारियों का भी था, यह दिखलाना निराला का उद्देश्य है।"[1]

'प्रभावती' का कथा-काल मध्ययुगीन भारत है, जिसमें राजाओं महाराजाओं के बीच कन्याओं को लेकर बराबर युद्ध होते रहते थे। निराला ने अपने स्वस्थान बैसवाड़े के प्राचीन संदर्भ को लेकर इस उपन्यास की कथा का संपादन किया है। यद्यपि इस उपन्यास में जयचंद की पुत्री संयोगिता और पृथ्वीराज चौहान का वृत्तांत भी है, तथापि जयचंद के पुत्र देव और प्रभावती की प्रणयगाथा ही उपन्यास की मुख्य कथा मानी जा सकती है। प्रभावती महेश्वर सिंह की पुत्री है। पिता उसका विवाह बलवन्त सिंह के साथ तय करते हैं लेकिन प्रभावती को मालूम होता है कि बलवन्त सिंह ने यमुना के साथ अत्याचार किया है। इसलिए वह इस विवाह का विरोध करती है और राज्य से निकल पड़ती है। बाद में देव से उसका प्रेम हो जाता है। वह इतनी साहसी युवती है कि बाद में मणिपुर के सिपाही के साथ इकट्ठे किये गये कर को लूटकर वह बलवन्त को आतंकित कर देती है। यमुना उसकी सखी के रूप में रहती है। अनेक घटनाओं के बाद प्रभावती राजकुमार देव से यमुना की छोटी बहन रत्नावली का

विवाह करने की कोशिश करती है। प्रभावती मूलतः त्याग का प्रतीक है। वह संयोगिता-स्वयंवर के समय पुरुष वेश में लड़कर संयोगिता की सहायता करती है और घायल होकर प्राण त्याग देती है।

निराला ने इस उपन्यास के माध्यम से मुख्यतः मध्ययुगीन भारत की गिरी हुई राजनैतिक परिस्थितियों को चित्रित किया। उन्हें लगता है कि आधुनिक भारत की कई समस्याओं की कई जड़ें मध्ययुगीन भारत में हैं। उदाहरण स्वरूप शहाबुद्दीन गोरी अनेक बार पराजित हो लौट जाता है, लेकिन उसे इस देश की राजनीति की तह मालूम होने लगती। वह ताड़ लेता है कि ऐसे अनैक्य भारत पर कभी भी उसकी पकड़ बन सकती है। बाद में वह इस प्रयत्न में सफल भी होता है। निराला इस स्थिति के चित्रण से मध्ययुगीन भारत से वर्तमान भारत की तुलना करने पर पाठकों को बाध्य कर देते हैं। निराला ने इस उपन्यास में सामान्य जनता की करुणास्पद स्थिति का जो चित्रण किया, उसकी प्रेरणा तो उन्हें अपने वर्तमान भारत से ही मिली।

'निरुपमा'

'निरुपमा' का प्रकाशन वर्ष भी सन् 1936 ई. ही है। यह निराला का एक और सामाजिक उपन्यास है जिसमें उन्होंने पात्रों के चित्रण में मनोवैज्ञानिकता का सहारा लिया। हिन्दी के कुछ विद्वान मानते हैं कि यह निराला का सर्वोत्तम उपन्यास है।

इस उपन्यास का कथा-स्थल लखनऊ है। निरुपमा इस उपन्यास की नायिका का नाम है। वह अपने पिता पं.रामलोचन की मृत्यु के पश्चात् उनकी समस्त जमींदारी की उत्तराधिकारिणी बनती है। किन्तु अल्पायु की वजह से उसके मामा योगेश एवं उसके पुत्र सुरेश जमींदारी का सारा कार्य-भार संभालते हैं। वे स्वभाव से चालाक हैं, अतः निरुपमा की आज्ञा के नाम पर जमींदारी को लूटते हैं और किसानों का शोषण करते हैं। इस शोषण को स्थायी रूप देने के लिए योगेश निरुपमा का विवाह अपने एक संबंधी यामिनीहरण मुखर्जी से करना चाहता है। लेकिन निरुपमा कृष्ण कुमार से प्रभावित होती है और उससे प्रेम करने लगती है। कुमार लंदन से अंग्रेजी में डी.लिट की उपाधि लेकर आया है। उसे विश्वविद्यालय में उचित नौकरी नहीं मिली जिसका कारण बंगाली लोगों का प्रान्तीय झुकाव ही है। कुमार का साक्षात्कार लेने वालों में बंगाली ही ज्यादा हैं जिनके कारण यामिनीहरण मुखर्जी को यह

नौकरी प्राप्त होती है। कुमार निराश न होकर बूटपॉलिश का काम आरंभ कर देता है और आत्मसम्मान के साथ जीने लगता है।

निरुपमा को पता चलता है कि कुमार का पैतृक स्थान उन्नाव जिले का रामपुर गाँव है। कुमार की पढ़ाई के लिए उसके पिताजी अपनी जायदाद यामिनी बाबू के पास ही रेहन रखते हैं। लेकिन अब सुरेश आदि के कारण रामपुर में उसके परिवार पर संकट छा जाता है। रामपुर जाने के बाद निरुपमा को पता चलता है कि उसके मामा योगेश अपने बेटे के साथ मिलकर गरीब-लाचार किसानों के साथ अन्याय-अत्याचार करता है। कुमार की माता सावित्री देवी अपने छोटे बेटे रामचंद्र के साथ गाँव में ही रहती है। उनके खेत और बाग बेदखल कर लिये गये हैं तथा गाँव वाले उनका सामाजिक बहिष्कार भी करते हैं क्योंकि उनका बेटा कुमार विलायत जाकर आया है। निरुपमा अपनी जमींदारी के बारे में योगेश बाबू से हिसाब पूछती है तो उसे पता चलता है कि उसकी जमींदारी का बहुत ज्यादा हिस्सा योगेश बाबू और सुरेश मिलकर स्वाहा कर गये। निरुपमा को यह भी मालूम होता है कि कुमार के परिवार की सहायता करने के कारण ही किसान मलिकवा की हत्या की गयी है।

कुमार अब नगर में कमल को दो सौ रूपये प्रतिमास पर अंग्रेजी की ट्यूशन लेने लगता है। वह अब आर्थिक रूप से कुछ निश्चिंत हो जाता है और अपनी माँ तथा छोटे भाई को शहर ले आता है। यामिनी हरण से निरुपमा विवाह करना नहीं चाहती और उसका चरित्र भी साफ नहीं है। वह प्रो.दुबे की बेटी सुशीला के साथ संबंध बनाकर उसे गर्भवती बनाता है लेकिन पैसों के लिए निरुपमा से विवाह के लिए तैयार होता है। निरुपमा अपनी सहेली कमल की सहायता से उसे सबक सिखना चाहती है। योजना के अनुसार निरुपमा के स्थान पर सुशीला बैठती है और यामिनी बाबू के साथ उसका विवाह संपन्न हो जाता है। असलियत जानकर यामिनी बाबू चिल्लाने लगते हैं तो निरुपमा सारी महफिल के सामने उसकी पोल खोलकर रख देती है। कुमार और निरुपमा के विवाह से उपन्यास का सुखद अंत होता है और गाँववाले भी कुमार के परिवार को स्वीकार करते हैं।

‘कुल्ली भाट’

‘कुल्ली भाट’ निराला की ऐसी रचना है, जिसकी विधा के निर्धारण को लेकर हिन्दी साहित्य के विद्वानों में कई मत भेद हैं। कुछ विद्वान इसे लम्बी कथात्मक कृति मानते हैं, कुछ

विद्वानों की राय में यह संस्मरण हैं कुछ अन्य विद्वान इस रचना को रेखाचित्र मानने के पक्ष में हैं। डॉ.नंदकिशोर नवल जी के अनुसार यह कृति संस्मरणात्मक उपन्यास है। निराला के निष्ठावान अध्येता डॉ.रामविलास शर्मा का मानना है कि ''आकार में यह पुस्तक लघु उपन्यास जैसी है किन्तु उसकी रचना में आत्मकथा, जीवन-चरित्र, संस्मरण, रेखाचित्र कई विधाएँ मिल गयी हैं।''[2]

इस उपन्यास में निराला ने उपन्यास की प्रचलित परंपरा के सारे नियम तोड़कर इसे अपनी इच्छा के अनुसार तराशा और इसकी रचना में किसी कल्पनाप्रसूत चमत्कार को आने नहीं दिया। इसमें कुल्ली के साथ खुद निराला की कहानी भी मिलती है। उपन्यास की भूमिका में निराला ने लिखा ''पं.पथवरीदीन जी भट्ट (कुल्लीभाट) मेरे मित्र थे। उनका परिचय इस पुस्तिका में है। उनके परिचय के साथ मेरा अपना चरित भी आया है, और कदाचित् अधिक विस्तार पा गया है।''[3]

कुल्ली का परिचय निराला को ससुराल के रेल्वे स्टेशन पर होता है। कुल्ली एक्का चलानेवाले एक साधारण मनुष्य हैं, समाज में उनका आदर नहीं है। निराला को बाद में पता चलता है कि कुल्ली यौन विकृति का शिकार हैं, इसलिए ससुरालवाले उन्हें दूर रखना चाहते हैं। लेकिन स्वभाव के अनुसार निराला उनके नजदीक जाते हैं और पाते हैं कि इस आदमी में कई ऐसे सद्गुण विद्यमान हैं जो समाज के तथाकथित भद्रपुरुषों में प्रायः अप्राप्य हैं। एक ओर वे कुल्ली का जीवन-चरित भी लिखते हैं और दूसरी ओर अपना जीवन-चरित भी। निराला अपने ससुराल वालों को, सासू माँ के व्यवहार को, गौने को, पत्नी के साथ अपने संबंधों को बेतहाशा वर्णित करते हैं। कुल्ली से मुलाकात के संदर्भ के बाद निराला उपन्यास में गंभीरता का रूख अपनाते हैं। जहाँ साहित्य में निराला एक महान योद्धा हैं, सामाजिक क्षेत्र में कुल्ली भी एक योद्धा है। कुल्ली निराला की आँखों के सामने ही चरित्र के कई सोपान अपने आप निर्मित करते हैं और उच्चता को प्राप्त होते हैं। वे गाँव में असहायों की मदद करते हैं। जब बिंदा खटिक की दुलहन मर रही थी, तब गाँव में कोई भी उसे बचाने के लिए आगे नहीं आता। तब कुल्ली आकर उसकी रक्षा करते हैं। वे एक मुसलमान महिला से विवाह करते हैं और बातूनी आदर्शवादियों को आचरणात्मक आदर्शवाद की ताकत दिखाते हैं। वे अछूतों की सेवा में लगे रहते हैं और उनके लिए पाठशाला भी चलाते हैं। निराला जो काम अपने जीवन

में करना चाहते, वे सारे काम कुल्ली करके दिखाते हैं। जिस प्रकार के सामाजिक जीवन को निराला अपनी इच्छा के अनुसार बिताना चाहते और अनेक कारणों के चलते पूरी तरह बिता नहीं पाते, वह सामाजिक जीवन कुल्ली बड़ी निबद्धता एवं आनंद में बिताते हैं। कुल्ली बाद में कांग्रेसी स्वयं सेवक भी बनते हैं और जनांदोलनों से खुद को इतना जोड़ते हैं कि उनकी सारी चारित्रिक विकृतियाँ धीरे-धीरे गायब हो जाती हैं और उनका व्यक्तित्व स्वर्ण के समान निखरता है। कई संदर्भों में वे निराला के व्यक्तित्व से भी उन्नत दिखायी देते हैं। निराला कुल्ली से संचालित पाठशाला को देखते हैं और अछूत बालकों से उनकी आत्मीयता देखकर निराला लज्जित होते हैं। निराला को लगता है कि अब तक जो कुछ पढ़ा है-कुछ नहीं, जो कुछ किया है-व्यर्थ है, जो कुछ सोचा है-स्वप्न है। कुल्ली अब निराला को जंबुकों में सिंहसदृश दिखायी देते हैं। उन्हें तअज्जुब होता है कि एक साधारण आदमी के अंदर इतनी असाधारण शक्ति कैसे आयी !

कुल्ली के व्यक्तित्व की सबसे बड़ी विशेषता उनका अदम्य व्यक्तित्व है। वे बड़े आदमी तो नहीं बने, समाज में प्रसिद्धि तो हासिल नहीं की फिर भी वे किसीको नहीं मानते- यहाँ तक कि सर्वशक्तिमान ईश्वर को भी। बड़े बड़े राजनैतिक लोग जिस काम को कर नहीं पाते, वह काम कुल्ली अकेले करके दिखाते हैं। इसलिए जीवन के अंत में कुल्ली के चेहरे पर एक असीम शान्ति की आभा को छलकती मिलती है। कुल्ली की मातमपुरसी में निराला शामिल नहीं होते। जब कुल्ली के एकादशाह में जाने के लिए गाँव के पण्डित जी मना करते हैं, तब निराला खुद पण्डित बनकर कुल्ली के घर जाते हैं- सारे विरोधों का तिरस्कार करके। वे कुल्ली का एकादशाह संपन्न कराते हैं और यहीं पर उपन्यास की समाप्ति होती है।

'बिल्लेसुर बकरिहा'

'बिल्लेसुर बकरिहा' का प्रकाशन वर्ष सन् 1942 ई. है। इस कृति के बारे में भी जैसे आगे कहा जा चुका- कई विवाद हैं। पर निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि यह निराला का रेखाचित्रात्मक उपन्यास है। इसमें निराला ने खुद को कहीं आने नहीं दिया और एक अत्यंत साधारण व्यक्ति के अथक जीवन-संघर्ष का यथार्थवादी चित्रण किया।

'बिल्लेसुर बकरिहा' का कथा-स्थल निराला का पैतृक स्थान बैसवाड़ा ही है। निराला अपनी कविताओं में, कहानियों में जिस साधारण गाँव का चित्रण करते हैं - जहाँ अधिक लोग

शूद्र होते हैं, कुछ ब्राह्मण भी होते हैं जो मज़बूरी में बकरियाँ पालते हैं और काश्तकारी करते हैं, वहीं गाँव यहाँ भी चित्रित हुआ। बिल्लेसुर ऐसा ही एक गरीब ब्राह्मण है। उपन्यास के प्रारंभ में निराला बिल्लेसुर शब्द को लेकर बड़ी गंभीर भाषावैज्ञानिक चर्चा करते हैं। मुक्ताप्रसाद के चार लड़कों में बिल्लेसुर तीसरा लड़का है। पिता की मृत्यु के बाद चारों भाई अलग हो जाते हैं और बिल्लेसुर बर्दवान जाकर सत्तीदीन सुकुल के यहाँ गाय चराने का काम करते हैं। शुक्ल जी बर्दवान के महाराजा के जमादार हैं। बिल्लेसुर को दरबार की चिट्ठियाँ भेजने का काम भी मिल जाता है। उन्हें यह नौकरी अच्छी नहीं लगती इसलिए सिपाही बनने की कोशिश भी करते हैं लेकिन कद के कारण वह नौकरी प्राप्त नहीं होती। सुकुल जी के यहाँ बिल्लेसुर जीवन के कई पाठ चुपचाप सीखते हैं, अनेक यातनाओं का सामना करते हैं, निरंतर इसकी खोज में रहते हैं कि कैसे इस जीवन से उभरे। जब सुकुल जी पत्नी समेत जगन्नाथ की यात्रा करते हैं, तब बिल्लेसुर भी साथ में जाते हैं। सुकुल जी को प्रसन्न करने से जीवन-नैया पार होगी, इस विचार से बिल्लेसुर सुकुल जी से गायत्री मंत्र की दीक्षा लेते हैं। लेकिन एक साल के बाद में जीवन में कोई बदलाव नहीं आया तो सुकुल जी की सेवा छोड़कर अपने गाँव वापस लौटते हैं।

यहाँ से निराला गढ़ाकोला के एक सामान्य किसान का संघर्ष बिल्लेसुर के जीवन-संग्राम के माध्यम से चित्रित करते हैं। बिल्लेसुर अपने जीवन-पाठों का बहुत खूबी से इश्तेमाल करते हैं- किसी पर यकीन नहीं करते, किसी से भावावेशपूर्ण संबंध नहीं रखते, सिर्फ अपने ही बल संघर्ष जारी रखते हैं और चुपचाप अपना काम करते चले जाते हैं। वे गाँव में बकरियाँ पालते हैं, जमींदार से खेत लेकर काश्तकारी करते हैं। खुद परिश्रम करते हैं, शकरकंदें लगाते हैं। बिल्लेसुर की विशेषता है कि एक बार किसी का धोखा खाने के बाद वे बहुत सतर्क हो जाते हैं। जब गाँव के लोग उसे बकरिहा कहकर चिढ़ाते हैं तो वे अपने बकरी के बच्चों को उनके नाम रख देते हैं और उनसे बदला लेते हैं। विवाह के संबंध में त्रिलोचन की चालाकी को पहचानते हैं और सावधान हो जाते हैं। बिल्लेसुर ईश्वर को भी नहीं मानते यदि वह रक्षा नहीं करें तो। महावीर जी से बिल्लेसुर प्रार्थना करते हैं कि बकरियों की रक्षा करना। लेकिन गाँव वाले उनके बकरे चुरा लेते हैं तो कृद्ध होकर महावीर की प्रतिमा को तोड़ देते हैं। इस प्रकार हम देखते हैं कि बिल्लेसुर ईश्वर के साथ भी भावपूर्ण संबंधों की जगह व्यावहारिक संबंध ही रखते हैं।

बिल्लेसुर अपनी मेहनत के आधार पर आगे बढ़ते हैं, कई कठिनाइयों के बावजूद वे अच्छी - खासी रकम जमा कर लेते हैं। गाँव के लोग जो पहले उनसे घृणा एवं ईर्ष्या करते थे, अब उसकी प्रशंसा में लग जाते। गाँव के जमींदार भी बिल्लेसुर को देखने आते हैं और बिल्लेसुर की साख जम जाती है। अंततः उनका विवाह भी हो जाता है इसप्रकार बिल्लेसुर अपने जीवन की सारी समस्याओं पर जीत हासिल करते हैं। लेकिन बिल्लेसर की विजय एक रात में नहीं मिली। इस विजय के लिए वे कड़ा परिश्रम करते हैं। निराला दिखाते हैं कि संयत मनोभाव, अनवरत परिश्रम एवं निरंतर जागरूकता से साधनहीन मनुष्य भी जिन्दगी में सफल हो सकता है।

संदेह नहीं, बिल्लेसुर के माध्यम से निराला जीवन की प्रवृत्ति एवं कर्मठ मनोवृत्ति का महत्व घोषित करते हैं। बिल्लेसुर की यह कथा कालजयी है और निरंतर प्रेरणाप्रदायिनी है।

'चोटी की पकड़'

'चोटी की पकड़' निराला की असंपूर्ण औपन्यासिक कृति है। इसका रचना काल सन् 1943 ई. के समीप है लेकिन इसका प्रकाशन सन् 1946 ई. में हुआ। निराला ने इस उपन्यास की भूमिका में लिखा कि स्वदेशी आंदोलन को लेकर वे इस उपन्यास को लिखना चाहते थे कि "चोटी की पकड़ आपके सामने है। स्वदेशी आंदोलन की कथा है। लंबी है, वैसी ही रोचक। पढ़ने पर आपकी समझ में आ जायेगा। युग की चीज बनायी गयी है।....इसकी चार पुस्तकें निकालने का विचार है।"[4]

निराला के इन वाक्यों से पता चलता है कि वे इस उपन्यास को चार खण्डों में लिखना चाहते थे। लेकिन इसका एक ही खण्ड वे लिख पाये। जो खण्ड प्राप्त है उसमें निराला ने स्वदेशी आंदोलन के वातावरण में राजा-जमींदारों तथा क्रान्तिकारियों की भूमिका का चित्रण किया है। उपन्यास में राजा राजेंद्र प्रताप एक निर्धन व्यक्ति को अपने खर्च से शिक्षा दिलाते हैं और उससे अपनी पुत्री का विवाह कराते हैं। दामाद जी की बुआ और मौसी भी राजभवन में उसके साथ रहने के लिए आते हैं तो रानी उन्हें नीचा दिखाकर उनका अपमान करने की कोशिश करती है तो बुआ उसका जवाब देती है। इससे अपमानित रानी बुआ से बदला लेने के लिए मुन्ना बाँदी को नियुक्त करती है।

उपन्यास में निराला ने बंग-भंग के परिप्रेक्ष्य में राष्ट्रीय जागरण का उत्थान दिखाया है।

बंग-भंग के समय सारा बंगाल देशभक्ति से भर जाता है और अंग्रेजों के खिलाफ गुप्त बैठकें होने लगती हैं। अख़बारों की बाढ़ सी आ जाती है और रवींद्रनाथ ठाकुर, स्वामी विवेकानंद एवं रामकृष्ण परमहंस जैसे महान जागरण नेताओं के कारण सारा बंगाल सचेत हो जाता है। राजा राजेंद्र प्रताप स्वदेशी-आंदोलन के पक्षपाती हैं और क्रान्तिकारी प्रभाकर को वे आश्रय देते हैं। बंग-भंग से हिन्दुओं को हानि पहुँचती है लेकिन कुछ मुसलमानों के लिए यह बड़ा ही लाभदायक है। इसलिए कुछ मुसलमान पदोन्नति की लालसा से अंग्रेज़ सरकार का समर्थन करते हैं और आंदोलनकारियों का पता बता देते हैं। कौचमैन अली अपने पुत्र थानेदार यूसुफ को प्रभाकर का पता बता देता है। यूसुफ राजा की रखैल एजाज की मदद से राजा को फँसाना चाहता है लेकिन एजाज विवेक से काम लेती है। बाद में वह प्रभाकर के विचारों से प्रभावित होती है और स्वदेशी-आंदोलन में सक्रिय भाग लेती है।

इधर मुन्ना रानी के नाम पर खजाने से दो लाख रूपये की संपत्ति चुरा लेती है। बुआ को कुचक्र में फँसाकर अपना स्वार्थ सिद्ध करना चाहती है। लेकिन समय पर प्रभाकर पहुँचकर सिपाही रुस्तुम से बुआ की रक्षा करता है और उसे राजभवन ले जाता है। बाद में वह रानी को भी स्वदेशी-आंदोलन की ओर ले जाता है। उपन्यास के इस खण्ड की कथा इसी स्थल पर समाप्त होती है।

यद्यपि उपन्यास अधूरा है, तथापि निराला ने इसमें भारत में हो रहे परिवर्तन की ओर संकेत करते हुए उन्नीसवी सदी के अंत और बीसवीं सदी के प्रारंभ के बंगाल का परिवेश चित्रित किया है। इसलिए इस उपन्यास का अपना महत्व है।

‘काले कारनामे’

‘काले कारनामे’ का प्रकाशन वर्ष सन् 1950 ई. है। इस उपन्यास को अपनी अस्वस्थता के कारण निराला पूरा नहीं कर पाये। इसके प्रथम संस्करण की भूमिका में प्रकाशक ने लिखा है : ‘‘निराला जी की अस्वस्थता के कारण यह उपन्यास काफी दिनों से अधूरा पड़ा था। इस भय से कि कहीं निराला जी की यह नवीन कृति अंधकार में ही विलुप्त न हो जाय, हम इसे इसी रूप में पाठकों के समक्ष रख देना अपना एक पुनीत कर्तव्य समझते हैं।’’[5]

इस उपन्यास का नायक मनोहर है। वह अपने गाँव राजपुर से सरायन गाँव में प्रतिदिन रामसिंह के अखाड़े में कुश्ती के लिए जाता है। रात को उसी गाँव के बड़े जमींदार रामलखन

के यहाँ ठहरता है और प्रातः काल को ही अपने गाँव चला जाता है। लेकिन गाँव के कई लोगों को मनोहर का वहाँ रहना ठीक नहीं लगता, क्योंकि यदि कोई अनुचित कार्य करने पर मनोहर को दण्ड देने का अधिकार उन्हें नहीं है। रामलखन को भी अन्य कारणवश मनोहर का यह प्रवास पसंद नहीं। अखाड़े का रामसिंह मनोहर को अपने से छोटा समझता है, यह रामलखन को परोक्षतः अपमान ही है। इसलिए रामलखन मनोहर को उसके पिता के पास बंबई भेज देता है। रामलखन और एक अन्य जमींदार यमुना प्रसाद मिलकर रामसिंह को दबाने के लिए उस पर गाँव के पण्डित जी माधव मिश्र के यहाँ चोरी करने का आरोप लगाते हैं। लेकिन थानेदार के सामने मिश्र जी रामसिंह के पक्ष में ही बयान सुनाता है। इससे रामसिंह के प्रति जमींदारों की प्रतिशोध की भावना और बढ़ जाती है। वे दोनों को रामसिंह और मिश्र जी को बहुत सताते हैं और अदालत में उनकी सज़ा करा देते हैं।

इधर मनोहर बंबई में न रहकर बनारस चला जाता है और वहाँ के दलितों की सेवा करने लगता है। उसके माता-पिता को गाँव में पहले तो उसकी बहुत चिंता रहती है, लेकिन गाँव में मनोहर की प्रशंसा सुनकर वे सांत्वना पाते हैं। उपन्यास का कथानक सिर्फ इतना ही है।

निराला ने इस उपन्यास के द्वारा ग्रामीण जीवन के ईर्ष्या-द्वेष, जमींदारों के आपसी कलह, गरीबी और पिछड़ेपन से त्रस्त किसानों की करुणाजनक स्थिति आदि का वर्णन किया है। निराला की दृष्टि हमेशा भारत के उन गाँवों पर रही जिनका गहरा संबंध सामंतवादी उत्पीड़न के शोषण से है। यह उपन्यास उनकी उक्त दृष्टि का एक और पहलू है।

‘चमेली’

निराला की अंतिम एवं अधूरी औपन्यासिक रचनाओं में ‘चमेली’ एक है। इसका जो अंश लिखा गया उसका प्रकाशन ‘रूपाभ’ नामक पत्रिका के सन् 1939 ई. फरवरी वाले अंक में प्रकाशित हुआ। चमेली एक निर्धन किसान दुखी की बेटी का नाम है। वह एक सुंदर किन्तु विधवा है। उसके सौंदर्य पर जमींदार का सिपाही ठाकुर बख़्तावर सिंह आसक्त होता हैं। एक दिन खेत में वह चमेली के साथ अनुचित व्यवहार करने लगता है तो चमेली महादेव नामक अन्य किसान को आवाज देती है। महादेव ठाकुर साहब की बड़ी बुरी हालत बना देता है। इससे पहले कि दूसरे लोग आकर उसे बचायें- वह बख़्तावर को नीचे पटककर बहुत पीटता है। बख़्तावर अन्य किसानों के सामने अपमानित हो जाता है लेकिन वह इस घटना को

रंग चढ़ाकर उल्टे महादेव पर चमेली से अनुचित संबंध का आरोप लगाता है। लोग यह बात मान जाते हैं। लेकिन ठाकुर बख्तावर सिंह को यह बात बहुत खलती है कि उसे एक सूद्र किसान ने पीटा है। जमींदार की मदद से वह दुखी के खिलाफ पुलिस में रिपोर्ट कर देता है। दुखी इस खतरे से बचने के लिए शिवदत्त राम त्रिपाठी नामक गाँव के एक मुखिया से मदद माँगता है। उपन्यास यही तक लिखा हुआ है।

'चमेली' में निराला ने गाँवों में किसानों पर जमींदार एवं उनके भैयाचारों के द्वारा किये जाने वाले अत्याचारों का वर्णन बिलकुल यथार्थ रूप में किया है। निराला के औपन्यासिक पात्र बड़े साहसी होते हैं। इसमें महादेव जमींदार के सिपाही से भिड़ता है और उसे परास्त कर देता है। उपन्यास में चमेली को सतानेवाले बख्तावर सिंह की हालत ठीक 'अप्सरा' उपन्यास में उस गोरे अफसर हैमिल्टन की हालत को याद दिलाता है।

यदि 'चमेली' को निराला पूरा करते तो वह हिन्दी उपन्यास-साहित्य में एक और महत्वपूर्ण कृति सिद्ध होती।

'इन्दुलेखा'

'चमेली' का प्रकाशन सन् 1960 ई. में ज्योत्स्ना नामक पत्र में हुआ। यह भी निराला अधूरा उपन्यास है। इसमें इन्दुलेखा एवं समर की प्रेमकथा का आरंभ मात्र हुआ है। कथा-क्रम के अनुसार इन्दु और समर एक ही कॉलेज में पढ़ते हैं। वे दोनों एक ही गाँव के हैं इसलिए इनके बीच मैत्रीपूर्ण संबंध होता है। उनकी इस मैत्री में परस्पर-आकर्षण का भाव नकारा नहीं जा सकता। इन्दु के पिताजी मधु अपनी पुत्री के लिए योग्य वर की खोज में हैं। लेकिन इन्दु समर की ओर आकर्षित है। समर ट्यूशन करके पढ़ाई चलानेवाला मेहनती एवं सज्जन युवक है। वह हमेशा कक्षा में प्रथम आता है और इन्दु का स्थान द्वितीय है। इन्दु के साथ समर का व्यवहार भी अत्यंत संयत रहता है। उपन्यास के उपलब्ध अंश में केवल इतनी ही कथा व्यक्त हुई।

बिलकुल अधूरा उपन्यास होने के कारण इसके उद्देश्य के बारे में कोई सुनिश्चित धारणा नहीं बन सकती।

निराला ने अपने उपन्यासों को ज्यादातर सुखद अंत से ही समाप्त किया। पर लगता है कि उनकी कवि सहज भावुकता उनके उपन्यासों पर कई जगह हावी हो जाती है। निराला

के उपन्यासों का सार इन वाक्यों से स्पष्ट हो जाता है कि ‘‘उपन्यासकार के रूप में निराला के पास महिषादल, कलकत्ता, गढ़ाकोला, डलमऊ और लखनऊ के अनुभव थे। उन्होंने इन्हीं को आधार बनाकर अपने उपन्यास लिखे। इन उपन्यासों की रचना का काल भारतीय स्वाधीनता आंदोलन का काल है। स्वाधीनता आंदोलन एक ओर उपनिवेश-विरोधी था और दूसरी ओर सामन्त विरोधी। निराला के इन उपन्यासों में जनवादी चेतना से ओत-प्रोत नवशिक्षित तरुण और तरुणियाँ हैं, जो सामंती रूढ़ियों को तोड़कर समाज के सम्मुख एक आदर्श रखते हैं। उनके मार्ग में बाधाएँ आती हैं, पर वे उनसे विचलित नहीं होते और संघर्ष करते हुए अपने लक्ष्य तक पहुँचते हैं। निराला नवशिक्षित तरुणियों को खासतौर से अपने इन उपन्यासों में प्रस्तुत करते हैं। नारी-जाति की मुक्ति पर उनका विशेष आग्रह रहा है।’’[6]

5.2 निराला का कहानी-साहित्य : एक सामान्य परिचय

निराला की कहानियाँ हिन्दी साहित्य के कहानी जगत में प्रसिद्ध एवं चर्चित हैं। नंद किशोर नवल जी के अनुसार ‘‘निराला की कहानियों के तीन संकलन हैं - ‘लिली’, ‘सखी’ और ‘सुकुल की बीवी’। ‘चतुरी चमार’ और ‘देवी’ नये अथवा स्वतंत्र संग्रह नहीं हैं। ‘चतुरी चमार’, ‘सखी’ का ही नया नाम है और ‘देवी’ में विभिन्न संग्रहों की चुनी हुई कहानियाँ संकलित हैं। उसमें एक कहानी ‘जान की’ ऐसी भी है, जो पहले किसी संग्रह में संकलित नहीं हुई थी।’’[7]

इनमें सबसे पहले ‘लिली’ का प्रकाशन हुआ 1934 ई. में। ‘सखी’ नाम से उनका दूसरा कहानी-संग्रह निकला सन् 1935 ई. में। ‘सुकुल की बीवी’ सन् 1941 ई. में प्रकाशित कहानी-संग्रह है। इसके बाद ‘सखी’ ही ‘चतुरी चमार’ नाम से पुनः 1945 ई. में इलाहाबाद से निकली। वैसे तो निराला के इन कहानी संकलनों में प्राप्त कहानियों की संख्या 21 हैं लेकिन बाद में उनकी देवर का इन्द्रजाल, ‘दो दाने’ और विद्या शीर्षक कहानियाँ जो उनके पहले संकलनों में नहीं संकलित हैं- निराला रचनावली, भाग-4 में संकलित की गयी हैं। इससे उनकी कहानियों की संख्या 24 तक बढ़ जाती है। लेकिन हमें ध्यान रखना चाहिए कि इन संकलनों में कुछ कहानियाँ ऐसी भी हैं, जिनकी पुनरावृत्ति हुई है।

निराला ने कहानी में गद्य को और निखारा तथा हिन्दी कहानी-साहित्य को अपने रचनात्मक कौशल तथा व्यंग्य वैभव का परिचय दिया। उनकी कहानियों को स्थूल रूप से

तीन वर्गों में बाँटा जा सकता है। एक- सामाजिक कहानियाँ, दूसरा- संस्मरणात्मक कहानियाँ और तीसरा- धार्मिक व दर्शन संबंधी कहानियाँ। निराला की कहानियों का सृजन काल भारतीय राजनैतिक एवं सामाजिक पटल पर एक महान क्रान्तिकारी युग कहलाता है। निराला की दृष्टि हमेशा अपने युग के साथ जुडी रही और उनका कहानी-साहित्य इस उक्ति का अपवाद नहीं है। उन्होंने जिन समस्याओं पर अपनी कहानियों में प्रकाश डाला, वे समस्याएँ व्यक्ति की समस्याएँ तो हैं ही कई संदर्भों में वे राष्ट्र अथवा की समाज की समस्याएँ भी हैं। इसलिए उनकी कहानियों में सामाजिक दृष्टिकोण का अभाव कही नहीं मिलता। निराला की कहानियों की विशेषता है- काव्य में परिलक्षित उनका छायावादी रूमानी भावुकता से प्रेरित आदर्शवाद इन कहानियों में यथार्थवाद का रूप लेकर अवतरित होना। 'पद्मा और लिली', 'ज्योतिर्मयी', 'श्यामा', 'देवी', 'सुकुल की बीवी', 'श्रीमती गजानन्द शास्त्रिणी', 'जान की!' आदि कहानियाँ नारियों को केंद्र में लेकर लिखी गयी हैं और इनमें सामाजिक यथार्थ, प्रेम, विवाह एवं जाति व्यवस्था, प्राचीन अंध परंपराएँ और इनसे उत्पन्न सामाजिक उत्पीड़न आदि का वास्तविक चित्रण किया गया है। 'पद्मा और लिली' कहानी में नायिका के पिता प्राचीन संस्कारों के प्रेमी हैं और पुत्री को अंतर्जातीय विवाह से रोकने के लिए वे वसीयतनामा में शर्त रखते हैं वह किसी गैर ब्राह्मण से विवाह न करे। लेकिन नायिका यहाँ पिता की शर्त भी पूरी रखती और अपने प्रेम का निर्वाह भी करती है। वह अपने प्रिय के साथ देश-सेवा का व्रत स्वीकार करती है और यह सर्वथा नवीन आदर्श है जो आचरणात्मक है।

'देवी' कहानी निराला की सर्वश्रेष्ठ कहानियों में से एक है जिसका आरंभ एक ललित निबंध के समान होता है। इस कहानी में निराला ने एक पगली भिखारिन के माध्यम से नारी के अत्यंत हृदयविदारक रूप का चित्रण किया है और कहानी का अंत भी पाठकों का मन पिघलानेवाला होता है। 'देवी' कहानी की नायिका कोई सुंदर स्त्री न होकर एक पगली भिखारिन है - जिसे निराला ने लखनऊ-प्रवास के समय हीवेट रोड़ पर भार्गव मेजेस्टिक होटल के सामने फुटपाथ पर देखा। बच्चे उस पगली को चिढ़ाते हैं, उसके पैसे छीन लेते हैं- निराला उसे खुद पैसे देते थे और मित्रों से दिलवाते थे। निराला सोचते हैं- इस पगली भिखारिन ने धूप-छाँव, सुख-दुःख कितनी बड़ी मात्रा में झेली होगी, कोई इसका कद्र नहीं करता। तब निराला को लगा कि उन्हें ज्ञानोदय हो गया है। जिस साहित्य के उद्धार का

निराला को गर्व है, उसे देखकर मानो देवी उस भिखारिन के रूप में निराला पर हँसती हो। इस कहानी में निराला अपने छायावादी कृतित्व पर, अपने शब्द-प्रयोगों पर तथा अपने दंभ पर खुद हँसते हैं। इतनी सशक्त और चेतनागर्भित कहानी की ओर हिन्दी साहित्यकारों का ध्यान ज्यादा आकृष्ट नहीं हुआ। रामविलास शर्मा जी इस कहानी का विश्लेषण करते हुए लिखते हैं: ''निराला ने शब्दों के ऊपर से छायावादी रंगीनी धो दी थी। सीधे-सादे शब्द नये अर्थ से दमक उठे। 'वर्तमान धर्म' के गूढ़ व्यंग्य के बदले उन्होंने ऐसी वक्रोक्तियों का सहारा लिया कि दण्डी-पाखण्डी तिलमिला उठें। निराला ने यह सिद्ध करते हुए कि उनका व्यावहारिक वेदान्त क्रान्तिकारी है, कहानी का नाम रखा 'देवी'।....वे जो निराला की दुरूह कल्पना से परेशान थे, उनके मस्तिष्क-विकार का ढ़ोल पीटकर उन्हें साहित्य के मैदान से खदेड़ने का भागीरथ प्रयास कर चुके थे, चुप रहे मानो 'देवी' जैसी कहानियाँ रोज पत्रिकाओं में छपती हों, अथवा यह भी निराला की नयी बकवास हो जिस पर ध्यान देना समय का अपव्यय हो।''[४]

'श्यामा' कहानी का संबंध समाज के वर्ग भेद से ज्यादा है जिसमें लोध वंश की श्यामा पर और उसके पिता पर उच्चवर्ग के जमींदार द्वारा किये गये अत्याचारों का वर्णन है। निराला बार-बार अपनी कविता में जो कहते हैं, वहीं इस कहानी में पुनर्कथित है- निम्न, पीडित, किसान वर्गों का उद्धार शिक्षा के द्वारा ही संभव है और उन्हें शिक्षित बनाने में ही देश की स्वतंत्रता का सच्चा अर्थ निकलता है। राजा साहब को ठेंगा दिखाया, परिवर्तन, हिरनी आदि कहानियाँ सामान्य जनता पर सत्ताधारी व्यक्तियों के द्वारा किये जाने वाले अमानवीय व्यवहार का सजीव चित्र खींचती हैं। ऐसा लगता है- निराला महिषादल राज्य में नौकरी करते समय जिन अनुभवों से गुजरे, उनका ही शाब्दिक अनुवाद इन कहानियों में हुआ। क्या देखा कहानी में प्यारे लाल नामक शिक्षित युवक के प्रति वेश्या हीरा के स्वार्थमुक्त प्रेम का चित्रण हुआ है। 'सखी' में नायिका ज्योतिर्मयी को जब यह विदित हुआ कि उसकी सखी लीला उसके भावी पति को प्रथम भेंट में ही चाहने लगी तो उसने प्रसन्न मन से उन दोनों को विवाह-सूत्र में बाँध दिया। इस प्रकार की कहानियों में निराला नायिकाओं की त्याग भावना को आँकते हैं जो यथार्थ से जरा हटकर है। उनकी कहानी 'सुकुल की बीवी' समाज की रूढ़ियों का तिरस्कार करके उनसे जूझकर विजय प्राप्त करनेवाली औरत का चित्र खींचती है जो उनके काव्य और

उपन्यासों में सामान्यतः प्राप्त निराला की अपराजेय मनस्थिति का परिचायक है। इस कहानी में निराला ने अपने हिन्दू मित्र सुकुल की मुस्लिम प्रेमिका पुष्कर की जीवन-कथा का वर्णन किया है। हिन्दू-मुसलमानों के नाजुक संबंधों के परिप्रेक्ष्य में चलनेवाली यह कहानी तत्कालीन धार्मिक रूढ़ियों का परिचय देती है। पुष्कर मुसलमान है, उसका आगमन हिन्दू समाज में स्वीकृत नहीं होगा, इसलिए सुकुल जी ऐसे हिन्दू की खोज में रहते हैं जो पुष्कर को अपनी संबंधी घोषित करके उन दोनों का विवाह करा सके। निराला महादेव प्रसाद सेठ की अनुमति पाकर उसे अपनी बहन घोषित करते हैं और उन दोनों का विवाह संपन्न करा देते हैं।

'कला की रूप रेखा' नामक कहानी में निराला एक कांग्रेसी स्वयंसेवक का वर्णन करते हैं जो मद्रास से आया हुआ है। वह मद्रासी पहले निराला से मिल चुका था, चोरों ने उसका सब कुछ छीन लिया, जाडों के दिन थे, बहुत ठण्डी है- निराला से उसने चादर माँगी। निराला ने खुशी से उसे अपनी चादर निकालकर दे दी। साथ में रहे पाठक जी ने बताया - 'ये सब ढ़ोंगी हैं और ऐसी चीजें वे बाजार में बेच देते हैं।' निराला ने बताया कि 'यह आदमी यह सोचकर मद्रास से यहाँ न आया होगा कि उसे बाजार में चादर बेचनी है।' बाद में वह कांग्रेस में भर्ती हो गया, निराला उसे देखकर प्रसन्न होते हैं। अंत में वह निराला से पुनः मिलता है और कहता है कि वह मद्रास लौट रहा है लेकिन रास्ते के भाडे के लिए उसके पास पैसे नहीं हैं। फिर भी वह पैदल चलने को तैयार है। धूप रहेगी, उसके पास चप्पल नहीं हैं- निराला के पास भी तब चप्पल नहीं थे, वे बहुत चिंतित हो जाते हैं कि इसे कुछ दे न सका। कहानी में कांग्रेस के कार्यकर्ता का साहस और उसकी लगन पाठकों को आकर्षित करते हैं।

निराला ने सिर्फ आत्मतोष के लिए या अपने व्यक्तित्व के प्रकटीकरण के उद्देश्य से ही कहानियाँ लिखीं- सो बात नहीं है। उन्होंने अपने समाज को, अपने परिवेश को कभी विस्मृत नहीं किया। इस संबंध में उनकी मौलिकता यह है कि जिन चीजों को लेकर साहित्यकारों के अंदर छुईमुई वाली प्रवृत्ति होती है- निराला ने उन्हीं चीजों को उजागर करने का प्रयास किया। इसलिए उनकी कहानियों में निराला के समय का समाज अपने वास्तविक घिनौने रूप में प्रकट होता है। श्रीमती गजानन्द शास्त्रिणी कहानी इसी कोटि की है। इस कहानी में निराला ने कान्यकुब्ज ब्राह्मणों के छल-छद्म एवं उनके जातिगत दंभ की पोल खोल दी है। इसमें चुनाव संबंधी कपट राजनीति का भी परिचय मिलता है। ब्राह्मण परिवारों में पाया जानेवाला यह छल

‘अर्थ’ कहानी में और विकृत रूप में दिखायी पड़ता है जब लोग रामकुमार के पिता की लाश के साथ चलने के लिए पंद्रह पंद्रह रू. के पेडे माँगते हैं। इसी कहानी में रामकुमार से उसके संबंधी लोग पिता के वर्षी के समय बहुत खूब खर्च करवाते हैं और रामकुमार को लगभग दो हज़ार ब्राह्मणों को खिलाकर संतुष्ट करना पड़ता है। निराला को ये लोग सामाजिक अन्याय के पोषक और हृदयहीन राक्षस लगते हैं।

‘चतुरी चमार’ निराला के द्वारा बनी ‘एक और युग की चीज’ है, जिसका परिवेश निराला के मनोपटल पर अंकित वही गाँव है - जहाँ अत्यधिक लोग शूद्र हैं - जो या तो किसान होते हैं या मेहनतकश लोग होते हैं। उनके बीच में निराला का पात्र भी उपस्थित होता है और स्वतंत्रता संग्राम के कुछ उद्विग्न क्षणों का भी इस कहानी में अंकन हुआ है। निराला ने बड़ी लगन से कहानी को कल्पना एवं पात्र या वातावरण-चित्रण के चक्कर से दूर रखा और यही तत्व ‘चतुरी चमार’ को हिन्दी कहानी-साहित्य के लिए निराला की अनुपम देन बना देता है। इस कहानी में घटनाओं का संबंध या तथाकथित कहानी-मोड़ नहीं मिलते जिसके कारण इस कहानी में एक अच्छे रिपोर्ताज के तत्व भी शामिल हो जाते हैं। कहानी में चतुरी का घर ऐसी जगह है जहाँ बरसात और शुद्ध-अशुद्ध जल बहता रहता है। निराला इस कहानी में चतुरी के बच्चे को पढ़ाते हैं, किसानों और जमींदार के बीच उठे संघर्ष में किसानों का साथ देते हैं। इन सारी क्रान्तिकारी घटनाओं का चित्रण निराला बहुत ही संयम से लिखते हैं और इनके संबंध में पैदा हुई विविध प्रकार की अड़चनों का भी रोचक चित्रण करते हैं। कहानी का अंत भी एक सामान्य व्यक्ति की समाज के उच्चवर्ग पर हुई छोटी सी जीत के साथ होता है। जमींदार के सिपाही को हर साल जोड़ा समर्पित करने की बात वाजिबुलअर्ज में दर्ज नहीं है, यह चतुरी के लिए बहुत बड़ी बात है। निराला देखकर प्रसन्न होते हैं- इन पीड़ित वर्गों में समाज के उच्चवर्गों पर संपूर्ण विजय हासिल करने की ताकत भले ही न हो, लेकिन उनसे भिडने का साहस जरूर है। इस प्रकार हर दृष्टि से यह कहानी निराला को हिन्दी कहानीकारों में अविस्मृत बना देती है।

निराला की कहानियों में समाज के साथ-साथ धर्म एवं दर्शन की बातें भी मिलती हैं। उनकी कहानियाँ ‘अर्थ’, स्वामी सारदानन्द जी महाराज और मैं, ‘भक्त और भगवान’ आदि कहानियाँ दर्शन को लेकर निराला के उच्चस्तर के चिंतन का प्रतिफलन करती हैं। वैसे तो

'देवी' कहानी में भी निराला के क्रान्तिकारी दृष्टिकोण का दार्शनिक आधार प्रकट हुआ। स्वामी सारदानन्द जी महाराज और मैं कहानी की रचना समन्वय पत्रिका में काम करते समय निराला के अनुभवों से जुडी हुई है। तब निराला रामकृष्ण परमहंस और स्वामी विवेकानंद के उपदेशों से बहुत प्रभावित रहते थे और उनके मन में रामकृष्ण मिशन के साधुओं के प्रति बड़ी श्रद्धा होती थी। निराला रामकृष्ण मिशन के संन्यासियों के साथ मिलकर रहते थे और एक तरह से तब निराला उन साधुओं के दर्शन-चिंतन का अनुकरण भी करते थे। ध्यान रहे, समन्वय में कार्यभार संभालने के पूर्व महिषादल में वे स्वामी प्रेमानंद महाराज से मिल चुके और उनका प्रभाव बहुत समय तक निराला पर रहा। इसी मानसिक स्थिति में उन्हें एक और महात्मा दिखायी देते हैंः स्वामी सारदानंद महाराज। ये देखने में महावीर का प्रतिबिंब लगते थे। निराला को उन्हें देखकर भय भी लगता है और धीरे धीरे उन पर अपार श्रद्धा भी हो जाती है। इस दशा में स्वामीजी को लेकर स्वप्न भी देखते थे और उस स्वप्न में स्वामी को रसगुल्ला भी खिलाते हैं। कभी-कभी निराला स्वामीजी के कमरे में जाते थे और तुलसीकृत रामायण पढ़ते थे। एक दिन सारदानंद जी ने निराला को दो रसगुल्ले प्रसाद के रूप में दिये। निराला प्रसन्न हो जाते हैं कि सबको एक ही रसगुल्ला मिलता है और उन्हें दो मिले- मतलब वे दूसरों से अलग हैं और दार्शनिक रूप से उन्नत हैं। तब स्वामी जी निराला के गले में एक मंत्र अपनी उँगली से लिख देते हैं। अन्य संदर्भ में जब स्वामी जी निराला का सिर अपने अँगूठे और बीच की उँगली से दबाते हैं तब सिर का दर्द बिलकुल मिट जाता है। निराला को यह सब एक अद्‌भुत कृपा के समान है। निराला इस घटना को सदा के लिए याद रखते हैं और उन्हें कई साल के बाद भी यह अनुभव बहुत प्रभावशाली प्रतीत होता है। उस अनुभूति की तुलना में उन्हें आधुनिक कवियों और दार्शनिकों की चमत्कारोक्तियाँ हास्यास्पद लगती हैं। निश्चित है - स्वामी सारदानन्द जी महाराज और मैं कहानी निराला के उन गहरे दार्शनिक अनुभवों का प्रमाण है जिनसे वे अपने जीवन में बहुत लंबे समय तक प्रभावित होते रहे।

'भक्त और भगवान' तथा 'अर्थ' कहानियाँ निराला के व्यक्तिगत जीवन से बहुत नजदीक मालूम पड़ती हैं और इन दोनों में नायक स्वयं निराला मालूम होते हैं। 'भक्त और भगवान' का नायक निरंजन राजा के पास लेखा-जोखा, तहसील वसूल की नौकरी करता है, स्वामी महावीर का अनन्य भक्त है। पिता राजा के पास साधारण नौकर थे। पत्नी बहुत सुंदर

और उसकी कला से भक्त प्रभावित रहता है- ठीक उसी तरह जैसे निराला मनोहरा देवी की प्रतिभा से प्रभावित रहते थे! पत्नी और महावीर में कभी कभी भक्त को बिलकुल भेद मालूम नहीं पड़ता। कुछ दिनों बाद भक्त के सारे घरवालों की मौत हो जाती है, पत्नी उसे छोड़कर परलोक जानेवालों में पहली थी। भक्त को धीरे धीरे नौकरी बहुत दुष्कर मालूम पड़ती है। महावीर के पास जाकर वह अपनी वेदना बताता रहता है। राज्य में सामान्य जनता पर किये जाने वाले अत्याचारों को देखकर विचलित भक्त महावीर से पूछता है- ''ये गरीब मरे जा रहे हैं- इनके लिए क्या होगा'' महावीर की शरण में उस प्रश्न का समाधान मिलता है कि ''इन्हें वही उभाड़ेगा जो वहाँ के राजा को उभाड़ता है।'' निराला इस कहानी में सामाजिक समस्याओं का हल दार्शनिक स्तर पर खोजते दिखायी देते हैं। इतना ही नहीं भक्त महावीर की छवि में भारतभूमि का आरोपण करके देखता है- यहाँ निराला भक्ति को राष्ट्रीय चेतना से मिला देते हैं। भक्त अपनी भक्ति के आवेग में देश को नहीं भूलता, अपने आसपास हाशिये पर खडे लोगों को विस्मृत नहीं करता- प्रत्युत उनकी समस्याओं का समाधान अपनी भक्ति में ही ढूँढने का प्रयास करता है। भक्ति को लौकिक सुख-दुःखों से परे बताकर धर्म से भौतिक जगत का नाता तोडनेवाली निवृत्तिपरक आध्यात्मिकता का संदेश अपनी कहानियों में निराला भूलकर भी नहीं देते। यही तत्व उन्हें अनुपम कहानीकार के रूप में प्रतिष्ठित करता है।

इसी कोटि की एक और उत्तम कहानी 'अर्थ' है। इस कहानी में भी नायक रामकुमार अधिकतर निराला ही मालूम पड़ता है। रामकुमार कुलीन ब्राह्मण युवक है। घर में पूजा-पाठ का वातावरण है। रामकुमार के मन में महावीर के प्रति असीम श्रद्धा है, वह कल्पना करता है कि आज यदि महावीर होते तो अपनी गदा से भारत पर आक्रमण करनेवाले इन म्लेच्छों को एक प्रहार से उडा देते ! वह संसार में हर प्रकार से हताश हो जाता है, अर्थ ही उसके जीवन की सबसे बड़ा संकट बन जाता है- यहाँ तक कि पत्नी के गहने बेचकर लाज रखने की नौबत आ जाती है। वह अपने भगवान श्रीरामचंद्र के नाम पर पत्र लिखता है कि वे ही इस भक्त का उद्धार करें। पत्र को चित्रकूट वाले पते पर भेजता है! चिट्ठी वापस आ जाती है, खिन्न बना रामकुमार अपनी पत्नी विद्या को मायके भेजकर स्वयं अर्थ की खोज में निकलता है। भगवान राम ही उसे अर्थ की प्राप्ति कर सकता है, इसलिए उनसे मिलना ही उसका आशय है। श्रीरामचंद्र तो तुलसीदास से चित्रकूट में मिले थे इसलिए रामकुमार चित्रकूट ही

जाने का निश्चय करता है। चित्रकूट जाकर हनुमान के दर्शन करता है, इस संदर्भ में सारे पैसे खतम हो जाते हैं, इसलिए मंदिर में पैसे चढ़ा नहीं सकते। मंदिर के बाबाजी इस पर गालियाँ देते हैं- निराला धार्मिक प्रवंचना की एक और परत खोलकर रख देते हैं। बाद में वह कामद-गिरि की परिक्रमा करता है और उस पहाड़ की चढ़ाई भी तय करता है। भगवान श्रीरामचंद्र से मिलकर अपनी आर्थिक समस्या का हल करने की उत्कट आकांक्षा को लेकर रामकुमार कामद गिरि पर चढ़ने का साहस करता है, रात और भयानक वर्षा में नंगे बदन पहाड़ पर बड़ी मुश्किल से चढ़ता है लेकिन वहाँ कोई नहीं...हताश हो, रामकुमार रोने लगता है।

बाद में वह धीरे-धीरे दार्शनिक रूप से ऐसे ऊँचे पद को प्राप्त होता है जहाँ दुख-सुख, राग-विराग उसे सब कुछ एक सा प्रतीत होने लगता है। उसी अवस्था में वह नीचे उतरता है। रामकुमार को संदेह होता है कि ईश्वर है कि नहीं- बाद में उसे समाधान मिलता है कि ईश्वर है। पास वाले गाँव में लोग इसे कोई महान साधु समझ रहे थे, तभी रामकुमार का परिचय उसके मित्र के साथ होता है। उसकी सहायता से रामकुमार पुनः भौतिक जगत में प्रवेश करता है और प्रवृत्ति मार्ग पर चलने लगता है। प्रयाग में उसकी नौकरी लगती है, लेकिन वह उससे संतुष्ट न रहकर उपन्यास लेखन से कई हज़ार रूपये कमा लेता है। अंत में वह अपनी पत्नी विद्या के साथ सुखी रहता है। इस कहानी का आरंभ निराला ने रेल गाडी में सफर करते मुसाफिरों के आपसी संवाद के साथ किया, तब तक रामकुमार एक प्रतिष्ठित उपन्यासकार बन चुका है। उसकी पूर्वकथा की पृष्ठभूमि में ही सारी कहानी चलती है। इसके माध्यम से निराला ने दिखाया कि भगवान भी भक्त की सहायता जरूर करेगा बशर्ते कि भक्त अपनी सहायता खुद करना आरंभ करे। निराला का आध्यात्मिक दृष्टिकोण ईश्वर को सबकुछ मानकर रूक नहीं जाता। प्रत्युत वह आदमी को कर्तव्योन्मुख बनाने में प्रवृत्त रहता है। इस संदर्भ में स्मरणीय हैः नवजागरण के महान सांस्कृतिक नेताओं का प्रभाव निराला पर बहुत गहरे रूप से पड़ा- खासकर स्वामी विवेकानंद का। विवेकानंद ने भी धर्म को आचरणात्मक एवं प्रवृत्तिपरक घोषित किया तथा मनुष्य को आलसी तथा नीरस बनानेवाली आध्यात्मिकता का खण्डन किया। निराला भी इस कहानी में यही कहते हैं।

निराला की कहानी-कला हिन्दी के अन्य कहानीकारों की कहानी-कला से भिन्न है। वे कहानी को संस्मरण, रेखाचित्र और कभी-कभी निबंध का रूप भी दे देते हैं। उन्होंने अपनी

कहानियों में अपने समय के समाज का वास्तविक चित्रण किया, अपने मन में उथल-पुथल मचानेवाले कई दार्शनिक प्रश्नों का समाधान निकालने का प्रयास किया, अपनी कहानियों के पात्रों के माध्यम से सच्ची राष्ट्रीयता क्या होती है- इसे समझाने का प्रयत्न किया, अनेक पारिवारिक संबंधों का बारीकी से चित्रण करके समाज में फैले कई मूढ़ एवं अंध परंपराओं पर व्यंग्य बाण छोड़े, 'चतुरी चमार' जैसी कहानियों में अपने समय के महान क्रान्तिकारी आंदोलनों में सामान्य जनता को भाग लेते हुए दिखाया, गाँवों में किसान-जमींदार संघर्ष का नया रूप खींचा, और सबसे महत्वपूर्ण- बदलते सामाजिक एवं आर्थिक परिस्थितियों में नारी को युग-युग की कारा से मुक्त होते चित्रित किया। दूसरे विश्व महायुद्ध के पश्चात् भारत की दुस्थिति का चित्रण उनकी 'दो दाने' शीर्षक कहानी में करुणापूर्ण ढ़ंग से मिलता है। कहीं-कहीं उनकी कुछ कहानियाँ दर्शन की ऊँचाइयाँ छूकर दुरूह बन जाती हैं तो अत्यधिक जगह यथार्थ एवं स्पष्ट भाषा का सहारा लेकर पाठकों में संदेह पैदा कर देती हैं कि क्या सचमुच एक छायावादी कवि इस तरह की यथार्थ कहानियों का सृजन कर सकता है ! सामाजिक पतन, अतीत के अवशेष, धार्मिक कठमुल्लापन, जात-पांत के पूर्वाग्रह, दरिद्रता, लाचारी, मानव का निरंतर जीवन-संघर्ष- इन सभी का चित्रण इन कहानियों में मिलता है। कुल मिलाकर कहा जा सकता है कि ये कहानियाँ हिन्दी साहित्य को निराला की अनुपम देन हैं।

5.3 निराला के कथा-साहित्य में राष्ट्रीय जागरण की अभिव्यक्ति

निराला ने अपने उपन्यासों तथा कहानियों में राष्ट्र से संबंधित अपने मौलिक विचार कई पात्रों के द्वारा व्यक्त किये। उनकी राष्ट्रीय चेतना सकारात्मक एवं आचरणात्मक थी, यह तथ्य निराला के काव्य के अंतर्गत हमने देखा। निराला का गद्य भी उनकी राष्ट्रीय चेतना का प्रतिफलन करता है- उनकी कविता से भी ज्यादा सशक्त ढ़ग से। क्योंकि कविता में कभी-कभी कवि के भाव दुरूह हो सकते हैं या भाषा की आड़ में भाव धुंधले बन सकते हैं। लेकिन गद्य में, विशेषकर कहानी-उपन्यासों में इस अस्पष्टता के लिए कहीं स्थान नहीं होता। निराला का कथा-साहित्य इस उक्ति का अपवाद नहीं है।

निराला ने राष्ट्र को लेकर, राष्ट्र में होनेवाले महान स्वतंत्रता आंदोलन को लेकर अपने विचारों को स्पष्ट रूप से अपने कथा साहित्य में रखा। हिन्दी में निराला ही ऐसे कथाकार हैं, जिन्होंने राष्ट्रीय मुक्ति-संग्राम में जमींदारों, राजा-महाराजाओं की भूमिका को

परखा। निराला अपने काव्य में राजे ने अपनी रखवाली की जैसी कविताओं के माध्यम से यह घोषित कर चुके कि साम्राज्यवाद के साथ मिला हुआ सामंतवाद आम जनता के लिए घातक सिद्ध होगा। वे मानते थे कि 'राष्ट्र' 'राष्ट्र' चिल्लाने से कोई फायदा नहीं, जब तक सामंतवाद की जड़ें इस देश से आमूल उन्मूलित नहीं की जायेंगी। उनकी दृष्टि में अंग्रेजों के साम्राज्यवाद का सहारा देनेवाले जमींदारों का सामंतवाद देश की सच्ची स्वतंत्रता के लिए बाधक है। यदि अंग्रेज़ चले भी जायें- यदि इन राजा-महाराजाओं तथा नेताओं का आधिपत्य वैसा ही बना रहेगा तो स्वतंत्रता का कोई अर्थ और प्रयोजन ही नहीं रहता है। इतना ही नहीं, निराला की राष्ट्रीय चेतना देश के सामाजिक न्याय से बराबर जुड़ता रहा। वे मानते हैं कि यदि राजनैतिक रूप से स्वतंत्र भी हो जायें लेकिन सामाजिक बंधन और भ्रष्टाचार वैसे ही बने रहेंगे तो राष्ट्र के लिए कोई फायदा नहीं। इसलिए निराला अपने कथा साहित्य में भी उक्त उद्देश्य से प्रतिफलित अनेक संदर्भों का प्रणयन करते हैं। उनके उपन्यासों और कहानियों के कई पात्र देश के सामाजिक अंतर पर प्रश्नचिह्न लगाते हैं, अपनी सामाजिक, सांस्कृतिक एवं आर्थिक दासता के साथ राष्ट्रीय मुक्ति संग्राम की संबद्धता की माँग करते हैं।

निराला ने अपने कथा-साहित्य में स्वदेशी-आंदोलन के कई चित्र खींचकर अपने युगबोध का प्रमाण दिया। 'चोटी की पकड़' नामक उपन्यास में उन्होंने स्वामी विवेकानंद, रवींद्रनाथ ठाकुर, केशवचंद्र सेन आदि महान जागरण नेतओं के प्रभाव को दर्शाया, बंग-भंग के संदर्भ में बंगाल में उमड़नेवाली देशभक्ति-लहर का चित्रण किया।

''इसी समय लार्ड कर्जन ने बंग-भंग किया। राजनीति के समर्थ आलोचकों ने निश्चय किया कि इसका परिणाम बंगाल के लिए अनर्थकर है। बंगाल के स्थायी बंदोबस्त की जड़ मारने के लिए यह चाल चली गयी है......यह विभाजन की आग छोटे-बड़े सभी के दिलों में एक साथ जल उठी। कवियों ने सहयोगपूर्वक देश-प्रेम के गीत रचने शुरू किये। संवाद-पत्र प्राकश्य और गुप्त रूप से उत्तेजना फैलाने लगे। जगह-जगह गुप्त बैठकें होने लगीं। कामयाबी के लिए विधेय-अविधेय तरीके अख्तियार किये जाने लगे। संघ-बद्ध होकर विद्यार्थी गीत गाते हुए लोगों को उत्साहित करने लगे। अंगरेजों के किये अपमान के जवाब में विदेशी वस्तुओं के विदेशी वस्तुओं के बहिष्कार की प्रतिज्ञाएँ हुईं, लोगों ने खरीदना छोड़ा। साथ ही स्वदेशी के प्रचार के कार्य भी परिणत किये जाने लगे। गाँव-गाँव में इसके केंद्र खोले गये। कार्यकर्ता उत्साह से नयी काया में जान फूँकने लगे।''[७]

ऐसे संदर्भ देश में चल रहे महान राष्ट्रीय आंदोलन का सजीव दर्पण हैं। साथ ही निराला ने भारत में प्रथम विश्व महायुद्ध के बाद उत्पन्न भयानक स्थिति का चित्रण अपने उपन्यास 'अलका' में किया है। उन्होंने दिखाया कि महाव्याधि के कारण गाँवों के गाँव उजड़ जाते हैं, हजारों लोगों की मौत हो जाती है, गंगा-जल में अबाध गति से लाशें बहती रहती हैं- लेकिन अंग्रेज़ सरकार इन पर ध्यान नहीं देकर सामान्य जनता को हुकुम देती है कि ज़ंग में अपनी फतह की खुशी का सारे देश में आनंदोत्सव मनाया जाये। एक तरफ महामारी की वजह से परिवार सदस्यों को खोकर रोती हुई महिलाएँ पुलिस के डर से घरों के सामने आनंदोत्सव के संदर्भ में दीप जलाकर रखती हैं। निराला लिखते हैं कि ''इसी समय सरकारी कर्मचारियों ने घोषणा की, सरकार ने जंग फतह की है, आनंद मनाओ। सब लोग अपने-अपने दरवाजों पर दिये जलाकर रखें। पति के शोक में सद्यःविधवा, पुत्र के शोक में दीर्ण माता, भाई के दुःख में मुरझायी बहन और पिता के प्रयाण से दुखी असहाय बाल-विधवाओं ने दूसरी विपत्ति की शंका कर काँपते हुए शीर्ण हाथों से दिये जला-जलाकर द्वार पर रखे, और घरों के भीतर दुःख से उभड़-उभड़कर रोने लगीं। पुलिस घूम-घूमकर देखने लगी कि किस घर में शांति का चिह्न, रोशनी नहीं।''[10]

अंग्रेजों का साम्राज्यवाद मुख्यतः आर्थिक शोषण पर आधारित व्यवस्था रहा। इस व्यवस्था के अंदर सबसे भयानक रूप से शिकार हुए वर्ग थे - गाँवों के किसान, मेहनतकश एवं गरीब दलित-प्रताडित वर्ग। निराला अपने कथा-साहित्य में इन वर्गों की वाणी सुनाने का अथक प्रयास करते हैं। देश में अंग्रेजों की आर्थिक नीति का सब तरह से समर्थन करनेवाले हुए राजा महाराजा, जमींदार एवं ताल्लुकेदार। ये लोग अंग्रेजों के गठबंधन से कई प्रकार के प्रयोजन सिद्ध करते थे। अंग्रेजों के कारण देश की जनता में सबसे अधिक विनष्ट होनेवाले लोग यदि किसान और सामान्य व्यापारी, कारीगर एवं मेहनतकश वर्ग थे तो सबसे प्रयोजन पानेवाले लोग ये जमींदार और राजा-महाराजा। अवध प्रांत के ऐसे ही एक जमींदार का चित्रण निराला अपने उपन्यास 'अलका' में इस प्रकार करते हैं -

''बाबू मुरलीधर अवध के आकाश के एक सबसे चमकीले तारे हैं, जहाँ तक ऐश्वर्य की रोशनी से ताल्लुक है, यानी सबसे नामी ताल्लुकेदार। कहते हैं, कभी उनके दीपक में इतना तेल न था कि रात को उजाले में भोजन करते, बात उनके पूर्वजों पर है। उनके यहाँ

शाम से पहले भोजन-पान समाप्त हो जाता था। यह विशाल संपत्ति उनके पितामह ने अँगरेज सरकार की तरफदारी करके प्राप्त की। गदर के समय बकरियों के बच्चे ढ़कनेवाले बड़े-बड़े झाबों के अंदर बंद कर कई मेम और साहबों को बागियों से उन्होंने बचाया था। फिर जब राय विजयबहादुर की फाँसी के समय, उनके महान भक्त होने के कारण तीन बार फाँसी की रस्सी कट-कट गयी, और गोरे बहुत घबराये, तब उनके गले में फाँसी लगने का उपाय इन्होंने बतलाया कि यह विष्णु भगवान के बड़े भक्त हैं, जब तक इनका धर्म नष्ट न होगा, इन्हें फाँसी नहीं लग सकती, इसलिए मुर्गी के अण्डे का छिलका इनकी देह से छुआ दिया जाय। साहबों ने ऐसा ही किया, तब फाँसी लगी। मुरलीधर के पितामह भगवानदास को अंगरेज सरकार ने इन कार्यों का पुरस्कार हज़ार गाँव साधारण लगान और दूसरे ताल्लुकेदारों से अनुकूल खास-खास शर्तों पर दिये, तब से इनका रात का दिया जला।''[11]

निराला इसमें अवध के मात्र एक जमींदार की संपत्ति का मूलकारण नहीं बताते यही कहानी प्रकारान्तर से सभी राजा, महाराजाओं की थी। वे कई तरह से अंग्रेजों की सहायता करते थे, अंग्रेजों को खुश रखने के लिए अपनी प्रजा पर करों का भार बढ़ाते, उनकी खेती का फल ज्यादातर हड़प लेते और अंग्रेजों को उसमें भागीदार बनाते। निराला इसलिए अंग्रेजों से पहले इन देशी दुष्टों से बचकर रहने का संदेश देते हैं और जगह-जगह पर प्रजा पर इनके अत्याचारों का वर्णन करते हैं। महिषादल में काम करते वक्त निराला देख चुके कि राजाओं और जमींदारों का व्यवहार कितना क्रूर होता है। निराला जिसे अपनी आँखों से देखते हैं उसीको कहानी में रखते हैः राजा साहब को ठेंगा दिखाया कहानी में राजासाहब विश्वंभर भट्टाचार्य नामक ब्राह्मण को अपने सेवकों से पिटवाता है, क्योंकि वह राजा को अपनी चेष्टाओं से यह दिखाने का प्रयास करता है कि वह भूखा है और उसे कोई सहारा नहीं। ब्राह्मण तीन रूपया महीना रोज पूजा के लिए पाता है। लेकिन बीस महीनों से उसे वेतन नहीं मिलता। अपने परिवार में पाँच सदस्य हैं जिनके लिए यही वेतन आधार है। उसने कई बार वेतन के लिए दरख्वास्तें दी थीं पर सुनवाई नहीं हुई। इससे तंग आकर मूक भाषा में उसने राजा के सामने ही अपनी वेदना प्रकट करने की चेष्टा की- पेट को खलाकर, ठेंगे हिलाकर बताया कि खाने को कुछ भी नहीं है। लेकिन राजा इसका गलत अर्थ ही लेते हैं और उनके सिपाही आकर ब्राह्मण की बड़ी बुरी हालत कर देते हैं। इस हरकत से उस बेचारे ब्राह्मण की नौकरी भी चली जाती है।

ऐसे हृदयहीन राजाओं के शासन में सामान्य जनता की हालत पर प्रश्न करने का साहस भी किसी को नहीं होता। राजा साहब का विरोध करने की ताकत गाँव में किसीको नहीं है। निराला लिखते हैं कि ''श्वंभर को पीटकर दोनों गदोरी और उँगलियाँ कुचलकर सिपाही चले गये। खबर विश्वंभर के घर पहुँची। उसकी पत्नी, सत्रह साल की विधवा बेटी और दो छोटे लड़के फटे कपड़े पहने, रोते हुए बाँध पर पहुँचे। गाँव के और लोग भी गये। विश्वंभर को संभालकर उठा लाये। खाट पर लिटा दिया। गर्म हल्दी-चूना लगाने लगे। राजा साहब के जासूस छद्‌मवेश से पता लगाते रहे। गाँव के कुछ भलेमानस गर्म पड़े। पर कुछ कर न सके। राजा साहब का प्रताप बड़ा प्रबल है। उनके विरोध में कुछ करने की अपेक्षा विश्वंभरके समर्थन में कुछ करना अच्छा है, यह सोचकर उसीकी सेवा करने लगे।''[12]

निराला अंग्रेजों का भारतीयों पर अत्याचार सह नहीं सकते थे। उन्होंने बंगाल में रहते स्वदेशी आंदोलन की चरमसीमा देख चुके। सामान्य जनता पर अंग्रेज़ लोगों का रोब कैसा होता है, इसकी प्रतिक्रिया कैसी होनी चाहिए- वे अपने उपन्यासों एवं कहानियों में व्यक्त करते हैं। अपने पहले उपन्यास 'अप्सरा' का आरंभ ही वे अंग्रेजों के अत्याचार तथा उसकी सही प्रतिक्रिया की कल्पना से शुरू करते हैं। ईडन गार्डन में नायिका कनक बैठी हुई तो एक गोरा उसके साथ गलत व्यवहार करने लगता है। इसका परिणाम कैसा होना चाहिए निराला अपने नायक के माध्यम से बताते है:

''युवती एकाएक चौंककर काँप उठी। उसी बेंच पर एक गोरा बिलकुल सटकर बैठ गया। युवती एक बगल हट गयी। फिर कुछ सोचकर, इधर-उधर देख, घबरायी हुई उठकर खड़ी हो गयी। गोरे ने हाथ पकड़कर जबरन बेंच पर बैठा लिया। युवती चीख उठी। बाग में उस समय इक्के - दुक्के आदमी रह गये थे। युवती ने इधर-उधर देखा पर कोई नज़र न आया। भय से उसका कण्ठ भी रूक गया। अपने आदमियों को पुकारना चाहा, पर आवाज़ न निकली। गोरे ने उसे कसकर पकड़ लिया। गोरा कुछ निश्छल प्रेम की बात कह रहा था कि पीछे से किसीने उसके कालर में उँगलियाँ घुसेड़ दीं, और गर्दन के पास कोट के साथ पकड़कर साहब को एक बित्ता बेंच से ऊपर उठा लिया, जैसे चूहे को बिल्ली। साहब के कब्जे से युवती छूट गयी। साहब ने सिर घुमाया। आगन्तुक ने दूसरे हाथ से युवती की तरफ सिर फेर दिया, 'अब कैसी लगती है?' साहब झपटकर खड़ा हो गया। युवक ने कालर छोड़ते

हुए जोर से सामने रेल दिया। एक पेड़ के सहारे साहब सँभल गया, फिरकर उसने देखा, एक युवक अकेला खड़ा है। साहब को अपनी वीरता का ख्याल आया। 'टुम पीछे से हमको पकड़ा।' कहते-कहते वह युवक की ओर लपका। 'तो अभी दिल की मुराद पूरी नहीं हुई?' युवक तैयार हो गया। साहब को बाक्सिंग (घूसेबाजी) का अभिमान था, युवक को कुश्ती का। साहब के वार करते ही युवक ने कलाई पकड़ ली, और वहीं से बाँधकर बहल्ले में दे मारा, और छाती पर बैठ कई रद्दे कस दिये। साहब बेहोश हो गया।''[13]

इसमें निराला ने गोरों के सामान्य जनता पर किये जानेवाले अत्याचारों का ही वर्णन नहीं किया बल्कि उन अत्याचारों का जवाब कैसा देना चाहिए, इसका भी समाचार दिया। निराला ने अपने मन में पराये शासकों के प्रति जो घृणा है- राजकुमार के द्वारा अंग्रेज़ अफसर को पिटवाकर उसका प्रकटीकरण कर दिया। उन दोनों की भिड़न्त बराबर का संग्राम न होकर चूहे-बिल्ली का संग्राम है। भारतीय युवक बिल्ली है तो अंग्रेज़ अफसर चूहा। इतना ही नहीं देशी व्यायाम-कला कुश्ती का पाश्चात्य युद्ध-शैली बाक्सिंग पर हावी होते चित्रित करना भी निराला का आशय है। निराला के उपन्यास-नायक मात्र गोरों को ही नहीं, गोरों के पिट्ठुओं को भी बेतहाशा जमीन पर पटक देते। इसी तरह निराला ने चमेली उपन्यास में जमींदार के सिपाही बख्तावर सिंह को एक मामूली किसान महादेव के द्वारा दण्ड दिलवाया। खेत में विधवा चमेली पर ठाकुर बख्तावर सिंह बल प्रयोग करने लगता है तो चमेली महादेव की सहायता माँगती है जिसका वृत्तांत निम्न लिखित रूप में है -

''..चमेली वैसी ही शान्त, बैलों के साथ फिर आयी। अबके ठाकुर से न रहा गया। बढ़कर चमेली का हाथ पकड़ लिया। 'महादेव भैया रे - ओ महादेव भैया' चमेली ने आवाज दी। पहले देख चुकी थी कि महादेव मड़नी कर रहा है। कुछ दूर था।

क्या है' महादेव ने मदद के गले से पूछा।

'जल्दी आ' चमेली जैसे अपनी जबान पर ही उसे ले आयी।

महादेव जल्दी से बढ़ा। चमेली की पुकार पर ही ठाकुर भगे।

महादेव जब चमेली के पास आया, तब ठाकुर चिल्लाने लगे, 'दौड़ो गाँववालो, महादेवना चमेली की रास में क्या कर रहा है।'

ठाकुर की आवाज बुलन्द थी। गाँव की दीवारों से टकरायी। गाँव और बाहर के लोगों

ने सुना। कुछ दौड़े भी। महादेव को ठाकुर की आवाज से ही चमेली के साथवाली हरकत मालूम हो गयी।

'घबरा न' चमेली से कहकर महादेव ठाकुर की तरफ बढ़ा।

ठाकुर लाठी लिये तैयार थे ही। महादेव के हाथ में सिर्फ औगी थी। लेकिन यह पट्ठा था और लड़ता था। ठाकुर की देह में सिर्फ दाढ़ी और मूँछों के बाल थे और हाथ में एक तेलवाई लाठी।

महादेव के आते ही ठाकुर ने वार किया। महादेव वार के साथ भीतर घुसा और कमर पकड़कर उठाकर ठाकुर को दे मारा। इसके बाद ठाकुर की बुरी हालत थी। कई जगह चोट आयी।''[14]

दोनों संदर्भों में दुष्टों को दण्ड मिला साहसी लोगों के द्वारा। निराला की राष्ट्रीय चेतना का महत्व यह है कि वे गोरों को आम जनता के लिए जितना घातक मानते हैं, उससे भी अधिक अंग्रेजों के द्वारा पोषित सामंतवर्ग के प्रतिनिधि को। ये गाँवों में किसानों के शत्रु हैं जो अपने ही जनों पर अत्याचार करते हैं। निराला कई बार कहते हैं- ये लोग गोरे तो नहीं, लेकिन उनसे भी खतरनाक हैं। इतना ही नहीं निराला के प्रथम उपन्यास में नाटकीय ढ़ंग से राजकुमार एम.ए. गोरे को सबक सिखाता है, लेकिन चमेली तक आते-आते एक सामान्य किसान जमींदार के सिपाही को पटक देता है। इन दोनों संदर्भों में निराला की राष्ट्रीय चेतना का विकास ध्यातव्य है। एक ठाकुर को सामान्य किसान पीटता है, उस दंभी को इससे बड़ा अपमान नहीं हो सकता है। यह भी कम आकर्षणीय बात नहीं है कि निराला को राष्ट्रीय मुक्ति में क्रान्तिकारी कदम उठाना ही ज्यादा पसंद है। उपरोक्त संदर्भों में वे अहिंसा या सत्याग्रह से ज्यादा क्रान्तिकारी रूख के ही समर्थक नज़र आते हैं।

निराला पहले से ही देश की मुक्ति को सामान्य जनता की मुक्ति से जोड़कर देखते हैं। वे मानते थे कि स्वतंत्रता संग्राम सत्ताधारी लोगों में परिवर्तन मात्र बनकर नहीं रहना चाहिए। समाज के ढ़ाँचे का आमूल क्रान्तिकारी परिवर्तन ही राष्ट्रीय मुक्ति आंदोलन का परम लक्ष्य होना चाहिए। इसलिए उनकी कहानियों में तथा उपन्यासों में कई बार उनके नायक सामान्य जनता के पास जाते हैं, उन्हें शिक्षा देते हैं, उन्हें देश की वर्तमान परिस्थितियों से अवगत कराते हैं और दलित-दीन जनों के उद्धार में लगे रहते हैं। निराला की नज़र में यह काम

राजनैतिक सभाओं से राष्ट्रीय मुक्ति पर भाषण झाड़ने से कई गुना ज्यादा देशभक्ति का काम है। 'अप्सरा' उपन्यास का नायक राजकुमार और उसका मित्र चंदनसिंह देश-सेवा के कार्य में अलग क्षेत्र चुनते हैं। राजकुमार कनक के साथ अपना समय बिताता है, साहित्य-पठन में डूब जाता है लेकिन उसे अचानक याद आती है कि उसका मित्र चंदन तो सामान्य जनता की सेवा कर रहा है। अखबार में चंदन की गिरफ्तारी की खबर पढ़कर वह बहुत चिंतित होता है। चंदन लखनऊ में किसानों का संगठन करता है, उसी समय सरकारी खजाने पर डाका पड़ा। इससे पुलिस चंदन को दोषी मानती है और उसे गिरफ्तार कर लिया जाता है। इस कथन से निराला ने स्पष्ट किया कि देश-सेवा का व्रत कितना कठिन होता है और मुक्ति आंदोलन से जुडे सक्रिय कार्यकर्ताओं को किस प्रकार की अडचनों का सामना करना पड़ता है। निराला लिखते हैं कि राजकुमार साहित्य को ही अपनी माता समझ बैठा है, लेकिन वास्तविक सेवा साहित्य की नहीं अपितु देश की सामान्य जनता के साथ जुडी हुई है। इसलिए राजकुमार अपनी स्थिति से संतुष्ट नहीं होता, मित्र की देशभक्ति पर वह गर्व करता है और स्वयं की मज़बूरी पर पश्चात्ताप भी करने लगता है।

''राजकुमार एक कुर्सी पर बैठा संवाद-पत्र पढ़ रहा था। हिन्दी और अँगरेजी के कई पत्र कायदे से टेबिल पर रखे थे। एक पत्र में बड़े-बड़े अक्षरों में लिखा था- 'चंदनसिंह गिरफ्तार !'

आग्रह-स्फारित नेत्रों से एक साँस में राजकुमार कुछ इबारत पढ़ता गया। लखनऊ-षड्यंत्र के मामले में चंदन गिरफ्तार किया गया था। दोनों एक ही साथ कॉलेज में पढ़ते थे। दोनों एक ही दिन अपने-अपने लक्ष्य पर पहुँचने के लिए मैदन में आये थे। चंदन राजनीति की तरफ गया था, राजकुमार साहित्य की तरफ। .... राजकुमार त्रस्त हो उठा। हृदय ने कहा, गलती की। निश्चय ने सलाह दी, प्रायश्चित्त करो। बंदी की हँसती हुई आँखों ने कहा, 'साहित्य की सेवा करते हो न मित्र ? मेरी माँ थी जन्मभूमि, और तुम्हारी माँ भाषा। देखो, आज माता ने एकांत में मुझे अपनी गोद में अंधकार की गोद में छिपा रखा है, तुम अपनी माता के स्नेह की गोद में प्रसन्न हो न?' व्यंग्य के सहस्र शूल एक साथ चुभ गये।''[15]

निराला के इस कथन से स्पष्ट होता है वे मानते आये कि भाषा की सेवा से देश की सेवा उत्तम है। साहित्य तो साहित्यकार के मनोभावों तथा गूढ़ विचारों की अभिव्यक्ति है।

लेखक जितना निर्लिप्त होकर लिखें, कभी-कभी उनके मन की गहरी परतों में निक्षिप्त विचार पात्रों के माध्यम से प्रकट हो ही जाते हैं। निराला साहित्य को अपना क्षेत्र मान चुके थे। उन्हें भाषा की सेवा पसंद थी। लेकिन उनके मन में कहीं यह विचार भी छिपा था कि देश के लिए गिरफ्तार होनेवाले क्रान्तिकारी, किसानों का संगठन करनेवाले कार्यकर्ता, सामान्य जनता की मदद करनेवाले स्वयंसेवक देश की सच्ची सेवा करते हैं। 'अप्सरा' उपन्यास का नायक राजकुमार इस संदर्भ में निराला की प्रतिच्छवि बनकर सामने आता है। यदि राजकुमार साहित्य-सेवा का प्रतिनिधि है तो चंदनसिंह देश-सेवा का प्रतिनिधि है।

निराला अपनी कहानियों और उपन्यासों में जमींदारों के अत्याचारों का खुलकर वर्णन करते हैं। जमींदारों की स्थिति कायम है- अंग्रेजों के बल पर। अंग्रेजों को खुश रखना जमींदारों के अनिवार्य कर्तव्यों में एक था। ये देशीराजा विदेशी अफसरों की प्रशंसा पाने में कितना गिर सकते हैं, इसका भी वर्णन निराला ने किया। 'अलका' उपन्यास में जमींदार मुरलीधर अपनी अंग्रेज़-दासता के ही कारण समस्त सुख पाता है। सरकारी अफसरों को खुश रखने के लिए वह अपनी जनता को सताने पर तुला हुआ है। मुरलीधर के पितामह ने सन् 1857 वाले विद्रोह के समय में अंग्रेजों की रक्षा करके संपत्ति प्राप्त की तो मुरलीधर आजकल अंग्रेज़-अफसरों को खुश करने में लगा रहा है। अफसरों को खुश करने की शिक्षा उसे सेक्रेटरी बाबू मोहनलाल से मिलती है इसलिए इस संबंध में वह मुरलीधर का गुरु है।

"…. अब शिष्य की उन्नति के लिए विशेष रूप से दत्तचित्त हुए। कुछ दिनों तक शिष्य के मनोभावों को पढ़ते रहे, पढ़कर प्रौढ युवक को प्रौढ़ता की तरफ फेरने लगे। पहले छुरी, चम्मच, काँटा पकड़ाकर साहबी ठाठ से भोजन करना सिखलाया। फिर धीरे-धीरे स्वास्थ्य के नाम पर शराब का नुस्खा रखा। फिर छिप-छिपाकर सरकारी अफसरों के साथ भोजन करने को प्रोत्साहन। फिर बगीचे की कोठी में बाकायदा पंचमकार-साधन और देशी-विलायती सरकारी अफसरों को कम-से-कम निमंत्रण। एक साल के अंदर लखनऊ, इलाहाबाद और कानपुर आदि की खूबसूरत-से खूबसूरत वेश्याएँ आकर, नाचकर, गाकर सरकारी अधिकारियों को खुशकर-कर चली गयीं। दूसरे साल सम्राट् के जन्म-दिन के उपलक्ष्य में स्टेट्समैन, पायनीयर, लीडर आदि में देखा, तो उन्हें पदवी नहीं मिली। पड़ोस के मामूली रियासतदार राजा हो गये हैं। अनुभवी मोहनलाल ने कहा, इस वर्ष तो अभी सिफारिश गयी ही

होगी, साल-दो साल जब और मेहनत की जायेगी, तब नतीजा हासिल होगा। ये सरकारी अफसर एक दिन में नहीं पिघलते, जानते हैं, माल भरा है, सोचते हैं, चार दिन की दावत से राजा बनाकर बेवकूफ बनाना चाहता है, इसलिए घबराने की कोई बात नहीं- अपने पास माल है, तो नाम जरूर होगा।''[16]

निराला ने इस उपन्यास में यह दिखाया कि देशी ज़मींदार और ताल्लुकेदार अंग्रेज़ों की कृपा प्राप्त करने के लिए लालायित रहते हैं और पतन की गर्त में गिर जाते हैं। निराला उन जमींदारों से घृणा करते हैं और उन्हें उचित दण्ड की व्यवस्था भी अपने उपन्यासों में करते हैं। मुरलीधर बाद में शोभा उर्फ अलका से बलप्रयोग करने लगता है और उसी के हाथों उसकी मौत हो जाती है। 'अलका' का रचनाकाल सन् 1930 के आसपास है। ध्यान रहे, यह समय स्वतंत्रता आंदोलन तथा राष्ट्रीय जागरण के संदर्भ में अत्यंत महत्वपूर्ण काल था। एक तरफ सामान्य जन देश की आज़ादी के लिए लड़ रहे हैं तो दूसरी तरफ जमींदार लोग इंतजार कर रहे हैं कि कब उन्हें इंग्लैण्ड से राजा की उपाधि प्राप्त होगी....मुरलीधर इन सारे जमींदारों का प्रतिनिधि है। निराला ने इस प्रकार अपने कथा-साहित्य में यह चित्रित किया कि ये ही जमींदार देश की स्वतंत्रता के मार्ग में बाधक हैं। 'अलका' उपन्यास में मुरलीधर के समान एक और जमींदार का पात्र है- कृपानाथ। उनके पिता होटल में काम करते थे, कुछ दिन कपड़ों का व्यापार भी किया, बाद में उसने रूमाल का कारखाना खोला। बाद में अफ़सरों को घूस देकर कर्ज से तबाह किसी ताल्लुकेदार का गाँव सस्ते दाम प्राप्त कर लेता है। अब कृपानाथ अपनी जमींदारी के किसानों का खून चूसकर संपत्ति जुटाने में लगा है। किसान लोग लगानबन्दी का आंदोलन चलाते हैं। जमींदार का सिपाही एक सामान्य किसान बुधुवा को घसीटकर लाता है तो लक्खू जो जमींदार का सेवक है, बुधुवा पर विद्रोह का आरोप लगाते हुए इस प्रकार कहता है: ''यह सुराज की खोज में नेता की तरह तत्पर है, सरकार और जमींदार के दो पाटों में रहकर पिसने से नहीं डरता, लोगों को अपनी लीक पर ले चलने को बछवे-जैसे फेरता फिरता है, कहाँ से भगवान जाने इसके पास खबर आती है। अब रियाया को लगान न देना होगा, दिन-भर इसी काम में तत्पर रहता है।''[17]

निराला यहाँ बताते हैं कि चक्की का एक पाट अंग्रेजी सरकार है तो दूसरा पाट है देशी जमींदारी व्यवस्था। इन दोनों पाटों के बीच पिसनेवाले हैं सामान्य जन, विशेषकर गाँवों

के किसान तथा अन्य मेहनतकशवर्ग के लोग। बुधुवा की बड़ी बुरी हालत होती है, जमींदार के सिपाही और सेवकों के प्रहारों से उस बेचारे की पीठ फट जाती है, मुँह से फेन बहने लगता है। निराला अपने कथा-साहित्य में दिखाते हैं कि पराधीन भारत में शोषण के कितने तबके होते हैं। सबसे अग्र भाग में है- अंग्रेज़, बाद में राजा- महाराजा, जमींदार और ताल्लुकेदार, उनके बाद उनके टुकड़खोर, और इस भयानक शोषण चक्र के सबसे अंतिम भाग में जमींदार का सिपाही होता है। इस व्यवस्था में राष्ट्र को बचाने का एकमात्र साधन है- गाँवों में किसान तथा अन्य पीड़ित वर्गों को शिक्षित बनाना, समकालीन राजनैतिक दाँव-पेंच से उन्हें परिचित कराना, अंग्रेजों से लेकर गाँव में जमींदार के सिपाही तक फैली इस शोषण व्यवस्था का ज्ञान दिलाना। जो काम 'अप्सरा' उपन्यास में चंदन सिंह करता है, वही काम 'अलका' में विजय और अजित करते हैं। निराला की दृष्टि में इन तमाम कमजोर लोगों में यदि एकता क़ायम की जाय, तो वे साम्राज्यवाद तथा सामंतवाद का मुँहतोड़ जवाब प्रस्तुत कर सकते हैं। अतः इस कमज़ोर जनता का जागरण ही असली राष्ट्रीय जागरण है। 'अलका' उपन्यास का नायक विजय जब इन गाँववालों को एकत्र करके, उन्हें अन्याय के विरुद्ध लड़ने और लगान देना बंद करके उत्पादन बढ़ाने के मार्गों पर ध्यान देने से संबंधित अनेक बातें सुनाता है, तब उन सबके चेहरों पर जागरण की किरण फूट पड़ती है।

''जो-जो चित्र वह खींच रहा था, सदियों के अंधकार से मूँदे सबके हृदय का प्रफुल्ल पंकज प्रकाश पा जैसे एक-एक दल खोलता जा रहा हो, ऐसा आनंद लोगों को मिला। अपने भविष्य की इस सुहावनी कल्पना में बीरन और उसके भाइयों को शराब के नशे से ज्यादा रंगीन, एक न-जाने हुए न-जाने कैसा स्वर्ग सुखकर छवियों में भुला रखनेवाला मालूम हुआ। हृदय के सागर ने पूर्णेदु को प्राप्त करने को लालसा के सौ-सौ हाथ फैला दिये। अब तक एक दूसरे के प्रति द्वेष का विष भर रखनेवाले जो सर्प थे, सुखकर स्वर सुनकर, काटना भूल, मंत्र-मुग्ध रह गये।''[18]

निराला के प्रिय मित्र कुल्ली भी असली नेता है जो गाँव में कांग्रेस से जुड़कर अपने चरित्र को उन्नत बनाता है। निरला उसके चरित्र की उज्वलता को देखकर चकित हो जाते हैं और सोचते हैं कि इस आदमी में इतना तेज कहाँ से आ गया। कुल्ली गाँव में दलित जनों के लिए पाठशाला खोलता है, सबकी मदद करता है, जनांदोलनों से खुद जुड़ता है। इस प्रकार

निराला निरूपित करते हैं कि एक सामान्य व्यक्ति भी राष्ट्रीय जागरण के महान आंदोलनों से जुड़कर निखर उठता है। 'चतुरी चमार' कहानी में निराला खुद किसानों का साथ देते हैं और दारोगा को अपनी अंग्रेजी से प्रभावित करते हैं। वे चतुरी के बेटे अर्जुन को पढ़ाते हैं, अपने ही समान एक मनुष्य के रूप में उसके साथ बर्ताव करते हैं। लेकिन अर्जुन के प्रति अपने बेटे के जातिजन्य अहंकारपूर्ण व्यवहार को देखकर चिंतित होते हैं, उसे डाँटते हैं।

निराला की राष्ट्रीयता समाज के साथ अभिन्नरूप से जुड़ी हुई है। वे देखते हैं कि अपना चिरंजीव चतुरी पर रोब दिखाता है, उसके उच्चारण की अशुद्धियों को सुनकर रस लेता है, उस पर जातिगत आधिपत्य दिखाने लगता है। निराला को बेटे का यह बर्ताव भारतीयों के प्रति अंग्रेजों का बर्ताव ही मालूम होता। एक दिन चतुरी का बेटा अर्जुन निराला के घर पढ़ाई करने आया, अर्जुन उसे पढ़ा रहा था। निराला बाहर से सारा संवाद सुनते रहे, अर्जुन कुछ संस्कृत शब्दों का उच्चारण ठीक से कर नहीं पा रहा था तो अर्जुन उसकी अवहेलना कर रहा था। निराला ने इस घटना को लेकर लिखा कि ''.....अर्जुन अप्रतिभ सा होकर, दबी आवाज में एक छोटी-सी 'हूँ' करके सिर झुका कर रह गया। मैं दरवाजा धीरे-से ढ़केलकर भीतर खंभे की आड़ से देख रहा था। मेरे चिरंजीव उसे उसी तरह देख रहे थे, जैसे गोरे कालों को देखते हैं।''[19]

निराला महसूस करते हैं, जब तक ये जात-पाँत की भेद भावनाएँ खतम नहीं होतीं, तब तक देश की स्वतंत्रता नहीं होगी। निराला ताड़ लेते हैं- यदि राजनैतिक स्वतंत्रता प्राप्त करके गोरों की जगह काले प्रभु गद्दी पर बैठेंगे तो उससे सामान्य जनों को कोई बड़ा फायदा नहीं होने वाला है। क्योंकि जब तक समाज में जाति-व्यवस्था के दुष्परिणाम कायम रहेंगे तब तक अपने अग्रवर्ण के दंभ में चूर ब्राह्मण आदि उच्चवर्ग के लोग समाज के दूसरे वर्णों को उसी प्रकार देखेंगे, जिस प्रकार गोरे कालों को देखते हैं ! इस प्रकार निराला गोरों के साम्राज्यवादी दंभ से उच्चवर्णों के जातिगत दंभ को अलग करके नहीं देखते। इसलिए जहाँ भी मौका मिला- वे इन जातिगत रूढ़ियों पर आक्रमण करते हैं। खुद मांस खाकर परंपरा का तीव्र विरोध करते हैं। 'श्रीमती गजानंद शास्त्रिणी' जैसी कहानियों में वे धर्म एवं जातीय दंभ से संबंधित इन रूढ़ियों का परदाफाश इस प्रकार करते हैं कि ''श्रीमती गजानन्द शास्त्रिणी श्रीमान पं. गजानन्द शास्त्री की धर्म-पत्नी है। श्रीमान शास्त्री जी ने आपके साथ यह चौथी शादी की

है, धर्म की रक्षा के लिए। शास्त्रिणी जी के पिता को षोडशी कन्या के लिए पैंतालीस साल का वर बुरा नहीं लगा, धर्म की रक्षा के लिए। वैद्य का पेशा अख्तियार किये शास्त्री जी ने युवती पत्नी के आने के साथ 'शास्त्रिणी' का साइन-बोर्ड टाँगा, धर्म की रक्षा के लिए। शास्त्रिणी जी उतनी ही उम्र में गहन पातिव्रत्य पर अविराम लेखनी चालना कर चलीं, धर्म की रक्षा के लिए। मुझे यह कहानी लिखनी पड़ रही है, धर्म की रक्षा के लिए।''[20]

इन ब्राह्मण लोगों को अपने धर्म पर गर्व है, इसी धर्म के नाम पर वे समाज में दूसरों से खुद को महान मान बैठे हैं, दूसरों पर रोब दिखाते हैं, भाषण झाड़ते हैं, लोगों पर सांस्कृतिक दासता थोपते हैं। निराला व्यंग्य रूप से कह रहे हैं कि इनका धर्म इतना घटिया है। वे मानते हैं कि राष्ट्र की मुक्ति इन सारे बंधनों को ढ़ीले करने में ही छिपा है। निराला व्यंग्य करते हैं कि इतने धार्मिक लोग भी अँगरेजों की चापलूसी में लगे हैं कि ''शास्त्रिणी जी के पिता जिला बनारस के रहनेवाले हैं, देहात के, पयासी, सरयूपारीण ब्राह्मण, मध्यमा तक संस्कृत पढ़े, घर के साधारण जमींदार, इसलिए आचार्य भी विद्वत्ता का लोहा मानते हैं। गाँव में एक बाग कलमी लँगड़े का है। हर साल भारत-सम्राट् को आम भेजने का इरादा करते हैं। जिले के अँगरेज हाकिमों को आम पहुँचाने की पितामह के समय से प्रथा है। यह भी सनातनधर्मानयुयायी हैं।''[21]

इस प्रकार निराला यह दिखाते हैं कि किस प्रकार सांस्कृतिक शोषण, आर्थिक शोषण तथा साम्राज्यवाद के बीच समझौता हो चुका है। ब्रिटिश कालीन भारत का वास्तविक चित्र उनके कथा-साहित्य में अनेक उदाहरणों सहित प्रकट होता है। इसलिए रामविलास शर्मा जी ने लिखा कि ''राष्ट्रीय स्वाधीनता पर बहुत साहित्यकारों ने लिखा है। निराला की विशेषता यह है कि उन्होंने साम्राज्यवाद के आर्थिक शोषण, राजनीतिक दाँवपेंच और सांस्कृतिक नीति का गहराई से विश्लेषण किया, ये सब एक-दूसरे से कैसे जुड़े हुए हैं - यह दिखाया, उन्होंने उन उदारपंथी बुद्धिजीवियों का विरोध किया, जो अंग्रेजों के सहारे भारत का औद्योगिक और सांस्कृतिक विकास करना चाहते थे।''[22]

निराला अपने राष्ट्र के साथ किस प्रकार से जुड़े रहे इसका प्रमाण उनकी कहानी 'दो दाने' में मिलता है। द्वितीय विश्वमहायुद्ध के पश्चात् भारत की स्थिति दयनीय बन गयी। अंग्रेजों को युद्ध में विजय तो हासिल हुई लेकिन अंग्रेजों की सहायता करनेवाले भारतीयों को

कुछ फायदा न हुआ, प्रत्युत बंगाल जैसे प्रांतों में काले बाजार के कारण व्यापारी तथा दलाल करोड़पति बनने लगे तो सामान्य जनता भूखों मरने लगी। ऊपर से अकाल और बाढ़ जैसी प्राकृतिक विपदाओं से जनता त्रस्त हो उठी। इस सबका कारण अंग्रेजों की दोषयुक्त नीति ही था, निराला इससे परिचित थे। उन्होंने इस कहानी में दिखाया कि भारतीय महिलाओं को दो जून की रोटी खाने के लिए अपना शरीर बेचना पड़ रहा है। आर्थिक समस्या ने नैतिक मूल्यों को खाली कर दिया, पेट की समस्या ने पवित्रता एवं पातिव्रत्य जैसे नारी-धर्मों को कूड़े में फेंक डाला। इससे अनगिनत भारतीय महिलाएँ अपना सतीत्व खो गयीं- भारतीय सांस्कृतिक पतन उसके आर्थिक पतन के साथ जुड़ा हुआ है। निराला ने बंगाल के एक गाँव से जान बचाने के लिए कलकत्ते में कदम रखनेवाली असहाय विधवा कमला और उसकी बेटी चंपा का हृदयविदारक दृश्य खींचा। सबसे पहले उन्होंने देश की दुरवस्था को इस प्रकार प्रकट किया -

''तूफान और बाढ़ के दिन बीत चुके हैं। हरा-भरा बंगाल बाहर से वैसा ही है, मगर भीतर से जला हुआ। पूर्वी मोर्चे पर कड़ी चढ़ाई है। कितने ही एरोड्रोम अमरीकन वायुयानों से भर चुके हैं। पूरब की गश्त जोरों पर है। रात को ब्लैकआउट। कलकत्ते में हाथ नहीं सूझता।.......गाँव के बाजार-के-बाजार खाली हो गये हैं। न पैसा है, न अन्न। पहले लोग उपास करने लगे। दिन में एक वक्त, फिर दो दिन में एक वक्त, बाद में यह भी मोहाल हो गया। पेड़ों की कोपलें उबालकर खाने लगे। कुछ दिन में ही हरा-भरा बंगाल ढूँडा हो गया। आदमी और ढोरों के पेट में पेडों के पत्ते चले गये। भूख की ज्वाला बढ़ती गयी। देहात में भीख न मिलने की वजह से लोग शहर के रास्ते दौड़े। कोई आधी दूर चलकर मरे, कोई पहुँचकर, मगर पेट में दाना न गया। धनिक-जन हथियार-बंद सिपाहियों से अपने गोलों की रक्षा कराने लगे।''[23]

देश काले बाजार के कारण मानो रेगिस्तान-सा बन गया। कुछ लोगों की स्वार्थपूर्ण नीति के कारण आम जनता की जान आफत में पड़ गयी। मुट्ठी भर व्यापारियों की स्वार्थ-सिद्धि के लिए लाखों में जनता की बलि होने लगी। इन सबको देखते अंग्रेज़ सरकार चुपचाप देख रही थी। इस स्थिति में बंगाल के एक गाँव में साधारण महिला कमला निश्चय करती है कि उसे अपनी बेटी को साथ लेकर कलकत्ता जाना है और उसे वेश्या बनाकर पेट भरना है।

जिस तत्व के लिए भारतीय महिलाएँ, विशेषकर ग्रामीण महिलाएँ विश्व भर में प्रसिद्ध हैं- उसी सतीत्व को बेचने के लिए आज वे मज़बूर हो गयी हैं।

''इसी समय कमला को सूझा, अपने परिवार को कलकत्ता चली जाय। कमला साधारण गृहस्थ की विधवा है। मौरूसी खेत भी कुछ बीघे हैं और साधारण गहने भी। हाथ में कुछ रूपये बच रहे हैं। गाँव में चौथाई लोगों को काल के गाल चले जाते और युवकों के पैर लड़खड़ाते देखकर उसने मन-ही-मन तय किया, जिस तरह दूसरी लावारिस युवतियों ने यौवन बेचकर अपने भाइयों की परवरिश की हैं, वह भी करेगी, नहीं तो अन्न के अभाव से सबके साथ-साथ खुद अपने को भी काल का ग्रास होते देखेगी।''[24]

यहाँ भी निराला का ध्यान गाँव पर ही है। क्योंकि भारत गाँवों का देश है, यदि गाँव वीरान हो जायेंगे तो मानो भारत का भाग्य ही खतरे में है। इस स्थिति में गाँव उजड़ने लगे, लोग शहरों की तरफ बढ़ने लगे, सारे गाँव खाली हो गये, जिन्हें जीना है उन्हें नैतिक मूल्यों को तिलांजलि देकर ही जीना है। कमला इस स्थिति से बहुत परेशान है। वह अंदर से टूट जाती है कि एक माता होकर अपनी बेटी को बाजार की वस्तु के रूप में बेचना पड़ रहा है। निराला इस कहानी में उस माता का अत्यंत करूणास्पद चित्र खींचकर पाठकों का हृदय द्रवित कर देते हैं। यह एक कमला की कहानी मात्र नहीं है, जो लोग गाँवों से हजारों की संख्या में कलकत्ते जैसे शहरों में आये उन सबकी स्थिति लगभग इसी तरह की है। निराला कमला के माध्यम से राष्ट्र की अत्यंत भयानक परिस्थिति का आँखों देखा वर्णन करते हैं कि ''जिस वक्त सेठजी भीतर बैठे थे, कमरा खाली था। सिर्फ धीमी बत्ती अपने मन से जल रही थी। कमला का हाल बयान के परे था। हृदय के टुकड़े- टुकड़े हो रहे थे। पुरानी मर्यादा का बाँध टूट रहा था। दुख के आँसू उमड़कर सारा घर डुबा देना चाहते थे। बच्चे सहम न जायँ, चम्पा घबरा न जाय कि आता हुआ दाना तूफान और बाढ़ में जैसे उड़ जाय और बह जाय। वह पत्थर से दिल को बाँध रही थी। काँपते हाथों भी बेटी को एक साफ साड़ी पहनाकरी सजाया। बाल शाम को सँवार दिये थे। कुमारी की माँग में सेंदूर न था। आँख में जो ज्वाला थी, उसको समझदार ही समझता है।''[25]

कमला की हृदय-वेदना वही समझ सकता है जो समझदार हो। यह काल सचमुच भारत के इतिहास के पन्नों परअत्यंत दौर्भाग्यपूर्ण अध्याय के अंतर्गत गिना जा सकता है।

निराला इन भयानक चित्रों के माध्यम से राष्ट्र का ध्यान उन राष्ट्रीय दुश्मनों की तरफ आकृष्ट करना चाहते हैं जो माल छिपाकर जनता को भूखों मरने दे रहे हैं। साम्राज्यवाद के आर्थिक शोषण का दर्दनाक दृश्य पाठकों के सामने रखकर उन्हें सजग बनाना चाहते हैं। इस प्रकार कथा-साहित्य में निराला जिस भयानक आर्थिक समस्या का चित्रण करते हैं, उससे आज़ादी की लड़ाई का बहुत घनिष्ठ संबंध है। क्योंकि निराला राष्ट्र की प्रधान समस्याओं में अबला नारियों की मुक्ति को एक मानते हैं। इसलिए कमला और चम्पा जैसी नारियों के चित्रण के माध्यम से उन्होंने भारतीय नारी की असहायता का चित्रण किया।

किसी भी राष्ट्रीय साहित्यकार की यह जिम्मेदारी होती है कि वह अपने राष्ट्र की समस्याओं के मूल में जाये और उसका समाधान प्रस्तुत करने का प्रयास करे। निराला ने अपने समय की स्वाधीनता-संग्राम संबंधी समस्या का मूल पहचाना, उसके समाधान के रूप में सामान्य जनता को शिक्षित व जागरूक बनाना ही उचित समझा। इसलिए उनके कथा-साहित्य में ऐसे कई संदर्भ मिलते हैं कि नायक के उपदेशों से जनता में पुनः उत्साह की जागृति होती है, नारियाँ पढ़-लिखकर अपने बल पर जीती हैं, अपना व्यक्तित्व बनाकर उसकी रक्षा करती हैं- अनेक समस्याओं का खुद सामना करती हैं। निराला दिखाते हैं कि शिक्षा से, उपदेश से, ज्ञान-संप्रेषण से जैसे उनके चले गये प्राण फिर वापस आ गये। 'अलका' उपन्यास में शोभा जब तक अनपढ़ है, तब तक असहाय रहती है। लेकिन जब स्नेहशंकर के आश्रय में जब वह पढ़-लिखकर अपना अलग व्यक्तित्व बनाती है, तब उसमें मुरलीधर जैसे अत्याचारी जमींदार से भी भिड़ने का साहस पनपता है। निरुपमा की नायिका निराला की दृष्टि में भारतीय नारी का आदर्श प्रतिरूप है। उसमें विवेक, साहस एवं करूणा जैसे लक्षण हैं- जिनका आधार मात्र शिक्षा है। 'प्रभावती' उपन्यास में प्रभावती, यमुना, विद्या, रत्नावली आदि नारियों के माध्यम से निराला भारत की वीरनारियों का चित्र आंकते हैं और राष्ट्रीय मुक्ति आंदोलन में नारी की सक्रिय भूमिका की ओर संकेत करते हैं।

निराला स्वाधीनता आंदोलन को गाँवों में विशेषकर मेहनतकश एवं किसान वर्गों से जोड़कर देखते हैं। निराला के उपन्यास-नायक गाँवों में जाते हैं और किसानों का संगठन करते हैं। 'अलका' उपन्यास में गाँव के लोग जमींदार को मुफ्त में अपना माल बेच देते हैं, जमींदार उनसे बेगार लेता है तो गाँव के सब आम जन उसे चुपचाप स्वीकार करने को

तैयार। इस स्थिति से विजय संतुष्ट नहीं होता। वह उनमें उत्साह भरता है और आशाएँ जगाता है कि भय त्याग दें, मरते-मरते जीना बंद कर दें। विजय के उत्साहपूर्ण उपदेशों का फलद प्रभाव गाँव के जनों पर पड़ता है -

''....लोगों को जैसे आत्मा के भीतर बल प्राप्त हुआ हो, उनका मानसिक शरीर शक्ति के प्रवाह से धुएँ से गुब्बारे की तरह फूलकर, हर सिकुड़न को भरकर, जैसे यौवन में भी न प्राप्त किया हुआ पूर्ण हो गया। एक ऐसी हिम्मत आयी, जो आज तक नहीं आयी थी, जैसे- 'मुश्किल-आसन' के सब मन में प्रत्यक्ष प्रमाण बन रहे हों।

''जब तक डरोगे'' विजय ने कहा, ''डर पीछा नहीं छोड़ सकता, यही मुद्दतों से भरी हुई तुम्हारे अंदर स्वभाव की कमजोरी है। अगर पढ़-लिख नहीं सके, और पढ़-लिखकर भी लोग कभी ज्यादा गिर जाते हैं, जब बुद्धि को बुरे स्वार्थ की तरफ फेरते हैं, खैर, तो भी तुम अपने स्वभाव को ऊँचा उठाने की कोशिश कर सकते हो। जब देखो, किसी काम के लिए दिल नहीं तैयार, तब जरूर-जरूर उसे करने से इनकार कर दो। अरे, मौत तो चारपाई पर होगी, फिर खुद क्यों नहीं उसका सामना करना सीखते?''[26]

यहाँ मात्र विजय गाँववालों को उपदेश नहीं देता, अपने उपन्यास के माध्यम से निराला ही राष्ट्रजनों को उपदेश देते हैं कि जो दिल से स्वीकार नहीं, उस काम को हरगिज़ मत करना। जब तक डरते रहोगे- तब तक डर आपका पीछा नहीं छोड़ता। राष्ट्रीय जागरण का यही सबसे बड़ा संदेश है। स्वामी विवेकानंद से लेकर समस्त महानुभावों के असंख्य भाषणों का यही सार है कि भय ही मरण है, निर्भयता ही जीवन है। तब भारत को साम्राज्यवाद तथा सामंतवाद से एकसाथ स्वतंत्रता संग्राम करना था, इसलिए इस संग्राम हेतु निराला अपने जनों को निर्भयता का कवच देते हैं। निराला सच्चे अर्थों में राष्ट्रीय प्रयोजनों से संबद्ध कलाकार थे, उनके कथा-साहित्य में इसके प्रमाण कदम-कदम पर मिलते हैं।

निराला पराधीन भारत के दैन्य-दारिद्र्य, पीड़ा तथा सांस्कृतिक एवं राजनीतिक अधोगति को देखकर अत्यंत विचलित हो गये। इसलिए उनकी साहित्यिक अभिव्यक्ति में राष्ट्रवेदना वर्तमान राजनैतिक परिस्थितियों की दुरवस्था के परिप्रेक्ष्य में प्रकट होती है और साथ ही इस वेदना की दवा खोजने की तत्परता भी मिलती है। वे मानते हैं कि भारत अपनी सामाजिक-धार्मिक जड़ता में जब तक सोया रहेगा तब तक स्वाधीनता-प्राप्ति के लिए लड़ी

गयी कोई भी लडाई फलप्रद नहीं होनेवाली। इसलिए निराला हमेशा बताते हैं कि राजनैतिक आंदोलनों का लक्ष्य सामाजिक-बंधनों को मुक्त करना हो, सामान्य जनता जो गाँवों में बसती है- उसे राजनैतिक शिक्षा दिलाकर अंग्रेजों की कूटनीति का विरोध उनसे मिलकर करें। यदि देश का अधिकांश भाग-गाँव अलक्षित हो गया तो स्वाधीनता संग्राम का कोई मतलब ही नहीं रहता। गाँवों में किसान लोग सुराज का नाम तक नहीं जानते, निराला को खुद इसका अनुभव था। किसानों की इस दयनीय स्थिति का फायदा गाँव के दलाल और चालाकी व्यापारी उठाते हैं। किसानों तथा जमींदार के बीच में सेतु बनकर किसानों को लूटनेवाले साम्राज्यवादी महायंत्र में एक मुख्य पुरजा है यह दलाल। निराला इस स्थिति को अपने उपन्यास 'अलका' में इस प्रकार दिखाते हैं कि

"'सुराज क्या है रे' बुधुआ ने महँगू से पूछा।

'किसानों का राज' गंभीर होकर महँगू ने कहा।

महँगू व्यापारी है। लकड़ी का कारोबार करता है। देहात में खड़े बबूल, ऊसरों और काश्तकारों के खेतोंवाले, मोल लेता है। काश्तकारों वाले किफ़ायत से मिलते हैं, जमींदार अपने सिपाहियों से कटवाने में मदद करता है। महँगू को काफी मुनाफा हो जाता है। .... वह गाँव में शहर की ख़बरों का एक मुख्य रिपोर्टर, किसानों का जमींदार से भी मिला हुआ नेता गाँव के रिश्ते से बुधुआ चचा लगता है, महँगू भतीजा।

"तो क्यों रे महँगू" बुधुआ ने पूछा, "फिर ये जमींदार और पटवारी क्या करेंगे "

"झख मारेंगे और क्या करेंगे "

बुधुआ कुछ समझ न सका कि देश में, गाँव में रहते हुए कैसे झख मार सकते हैं। महँगू भी गहराई तक नहीं समझता था। सुनता था जो कुछ, पचीसों उलटफेर के बाद खुद भी न मानता था कि यह पुलिसवाली सरकार और जमींदार लोग लगानवाला हक छोड़कर ख्वाब की तरह कैसे गायब हो जायेंगे। पर दूसरों को नेताओं की तरह समझाना उसकी आदत पड़ गयी थी।"[27]

निराला इसमें किसानों की अशिक्षा की ओर संकेत करते हैं, उनकी अशिक्षा का फायदा उठानेवाले जमींदार के पिट्ठुओं का समाचार देते भी हैं, सुराज का नाम तक न जाननेवाली इस ग्रामीण जनता को स्वतंत्रता का फल दिलाने के लिए लड़नेवाले राजनैतिक

लोगों पर व्यंग्य कसते हैं। बहुत अस्पष्ट रूप से इसका भी संकेत देते हैं कि जिनके लिए ये राजनैतिक नेता लोग अंग्रेजों से स्वाधीनता की माँग करते हैं, यदि वे ही ग्रामीण उस शब्द का अर्थ नहीं जानते तो उनकी लडाई किस के लिए है...खुद के लिए तो नहीं? निराला बहुत गहराई में सोचकर स्वाधीनता-संग्राम के राष्ट्रीय प्रयोजनों पर प्रकाश डालते हैं। उनका कथा-साहित्य इस प्रकार गाँवों को भुलाकर, सामान्य जनों को विस्मृत कर, चलनेवाली अर्थहीन राजनैतिक हुड़दंग का परदाफाश करता है।

निराला जिस प्रश्न को अस्पष्टरूप से पूछते हैं उसका जवाब भी अप्रत्यक्ष रूप से 'सखी', 'श्रीमती गजानन्द शास्त्रिणी' और 'कला की रूपरेखा' कहानियों में प्रस्तुत करते हैं। राजनैतिक आंदोलनों का संबंध सामान्य जनता से कैसे कट गया, राष्ट्रीय आंदोलन किस प्रकार चापलूसी करनेवाले लोगों का अड्डा-सा बन गया, वे इन कहानियों में स्पष्ट करते हैं। 'श्रीमती गजानन्द शास्त्रिणी' कहानी में अत्यंत व्यंग्य तथा वाग्वैदग्ध्य से निराला तत्कालीन राजनैतिक प्रदूषण को दिखाते हैं। सुपर्णा अपने पति की साख के आधार पर, अपनी जाति के दंभ के सहारे राजनीति में प्रवेश कर पाती है और वह चुनाव में विजय भी हासिल कर लेती है। वह जिन धार्मिक या नैतिकमूल्यों को दिखाकर समाज में प्रतिष्ठा एवं बोलबाला प्राप्त करती है, उन नैतिक एवं धार्मिक मूल्यों का उसमें सर्वत्र अभाव है। ऐसे नेता लोगों का आगमन देश के लिए विनाशकारी होगा - निराला इसे बहुत पहले पहचान चुके और ऐसे कपटी नेताओं के प्रति जनता को सबसे पहले सजग करनेवाले हिन्दी लेखकों में निराला के साथ मात्र प्रेमचंद थे। इस बिंदु पर आकर निराला का कथा-साहित्य राष्ट्रीय प्रयोजनों के साथ कैसे जुडा, इस प्रश्न के सारे जवाब अपने आप मिल जायेंगे। उन्होंने लिखा -

''इसी समय देश में आंदोलन शुरू हुआ। पिकेटिंग के लिए देवियों की आवश्यकता हुई - पुरुषों का साथ देने के लिए भी। शास्त्रिणी जी की मारफत शास्त्रीजी का व्यवसाय अब तक भी न चमका था। शास्त्रीजी ने पिकेटिंग में जाने की आज्ञा दे दी। इसी समय महात्मा जी बनारस होते हुए कहीं जा रहे थे, कुछ घण्टों के लिए उतरे। शास्त्री जी की सलाह से एक जेवर बेचकर, शास्त्रिणी जी ने दो सौ रूपये की थैली उन्हें भेंट की। तन, मन और धन से देश के लिए हुई उस सेवा का साधारण जनता पर असाधारण प्रभाव पड़ा। सब धन्य-धन्य कहने लगे। शास्त्रिणी जी पूरी तत्परता से पिकेटिंग करती रहीं। एक दिन पुलिस ने दूसरी

स्त्रियों के साथ उन्हें भी लेकर एकान्त में कुछ मील शहर से दूर, संध्या समय, छोड़ दिया। वहाँ से उनका मायका नज़दीक था।.........आन्दोलन के बाद इनकी प्रैक्टिस चमक गयी। बड़ी देवियाँ आने लगीं। बुलावा भी होने लगा। चिकित्सा के साथ लेख लिखना भी जारी रहा। यह बिल्कुल समय के साथ थीं। ....शास्त्रिणी जी दिन-पर-दिन उन्नति करती गयीं। इस समय नया चुनाव शुरू हुआ। राष्ट्रपति ने कांग्रेस को वोट देने के लिए आवाज उठायी। हर जिले से कांग्रेस उम्मीदवार खड़े हुए। देवियाँ भी। वे मर्दों के बराबर हैं। शास्त्रिणी जी भी जौनपुर से खड़ी होकर सफल हुईं। अब उनके सम्मान की सीमा न रही। एम.एल.ए. हैं।''[28]

निराला एक भविष्यद्रष्टा साहित्यकार थे। उन्होंने इस कहानी के द्वारा दिखाया कि राजनैतिक क्षेत्र में कुछ गिरे हुए लोगों का आगमन हो रहा है, इन स्वार्थी जनों से जनता सावधान रहें। निराला की भविष्यवाणी आज सत्य हो गई। निराला ने राष्ट्रीय जागरण की दृष्टि से जिन ठगे जनों की तरफ़ जनता का ध्यान आकृष्ट किया, उनसे आज राजनीति भरी पड़ी है। अतः निराला के साहित्य में जनता के हित की भावना राष्ट्रीय जागरण के लक्ष्यों को साकार करने में सफल सिद्ध होती है।

'देवी' कहानी में पगली भिखारिन के बच्चे में निराला को भारत के भविष्य का चित्र दिखायी पड़ता है। एकदिन उस पगली के आगे से नेताओं का जुलूस निकल जाता है। हजारों लोग पगली को अनदेखा कर देते हैं और उस जुलूस में उसका बच्चा भी कुचल दिया जाता है। निराला का प्रश्न है- कितनी निर्मम स्थिति...वे लोग यदि सामान्य जनों के लिए ही निकल रहे हैं तो उनकी नज़र पगली पर क्यों नहीं जाती? वे लिखते हैं : ''एक रोज मैंने देखा, नेता का जुलूस उसी रास्ते से जा रहा था। हजारों आदमी इकट्ठे थे। जय-जयकार से आकाश गूँज रहा था। मैं उसी बरामदे पर खड़ा स्वागत देख रहा था। पगली भी उठकर खड़ी हो गयी थी। बड़े आश्चर्य से लोगों को देख रही थी। रास्ते पर इतनी बड़ी भीड़ नहीं देखी। मुँह फैलाकर, भौहें सिकोड़कर आँखों की पूरी ताकत से देख रही थी। - समझना चाहती थी, वह क्या था। क्या समझी आप समझ सकते हैं भीड़ में उसका बच्चा कुचल गया और रो उठा। पगली बच्चे की गर्द झाड़कर चुमकारने लगी और फिर कैसी ज्वालामयी दृष्टि से जनता को देखा। मैं यही समझता हूँ। नेता दस हज़ार की थैली लेकर गरीबों के उपकार के लिए चले गये --- जरूरी-जरूरी कामों में खर्च करेंगे।''[29]

निराला व्यंग्य करते हैं कि दस हज़ार रूपये की थैली लेकर चलनेवाला यह राजनैतिक जुलूस जब सड़क के किनारे एक भिखारिन की तरफ नज़र नहीं दौड़ा सकता तो वह क्या गरीबों की सेवा करेगा। 'कला की रूपरेखा' नामक कहानी को निराला ने एक वास्तविक घटना बताया। इसमें भी एक कांग्रेसी स्वयंसेवक का करुणास्पद चित्र खींचा गया- जो मद्रास से आया हुआ था, अब मद्रास वापस जाने के लिए उसके पास पैसे नहीं। जब निराला ने पूछा ''क्या कांग्रेस के लोग आपकी इतनी सी मदद नहीं कर दे सकते'' तो उस आदमी ने बताया ''कांग्रेस का यह नियम नहीं है। मैं मिला था, मुझे यह उत्तर मिला है। खैर, मैं भीख माँगता-खाता पैदल चला जाऊँगा।''[30]

निराला उस आदमी के माध्यम से सच्ची देशभक्ति का परिचय देते हैं और यह भी अप्रत्यक्ष रूप से कह देते हैं कि राजनैतिक संस्थाओं के अंदर अनुशासन की व्यवस्था नहीं के बराबर है। निराला इस कहानी में उस देशभक्त कांग्रेसी स्वयंसेवक को खुद से ऊपर उठाकर लिखते हैं और जिस प्रकार देवी के सम्मुख उन्हें अपनी हीनता का अनुभव हुआ- इस राष्ट्रप्रेमी स्वयंसेवक के सामने भी उन्हें इसी प्रकार का अनुभव होता है।

'चतुरी चमार' कहानी में निराला तत्कालीन परिस्थितियों का चित्रण करते हुए स्वतंत्रता-संग्राम के कुछ उद्विग्नभरे क्षणों का परिचय देते हैं। आंदोलन का जीता जागता रूप गढ़ाकोला में किस प्रकार है- निराला इस कहानी में बताते हैं। उन्हें अपने गाँव पर गर्व था कि पुरवा डिविजन में सभी गाँवों से आंदोलन जोरों पर चल रहा है। किसानों ने छः-सात सौ एकड़ तक की जमीन जोतने से इनकार कर दिया, तो जमींदार के द्वारा किसानों को धमकाने और उन्हें दबाने के प्रयत्न जोरों पर चल रहे थे। निराला के मित्र उन्हें बताते हैं कि गढ़ाकोला में आंदोलन जोरों पर चल रहा है, रोज किसान लोग इकट्ठे होते हैं, राष्ट्रीय कांग्रेस का झण्डा फहराते हैं और देशभक्ति के गीत गाते हैं। निराला से गाँव के लोग आकर पूछते हैं कि जमींदारों के कारण अब गाँव में तनाव बढ़ रहा है आप आकर किसानों का समर्थन करें। दारोगा जी जमींदार समेत आते हैं और झण्डे की तरफ देखते हैं तो वह झण्डा बारिश में भीगकर धवल हो गया। दारोगा जी ने निराला से पूछा ''इस गाँव में कांग्रेस है?'' निराला ने बताया ''इस गाँव के लोग तो कांग्रेस का मतलब भी नहीं जानते।'' निराला ने इस समय अंग्रेजी भाषा से प्रभाव डाल दिया, जिससे दारोगा जी कुछ न कर सके और जमींदार साहब थानेदार के साथ नाराज होकर चले गये।[31]

निराला बार-बार जमींदारों के साथ किसानों का संघर्ष अपने कथा-साहित्य में अंकित करते हैं, जमींदार पर चतुरी की छोटी सी जीत उन्हें आशा दिलाती है कि इन लोगों में सामंतवादी शक्तियों से भिड़ने की ताकत है। निराला की राष्ट्रीय विचारधारा हमेशा गाँवों की जनता को समेट का चलती है। राष्ट्रीय जागरण के संदर्भ में, महान जन आंदोलनों के संबंध में, जो लोग उपेक्षित रह जाते हैं- उनकी तरफ से निराला बोलते हैं। क्योंकि उन्हें विश्वास है कि इन्हीं लोगों को देश की मुक्ति अत्यधिक आवश्यक है, चाहे वह राजनैतिक मुक्ति हो या सामाजिक या आर्थिक। इस प्रकार निराला का कथा-साहित्य प्रचलित राष्ट्रीय विचारधारा से, तथाकथित राष्ट्र गौरव से भरे साहित्य से कुछ भिन्न मान्यताएँ स्थापित करता है। पाठकों को सोचने के लिए बाध्य कर देता है। 'प्रभावती' उपन्यास में भी निराला राजा-महाराजाओं के आपसी कलहों का ब्यौरा देकर सामंतवादी व्यवस्था का सजीव अंकन करते हैं। राष्ट्रीय प्रयोजनों के संदर्भ में उनका आपसी द्वेष किस प्रकार विदेशियों को हितकर सिद्ध हुआ-यह दिखाना इस उपन्यास का उद्देश्य है। ध्यान रहे, देश पर अंग्रेजों के आधिपत्य के लिए, तदुपरांत भारत की दुर्गति के लिए राजाओं के आपसी कलह ही अधिकतर जिम्मेदार थे। इस उपन्यास में सामंतों के शोषण, षड्यंत्र एवं स्वार्थी राजनीति का खुलकर विरोध किया गया है। निराला तत्कालीन भारत का भयानक दृश्य इस प्रकार खींचते हैं -

''वह और ही युग था। एक ओर गाँव में गरीब किसान छप्परों के नीचे, दूसरी ओर दुर्ग में महाराज धन-धान्य और हीरे-मोतियों से भरे प्रासादों में, फिर भी उन्हीं के पास फैसले के लिए- न्याय के लिए जाना औरउन्हें भगवान का रूप मानना पड़ता था।.......उस समय भारत जिस भिन्नता में था, वह साधारण जनों को आत्मा से असह्य थी। जिस तरह वनों के प्राण शून्य में प्यासी पुकार भरते हुए वारिवर्षण कराते हैं, उसी तरह भारत की जनता को मौन करुणा-ध्वनि ने दूसरी-दूसरी सत्ताओं को शासन के लिए बुलाया। संसार के सभी अधिकार उच्च-से-उच्च होकर बुराइयों से भरकर चूर्ण-विचूर्ण हो गये हैं। क्षात्र - शक्ति के लिए यह जरूरी हो रहा था। चिरकाल से क्षत्रियों की युद्ध-ज्वाला भारत को दग्ध कर रही थी। कृषि, जनपद तथा जीवन अकारण युद्ध के कारण नष्ट हो रहे थे। साधारण जनों के दृश्य बड़े करुणोत्पादक थे। उन दृश्यों की छाया आज भी है, पर आज पतितों के उन्नत होने की माया महत्व रखती है।''[32]

निराला का ध्यान यहाँ कुछ राजवंशों पर नहीं, सारे राष्ट्र पर है। युद्धों के कारण जनपद नष्ट हो गये, कृषि नष्ट हो गयी, साधारण जनों के बड़े करुणोत्पादक दृश्य उभरने लगे- निराला अपने वर्तमान भारत में ठीक इन्हीं दृश्यों से अवगत हैं। सच कहें तो आधुनिक भारत की करुणोत्पादक स्थिति ही निराला को मध्ययुगों के भारत को चित्रित करने के लिए प्रोत्साहित करती है। राष्ट्र की वर्तमान दुस्थिति के लिए कारणों की खोज करना, उन्हें प्राचीन या मध्य युगीन भारत की परिस्थितियों से मिलाकर देखना - यह सब निराला जैसे जागरूक कथाकार ही कर सकते थे। वे इस उपन्यास में भारत के अतीत पर दृष्टिपात करते हुए वर्तमान भारत के साथ उसे जोड़ कर लिखते हैं कि 'हमारी जाति, धर्म और मातृभूमि की स्वतंत्रता की रक्षा की समस्या पहले की भांति आज भी हमारे सम्मुख है।'

निराला अपने कथा-साहित्य में अनेक बार राजा-महाराजाओं तथा जमींदारों के साथ ग्रामीण जनता की टक्कर को दिखाते हैं, इसका ऐतिहासिक कारण है। भारत में जो राष्ट्रीय आंदोलन चल रहा था और जिसका सूत्रपात सन् 1857 वाले महान विद्रोह के साथ हुआ था- भारत के राजा, जमींदार उसे पहले से ही कुचलने की कोशिश कर रहे थे। इसके पीछे उनकी स्वार्थ-चिंता यह थी कि अंग्रेजों का समर्थन पाकर अपनी संपत्ति को बढ़ायें, विलायती प्रभु के तलुवे चाटकर उनके सहायक बने, सारे सुख-भोग प्राप्त करें, गोरों के साथ टेन्निस खेलें, विलायती शराब पियें, इंग्लैण्ड में घूमें। यही प्रवृत्ति उन्हें सामान्य जनता के खिलाफ कदम उठाने को प्रेरित करती है। निराला महिषादल में रहकर देख चुके कि महाराजा भी अंग्रेज़ अफसर के सामने छोटे हैं, उनसे नीचे स्थान में बैठते हैं। अंग्रेजों द्वारा संरक्षित इस सामंती व्यवस्था पर चोट करना उनका सबसे बड़ा साहित्यिक लक्ष्य था जो राष्ट्रीय जागरण की दृष्टि से अत्यंत अर्थपूर्ण कहलायेगा। डॉ.रामविलास शर्मा लिखते कि ''सन् 1857 ई. में भारतीय जनता के संघर्ष को दबाने में अंग्रेजों को कश्मीर, पंजाब, हैदराबाद, बंगाल आदि प्रदेशों के राजाओं और जमींदारों से बड़ी सहायता मिली। 1857 के बाद अंग्रेजों ने अपनी नीति में यह परिवर्तन किया कि देशी रियासतों को ब्रिटिश भारत में मिलाने के बदले वे उनके मालिकों को अपने सहायक के रूप में पालने लगे। साधारणतः इन रियासतों में उद्योग-धन्धों का विकास ब्रिटिश भारत की तुलना में भी कम हुआ, यहाँ निरक्षरता और निर्धनता का प्रसार ब्रिटिश भारत से भी अधिक था, यहाँ निरंकुश अत्याचार, सामाजिक उत्पीड़न, धार्मिक अंध विश्वास

ब्रिटिश भारत से भी अधिक थे। लड़ाई के दिनों में ये राजा अंग्रेजी फौज में रंगरूट भर्ती कराते थे, शान्ति के समय गोलमेज़ सम्मेलनों में अपने प्रतिनिधि भेजकर स्वाधीनता-आंदोलन का विरोध करते थे। भारत में अंग्रेजी राज के प्रमुख सहायक थे यहाँ के राजा और नवाब। साम्राज्यवाद के इस देशी आधार को ढ़हाये बिना भारतीय स्वाधीनता की लड़ाई पूरी न हो सकती थी।''[33]

साम्राज्यवाद के इस देशी आधार को ढ़हानेवाले साहित्यिक योद्धा थे निराला। इस संबंध में निराला की साहित्यिक दृष्टि का महत्व यह है कि वे अंधे-धुंध रहकर जमींदारों या राजाओं पर प्रहार नहीं करते। उनकी दृष्टि से राष्ट्र के वे राजा और जमींदार ओझल नहीं हो जाते, जो राष्ट्रीय मुक्ति-आंदोलन का समर्थन करते थे। पर दुर्भाग्यवश उनकी संख्या अत्यंत अल्प थी। निराला ने अपने कथा-साहित्य में ऐसे उदार राजा-जमींदारों का भी चित्रण किया और उनकी भूरि-भूरि प्रशंसा करके, उन्हें यथासंभव उच्च रूप में चित्रित करने का प्रयास किया। उनके 'अलका' और 'चोटी की पकड़' उपन्यासों में क्रमशः चित्रित स्नेह शंकर और राजा राजेंद्र प्रताप जैसे पात्र इस बात के प्रमाण हैं। 'अलका' उपन्यास में एक तरफ सभी अर्थों में पतित, जमींदार मुरलीधर हैं तो दूसरी तरफ एक अनाथ युवती को आश्रय देकर उसे उचित शिक्षा दिलाकर एक व्यक्ति के रूप में उसे प्रतिष्ठित करनेवाले जमींदार स्नेहशंकर हैं। ये कुछ विरले आदमी हैं जो उच्च शिक्षा प्राप्त प्रतिभावान हैं तथा जिन्होंने 'ऊँचे पदों की प्राप्ति स्वेच्छा से नहीं की।' ये सरस्वती की सेवा में दत्तचित्त रहते हैं। उनके अभिप्राय के अनुसार स्वतंत्रता-मार्ग सर्वप्रथम तो इसी बात में निहित है कि आम जनता का बहुमुखी विकास किया जाए, उनके बीच सच्ची समानता स्थापित की जाए। निराला अपने विचार स्नेहशंकर के द्वारा संप्रेषित करते हैं कि औपनिवेशिक पराधीनता से भारत के मुक्ति-संग्राम का संबंध जनसाधारण में ज्ञान-प्रसार के कार्यक्रम के साथ अभिन्न रूप से होना चाहिए।

''पण्डित स्नेहशंकरजी सात-आठ गाँव के मामूली जमींदार हैं। ऊँचे दर्जे के शिक्षित। विदेशों का भ्रमण कर चुके हैं। ऊँची शिक्षा प्राप्त करने पर भी ऊँचे पदों की प्राप्ति स्वेच्छा से नहीं की। सरस्वती की सेवा में दत्तचित्त रहते हैं। उम्र पचार के उधर होगी साठ के इधर। लंबे, पुष्ट, गोरे, ऋषियों के अनुयायी .... सदा प्रसन्न आँखों से गंगा के जल की-सी निर्मल ज्योति निकलती हुई। ज्ञान की उस उभय धारा से देश के आदर्श युवक स्नान कर धन्य होने के लिए आते हैं।''[34]

निराला ने 'अलका' उपन्यास के इस स्नेहशंकर के माध्यम से भारत में होनेवाले स्वतंत्रता-संग्राम की कहानी सुनायी। राजनैतिक लोग किसप्रकार सामान्य जनता पर रोब करते हैं, कैसे देवता बने पूजनीय बनते हैं। देश का स्वतंत्रता-संग्राम मात्र राजनैतिक ही हो, इससे निराला सहमत नहीं हैं। वे उसे पूर्ण रूप में देखना चाहते हैं। स्नेहशंकर अपनी पुत्री से कहते हैं कि " .... बात यह है कि देश की स्वतंत्रता एक मिश्र विषय है। वह केवल राजनीतिक प्रगति नहीं। मान लो, एक मशीन बनाने की जरूरत हुई, तो कानून का जानकार क्या कर सकता है? मनुष्य के जीवन को एक साधारण-से-साधारण गृहस्थ को जैसे निर्वाह के लिए आवश्यक छोटी-मोटी सभी बातों का ज्ञान रखना पड़ता है, वह खेती का हाल भी जानता है, बागवानी भी जानता है, कुछ कल-पुर्जो का ज्ञान भी रखता है, पशु-पालन से भी परिचित है, और सीना-पिरोना, पाक-शास्त्र, वैद्यक, शिशु-रक्षा, पत्रलेखन, पुस्तक-पाठ, साहित्य, दर्शन, समाज और राजनीति के भी यथावश्यक कानून जानता है, और इस प्रकार एक मिश्र ज्ञान उसकी व्यावहारिक गृह-स्वतंत्रता का अवलंबन है, वैसे ही देश की व्यापक स्वतंत्रता को सब तरफ की पुष्टि चाहिए। जब तक सब अंगों से समान पूर्णता नहीं होती, तब तक स्वतंत्र शरीर संगठित नहीं हो सकता। हमारे यहाँ ऐसा नहीं हो रहा है। हमारे यहाँ तो कानून के बल पर राजनीतिक स्वतंत्रता हासिल की जा रही है, संवाद-पत्रों में कानून के जानकारों का विज्ञापन होता है- वे ही देश के सर्वोत्तम मनुष्य हैं। उन्हीं की आज्ञा शिरोधार्य है।"[35]

राष्ट्रीय मुक्ति-आंदोलन का समग्र रूप मानो इन बातों से उभरकर सामने आ रहा है। निराला स्वतंत्रता -संग्राम को व्यक्तिपूजा के रूप में बदलते देखकर चिंतित होते हैं, सामान्य जनता पर अपनी शिक्षा से प्रभाव डालनेवाले राजनैतिक नेताओं के आभिजात्य से वे खुश नहीं होते। निराला को इन पर विश्वास नहीं है- यह बात कई बार स्पष्ट हो जाती है। इसी बिंदु पर आकर निराला देश के अन्य तथाकथित राष्ट्रीय साहित्यकारों से बहुत भिन्न मालूम पड़ते हैं। उनके विचार परंपरागत सोच से भिन्न राष्ट्रीयता का चित्र अंकित करते हैं। यहाँ निराला यह निरूपित करना चाहते हैं कि विदेशों में पढ़कर आये धनी राजनैतिक महापुरुष की तुलना में एक साधारण किसान बड़ा है। विदेशी शिक्षा के माध्यम से करोड़ों रूपये कमानेवाले बैरिस्टर एकाएक स्वतंत्रता-संग्राम में कूदकर दस लाख कांग्रेस को दे दें तो वह महान नेता बनकर जनता का दिल जीत लेता है। दिन-रात मेहनत करके हल और माची कंधे पर

लादकर खेत जोतकर लगान चुकाकर, फसल न होने पर जमींदार के कोड़े सहते हुए, जमींदार से लेकर पुलिस, कचहरी, समाज सभी जगह ठोकरें खानेवाला साधारण किसान हर एक की नज़र में अधम बना हुआ है। लेकिन निराला के अनुसार यही बहुत बड़ा आदमी है। क्योंकि उसके अंदर अपने दुःखों से मुक्त होने की कांक्षा छटपटा रही है।[36]

निराला उन सामान्य लोगों की मुक्ति के लिए कार्यकर्ताओं को आगे आने के लिए कहते हैं। राष्ट्रीय जागरण शहरों के साथ-साथ गाँवों में व्याप्त होने की सख्त आवश्यकता है। देश के स्वतंत्रता-सैनिकों को जेल में भर्ती होने के बजाय गाँवों में जाने में ही राष्ट्र की भलाई है- यह उन परिस्थितियों में निराला की अकेली और बड़ी विचित्र विनति थी। क्योंकि उन दिनों देशभक्ति का प्रमाण था -जेल जाना। निराला इसके विपरीत बोलते हैं, जेल से बेहतर गाँवों में जाने को कहते हैं 'अलका' उपन्यास में स्नेहशंकर कहते हैं "...ये चाहते और क्या हैं, न्याय, इस दुख से मुक्ति। इसलिए, जो लोग वास्तव में क्षेत्र से उतरकर देश के लिए कार्य करते हैं, वे यदि इन किसानों की शिक्षा के लिए सोचें, हर जिले के आदमी, अपने ही जिले में जितने हों, उतने केंद्र कर अर्थात् उतने गाँवों में इन किसानों को केवल प्रारंभिक शिक्षा भी दे दें, तो उनके जेलवास से ज्यादा उपकार हो, और यह शिक्षा की सचाई सहृदयों की यथेष्ट संख्या-वृद्धि कर दे।"[37]

निराला इन क्रान्तिकारी विचारों का संप्रेषण एक जमींदार के मुँह से कराते हैं, यह ध्यान देने की बात है। इसका मतलब यह हुआ कि निराला ने उन जमींदारों को कभी विस्मृत नहीं किया जो राष्ट्रीय जागरण के पक्ष में थे। निरुपमा उपन्यास की नायिका निरुपमा भी स्नेहशंकर की तरह उदार विचारोंवाली जमींदार है। वह कुमार के परिवार पर छाये सारे संकटों को हटा देती है और गाँवों में किसानों की भलाई की दिशा में सोचती है।

इस प्रकार कई उदाहरणों से हम स्पष्ट कर सकते हैं कि निराला के कथा-साहित्य पर राष्ट्रीय जागरण का अपार प्रभाव है। मात्र प्रभाव को ग्रहण करना ही नहीं, निराला ने अपने कलात्मक कथा-सृजन द्वारा राष्ट्रीय जागरण को एक नयी दिशा देने का प्रयास किया। उन्होंने अपने कथा-साहित्य में सामाजिक अन्याय, सामंतवादी उत्पीड़न, राजा-जमींदारों का सामान्य जनता पर अत्याचार, गाँवों का आर्थिक शोषण, नारी का उत्पीड़न, अतीत के अवशेषों से मुक्ति न पानेवाला जनमानस आदि अनेक राष्ट्रीय समस्याओं का विस्तार से विवेचन किया

और उनका समाधान अपने ढ़ंग से खोजने का स्तुत्य प्रयास भी किया। उनके कथा-साहित्य के पात्र अन्याय से निरंतर जूझते हैं, राष्ट्रीय चेतना को गाँवों में सामान्य जनता तक संप्रेषित करते हैं- उन्हें शिक्षित बनाते हैं, विशेषकर उनके कथा-साहित्य के किसान एवं मेहनतकश वर्ग से संबंधित पात्र सामंतवाद का डटकर विरोध करते हैं और अंततः विजय प्राप्त करते हैं। वे अपने उपन्यासों तथा कहानी साहित्य के द्वारा यही संदेश देते हैं कि राजनैतिक मुक्ति और सामाजिक मुक्ति अलग-अलग नहीं है बल्कि सामाजिक बंधनों को तोड़ने से ही राजनैतिक मुक्ति प्राप्त हो सकती है। निराला के विचार के अनुसार सच पूछा जाय तो सामाजिक एवं सांस्कृतिक दासता में पायी गयी राजनैतिक मुक्ति देश के लिए घातक होगी। हिन्दी कथा-साहित्य में प्रेमचंद के समान इन सारी समस्याओं पर इतनी बारीकी से विचार करनेवाले कथाकार निराला ही हैं- इसमें कोई अत्युक्ति नहीं।

5.4 निराला का आलोचनात्मक साहित्य : एक सामान्य परिचय

निराला हिन्दी साहित्य-जगत् में एक कुशल आलोचक के रूप में भी प्रसिद्ध हैं। स्थूल रूप से उनकी आलोचना को साहित्यिक एवं साहित्येतर वर्गों में विभाजित किया जा सकता है। इस खण्ड के अंतर्गत हम निराला के द्वारा लिखित साहित्यिक आलोचना का विश्लेषण करेंगे।

उनकी साहित्यिक आलोचना का पुनः तीन वर्गों में विभक्त किया जा सकता है - पुस्तकाकार में लिखी गयी आलोचना तथा स्फुट निबंधों एवं संपादकीय टिप्पणियों के रूप में लिखी गयी आलोचना। इन दोनों के अलावा निराला की आलोचना का तीसरा वर्ग उनके काव्य-संग्रहों की भूमिकाओं के रूप में उपलब्ध होता है। उनके आलोचनात्मक निबंधों तथा संपादकीय टिप्पणियों में बहुत ज्यादा अंतर नहीं किया जा सकता। आसानी से उनकी कुछ टिप्पणियों को निबंधों के अंतर्गत भी रखा जा सकता है। निराला ने 'मतवाला', 'सुधा', 'माधुरी', 'भारत' आदि पत्रिकाओं में संपादकीय टिप्पणियों और स्फुट निबंधों की रचना अच्छी-खासी संख्या में की जिनमें कुछ आलोचनात्मक निबंध संग्रहों में संकलित किये गये। इनके अलावा भी अनेक स्फुट निबंध एवं संपादकीय टिप्पणियाँ रह गयीं, जिनका संकलन रचनावली के पाँचवे एवं छठे खण्डों में किया गया है। कई निबंधों तथा टिप्पणियों के साथ निराला का नाम नहीं मिलता। डॉ.नंदकिशोर नवल ने लिखा कि "टिप्पणियों के संकलन के

संबंध में यह प्रश्न उठ सकता है कि जब उनके साथ लेखकों का नाम नहीं दिया गया है, तो यह कैसे मालूम किया जा सकता है कि कौन टिप्पणी निराला के द्वारा लिखित है। इस संबंध में निवेदन है कि निराला के विचार-लोक, तर्क-पद्धति और भाषा-शैली को समझ लेने के बाद उनकी टिप्पणियाँ छाँटने में कोई दिक्कत नहीं होती। निराला- जैसा व्यवस्थित, कवित्वपूर्ण और व्यंग्यात्मक गद्य 'सुधा' के लिए टिप्पणियाँ लिखनेवाले लेखकों में और कोई न लिखता था।''

निराला ने पुस्तकाकार में एक ही आलोचनात्मक ग्रंथ लिखा : 'रवीन्द्र कविता कानन'। बाकी आलोचनात्क ग्रंथ संपादकीय टिप्पणियों एवं निबंधों के संग्रह मात्र हैं। 'रवीन्द्र कविता कानन' का प्रकाशन हुआ सन् 1929 ई. में। उनके अन्य आलोचनात्मक साहित्य में प्रबंध-पद्म, प्रबंध-प्रतिमा, 'चाबुक', 'चयन' और संग्रह आते हैं। इनमें से पहले दो, अर्थात् 'प्रबंध पद्म'और 'प्रबंध प्रतिमा' आलोचनात्मक ग्रंथों को निराला ने स्वयं संग्रहित किया। 'प्रबंध पद्म' सन् 1934 ई. में प्रकाशित हुआ। उनका अन्य आलोचनात्क संग्रह 'प्रबंध प्रतिमा' सन् 1940 ई. में प्रकाशित हुआ। 'चाबुक', 'चयन' एवं 'संग्रह' के प्रकाशन वर्ष क्रमशः सन् 1942 ई., सन् 1957 ई. एवं सन् 1963 ई. माने जाते हैं। इनमें अंतिम संग्रह का प्रकाशन निराला की मृत्यु के बाद हुआ। इन संग्रहों में संकलित अत्यधिक निबंध 'सुधा', 'माधुरी' आदि समकालीन पत्रिकाओं में प्रकाशनार्थ स्वतंत्र रूप से लिखे गये थे। 'प्रबंध पद्म' में संकलित 'पंत जी और पल्लव' शीर्षक बृहदाकार निबंध अलग से पुस्तक रूप में प्रकाशित हुआ। (उपर्युक्त सारे प्रकाशन-वर्ष निराला रचनावली भाग-3 के आधार पर - पृ.13,14 और 15)

निराला के आलोचनात्क साहित्य की अनेक विशेषताएँ हैं। निराला मात्र कवि ही नहीं अपने समय के कुशल आलोचक भी रहे। उन्होंने अपनी आलोचना के अंतर्गत हिन्दी, संस्कृत, बंगला आदि कई भाषाओं के साहित्य पर विचारात्मक लेख लिखे। कवि सहज भावावेश एवं संवेदनशीलता उनकी आलोचना की विशेषताएँ हैं। निराला की गद्य-रचनात्मक प्रतिभा के संबंध में रामविलास शर्मा जी ने लिखा कि ''निराला जी ने जैसे पद्य को सँवारा है, वैसे ही गद्य को भी अलंकृत किया है....गद्य लेखक निराला ने बाल मुकुंद गुप्त और प्रेमचन्द की परंपरा को और ऊँचा उठाया है। उसने गद्य-लेखन को काव्य-रचना के समान ही सरस और कलापूर्ण बना दिया है। हिन्दी भाषा की नयी क्षमता निराला के गद्य में प्रकट हुई है।''[38]

यहाँ रामविलास जिस भाषायी क्षमता क्षमता की ओर संकेत करते हैं, उसका चरमोत्कर्ष निराला की आलोचना में दिखायी देता है।

निराला ने अपनी आलोचना में विश्वकवि रवीन्द्रनाथ ठाकुर, हिन्दी के बिहारी-पद्माकर-विद्यापति, बंगला के चण्डीदास इत्यादि कवियों के साहित्य पर बहुत गहरे रूप से विचार किया और अनेक साहित्यिक विषयों पर अपने मौलिक विचार व्यक्त किये। पर उनके आलोचनात्मक साहित्य की प्रेरणा कुछ विशेष युगीन परिस्थितियों से मिली, अतः उनका विश्लेषण आवश्यक है।

निराला की आलोचना कुछ विशेष परिस्थितियों में लिखी गयी। वह मुख्यतः कुछ लक्ष्यों की प्राप्ति के लिए लिखी गयी। अपनी तथा छायावाद की कविता को प्रामाणिक सिद्ध करना उनका सर्वप्रथम लक्ष्य था। इस संदर्भ में निराला और अन्य छायावादी कवियों पर उनके कृतित्व की मौलिकता को लेकर उठे विवादों को विस्मृत नहीं किया जा सकता।निराला अन्य छायावादी कवियों की तुलना में तीव्र विद्रोही रहे। इसलिए उनकी आलोचना में भी अधिक प्रखरता पायी जाती है। निराला काव्य एवं कथा-साहित्य के धरातल पर जिस प्रकार क्रांतिकारी चेतना का परिचय देते हैं, उनकी आलोचना में भी उसी प्रकार की क्रांतिकारी चेतना दिखायी देती है। छायावादी कवियों में निराला सबसे अधिक प्रगतिशील रहे। उन्होंने छंद विधान से लेकर, वस्तु एवं भाषा-शैली तक आधुनिक हिन्दी की परिपाटि को चुनौती देनेवाली नितांत नयी कविता की सर्जना की। ऐसी प्रयोगधर्मिता का विरोध करनेवाले हर युग में मिल जाते हैं। निराला के काव्य की प्रयोगधर्मिता पर भी अनेक प्रकार के आरोप लगे। हिन्दी साहित्य-जगत् ने निराला की इस नवीन काव्य-चेतना का खुलकर स्वागत नहीं किया। उल्टे हिन्दी के उस समय के सभी प्रतिष्ठित साहित्यकारों ने भाषा, भाव एवं शैली को लेकर निराला-काव्य की प्रयोगधर्मिता का अवमूल्यन किया। यहाँ तक कि उनके काव्य का विरोध कुछ संगठित प्रयत्नों के द्वारा भी होता रहा। उदाहरण के लिए मनोरमा पत्रिका में छपी एक कविता दृष्टव्य है -

> ''ब्रजभाषा कविता उन्मूलन, जिस प्रकार सत्वर हो जाय।
> बजे हमारी विजय दुन्दुभी, नव प्रतिभा महिमा अधिकाय।।
> टाँग तोड़ने में कविता की, मैं ही सुभट निराला हूँ।
> मित्र सदा मैं भंग-रंग में मग्न हुआ मतवाला हूँ।।''[39]

निराला ने 'मतवाला' पत्रिका में काम करते वक्त कुछ विवादास्पद टिप्पणियाँ लिखीं जिनसे राष्ट्रवादी साहित्यकारों का दल निराला का विरोध करने लगा और मौके की प्रतीक्षा करने लगा। निराला ज्यादातर बंगला के महाकवि रवींद्रनाथ ठाकुर से प्रभावित होकर कविताएँ लिखते थे, ऐसी दो कविताओं को लेकर निराला-विरोधी साहित्यकारों ने निराला पर बंगला कविताओं की नकल करने का आरोप लगाया। निराला को इन सबका उत्तर देना था, अपने काव्य को मौलिक निरूपित करना था। उन्होंने प्रतिरक्षा और प्रहार की नीति अपनाते हुए असीम आत्म विश्वास के साथ साहित्य के रण-क्षेत्र में अपना संघर्ष जारी रखा। उनका आलोचनात्मक साहित्य इस संघर्ष में सबसे सशक्त एवं प्रभावशाली हथियार बना।

यहाँ ध्यान देने की बात है कि निराला मूल रूप से कवि तथा साहित्य-सर्जक रहे- पेशेवर आलोचक नहीं। इसलिए उनकी समीक्षा में विवेचन-विशालता के स्थान पर कवि सहज भावावेग की तथा संतुलित निर्णयात्मकता की जगह आलोच्य कृति पर मर्माहत शब्द प्रहारों की अधिकता ही पायी जाती है। इस संबंध में सूर्यप्रसाद दीक्षित जी का मानना है कि "मुक्त-चिंतन तथा संतुलन के अभाव में उनकी कुछ मान्यताएँ अधिक न्यायोचित सिद्ध नहीं हो सकी हैं। पर उस संदर्भ में भी लेखक का स्वाध्याय और मौलिक उद्‌भावनाएँ प्रकट हुई हैं।"[40]

निराला की आलोचनात्मक कृतियों में 'रवीन्द्र-कविता-कानन' एक मुख्य कृति है। इस पुस्तक में उन्होंने विश्वकवि रवींद्रनाथ ठाकुर के काव्य पर विस्तार से विवेचन किया है। इस विवेचन के अंतर्गत उन्होंने अपने बंगाल-साहित्यिक ज्ञान का समुचित प्रयोग किया एवं रवींद्र-काव्य की थाह पाने का ईमानदारी से प्रयास किया। बंगाल में जन्म लेने के कारण निराला पर बंगला साहित्य का गहरा प्रभाव पड़ा और रवींद्र-साहित्य का तो उन पर मानो जादू ही चला। निराला ने इस ग्रंथ में रवींद्रनाथ ठाकुर की रचनाओं में श्रृंगार, बाल-मनोविज्ञान, स्वातंत्र्य भावना तथा गीत-तत्व आदि अनेक विशेषताओं को लेकर बहुत गंभीर चर्चा की है। निराला ने इसमें विश्वकवि के जीवन संबंधी समाचार भी देने का प्रयास किया लेकिन उन्होंने रवींद्रनाथ की पूरी जीवनी नहीं लिखी। रवींद्र की जीवनी को बाद में श्री नरोत्तम दास ने जोड़ा। निराला ने इसमें रवींद्र के काव्य की हर सुंदर पंक्ति का विश्लेषणात्मक विवेचन किया और एक-एक शब्द को नपी-तुली शैली में परखा। रवींद्र की विचारधारा में निहित 'देशप्रेम'

के तत्व का निराला ने विशेष रुचि के साथ अध्ययन किया। इसलिए उन्होंने रवींद्र की कविताओं में अभिव्यक्त देश की तत्कालीन परिस्थितियों का विश्लेषण 'स्वदेश-प्रेम' शीर्षक अध्याय में किया है।

'प्रतिभा का विकास' शीर्षक अध्याय में उन्होंने नवजागरण कालीन परिस्थितियों के परिप्रेक्ष्य में रवींद्र की कविता की सार्थकता निरूपित की। उन्होंने इस पुस्तक में रवींद्रनाथ ठाकुर के वंश को वेणी संहार नाटक के रचयिता भट्टनारायण से जोड़ा है जिससे निराला की आलोचनात्मक दृष्टि का परिचय मिलता है। इसके अलावा काव्य की आत्मा का विश्लेषण करते हुए उन्होंने रस-सिद्धांत के प्रति आस्था व्यक्त की। निराला की आलोचनात्मक दृष्टि की विशेषता यह है कि वे रस को श्रेष्ठ साहित्य-सर्जना के लिए जितना आवश्यक मानते हैं, उतना ध्वनि, अलंकार अथवा रीति को नहीं। इसलिए उन्होंने कई स्थानों पर रवींद्रनाथ की रसपूर्ण कविता को रीतिकाल के बिहारी-काव्य से जोड़कर देखा और उन सभी जगहों में उन्होंने रवींद्र की कविता को ही उन्नत दिखाने का प्रयास किया।

'रवीन्द्र कविता कानन' निराला की ऐसी आलोचनात्मक कृति है, जिसमें संभवतः पहली बार हिन्दी में विश्वकवि पर इतनी गहराई से विचार-मंथन किया गया । निराला ने इसके माध्यम से हिन्दी साहित्य - जगत से रवींद्रनाथ का परिचय अत्यंत रसपूर्ण शैली में करवाया। इस पुस्तक को पढ़ने के बाद कई साहित्यप्रेमियों ने मूल में रवींद्र को पढ़ने के लिए बंगला भाषा सीखी।

निराला ने रवींद्रनाथ ठाकुर के बारे में कई अन्य निबंधों में भी विचार किया है। 'चाबुक' में संकलित 'कविवर बिहारी' और 'कवींद्र रवींद्र' शीर्षक निबंध में उन्होंने लिखा कि रीतिवादी बिहारी के दोहों की तुलना में रवींद्र की कविता कई गुना बेहतर है। निराला के अनुसार बिहारी के दोहे कुछ ही क्षणों तक अपना भाव पाठकों के मन पर रख पाते हैं जब कि रवींद्र की कविता मन पर कुछ समय तक पाठकों के मन को छोड़ नहीं जाती।

निराला ने 'प्रबंध पद्म' तथा 'प्रबंध प्रतिमा' के अंतर्गत साहित्य से संबंधित गंभीर आलोचनात्मक निबंधों का प्रणयन किया है। निराला ने पन्त जी के कृतित्व को लेकर 'पन्तजी और पल्लव' नामक बृहदाकार आलोचनात्मक निबंध लिखा है जो ऐतिहासिक महत्व रखता है। यह निबंध मूलतः पुस्तक-समीक्षा है। हिन्दी के प्रख्यात आलोचक श्री विश्वनाथ त्रिपाठी का

मानना है कि "हिन्दी खड़ीबोली के साहित्य में ऐसा संयोग दुर्लभ रहा है कि एक ही धारा के एक समर्थ कवि ने अपने समकालीन अन्य समर्थ कवि की ऐसी पैनी आलोचना की हो।"[41] निराला का रवैया पन्त जी के प्रति इतना कठोर क्यों रहा होगा - इसकी भी जानकारी इस संबंध में आवश्यक है।

पन्त जी ने सन् 1921 ई. में अपने 'पल्लव' काव्य संग्रह की भूमिका में ब्रज भाषा-काव्य, आधुनिक काव्य-भाषा तथा हिन्दी कविता की छंद पद्धति पर अत्यंत विश्लेषणात्मक आलोचना की। पर उन्होंने मुक्त छंद के प्रसंग में निराला की कुछ काव्य-पंक्तियों का उदाहरण देकर, निराला को भी अपनी आलोचना का लक्ष्य बनाया। पन्त जी की इस आलोचना की प्रतिक्रिया के रूप में निराला को उक्त समीक्षा लिखनी पड़ी। पन्त जी ने अपनी आलोचना में निराला की कविताओं में प्रयुक्त मुक्त-छंद को हिन्दी काव्य-पद्धति के विरुद्ध ठहराकर जो विवाद खड़ा किया, उसका जवाब निराला ने अपने ढ़ंग से प्रस्तुत कियाहै। सर्वप्रथम निराला ने 'पल्लव' की पंक्तियों से समानता रखनेवाली अन्य कवियों की पंक्तियों को खोजकर उनके भावानुवाद होने का सप्रमाण आरोप लगाया है। उन्होंने उदाहरण सहित सिद्ध किया कि पन्त जी ने रवींद्रनाथ, वड्र्सवर्थ और शैली की काव्य-पंक्तियों का उपयोग अपने काव्य में किया है। पन्त जी ने पल्लव के प्रवेश में कवित्त छंद को हिन्दी की औरस नहीं - पोष्य संतान कहा। उनके अनुसार यह छंद हिन्दी की स्वाभाविकता के अनुरूप नहीं है। पन्त जी के इस विचार से निराला सहमत नहीं होते। उनका तर्क यह है कि "हिन्दी के प्रचलित छंदों में जिस छंद को एक विशाल भूभाग के मनुष्य कई शताब्दियों तक गले का हार बनाये रहे, जिसमें उनके हर्ष-शोक, संयोग-वियोग और मैत्री-शत्रुता की समुद्रगत विपुल भाव राशि आज साहित्य के रूप में विराजमान हो रही है- आज भी जिस छंद की आवृत्ति करके ग्रामीण सरल मनुष्य अपार आनंद अनुभव करते हैं, जिसके समक्ष कोई दूसरा छंद उन्हें जँचता ही नहीं, करोड़ों मनुष्यों के उस जातीय छंद को उनके प्राणों की जीवनी - शक्ति को परकीय कहना कितनी दूरदर्शिता का परिचायक है, पन्त जी स्वयं समझें।"[42]

निराला ने इस निबंध में पन्त जी की रचनाओं की व्यावहारिक समीक्षा भी की। पन्त जी के काव्य के दोष-निरूपण के साथ साथ गुणों की प्रशंसा करना भी इस निबंध की विशेषता है। विश्वनाथ त्रिपाठी ने लिखा कि "व्यावहारिक समीक्षा में निराला ने केवल अपनी

अंतर्दृष्टि का ही नहीं, अपने प्रतिस्पर्धी कवि के गुणों को देख पाने की दुर्लभ दृष्टि का भी परिचय दिया है। दोष देखकर वे तीव्र आलोचना करते हैं तो गुण देखकर मुक्त कण्ठ से प्रशंसा।''[43]

निराला ने अपने आलोचनात्मक निबंधों में साहित्य के आधार पर हिन्दू और मुसलमान कवियों के दार्शनिक भावों का निरूपण भी किया। उनका प्रयास यह था कि दोनों कवियों की बात एक ही है, अतः ये दोनों जातियों को आपसी कलहों में नहीं, स्नेह में जीना चाहिए। ऐसे संदर्भों में निराला की आलोचना 'सहितस्य भावः साहित्यम्' वाली साहित्य की परिभाषा को पुष्ट करती है। 'चयन' में संग्रहित 'साहित्य की समतल भूमि' नामक निबंध में वे लिखते हैं कि ''साहित्य के भीतर से देखिए कि साहित्य की भूमि में हिन्दू और मुसलमान बराबर हैं। दूसरे किसी साहित्य का विचार नहीं किया गया, केवल उर्दू के साथ, संक्षेप में, भारतीय भावों की परीक्षा गयी है। साहित्य के भीतर से मैत्री की स्थापना प्रशंसनीय है। यदि विचार किया जाय तो साधारण भाव भी सब साहित्य के एक ही होंगे जबकि सब साहित्य के निर्माता मनुष्य ही हैं और एक ही प्रकृति उनके अंदर काम कर रही है।''[44]

निराला ने साहित्य शास्त्र को लेकर अनेक निबंध भी लिखे। 'हमारे साहित्य का ध्येय', 'काव्य में रूप और अरूप', 'साहित्य का फूल अपने ही वृन्त पर', 'नाटक-समस्या', 'हिन्दी साहित्य में उपन्यास', 'मेरे गीत और कला', 'काव्य-साहित्य', 'कला और देवियाँ', 'बहता हुआ फूल 'इत्यादि निबंध इनमें प्रमुख हैं। ये सारे निबंध इन पाँच आलोचनात्मक संकलनों - 'प्रबंध पद्म', 'संग्रह', 'चयन', 'प्रबंध प्रतिमा' और 'चाबुक' में संकलित हैं। निराला के कतिपय निबंध ऐसे हैं जिनमें उन्होंने दो महान कवियों को लेकर उनमें साम्य-वैषम्य की खोज की है। इस प्रकार के निबंध संख्या में भी अधिक हैं, जिनके शीर्षक इस प्रकार हैं - 'विद्यापति और चण्डीदास', 'दो महाकवि', 'कविवर बिहारी और कवींद्र रवींद्र', 'साहित्य की समतल भूमि', 'मुसलमान और हिन्दू कवियों में विचार साम्य' तथा 'शेली और रवींद्रनाथ का दर्शन'। निराला अपनी रुचि के अनुसार दो कवियों को लेते हैं और उनके बीच अपनी विशेष आलोचनात्मक पद्धति के अनुसार साम्य या वैषम्य दिखाने की चेष्टा करते हैं। इस संदर्भ में उन्होंने गोस्वामी तुलसीदास तथा रवींद्र - दोनों में तुलसीदास को, रवींद्र तथा बिहारी - में रवींद्र को, विद्यापति और चण्डीदास - में विद्यापति को श्रेष्ठ सिद्ध करने की चेष्टा की है, जो

उनकी साहित्यिक अभिरुचि के अनुरूप है। विद्यापति को उन्होंने कविशेखर तथा चण्डीदास को भावुक शिरोमणि कहा। तुलसीकृत रामायण में अद्वैतवाद नामक निबंध में उन्होंने गोस्वामी तुलसीदास की अद्‌भुत काव्य-प्रतिभा की खुलकर प्रशंसा की है। उनके अनुसार रामायण गोस्वामी तुलसीदास के मन की मूर्ति है तथा इसमें द्वैतवाद का प्रभाव दिखायी पड़ता है। उन्होंने तुलसी को अद्वैत से द्वैत की ओर उन्मुख कवि घोषित किया है।

निराला ने अपने काव्य-संग्रहों की भूमिकाओं के रूप में भी कुछ आलोचनात्मक निबंध लिखे, जिनसे साहित्य के प्रति निराला के कई विचार स्पष्ट हो जाते हैं। उदाहरण के लिए 'परिमल' काव्य की भूमिका में वे 'मनुष्यों की मुक्ति की भांति कविता की भी मुक्ति' को आवश्यक मानते हैं। कविता की मुक्ति का अर्थ है- छंदों के शासन से अलग हो जाना। काव्य-जगत में निराला की इस नयी चेतना का बुरी तरह से विरोध किया गया था। रीति काव्य के छंद विधान को ही सर्वोत्तम माननेवाले हिन्दी आचार्य तथा अपने काव्य में उन्हीं घिसे-पिटे छंदों का प्रयोग करनेवाले द्विवेदी युगीन साहित्यकारों ने मुक्त छंद को काव्य के लिए वर्जित घोषित किया। इन आरोपों का उत्तर प्रस्तुत करना निराला की साहित्यिक आलोचना का परम लक्ष्य था। इसलिए परिमल की भूमिका में वे लिखते हैं कि "मुक्त काव्य कभी साहित्य के लिए अनर्थकारी नहीं होता। किंतु उससे साहित्य में एक प्रकार की स्वाधीन चेतना फैलती है, जो साहित्य के कल्याण का ही मूल होती है...मुक्त छंद भी अपनी विषम गति में एक ही साम्य का अपार सौंदर्य देता है। जैसे एक ही अनंत महासमुद्र के हृदय की सब छोटी बड़ी तरंगें हो, दूर प्रसारित दृष्टि से एकाकार, एक ही गति में उठती और गिरती हुई...इस तरह की कविता अतुकांत काव्य का गौरव भले ही अधिकृत करती हो।"[45]

काव्य को निराला ने मन की श्रेष्ठ रचना घोषित किया है। वे स्वानुभूति के आधार पर लोक-मानस के चित्रण को कवि का धर्म मानते हैं। उन्होंने कवि के युग-बोध की चर्चा करते हुए यह निर्विवाद स्वीकार किया कि कवि को सामयिकता के प्रभाव से निरंतर प्रेरणा प्राप्त करनी चाहिए। साहित्य के संबंध में भी निराला के विचार बहुत ऊँचे हैं। "साहित्य दायरे से छूटकर ही साहित्य है। साहित्य वह है जो साथ है, वह है, जो संसार की सबसे बड़ी चीज है। साहित्य लोक से, प्रान्त से, देश से, विश्व से, ऊँचा हुआ है। इसीलिए वह लोकोत्तरानंद दे सकता है। लोकोत्तर का अर्थ है- 'लोक' जो देख पड़ता है, उससे और दूर तक पहुँचा हुआ।

ऐसा साहित्य मनुष्य-मात्र का साहित्य है। भावों से, केवल भाषा का एक देशगत आवरण उस पर रहता है।''[46]

निराला के संपूर्ण आलोचनात्मक साहित्य में 'चाबुक' का अपना विशिष्ट स्थान है। उन्होंने इसमें साहित्य तथा साहित्य से अलग विभिन्न विषयों पर लिखे अपने समीक्षात्मक निबंधों का सुंदर संकलन किया है, जो निराला की सूक्ष्म आलोचना-दृष्टि के ही नहीं, उनकी कवि-सहज संवेदना के भी प्रतीक हैं। इसमें निराला ने हिन्दी के आचार्यों की दोषपूर्ण भाषा पर करारा प्रहार किया, निराला की एवं छायावाद की भाषा को असमर्थ कहनेवाले संपादकों की खुलकर खबर ली, खुद को अनुवाद ब्रह्म समझकर दूसरी रचनाओं की खिल्ली उड़ानेवाले अनुवादकों को आड़े हाथों लिया और उनकी अनुवाद-कला को ग़लत सिद्ध किया। इस प्रकार यह संग्रह उनके आलोचना-साहित्य की एक महत्वपूर्ण कड़ी है।

निराला ने अपनी आलोचना के अंतर्गत रवींद्रनाथ ठाकुर के साथ-साथ भारतेंदु हरिश्चंद्र, बलभद्र प्रसाद दीक्षित, आचार्य नंददुलारे वाजपेयी, प्रेमचंद, जयशंकर प्रसाद, महादेवी वर्मा आदि वर्तमान साहित्यकारों तथा विद्यापति, चण्डीदास, भौन कवि आदि प्राचीन कवियों पर भी अपने विचार व्यक्त किये। इन कवियों पर केन्द्रित निराला की आलोचनाएँ हिन्दी साहित्य के आलोचना-जगत् के लिए अभूतपूर्व योगदान हैं।

समग्र रूप से आलोचक निराला का अंकन नंदकिशोर नवल जी के इन शब्दों से होता है कि ''कुछ असंगतियों के बावजूद निराला की आलोचना सैद्धांतिक और व्यावहारिक दोनों ही रूपों में हिन्दी आलोचना का एक अत्यन्त सार्थक प्रकरण है। इसके द्वारा उन्होंने साहित्य में प्राचीन मान्यताओं के विरुद्ध संघर्ष किया और उसमें नयी दृष्टि तथा नयी संवेदना के विकास में मूल्यवान योगदान दिया। हिन्दी के जो जाने-माने छायावादी आलोचक हैं, उनकी उनसे कोई तुलना नहीं है। निराला का सौंदर्य-बोध जितना सूक्ष्म और नवीन था, उतना किसी छायावादी आलोचक का नहीं। निश्चय ही प्रेमचंद और मुक्तिबोध के साथ वे हिन्दी के तीसरे महत्वपूर्ण रचनाकार-आलोचक हैं।''[47]

5.5 निराला के निबंध, संपादकीय टिप्पणियाँ : एक सामान्य परिचय

जैसा कि पहले सूचित किया जा चुका है, इस खण्ड के अंतर्गत निराला लिखित साहित्येतर निबंधों-संपादकीय टिप्पणियों तथा अन्य लेखों पर विवेचन किया जायेगा।

निराला ने साहित्य को छोड़कर अनेक अन्य विषयों पर भी गंभीर विचार-मंथन किया है और उनकी पैनी दृष्टि साहित्येतर विषयों पर भी उतनी ही निबद्धता से चलती है। उन्होंने समाज, राजनीति, राष्ट्र, अर्थशास्त्र, धर्म-दर्शन, कला, संस्कृति एवं भाषा आदि अनेक विषयों पर मुक्त चिंतन किया तथा अनेक निबंध एवं संपादकीय टिप्पणियों की रचना की। इनमें कुछ निबंध एवं टिप्पणियाँ उनके आलोचनात्मक साहित्यिक संग्रहों में स्थान पा चुके हैं। कई टिप्पणियाँ और स्फुट निबंध ऐसे हैं जिनको उनकी किसी आलोचनात्मक पुस्तक में संकलित नहीं किया गया। इन्हें निराला रचनावली में संकलित किया गया है।

उपर्युक्त रचनाओं में समाज के प्रति निराला के कई विचार स्वामी विवेकानन्द से प्रभावित हैं। वे स्वामी विवेकानंद के बताये गये अनेक उपदेशों को अपने निबंधों में ऊँचा स्थान देते हैं, अपने ही निराले ढ़ंग से। वर्तमान हिन्दू समाज नामक एक निबंध में वे लिखते हैं कि ''भारत के लिए अँगरेजी राज्य का यही महत्व है कि तमाम शक्तियों का साम्य हो गया।इस समय जितने दुराचरण हो रहे हैं, वे अब वैषम्य में साम्य की स्थापना के लिए हो रहे हैं, जैसे प्रकाश के लिए अंधकार हुआ हो। कुछ काल पश्चात् यह उपद्रव भी न रह जाएगा। शुद्र-शक्तियों से यथार्थ भारतीयता की किरणें फूटेंगी। वे ही भविष्य के ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य हैं, और ब्राह्मण-क्षत्रिय आदि दृप्त जातियाँ शूद्र। खुदाई सज़ा ऐसी ही होती है। चिरकाल तक लड़कर ब्राह्मण-क्षत्रिय पस्त हो गये हैं। वे अब प्रकृति की गोद में विश्राम करना चाहते हैं। वे अब मुग्ध हैं, सोना चाहते हैं। उनका कार्य अब वे जातियाँ करेंगी, जो अब तक सेवा करती आयी हैं। स्वामी विवेकानंद के कथनानुसार उनमें सेवा करते-करते अपार धैर्य और अविचल श्रद्धा के भाव भर गये हैं। भारत तभी तक पराधीन है, जब तक वे नहीं जागतीं। उनका कर्म के क्षेत्र पर उतरना भारत का स्वाधीन होना है।''[48] इससे स्पष्ट है कि निराला के विचारों पर स्वामी विवेकानंद के वचनों का अपार प्रभाव था।

स्वामी विवेकानंद ऐसे पहले सांस्कृतिक नेता हुए जिन्होंने इस देश की बहुजन शक्ति को कई तरह से अपमानित एवं प्रताडित देखकर उसे ऊपर उठाने का प्रयास राष्ट्रीय स्तर पर किया। निराला के इस निबंध में विवेकानंद की ही वाणी अनुगूँजित होती है। देश की स्वाधीनता का असली अर्थ भी वे यहाँ पर स्पष्ट कर देते हैं।

निराला ने अपने निबंधों में अनेक विवादास्पद विषयों पर भी प्रकाश डाला। ब्राह्मणों

में चलती उपनयन-प्रथा को लेकर उन्होंने कई क्रांतिकारी विचार व्यक्त किये : इस पर उन्होंने लिखा कि "....सब जगह मूजी-मेखलाधारी नया ब्राह्मण-बालक छत्र-दण्ड आदि लिये काशी पढ़ने के अर्थ रवाना होता है। तब कोई उसे पकड़कर रूपया, दो रूपया देकर समझाता है - यहीं रहो, यहीं पढ़ जाओगे। फिर अगर वह बड़े बाप का लड़का हुआ, तो देखिए, घड़ी-भर बाद कमीज़, वेस्टकोट, टाई, कोट, रिस्टवाच, सोने की चेन, मोजे-जूते डाटे हुए, हैट लगाये, निमंत्रित जनों का विस्मय बना बैठा हुआ है। जनेऊ के समय के दण्डधर ब्राह्मण-बालक का दण्ड कहाँ चला गया ? नहीं रखने की इच्छा, तो वह स्वाँग क्यों ? यह भारतीयता और शालीनता समाज के सर्वोच्च कृत्य का एक विकसित रूप है ! इसी तरह की और-और बातें हैं, जहाँ स्वभावतः मन विद्रोह कर बैठता है, जिनके निराकरण की जरूरत है। सुधार तो बहुत दूर की बात है। पहले आदमी बनाइए, सुधार तब होगा।"[49]

निराला के साहित्यिक स्वभाव को मात्र काव्य या कथा-साहित्य से ही आँका नहीं जा सकता। उनके इस प्रकार के निबंध और संपादकीय टिप्पणियाँ अनुसंधान के दौरान स्वर्णिम अवसर प्रदान करते हैं। अतः निराला के संपूर्ण व्यक्तित्व को उनके साहित्य के माध्यम से परखने के प्रयास में इन निबंधों और टिप्पणियों की अत्यंत महत्वपूर्ण भूमिका रहेगी। उपर्युक्त निबंध जैसी रचनाओं में निराला की विद्रोही भावना अत्यंत सहजरूप में छलकती है जिसमें वे स्वाँग का वे खुलकर विरोध करते हैं, चाहे वह उपनयन संस्कार हो या कोई अन्य रीति-रिवाज। उनके अनुसर इन अर्थहीन विषयों का निराकरण करने की सख्त जरूरत है।

निराला अपने समय में घटित हर प्रमुख घटना से जुड़कर अपने विचार व्यक्त किया करते थे। 'सुधा' में काम करते समय उन्होंने संपादकीय टिप्पणियों के रूप में अपने विचारों को शब्दबद्ध किया। उन्होंने 'चरखा', 'साहित्यिक सन्निपात' या 'वर्तमान धर्म' आदि ऐतिहासिक महत्व रखनेवाले निबंधों की रचना की। 'हिन्दी के गर्व और गौरव श्री प्रेमचंद जी' नामक संस्मरणात्मक निबंध प्रेमचंद पर लिखी गयी तमाम निबंधों में मूर्धन्य माना जाता है। कई निबंधों और टिप्पणियों में उन्होंने राष्ट्रभाषा को लेकर भी अपने विचार व्यक्त किये जो अत्यंत प्रगतिशील हैं। वे राष्ट्रभाषा का समर्थन उसी हद तक करते हैं- जिस हद तक प्रांतीय भाषाओं पर आँच न आये। इसलिए उन्होंने शिक्षा समस्या और हिन्दी नामक टिप्पणी में अंग्रेजी की जगह मातृभाषाओं के अध्ययन पर जोर दिया - "पंजाब और जिन प्रांतों को ब्रिटिश सरकार

नेबाद को अपने राज्य में मिलाया है, वहाँ अब भी अंग्रेजी की तूती बोल रही है। वहाँ लोग अंग्रेजी को ही मातृभाषा के स्थान पर प्रतिष्ठित किये हुए हैं। अंग्रजी पढ़ने-पढ़ाने की ओर ही उनका ध्यान अधिक है। मातृभाषा हिन्दी के प्रति उनकी यह उदासीनता परिताप का विषय है। कारण, उचित शिक्षा के प्रचार के लिए मातृभाषा का ही माध्यम ठीक है, हम इसके पक्ष में है। हिन्दी के अधिकारी तथा प्रतिष्ठित पुरुषों को इसके लिए उद्योग करना चाहिए। इससे देश को कितने लाभ हैं, यह गणना से बाहर है।''[50]

निराला ने अपने स्फुट निबंधों एवं संपादकीय टिप्पणियों में नारी को लेकर कई विचार व्यक्त किये। उनके विचार नारी-उत्थान को लेकर नयी व्याख्या करते हैं, उन्हें प्रगतिबाधक तत्वों से लड़ने का साहस प्रदान करते हैं तथा उन्हें समाज में समुचित स्थान पहुँचाने की आवश्यकता पर जोर देते हैं। वे लिखते हैं ''महिलाओं की स्वतंत्रता ही उनके जीवन की सब दिशाओं का विकास करेगी। हमें सिर्फ उनकी स्वतंत्रता का स्वरूप बतलाना है, और यह भी सत्य है कि पुरुषों के निरादर करने पर भी स्त्री-शक्ति का विकास रूक नहीं सकता, नवह अब तक कहीं रूका है। चूँकि पुरुष निराधार स्त्रियों की अपेक्षा इस देश में अधिक समर्थ हैं, इसलिए हम स्त्री-स्वतंत्रता के कार्य में पुरुषों से मदद करने के लिए कहते हैं, क्योंकि नारी ही भावी राष्ट्र की माता है।''[51]

निराला ने देश-विदेशों में होनेवाली अनेक प्रमुख घटनाओं को भी अपनी संपादकीय टिप्पणियों में स्थान दिया। जब लखनऊ में देशभक्त समूह पर अंग्रेजों ने डण्डे बरसाये तो निराला ने लिखा ''स्त्रियों और बच्चों के अंगों पर डण्डों की मार कर, घावों से बहती हुई रक्तधाराओं को देखकर, अपने शासन के सुदर्शन रूप पर इतरानेवाली अंग्रेज़ सरकार के लिए उपयुक्त शब्द हमारे कोश में नहीं, मुमकिन है, पीछे गढ़ लिया जाए।''[52]

इतना ही नहीं, निराला ने रूस के राष्ट्र संघ में प्रवेश से लेकर हिन्दी फिल्म संसार तक कई विषयों पर अपना मुक्त चिंतन इन स्फुट निबंधों एवं संपादकीय टिप्पणियों के माध्यम से व्यक्त किया जो निराला की सूक्ष्म दृष्टि एवं विवेचन शक्ति का परिचय देते हैं। निराला ने बड़े विषयों को ही नहीं, अत्यंत छोटे विषयों को भी अपनी इन रचनाओं में जगह दी, यह उनके साहित्य के इस पहलू की अपनी विशेषता है।

5.6 निराला के आलोचनात्मक साहित्य - निबंधों और संपादकीय टिप्पणियों में राष्ट्रीय जागरण की अभिव्यक्ति

निराला के आलोचनात्मक साहित्य, उनके स्फुट निबंधों तथा संपादकीय टिप्पणियों का विश्लेषण करने पर स्पष्ट होता है कि इस साहित्य में भी राष्ट्रीय जागरण की अभिव्यक्ति हुई। निराला अपने साहित्य को हमेशा समय से जोड़ते रहे और उनके निबंधों में चाहे वे साहित्यिक हों अथवा साहित्येतर। उन्होंने अपनी साहित्यिक आलोचना के अंतर्गत राष्ट्रीय प्रयोजनों को सर्वथा महत्व दिया। 'रवीन्द्र कविता कानन' में निराला के राष्ट्रयी जागरण संबंधी विचार प्रकट होते हैं।

राष्ट्रीय जागरण के संदर्भ में बंगाल के योगदान को विस्मृत नहीं किया जा सकता। निराला का बचपन बंगाल में ही बीता और अपने जीवन एवं साहित्य के अत्यंत प्रमुख तत्वों को भी बंगाल के परिवेश से ही ग्रहण किया, इसमें कोई संदेह नहीं। निराला पर मुख्यतः दो कवियों का प्रभाव अत्यंत प्रबल माना जाता है। एक- गोस्वामी तुलसीदास तथा दूसरे विश्वकवि रवींद्रनाथ ठाकुर। निराला का काव्य साक्षी है कि वे रवींद्रनाथ से प्रेरणा लेकर, सच पूछा जाय तो उनसे स्पर्धा की भावना भी रखकर कविताएँ लिखीं। इस प्रकार अपनी विचारधारा को अत्यधिक प्रभावित करनेवाले रवींद्रनाथ ठाकुर का इस ग्रंथ में राष्ट्रीय प्रयोजनों की दृष्टि से विवेचन करना निराला की मौलिकता है। उन्होंने पुस्तक के आरंभ में ही लिखा कि "वह बंगभाषा के जागरण की पहली अवस्था थी। कुछ बंगाली जगे भी थे, परन्तु अधिकांश में लोग जगकर अँगड़ाइयाँ ही ले रहे थे। आँखों से सुषुप्ति का नशा न छूटा था। आलस्य और शिथिलता दूर न हुई थी। उस समय मधुर प्रभाती के स्वरों में उन्हें सचेत करने की आवश्यकता थी। उनकी प्रकृति को यह कमी खटक रही थी। जीवन की प्रगति के लिए रूखी कर्तव्यनिष्ठा और कर्म-तत्परता को संगीत और कविता की सदा ही ज़रूरत रही है। बिना इसके जीवन और कर्म बोझ हो जाते हैं। चित्त-उच्चाट के साथ ही संसार भी उदास हो जाता है, जीवन निरर्थक, नीरस और प्राणहीन - सा हो जाता है। प्रकृति की कमी भी प्रकृति के द्वारा ही पूर्ण होती है। जागरण के प्रथम प्रभात में आवेश भरी भैरवी बंगालियों ने सुनी- वह संगीत, वह तान, वह स्वर, बस जैसा चाहिए वैसा ही। जाति के जागरण को कर्म की सफलता तक पहुँचाने के लिए,चलकर जगह-जगह पर थकी बैठी हुई जाति को कविता और

संगीत के द्वारा आश्वासन और उत्साह देने के लिए उसका अमर कवि आया, प्रकृति ने प्रकृति का अभाव पूरा कर दिया।''[53]

इन पंक्तियों में निराला ने जो जागरण का चित्र खींचा वह यद्यपि प्रत्यक्षतः बंगाल के नवजागरण का ही संकेत दे रहा है तथापि उससे राष्ट्रीय जागरण की पृष्ठभूमि की कल्पना भी आसानी से की जा सकती है। निराला मानते हैं कि प्रकृति की कमी प्रकृति के द्वारा ही पूरी होगी, अतः रवींद्रनाथ ठाकुर जैसे कवियों का जन्म लेना उस समय संपूर्ण भारत के लिए भी उतना ही आवश्यक था जितना बंगाल को। निराला अन्य जगह रवींद्र की कविता के स्वदेश-प्रेम वाले पक्ष पर प्रकाश डालते हैं और उनकी कविताओं में से कुछ पंक्तियों का उदाहरण देकर उक्त बात को स्पष्ट करते हैं।

''.... नव रसों के समझने और उन्हें उनक यथार्थ रूप में दर्शाने की शक्ति जिसमें जितनी ज्यादा होती है, वह उतना ही बड़ा कवि है। जिस समय से देश पराधीनता के पिंजड़े में वन-विहंगम की तरह बंद कर दिया गया है, उस समय से लेकर आज तक की उसकी अवस्था का दर्शन, उससे सहानुभूति, उसकी अवस्था का प्रकटीकरण आदि उसके संबंध के जितने काम हैं, इनकी सीमा कवि-कर्म की परिधि के भीतर ही समझी जाती हैं। क्योंकि प्रकृति का यथार्थ अध्ययन करनेवाला ही यदि देश की दशा का अध्ययन न करेगा तो फिर करेगा कौन? लल्लू बजाज, और मैकू महतो?''[54]

उपर्युक्त पंक्तियों को निराला की राष्ट्रीय चेतना का निचोड़ कहा जा सकता है। कवि तो प्रकृति का गूढ़ार्थ भी समझ सकता है, तो आँखों के सामने जो देश की दुर्दशा है- क्या वह देख नहीं सकता? यदि वह देश को देखकर उसका अध्ययन नहीं करेगा तो कौन करेगा.... निराला के वाक्य बहुत स्पष्टता से कवि-कर्म को संकेतित एवं परिभाषित कर देते हैं। निराला ने रवींद्र-कविता के उन पक्षों को उजागर किया जहाँ उनका स्वदेश-प्रेम अन्य राष्ट्रीय कविताओं से भिन्न रूप धारण करता है। निराला ने बताया कि रवींद्र की कविताएँ यशःप्रार्थी होकर कविता लिखनेवालों की कविताओं की तरह न होकर अपनी मौलिक सरसता एवं सुकुमारता को बनाये रखती हैं। निराला के मत में रवींद्र की कविताएँ कवित्व का सुंदर परिचय भी देती हैं और भारतीयता का उपदेश भी। रवींद्रनाथ के विचार स्वच्छ भारतीय के हैं, किसी विदेशी विचारक के नहीं- यह निराला मानते हैं। रवींद्रनाथ अपनी एक कविता में

कहते हैं कि देश अंधकार में जा रहा है और इस देश की संघशक्ति निर्वीर्य होती जा रही है। निराला ने इन पंक्तियों को उद्धरित करते हुए देश की शक्ति को लेकर राष्ट्रीय प्रयोजनों को लेकर अपने विचार इस प्रकार व्यक्त किये कि ''.....लड़ाई के समय रसद की जितनी आवश्यकता है, उतनी न गोली की है- न बारूद की,- न मशीनगनों की है- न हवाई जहाजों की। भूख के मारे जब पेट में चूहे कलाबाजियाँ खाने लगेंगे तब बंदूक के संगीन चढ़ाकर दिन-भर में पचासस मील का डबल-मार्च कैसे किया जायेगा सारी करामात रसद की है। भारत में जितना अन्न पैदा होता है उससे भारत अपनी रक्षा और दूसरों पर विजय प्राप्त करने के लिए चार करोड़ फौज़ सब समय तैयार रख सकता है। पाठक, ध्यान दीजिए भारत सदा के लिए- सब समय मैदानेजंग पर डटे रहने के लिए चार करोड़ सेना की पीठ ठोकता है। अब उसकी शक्ति का अंदाजा आप सहज ही लगा सकते हैं। अस्तु...इसकी पुष्टि तब और हो जाती है जब वे कहते हैं, जिस नाव पर से लाखों मनुष्य पार होते हैं, उसका तख्ता-तख्ता अलग करके यह समुद्र को पार करना चाहता है। भारत के बहुमत, संप्रदाय विभाग, संघशक्ति के कट-छँटकर टुकडों में बट जाने पर रवींद्रनाथ व्यंग्य कर रहे हैं, और इसके भीतर जो शिक्षा है, वह स्पष्ट है कि अब 'अपनी डफली और अपना राग' छोड़ो - यह ढ़ाई चावलों की खिचड़ी अलग पकाने का समय नहीं है, इससे देश की नाव समुद्र से पार नहीं जा सकेगी- देश के पैरों की बेड़ियाँ नहीं कट सकेंगी।''[55]

निराला के अंदर धधकती राष्ट्रीय जागरण की ज्वाला रवींद्र -कविता की थाह पाने को प्रेरित करती है, उसका सही भाव जनता को समझाने के लिए प्रोत्साहित करती है। निराला सही सही देख पाते हैं कि रवींद्र ने जो लिखा उससे राष्ट्र की संघशक्ति को अच्छा सबक मिलेगा, जनता को अब अलग रहकर नहीं- संघ में जीने की आवश्यकता है। इस प्रकार निराला ने रवींद्रनाथ ठाकुर की कविताओं को राष्ट्रीय जागरण की दृष्टि से भी परखा और उन्हें उनकी सौंदर्यात्मक कविताओं से भी ज्यादा शक्तिशाली घोषित किया।

निराला का समय राष्ट्रीय मुक्ति-आंदोलन का उत्थान काल ही नहीं, राष्ट्र के दो प्रधान धर्मों के बीच वैमनस्य एवं मतभेदों का काल भी रहा। निराला के कलकत्ता-प्रवास के समय ही हिन्दू-मुसलमान लोगों के बीच भयानक संप्रदायिक दंगे हुए जिनको निराला ने अपनी आँखों से देखा। एक बार तो आंदोलनकारियों के बीच में फस गये और बड़ी मुश्किल से

बाहर निकल आये। यही वह समय था, जब मतवाला के बाबू महादेव प्रसाद सेठ के साथ निराला राष्ट्र को लेकर घंटों चर्चा करते, उनके मुँह से उर्दू की शायरी सुनते। बड़ी विचित्र बात है कि उर्दू के शायरों को तहेदिल से प्यार करनेवाले बाबू महादेव प्रसाद सेठ हिन्दू सांप्रदायिकता के बड़े भक्त थे, बाद में वे हिन्दू महासभा के सदस्य भी बने। अतः निराला उनके हिन्दू कट्टरतावादी विचारों को बहुत नज़दीक से देखते थे। महादेव प्रसाद सेठ और अन्य लोगों की हिन्दू कट्टरता से वे बहुत चिंतित होते, अपने परिचित उर्दू कवियों के साहित्य से हिन्दी एवं अन्य भाषाओं के साहित्य को मिलाकर देखते। गहन अध्ययन के पश्चात् निराला को लगा कि हिन्दू एवं मुसलमान कवि एक ही बात को भिन्न भिन्न भाषाओं में कह रहे हैं। उन्होंने एक निबंध लिखा- 'साहित्य की समतल भूमि' जिसका आशय था- साहित्य के माध्यम से यह सिद्ध करना कि हिन्दुओं तथा मुसलमानों के बीच मात्र रीति-रिवाजों की भिन्नता ही मौजूद है, साहित्य या ज्ञान के क्षेत्रों में वे एक ही हैं। वे इस लेख में वेदान्त के बताये विश्वमैत्री वाली भावना को लेकर चलते हैं। महाकवि गोस्वामी तुलसीदास की पंक्तियों को उर्दू के नज़ीर, ग़ालिब, इंशा एवं मीर जैसे कवियों की पंक्तियों से मिलाकर निष्कर्ष निकालते हैं कि दोनों भाषाओं के कवियों का आशय एक ही है- अलख, अरूप, निरंजन और आनंदमय उस परमात्मा की राह पाना और उनकी ओर देखना। निराला लिखते हैं "साहित्य के भीतर से देखिए कि साहित्य की भूमि में हिन्दू और मुसलमान बराबर हैं। दूसरे किसी साहित्य का विचार नहीं किया गया, केवल उर्दू के साथ, संक्षेप में भारतीय भावों की परीक्षा की गयी है। साहित्य के भीतर से मैत्री की स्थापना प्रशंसनीय है। यदि विचार किया जाय तो साधारण भाव भी सब साहित्य के एक ही होंगे जबकि सब साहित्य के निर्माता मनुष्य ही हैं और एक ही प्रकृति उनके अंदर काम कर रही है।"[56]

निराला धर्म के माध्यम से नहीं, मानवता के माध्यम से साहित्य को परखते हैं और यह निरूपित करते हैं कि साहित्य लिखनेवाले भी मनुष्य ही हैं अतः उसमें उच्च मानवीय मूल्यों का होना स्वाभाविक है। दुःख की बात है कि अज्ञान के कारण जनता इस बात को भूल जाती है और धर्म के नाम पर आपसी कलहों में विनष्ट होती है। निराला इसलिए साहित्य को हृदयों को जोड़नेवाला मानकर उर्दू और हिन्दी साहित्य के चुने हुए भावों से यह बतलाने की चेष्टा करते हैं कि हिन्दू एवं मुसलमान कवियों में कोई भेद नहीं है, दोनों ने

प्रकारान्तर से एक ही भाव व्यक्त किये। मुक्ति आंदोलन के उन तनाव भरे क्षणों में, हिन्दू-मुसलमान के वैमनस्य से भरे विषाक्त वातावरण में निराला द्वारा लिखा गया यह निबंध इन दो धर्मों के बीच समन्वय की विराट चेष्टा ही नहीं बल्कि राष्ट्रीय प्रयोजनों की दृष्टि से अत्यंत महत्वपूर्ण साहित्यिक प्रयास भी है। वे अन्य जगह मुसलमान और हिन्दू कवियों में विचार-साम्य शीर्षक निबंध के द्वारा यही काम और विस्तार से करते हैं। पहले निबंध में उन्होंने मात्र तुलसीदास को लिया तो इस निबंध में वे सूरदास के विचारों को भी जोड़ देते हैं। उनका मानना है कि हिन्दू दर्शन में कुछ ऐसी बातें हैं, जिनके माध्यम से विश्व-शांति कायम की जा सकती है। लेकिन हिन्दू जगत की मानसिक दुर्बलता ही कारण है कि यह जाति पराधीन हो पड़ी है। यदि हिन्दू अपने आपको पहचान लेंगे तो उनके भीतर के भेदभाव तो दूर होंगे ही, साथ ही संसार भर में समरसता का प्रचार हो सकता है। उन्हीं के शब्दों में कहें तो ‘‘सभ्यता के आदि-काल से लेकर आज तक जितनी बड़ी-बड़ी बातें साहित्य के पृष्ठों में लिखी हुई मिलती हैं, उनके बाह्य रूपों में साम्य रहने पर भी वे एक ही सत्य का प्रकाश देती है। आज तक मानवीय सभ्यता जहाँ कहीं एक दूसरी सभ्यता से टक्कर लेती आयी है,वहाँ उसके बाह्य रूपों में ही वैषम्य रहा है, वेश-भूषणों , आचार-व्यवहारों तथा उच्चारण और भाषाओं का ही बहिंरग भेद रहा है। उन सभ्यताओं के विकसित रूप देखिए, तो एक ही सत्य की अटल अपार महिमा वहाँ मिलती है। थोड़ी देर के लिए, उदाहरणार्थ, हम मुसलमानों को ले सकते हैं। मुसलमानों से हिन्दुओं की लड़ाई शताब्दियों तक होती रही। आज भी यदि भारतवर्ष के स्वतंत्र होने में कहीं किसी को अड़चन मिलती है, तो वह हिन्दू-मुसलमानों का वैषम्य ही कहा जाता है। बहुत कम हिन्दू और बहुत कम मुसलमान ऐसे होंगे, जो इनमें से एक-दूसरे के उत्कर्ष का पूरा-पूरा पता रखते हों।’’[57]

इस निबंध में निराला राष्ट्रीय मुक्ति की असली बाधा की ओर संकेत करते हैं। वे कहते हैं कि अब तक हिन्दू और मुसलमान लोग अपनी जातियों के उच्च विचारों से परिचित नहीं हैं, इसलिए दोनों के बीच भयानक गलतफ़हमियाँ में दीवार बनकर दोनों को दूर कर रखी हैं। उनके अनुसार इन गलतफ़हमियों को दूर करने के लिए साहित्य से बढ़कर दूसरी चीज नहीं है। जगह-जगह, मौके-बेमौके, दोनों एक दूसरे की जान ले लेने को तैयार हैं- इस स्थिति से उन्हें ऊपर लाने के लिए अपनी उच्चता से परिचित करना ही एकमात्र मार्ग है। निराला

इसलिए दोनों के धर्म एवं दर्शन से- सारतत्व के रूप में चुनी गयी कविताओं को लेते हैं और यह दर्शाने की चेष्टा करते हैं कि दोनों के आचार-विचार अलग हो सकते हैं लेकिन साहित्य में वे दोनों एक ही तरह की बात कहते हैं।

निराला को इन दोनों धर्मों के उच्च विचारों को साहित्य के माध्यम से परखकर पाठकों के सामने रखने की क्या आवश्यकता पड़ी? यह निबंध साक्षी है कि राष्ट्रीय प्रयोजनों से फिसलकर निराला की साहित्यिक दृष्टि कहीं दूसरी ओर जाती नहीं। इन दोनों जातियों के बीच तनाव पैदा हुआ था और यह स्थिति अंग्रेजों के लिए अत्यंत सुविधाजनक एवं हितकर स्थिति थी, निराला यह जानते थे। फूट डालो और राज्य करो वाली नीति को ही अपनाकर अंग्रेजों ने इस देश को पराधीन बनाया था, अब देश के लोग इस धार्मिक वैषम्य के कारण आपस में बँटे जा रहे हैं। उन्हें अलग बनानेवाले उनके बाहरी आचार-विचार एवं रीति-रिवाज सिर्फ ऊपर की ही चीजें हैं किन्तु उन्हें मिलाया जा सकता है... बशर्ते कि एक-दूसरे को उनके दार्शनिक विचारों से अवगत करा सकें। एक सहृदयी पाठक होने के नाते निराला ने संस्कृत, हिन्दी एवं उर्दू साहित्यों को इस दृष्टि से देखा। यद्यपि धार्मिक भेद-भाव ने दोनों को अलग कर दिया है तथापि धार्मिक आचारों की परत के नीचे जो सत्य छिपा हुआ है, उस सत्य की भूमि पर दोनों जातियाँ बहुत निकट हैं। अतः निराला ने इस लेख में इसी सत्य को प्रकाश में लाने की कोशिश की। निराला ने लिखा कि ‘‘हिन्दू और मुसलमान, दोनों जातियाँ ऊँची भूमि पर एक ही बात कहती हैं। इस लेख में हम यही दिखलाने की चेष्टा करेंगे। साथ ही हमारा यह भी विश्वास है कि जब तक हिन्दू और मुसलमान इस भूमि पर चढ़कर मैत्री की आवाज नहीं लगायेंगे, तब तक वह स्वार्थजन्य मैत्री स्वार्थ में धक्का न लगने तक की ही मैत्री रहेगी- वैसी ही मैत्री, जैसी ब्रिटिश सिंह और भारत-गऊ की हो सकती है।’’[58] निराला इस निबंध में जो कुछ निरूपित करना चाहते हैं, वह हिन्दू एवं मुसलमान लोगों के वैषम्य को कम करनेवाला ही नहीं बल्कि राष्ट्रीय मुक्ति आंदोलन की कई अड़चनों को भी दूर करनेवाला था। इस निबंध में दर्शित निराला के समन्वय की यह चेष्टा राष्ट्रीय प्रयोजनों के संदर्भ में एक अभूतपूर्व प्रयास है।

निराला ने साहित्य को हमेशा राष्ट्रीय दृष्टि से देखा। यह वे निरूपित कर चुके कि राष्ट्र के हित के लिए साहित्य के द्वारा क्या किया जा सकता है। कई निबंधों में उन्होंने यह

दिखलाने की चेष्ट की कि साहित्य हमारी भारत-जाति के लिए अत्यंत हितकर है, यदि उसका मूलस्वरूप जानकर अध्ययन करें तो। 'हिन्दी कविता-साहित्य की प्रगति' नामक निबंध में वे लिखते हैं कि वैदिक काल से इस देश में साहित्य की परंपरा ने अनेक संदर्भों में गिरी हुई इस जाति को उठाया, जागृत किया और परिवर्तनों के प्रतिघातों से देश को झकझोर दिया। निराला देखते हैं कि यही स्वच्छ परंपरा हिन्दी साहित्य में भी मौजूद है। निराला इस संदर्भ में सन्त कबीरदास एवं गोस्वामी तुलसीदास से लेकर मैथिली शरण गुप्त, सनेही एवं रामचरित उपाध्याय आदि कई हिन्दी कवियों की पंक्तियों के सहारे यह निरूपित करते हैं कि उनका साहित्य भारतीय दृष्टि से अत्यंत महत्वपूर्ण है। उन्होंने लिखा कि "......उदाहरणार्थ ब्रजभाषा-साहित्य को लीजिए। कबीर उसके वेदान्त साहित्य के रचयिता, तुलसी उसके ज्ञान मिश्रित भक्ति-साहित्य के प्रणेता, सूर उसके अलौकिक प्रेम के प्रदर्शक और अन्यान्य भक्त-कवि उसके दिव्य भावों को पुष्ट करनेवाले, समाज के शिरोमणि, जाति के यथार्थ नेता होंगे। भूषण आदि ब्रजभाषा के ओज द्वारा उसकी शिथिल शिराओं में जातीयता का प्रवाह संचालित करनेवाले होंगे। मतिराम, बिहारी, पद्माकर, देव आदि उसके गृह-शरीर की वासनाओं को रूप देनेवाले, गृहस्थों के मनोविनोद की सृष्टि करनेवाले होंगे। इस तरह ब्रजभाषा की मूर्ति हमारे सामने आ जाती है- जातीय प्रगति का उज्वल चित्र हमारे सामने आ जाता है।"[59]

निराला यह परखने की चेष्टा करते हैं कि वर्तमान हिन्दी साहित्य में इस परंपरा का निर्वाह कहाँ तक हो पाया है तो उन्हें नकारात्मक प्रवृत्तियाँ बहुत कम मिलती हैं। और कुल मिलाकर उन्हें वर्तमान हिन्दी काव्य में भारतीयता के सच्चे दर्शन होते हैं और यह साहित्य भारतीयों की आत्मा है और लोकोत्तरानंद देनेवाला है। इतना ही नहीं वे भारत की अन्य भाषाओं के साहित्य पर भी नज़र दौडाते हैं और पाते हैं कि यह साहित्य भी हिन्दी साहित्य से कम नहीं है। "भारतवर्ष की किसी भी प्रान्तीय भाषा को लीजिए, उसके संपूर्ण शरीर का ऐसा ही संगठन होगा। उसमें दिव्य भाव और मानव भावों की ही अधिकता होगी। असुर भाव बहुत कम होंगे। और, उस भाषा का परिवर्तन भी आसुर भावों के बाद ही हुआ होगा, जैसे उस भाषा-शरीर को नष्ट करने के लिए ही आसुर भावों या इतर प्रवृत्तियों का दौर-दौरा साहित्य में हुआ हो।"[60]

'हमारे साहित्य का ध्येय' शीर्षक निबंध के अंतर्गत निराला यह दिखाने की चेष्टा करते

हैं कि देश की वर्तमान परिस्थितियों को बदलने का एक मात्र उपाय साहित्य है। वे कहते हैं कि राजनीति से ज्यादा साहित्य ही इस देश के लोगों में सच्ची सद्भावना बढ़ा सकता है, जिसकी परिणति राष्ट्र की स्वतंत्रता के रूप में होगी। वे साहित्य के व्यापक अंगों में राजनीति को भी एक अंग मानते हैं लेकिन उनकी दृष्टि में साहित्य से सुसंस्कृत जाति को किसी भी तरह गढ़ा जा सकता है। बकौल निराला - जिस प्रकार युवकों को प्रेम की भावना आप-ही-आप प्राप्त होती है, साहित्यिक भावनाओं से प्रेरित एवं मार्जित राष्ट्र को मुक्ति भी उतनी ही स्वाभाविकता से प्राप्त होती है। ऐसा कहते हुए निराला राष्ट्रीय मुक्ति के महान लक्ष्य से साहित्य का प्रयोजन जोड़ देते हैं, जो उनकी राष्ट्रीय चेतना का ही परिचायक है। उन्हीं के शब्दों में - ''इस समय देश में जितने प्रकार की विभिन्न भावनाएँ हिन्दू, मुसलमान, ईसाई आदि-आदि की जातीय रेखाओं से चक्कर काटती हुई गंगासागर, मक्का और जरूसलेम की तरफ चलती रहती हैं, जिनसे कभी एकता का सूत्र टूटता है, कभी घोर शत्रुता ठन जाती है, उनके इन दुष्कृत्यों का सुधार भी साहित्य में है, और उसी पर अमल करना हमारे इस समय के साहित्य के लिए नवीन कार्य, नयी स्फूर्ति भरनेवाला, नया जीवन फूँकनेवाला है। साहित्य में बहिर्जगत्-संबंधी इतनी बड़ी भावना भरनी चाहिए, जिसके प्रसार में केवल मक्का और जरूसलेम ही नहीं, किन्तु संपूर्ण पृथ्वी आ जाये।''[61]

इन उदाहरणों से स्पष्ट हो जाता है कि निराला साहित्य को केवल कला की दृष्टि से ही नहीं बल्कि राष्ट्र की दृष्टि से देखते थे। उन्होंने साहित्य के माध्यम से राष्ट्रीय मुक्ति आंदोलन को बढ़ावा देने का प्रयास किया, राष्ट्र की अनेकानेक समस्याओं के समाधान के रूप में साहित्य को अच्छी दवा के रूप में माना, अपनी परिधि में उन समस्याओं के परिष्कार के लिए स्तुत्य प्रयास किया। कहा जा सकता है कि उनके काव्य एवं कथा-साहित्य की तरह साहित्यिक आलोचना भी राष्ट्रीय जागरण के सच्चे लक्ष्यों की पूर्ति के लिए अपनी सीमाओं के अंदर ईमानदारी से प्रयत्न करती है। साहित्य को छोड़कर अन्य विषयों पर लिखी गयी निराला की आलोचना भी राष्ट्रीय जागरण के लक्ष्यों को दृष्टि में रखकर लिखी गयीं। उन्होंने 'सुधा' के संपादकीय विभाग में काम करते वक्त अपने देश के बारे में बहुत सोचा-समझा और अपने विचारों को व्यक्त करने का मौका अनेक टिप्पणियों के रूप में उन्हें मिला। निराला ने इस मौके का फायदा उठाया और देश की राजनीतिक, सामाजिक समस्याओं पर

बहुत - कुछ लिखा। ये सारे निबंध एवं टिप्पणियाँ निराला की राष्ट्रीय चेतना के प्रतिबिंब हैं। इस समय निराला संपादकीय टिप्पणियों तथा साहित्येतर निबंधों के रूप में जिस साहित्य की सर्जना की, वह स्वतंत्रता संग्राम में थकी हुई जनता को नयी स्फूर्ति एवं प्रेरणा देनेवाला उच्च कोटि-का साहित्य है। इस संबंध में रामविलास शर्मा लिखते हैं कि ''काव्य, कथा-साहित्य, आलोचनात्मक निबंधों के अलावा निराला ने देश की राजनीतिक, सामाजिक समस्याओं पर बहुत-कुछ लिखा है। ऐसी काफी सामग्री 'सुधा' की संपादकीय टिप्पणियों में बिखरी हुई है। इसका अध्ययन निराला के कलात्मक साहित्य के भरे - पूरे विवेचन के लिए आवश्यक है, सबसे अधिक आज की राजनीतिक परिस्थिति को समझने के लिए आवश्यक है, उस युग की राजनीति के अंतर्विरोधों को समझने के लिए आवश्यक है। आज देश में जो कुछ हो रहा है, उसका गहरा संबंध स्वाधीनतापूर्व के भारत से है। प्रेमचंद और निराला अपने युग के दो अत्यंत जागरूक साहित्यकार थे। इनकी राजनीतिक विचारधारा का अपना- उनके साहित्य से स्वतंत्र- महत्व है। उसके अध्ययन से हम उस समय के राजनीतिज्ञों, उनकी विचारधारा, उनकी कार्यवाही को नये सिरे से परखना सीखेंगे।''[62]

रामविलास शर्मा निराला के जिस राजनीतिक बोध का संकेत देते हैं, वह तत्कालीन राजनीतिक नेताओं के विचारों से बिलकुल भिन्न था। जैसे कि उन्होंने अपने काव्य एवं कथा-साहित्य में किया- इस साहित्य में भी वे साम्राज्यवाद के आर्थिक रूप का विश्लेषण करते हैं, अंग्रेजों की नीति से जुड़कर चलनेवाले राजनीतिक दाँवपेंच की परख करते हैं, साम्राज्यवाद एवं सामंतवाद के समझौते से उत्पन्न हृदयहीन सामाजिक परिस्थितियों का विशद वर्णन करते हैं। निराला की मौलिकता यह है कि वे दर्शन, साहित्य, राजनीति, समाज एवं जन आंदोलनों को राष्ट्रीय मुक्ति से नाभिनालबद्ध घोषित करते हैं। कई संपादकीय टिप्पणियों एवं निबंधों में उनका स्वाधीनता प्रेमी व्यक्तित्व देश की जनता को स्वतंत्रता के लिए प्रेरित करता है, अंग्रेजों की दमननीति का विरोध करता है और राष्ट्रीय जागरण की सच्ची अभिव्यक्ति करता है।

निराला की राजनीति संबंधी विचारधारा का प्रारंभ सन् 1925 ई. में गाँधी-रवींद्र की चरखा-संबंधी चर्चा को लेकर लिखे गए 'श्रीकृष्ण संदेश' नामक निबंध से होता है। बाद में वे 'सुधा' के संपादकीय विभाग में आये और उन्होंने देश की कई परिस्थितियों को लेकर अपने मौलिक विचार व्यक्त किये। उस समय उन्होंने गाँधीजी, जवाहर लाल नेहरू, सुभाषचंद्र बोस

जैसे राष्ट्रीय नेताओं पर लिखा। वे अपनी संपादकीय टिप्पणियों में कांग्रेस के अधिवेशनों से लेकर संसार की गतिविधियों का भारत पर प्रभाव तक कई पहलुओं का विश्लेषण करते हैं और अपनी विशालदृष्टि का परिचय देते हैं। राष्ट्र की उन्नति केलिए महिला शक्ति को अत्यंत आवश्यक मानते हैं और कई निबंधों में राष्ट्र की नारी शक्ति पर विचार करते हैं और इन सब विचारों का राष्ट्रीय जागरण की दृष्टि से अत्यंत महत्व है।

राष्ट्रीय जागरण के उत्थान काल के समय साहित्य में राष्ट्र की प्रधान समस्याओं- वर्ण व्यवस्था की विकृतियों, समाज के निम्नवर्गों का महत्व पर विस्तार से विवेचन किया गया। निराला इस विषय पर 'वर्तमान हिन्दू समाज' नामक निबंध में लिखते हैं कि .''...भारत के लिए अँगरेजी राज्य का यही महत्व है कि तमाम शक्तियों का साम्य हो गया। इस समय जितने दुराचरण हो रहे हैं, वे अब वैषम्य में साम्य की स्थापना के लिए हो रहे हैं, जैसे प्रकाश के लिए अंधकार हुआ हो। कुछ काल पश्चात् यह उपद्रव भी न रह जाएगा। शुद्र-शक्तियों से यथार्थ भारतीयता की किरणें फूटेंगी। वे ही भविष्य के ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य हैं, और ब्राह्मण-क्षत्रिय आदि दृप्त जातियाँ शूद्र। खुदाई सज़ा ऐसी ही होती है। चिरकाल तक लड़कर ब्राह्मण-क्षत्रिय परास्त हो गये हैं। वे अब प्रकृति की गोद में विश्राम करना चाहते हैं। वे अब मुग्ध हैं, सोना चाहते हैं। उनका कार्य अब वे जातियाँ करेंगी, जो अब तक सेवा करती आयी हैं। स्वामी विवेकानंद के कथनानुसार उनमें सेवा करते-करते अपार धैर्य और अविचल श्रद्धा के भाव भर गये हैं। भारत तभी तक पराधीन है, जब तक वे नहीं जागतीं। उनका कर्म के क्षेत्र पर उतरना भारत का स्वाधीन होना है।''[63]

निराला की राष्ट्रीय चेतना स्वामी विवेकानंद के विचारों से निर्मित और प्रोत्साहित रही। उक्त विचारों में निराला विवेकानंद की वाणी को प्रतिध्वनित करते हैं। निराला का मानना है कि देश की स्वतंत्रता का मतलब उन शूद्र शक्तियों के उत्थान से जुड़ा है, जो अब तक समाज के उच्च वर्गों के पैरों तले दबी पड़ी हुई। यहाँ देश की स्वतंत्रता को लेकर निराला के विचार भी स्पष्ट हो जाते हैं कि मात्र राजनैतिक स्वतंत्रता पाकर अंग्रेजों को भगाने से भारत मुक्त नहीं होगा। भारत की असली मुक्ति तब तक नहीं होगी जब तक भारत की इन निम्न-पीडित एवं शूद्र जातियों में जागरण का भाव नहीं पनपता। हम पहले भी कई बार उनके काव्य और कथा-साहित्य में स्पष्ट कर चुके कि देश की स्वतंत्रता को लेकर निराला के

विचार दूसरों से बिलकुल पृथक थे। वे इन जैसी पंक्तियों में राष्ट्रीय मुक्ति आंदोलन की नयी परिभाषा ही रच देते हैं।

निराला अपने राष्ट्र के प्रति अपार प्रेम रखते हैं। इस भूमि के कण-कण के प्रति निराला का अनुराग है। इसलिए यदि कोई इस देश को अयोग्य कहें तो वे उन लोगों का विरोध करते हैं। वे उनका भी विरोध करते हैं - जिन्हें भारत का अंग्रेजों से मुक्त होना ही स्वीकार्य नहीं। ये लोग बड़े बड़े भाषण देकर कहते हैं कि भारत की युवा पीढ़ी को ऐसी हरकतें नहीं करनी चाहिए जिनसे अंग्रेज़ सरकार नाराज हो जाय और भारत को सरकार की तरफ से जो कुछ मिल रहा है, वह भी न मिले। निराला ने ऐसे लोगों को अपनी संपादकीय टिप्पणियों में आडे हाथों लिया और कहा कि भारत के लिए अब वह समय आ गया है कि वह अपने ही बल पर अपनी इच्छा पूरी करे सकें। वे लिखते हैं कि ''.....इधर राजभक्तगणों का हाल ही और है। उन्हें बहुत बड़ी शंका है कि युवक-समुदाय, जो अपने ही बल पर स्वराज लेने की बातें कर रहा है, इससे कहीं ऐसा न हो कि जो कुछ मिल रहा है, वह भी न मिले। वे लोग बड़े समझदार की गहन-गंभीर मुद्रा से कहते हैं- 'अरे चुप ! सरकार की भैंसों को लाल परचे दिखाकर भड़काना ठीक नहीं...ये लोग कहाँ तक आशा और विश्वास रखते हैं, इसका पता लगा लेना बहुत कठिन है, पर इनकी इस तरह की उपदेशपूर्ण नीति में राजभक्ति की बदौलत प्राप्त पदवी-प्रसाद की तरह कोई प्रसादाकांक्षा अवश्य छिपी हुई है। भारत के सामने अब वह समय आ गया है, जब वह अपनी आशाओं तथा आकांक्षाओं की आप ही पूर्ति कर लेने के लिए तैयार हो गया है।''[64]

राष्ट्रीय जागरण के संबंध में नारी के प्रति निराला के विचार ध्यान देने योग्य हैं। भारत में जहाँ एक ओर नारी, हमेशा माता, पत्नी, पुत्री आदि रूपों में आदर पाती रही है, वह दूसरी ओर वास्तव में आचार-व्यवहार एवं संप्रदायों के नाम पर बंधनों में जकड़कर रखी गयी है। नारी की मुक्ति के बिना राष्ट्र की मुक्ति की बात अर्थहीन है। अतः निराला नारियों की मुक्ति को राष्ट्र की मुक्ति के लिए अत्यंत आवश्यक मानते हैं। निराला की दृष्टि में आर्थिक पराधीनता के ही कारण स्त्री का अवमूल्यन हो रहा है। इसलिए सभी अशिक्षित नारियों को पुरुषों की तरह पढ़-लिखकर शिक्षित होना चाहिए और विवेक पाना चाहिए। उन्होंने 'समाज और महिलाएँ' नामक संपादकीय टिप्पणी में लिखा कि ''हम नकल करने के लिए नहीं कहते,

सिर्फ असल को असली रूप में प्राप्त करने के लिए कहते हैं। महिलाओं की स्वतंत्रता ही उनके जीवन की सब दिशाओं का विकास करेगी। हमें सिर्फ उनकी स्वतंत्रता का स्वरूप बतलाना है, और यह भी सत्य है कि पुरुषों के निरादर करने पर भी स्त्री-शक्ति का विकास रूक नहीं सकता, न वह अब तक कहीं रूका है। चूँकि पुरुष निराधार स्त्रियों की अपेक्षा इस देश में अधिक समर्थ हैं, इसलिए हम स्त्री-स्वतंत्रता के कार्य में पुरुषों से मदद करने के लिए कहते हैं, क्योंकि नारी ही भावी राष्ट्र की माता है। मूर्ख, पीड़ित और पराधीन माता से तेजस्वी, स्वतंत्र और मेधावी बालक-बालिकाएँ नहीं पैदा हो सकतीं, जिससे राष्ट्र का सर्वांग जर्जर रह जाता है।''[65]

निराला इन पंक्तियों में लिखते हैं कि हम नकल करने के लिए नहीं कहते, सिर्फ असल को असली रूप में प्राप्त करने के लिए कहते हैं'.....नारियाँ किनकी नकल कर रही हैं ? निराला जिस असली रूप को अपनाने की बात कहते हैं वह असली रूप क्या है ? निराला की दृष्टि बहुत पैनी है। वे एक तरफ ऐसी महिलाओं को देखते हैं जो पुरुषों के बंधनों में अपना महत्व खोकर आर्थिक रूप से पराधीन बनी हुई हैं। दूसरी तरफ राष्ट्र के उच्च तबकों की तथाकथित सुसभ्य महिलाओं से निराला मुँह नहीं मोड़ लेते। राष्ट्रीय मुक्ति के संबंध में इन महिलाओं को भी अपनी भूमिका अदा करनी है। निराला देखते हैं कि इन महिलाओं में पाश्चात्य-महिलाओं के रूप-रंग, हाव-भाव, केश-वेश आदि का आकर्षण- सच कहें तो मोह, बढ़ता जा रहा है। उन्होंने इस प्रकार पाश्चात्य भौतिक आकर्षणों की तरफ खिंची हुई भारतीय महिलाओं को भारत की महान नारियों की स्मृति दिलाकर अतीत की गौरवमयी परंपरा की ओर आकृष्ट करने की चेष्टा एक टिप्पणी में निम्नप्रकार से की।

'राष्ट्र और नारी' नामक संपादकीय टिप्पणी का उद्देश्य वर्तमान नारी जगत को राष्ट्र की सर्वोत्तम आदर्श महिलाओं की पावन स्मृति दिलानी है। वे प्राचीन काव्यों में वर्णित शकुन्तला का चित्रण भारत-राष्ट्र की आदर्श नारी के रूप में करते हैं और उसे सम्राट भरत को जन्म देनेवाली कल्याणी नारी - मूर्ति कहते हैं। निराला के अनुसार शकुन्तला में सौंदर्य के साथ साथ त्याग, पतिपरायणता और धैर्य जैसे कई सद्गुण हैं जिन्हें सीखने की आवश्यकता आज की नारी को है। वर्तमान भारतीय महिला अपना महत्व न जानकर दूसरों की नकल करने में लगी हैं, निराला इससे बहुत चिंतित होते हैं। वे कहते हैं कि भारतीय महिलाओं को

रूप-रेखा की जगह आत्म-सौंदर्य का ज्यादा ध्यान देना चाहिए। पाश्चात्य जगत जिस मोह-मरीचिका के पीछे भागता जा रहा है, उससे निराला अपने राष्ट्र की महिलाओं को बचाना चाहते हैं। इसमें निराला नारी की स्वाधीनता का अर्थ ज्ञान से लगाते हैं। निष्कर्षतः वे कहते हैं कि ''हमारा अभिप्राय यह है कि हम अपने राष्ट्र की महिलाओं के लिए चाहते हैं कि वे दूसरों को अपनी आँखों से देखें, अपने को दूसरों की आँखों से नहीं। और यह उपयोग सार्वभौमिक रूप से किया जाय, ताकि फिर एक बार राष्ट्र की नारियाँ पालनों पर बच्चों को झुलाते हुए, 'त्वमसि निरंजनः'- जैसे शिशु-सुप्ति-गीत गायें, और बालक नवीन यौवन के उन्मेष में सहस्र-सहस्र कण्ठों से कह उठें - 'न मे मृत्यु-शंका, न मे जाति-भेदः।''[66]

वर्तमान नारी को राष्ट्रीय माता की रूप में देखना नारी के प्रति निराला की श्रद्धा का प्रतीक है। वे राष्ट्र के लिए नारियों के पावन गर्भ से ऐसे वीर पुत्रों का जन्म चाहते हैं जिनमें न मृत्यु की शंका हो और न ही किसी जाति की भेद भावना।

निराला ने स्वयं सेवकों पर लखनऊ में चली पुलिस की डण्डेबाजी को पैने शब्दों से खण्डित किया था। उस मामले में घायल अनेक महिलाओं और बच्चों का करूणास्पद चित्र खींचा था। ऐसे कई संदर्भो में निराला ने अपनी संपादकीय टिप्पणियों के माध्यम से स्वतंत्रता-संग्राम के सैनिकों का साथ दिया और महिलाओं पर अंग्रेजों की दमननीति का खण्डन किया। अमीनुद्दौला-पार्क में घटी एक रोमांचक घटना का विस्तार पूर्वक वर्णन करते हुए निराला ने लिखा था कि ''.... 200 गोरों की एक पलटन आ गयी, और उसने पार्क को अपने चार्ज में ले लिया। सिपाहियों की इतनी भीड़ देखकर लोगों में भय तथा कौतुक का संचार होने लगा, और रास्तों पर धीरे-धीरे भीड़ बढ़ती गयी। फौज़ के एक अफ़सर ने अमीनुद्दौला - पार्क में फहरा रहे राष्ट्रीय झण्डे को उखाड़कर जमीन पर फेंक दिया। जुलूस उसी तरह जय-घोष के साथ घूमता-फिरता कांग्रेस-कमेटी के दफ्तर पहुँचा। इस समय पार्क से फौज़ हटा ली गयी और गिराये हुए जातीय झण्डे को लोगों ने भीतर घुसकर फिर खड़ा कर दिया। फिर उधर पुलिस की चौकी के पास जनता और पुलिस में कुछ छेड़छाड़ होने लगी। पुलिस ने गोलियाँ चलायीं। कितने मरे, इसका यथार्थ हाल नहीं मालूम। इस जाँच के पश्चात् ही कुछ लिखना ठीक होगा।''[67]

राष्ट्र की स्वतंत्रता को लेकर निराला के विचार अत्यंत स्पष्ट हैं। निराला अज्ञानी

राष्ट्र के लिए स्वतंत्रता और परतंत्रता में कोई भेद नहीं करते। यदि राष्ट्र की तमाम जनता अज्ञानी हो, तब उस राष्ट्र के लिए स्वतंत्रता से कोई प्रयोजन हासिल नहीं होगा। इसलिए निराला राष्ट्र के हर वर्ग को अज्ञान से मुक्त करने की बात करते हैं और इसीको राष्ट्र की असली स्वतंत्रता घोषित करते हैं। निराला ने कई बार कहा कि किसानों एवं महिलाओं की मुक्ति के लिए उन्हें शिक्षा एवं ज्ञान की आवश्यकता है। उन्होंने 'लखनऊ-ज़िला-कानफ़रेंस' शीर्षक टिप्पणी में लिखा था कि देश को शहरों में होनेवाले कानफ़रेंस की नहीं बल्कि गाँवों में जाकर किसानों तथा अन्य साधारण लोगों को शिक्षित बनाने की सख्त जरूरत है। क्योंकि गाँव के लोग यह भी नहीं जानते कि स्वराज्य क्या है। 'अलका' उपन्यास में एक किसाना पूछता है कि 'सुराज का मतलब क्या है'....निराला अपने राष्ट्र की इस स्थिति से बेहद नाखुश हैं। वे लिखते हैं कि ''जमाना अब काम का है। गाँवों में अभी तक कोई स्वराज्य का नाम भी नहीं जानता, इसका हमें व्यक्तिगत अनुभव है। ग्राम-प्रचार और ग्राम-संगठन की इसीलिए सख्त जरूरत है।''[68]

जुलाई, 1930 - 'सुधा' में प्रकाशित संपादकीय टिप्पणी 'मार्जन और स्वतंत्रता' में निराला ने इसी बात को और स्पष्ट रूप से कहा। वे लिखते हैं कि मार्जन एवं परिवर्तन से अपनी साधारण जनता को शिक्षित बनाकर ही विकसित कहलानेवाले हर देश ने उन्नति प्राप्त की। भेड़ों की तरह चलनेवाले लोग हमेशा दूसरों की आज्ञा का पालन करते हैं और हमेशा नेता लोगों की ओर ताकते रहते हैं। निराला के विचार में ऐसे अनपढ़ लोग पहले ही पराधीन होते हैं- ऐसे राष्ट्र के लिए स्वतंत्रता से कुछ मिलनेवाला नहीं। निराला भारत में ऐसे अमार्जित मानव-समूहों के बदले मार्जित जनता को देखना चाहते हैं। वे लिखते हैं कि ''मार्जन प्रभावित करनेवाला है, प्रभावित होनेवाला नहीं। प्रत्येक विभाग के उच्चतम मनुष्यों ने ही संसार के अपर मनुष्यों को प्रभावित कर रखा है। ऐसे मनुष्य भारतवर्ष में भी हैं। पर समष्टि ऐसी नहीं, इसलिए ज्ञान-जन्य बृहत् संगठन नहीं हो पाता। ज्ञान और मार्जन ही स्वतंत्रता के आधार हैं।''[69]

निराला की राष्ट्रीय चेतना भारतामाता के गुण गाकर अपनी मातृभूमि की वंदना करने तक या अंग्रेजों पर कई प्रकार से शब्द-प्रहार करने तक सीमित नहीं है। वे यथार्थ की दृष्टि से राष्ट्र की समस्याओं की तह में पहुँचते हैं और अपनी सीमाओं के तहत उन समस्याओं का समाधान भी यथार्थवादी ढ़ंग से पेश करते हैं। वे भारत के लोगों को महनीय जरूर मानते हैं

लेकिन वह महनीयता कुछ व्यक्तियों तक ही सीमित है। एक समूह के रूप में वे अभी भारत को कमजोर ही माने हुए हैं। इस कमजोरी को वे जड़ से उखाड फेंकना चाहते हैं। इसलिए वे कहते हैं कि ज्ञान और मार्जन ही स्वतंत्रता के आधार हैं।

निराला जब 'सुधा' में संपादकीय टिप्पणियों एवं निबंधों की रचना कर रहे थे, तब राष्ट्रीय मुक्ति-आंदोलन अपने शिखर पर था। तब तक महात्मा गाँधी जी समस्त भारतीय जाति पर अपनी छाप छोड़ चुके और उनका सत्याग्रह सारे विश्व में मशहूर हो गया। ऐसे सत्याग्रह की प्रशंसा निराला भी कई जगह करते हैं। वे साम्राज्यवाद और सत्याग्रह शीर्षक संपादकीय टिप्पणी में अंग्रेजों की स्वार्थनीति के मूल में जाकर उनके साम्राज्यवाद का असली रूप हमारे सामने रखते हैं और इस साम्राज्यवाद के खिलाफ महात्मा जी से उठाये गये सत्याग्रह अस्त्र की खुलकर तारीफ भी करते हैं। उन्होंने इस टिप्पणी में अंग्रेजों के साम्राज्यवाद की जड़ का परिचय देते हुए लिखा कि ''साम्राज्यवाद इंगलैण्ड की राजनीति का मूल है। पूँजी के द्वारा वणिक-शक्ति की वृद्धि के इतिहास के साथ-साथ साम्राज्यवाद का इतिहास इंगलैण्ड के साथ गुँथा हुआ है। पूँजी की ही तरह यह हृदयहीन है। अँगरेजों की शक्ति का समस्त संसार पर प्रभाव है। साथ-साथ अपनी वृत्ति या जातीय साम्राज्यवाद-जीवन के कारण इंगलैण्ड संसार-भर में बदनाम है। इतिहास के जानकार जानते हैं कि इंगलैण्ड की सरकार पूँजीपतियों की सरकार है, और साम्राज्यवाद उसकी जीवनी-शक्ति, मूल आधार।''[70]

निराला के विचार में अंग्रेजों के विरुद्ध गाँधी जी द्वारा चलाये जानेवाले इस सत्याग्रह से संत्रस्त सरकार ने कांग्रेस को दबाने के लिए ही एक कानून बनाकर उस जातीय संस्था को अवैध घोषित किया। वे सत्याग्रह की प्रशंसा में लिखते हैं कि ''आज तक का इतिहास यही साक्षी दे रहा है कि कूटनीति को बराबर कूटनीति से उत्तर मिला, बाहु-बल को बराबर बाहु-बल का सामना करना पड़ा। सत्याग्रह की लड़ाई संसार के इतिहास में पहली लड़ाई है, जब हथियारबंदों के सामने निःशस्त्र सैनिक सत्य का बल धारण कर भूखे पेट, सूखे-अधर बराबर मनुष्यता के समर-क्षेत्र में अड़े हुए हैं। इस बल के पुण्य-प्रभाव में अँगरेज सरकार का संपूर्ण शासन-चक्र अचल हो जाता है, ऐसा अँगरेजों ने ही कहा है। इसलिए कानून अपनी पूरी शक्ति से इस बल को पराभव देने के लिए सामने आया।''[71]

निराला गाँधीजी को संसार के सर्वश्रेष्ठ पुरुष घोषित करते हैं। गोल-मेज सम्मेलनों के

संदर्भ में अंग्रेज़ सरकार ने 'फूट डालो और राज करो' वाली नीति अपनाते हुए भारत को जातियों के नाम पर अलग करने का प्रस्ताव किया तब गाँधी जी ने एरवाड़ा जेल में अनशन करना प्रारंभ किया। वह समय राष्ट्रीय जागरण के इतिहास में अत्यंत महत्वपूर्ण समय था। एक ओर दलितों का पक्ष लेकर बाबा साहब अंबेडकर खडे थे, दूसरी तरफ महात्मा गाँधी जी अपनी ही बात पर अडे थे। ऐसे समय में अक्तूबर, 1932 की 'सुधा' की संपादकीय टिप्पणी में निराला ने लिखा कि "महात्मा गाँधी संसार के सर्वश्रेष्ठ पुरुष हैं। कौमी बटवारे से हिन्दुओं में फूट होती हुई देखकर उन्होंने अपने प्राण छोड़ देने का निश्चय कर लिया है। जब तक इस फैसले में परिवर्तन न होगा, वह अनाहार-व्रत करेंगे। इसके पहले प्राण निकल जाय, यह भी उन्हें स्वीकार्य है। वह प्राणों की बाजी लगाकर अपनी दुष्प्राप्य सहानुभूति से देश को शिक्षा देना चाहते हैं। महात्मा जी राष्ट्र के प्राण हैं। वह संयुक्त निर्वाचन चाहते हैं। इसी से देश में एकता रह सकती है। व्यक्तिगत स्वार्थ के लिए फूट जाने पर देश का स्वार्थ नहीं रहता। इनसे विदेशी लोग ही स्वार्थसिद्धि करते हैं। देश में कुछ ऐसे भी लोग हैं, जो अपने संप्रदाय की भलाई के सामने देश की व्यापक भलाई को कुछ भी नहीं समझते।"[72]

चूँकि निराला इस समय महात्मा गाँधी जी के व्यक्तित्व से अत्यधिक आकर्षित थे और उन्हें संपादक की ओर से लिखना था, उनके इस समय की सभी रचनाओं में महात्मा गाँधी जी की प्रशंसा ही मिलती है। यह भी ध्यान देने की बात है कि वह समय स्वतंत्रता संग्राम का गाँधीयुग था। लेकिन जैसे-जैसे निराला की विचारधारा परिष्कृत होती गयी, गाँधी जी के बताये कई सिद्धांतों से उनका मतभेद होने लगा, जिसके दर्शन बाद की लिखी गयी निराला की कविताओं में और स्पष्ट रूप में होते हैं। पर कहना चाहिए कि इस समय लगभग सभी संपादकीय टिप्पणियों में निराला ने गाँधी जी के हर निर्णय का साथ दिया और उन्हें राष्ट्र का महानायक ही नहीं भारत के लिए एक दैवी प्रसाद एवं संसार का सर्वश्रेष्ठ पुरुष माना।

निराला ने अपने कथा-साहित्य में अंग्रेजों से मिलकर किसानों का शोषण करनेवाले जमींदारों एवं ताल्लुकेदारों का खुलकर विरोध किया और उनके कथा-साहित्य में अनेक पात्र जमींदारों पर धावा बोलते और विजय पाते। निराला ने अपनी संपादकीय टिप्पणियों में भी इन राजाओं और जमींदारों के बारे में लिखा जो अंग्रेजों के भक्त बनकर, अपनी जनता को कुचलते थे। नवंबर 1929 वाली 'सुधा' की संपादकीय टिप्पणी में उन्होंने पटियाला राज्य में

प्रजा पर किये गये बर्बर अत्याचारों के विरोध में लिखा कि ''सभ्यता और न्याय का ढ़ोंग रचने वाली ब्रिटिश सरकार यदि अपने हिमायती, दुष्ट, व्यभिचारी देश नरेशों की विलासिता और अत्याचारों को इस प्रकार छिपाने का प्रयत्न करेगी, यदि वह उनकी इच्छाओं को पूर्ण करने के लिए निरीह और निर्बल प्रजा का इस प्रकार बलिदान करेगी, न्याय का गला इस प्रकार घोंटेगी तो शीघ्र ही उसे सभ्य जातियों के सामने मुँह काला करना पड़ेगा। उसे इन पापों का शीघ्र ही दण्ड मिलेगा।''[73]

निराला के कथा-साहित्य के पात्र आदर्शवाद के प्रतीक नहीं हैं। निराला के पात्र गाँवों में जाते हैं और जनता का संगठन करते हैं, उसे शिक्षा देते हैं ताकि साम्राज्यवाद और सामंतवाद के बीच संबंधों को सामान्य लोग जानें और परिवर्तित होकर उनसे लड़ें। 'सुधा' की एक संपादकीय टिप्पणी में उन्होंने इसी विषय के प्रति ध्यान आकृष्ट करते हुए लिखा कि ''जितने आदमी जेल साल-साल भर की सज़ा भुगत रहे हैं, अगर आंदोलन से पहले कहा जाता कि भारत में तीस हज़ार केंद्र बनाकर मूर्ख ग्रामवासियों को शिक्षा दीजिए, उन्हीं की मातृभाषा में, संसार की आवश्यक बड़ी-बड़ी बातें, उन्हीं से प्राप्त रोटियों से गुज़ार करते हुए, किसी से लड़िये मत, वे परिश्रम करके अन्न पैदा करेंगे, आपके भोजनों की फिक्र करेंगे, आप उनकी विद्या तथा शिक्षा की फिक्र कीजिए, आपका और उनका इस तरह बराबर का व्यवहार रहेगा, तो इतनी बड़ी संख्या दीख पड़ती है या नहीं, इसमें संदेह है।''[74]

भारत राष्ट्र के संदर्भ में निराला विचार करते हैं कि को लेकर निराला के विचार क्या हैं- यह बड़ा ही रोचक प्रश्न है। वे मानते हैं कि भारत हमेशा सांस्कृतिक रूप से एक है। इतना ही नहीं, निराला यह कभी स्वीकार नहीं करते थे कि भारत को राष्ट्रीयता का पाठ पढ़ानेवाले अंग्रेज़ होंगे। वे इस बात का विरोध करते थे कि भारत कभी एक देश नहीं रहा और इस देश के अनेक प्रान्तों को एक राष्ट्र के रूप में मिलाने का श्रेय अंग्रेजों को जाता है। उन्होंने लिखा कि - ''अंग्रेज़ कहते थे कि चूँकि भारतवर्ष कोई एक देश नहीं है, अनेक देशों का समुदाय है, यहाँ न एक भाषा है और न एक प्रकार का समाज, अनेक छोटी-बड़ी भाषाओं के रहते भारतवर्ष उन्नति नहीं कर सकता, इसलिए सबको अंग्रेजी पढ़नी चाहिए। अंग्रेजों के हिमायती अब तक कुछ ऐसी ही दलील पेश करते रहे हैं। आश्चर्य तो यह है कि इनमें कुछ तो इसी देश के निवासी भारतीय हैं। हमें उनकी बात पर हँसी भी आती है, और कष्ट भी

होता है। भारतवर्ष एक देश नहीं है, अनेक देशों का समुदाय है, यह वे ही कह सकते हैं जिन्हें यहाँ के इतिहास का कुछ पता नहीं और जिन्हें यहाँ की सभ्यता और संस्कृति की नींव का ज्ञान नहीं। परंतु जो यह जानते हैं कि प्राचीन भारत ने एक सूत्र में गूँथकर अपना सर्वतोमुखी विकास किया है, जिन्हें यह मालूम है कि इस देश ने सुख और दुःख की परिस्थितियों में एक साथ रहकर काम किया है, विजय की है तो एक साथ, हारे हैं तो एक साथ, जिनको इसका पता है, राम, कृष्ण, बुद्ध, रामानुज, कबीर, तुलसी आदि सैकड़ों महापुरुष और वैष्णव, शैव, शाक्त आदि अनेक संप्रदाय प्रादेशिक सीमा से ऊपर समस्त देश में, वायु की भांति, एकरस फैले हैं, वे ऐसे भ्रम में कदापि नहीं पड़ सकते।''[75]

कई बार स्पष्ट हो चुका कि निराला की राष्ट्रीय चेतना तथाकथित या प्रचलित राष्ट्रीय चेतना से भिन्न है। वे युवकों को पुकारते हैं कि झुण्डों में कैद होकर जेल भरने के बदले, गाँवों में जाकर अशिक्षितों को शिक्षा दिलाना अत्यंत आवश्यक एवं बेहतर कार्य है। इस प्रकार वे हर एक चीज को नये ढ़ंग से देखते हैं और समस्या के यथासंभव समाधान की खोज करते हैं। अनेक बार वे कहते हैं कि अशिक्षितों को अपनी ही भाषा में विद्या दिलाने की आवश्यकता है। यहाँ प्रकारान्तर से वे राष्ट्रीय एकता के लिए भाषा को एक प्रमुख साधन बताते हैं। वे उन युवकों का परिहास करते हैं जो शहरों में समूहों को इकट्ठा करके अंग्रेजी में भाषण देते हैं। यह स्पष्ट है कि वे अंग्रेजी की जगह हिन्दी को राष्ट्रभाषा के रूप में स्थापित करना चाहते थे- इस संदर्भ में वे बड़े बड़े नेता लोगों की भी आलोचना करते हैं।

पंजाब की एक सभा में विद्यार्थियों को भाषण देने के लिए नेताजी सुभाषचंद्र बोस आये। उन्होंने भाषण बहुत अच्छा दिया और राजनीति, विद्यार्थी, स्वाधीनता, समय का महत्व आदि अनेक विषयों पर अपने उच्च विचार व्यक्त किये। लेकिन उन्होंने अपने इस भाषण के दौरान राष्ट्र भाषा को लेकर एक शब्द भी नहीं कहा। इससे निराला असंतुष्ट होकर 'बाबू सुभाषचंद्र बसु का व्याख्यान' शीर्षक संपादकीय टिप्पणी में लिखते हैं कि ''....परंतु हम सुभाष बाबू से कुछ और आशा रखते थे। जिस वीरवर यतींद्रनाथ की स्मृति को लेकर पंजाब में वे आये, उस वीर की उदारता की उन्होंने पूर्ण मात्रा में रक्षा नहीं की। उन्हें ये स्मरण नहीं रहा कि यह भाषण वह पंजाब के विद्यार्थियों में दे रहे हैं। जहाँ राष्ट्र को एकता के सूत्र में जोड़ने तथा प्राचीन अंधवाद को बहाकर उच्च-नीच तमाम हृदयों को सहनुभूति के एक ही तागे में

पिरो जाने की उन्होंने इतनी बातें कहीं हैं, वहाँ राष्ट्र की भाषा पर कहीं एक पंक्ति भी नहीं आने पायी।''[76]

इस प्रकार हिन्दी के उत्थान में आयी किसी भी अड़चन को निराला सह नहीं सकते थे। हिन्दी को राष्ट्र भाषा बनने का गौरव मिलना चाहिए, इसलिए हिन्दी साहित्य में वे अभूतपूर्व परिवर्तन चाहते थे। हिन्दी भाषा-साहित्य को सुसंपन्न करने के लिए आधुनिक कवियों-साहित्यकारों का आह्वान करते थे और हिन्दी भाषा-साहित्य की महानता की पशंसा भी करते थे। निराला की इस प्रशंसा के पीछे राष्ट्र-कल्याण-भावना ही निहित है। भारत की राष्ट्र भाषा बनने के लिए, जन-जन की भाषा बनने के लिए हिन्दी को हर एक भाषा से शब्द स्वीकारने चाहिए और किसी प्रकार की संकीर्णता का प्रदर्शन नहीं करना चाहिए। लेकिन इस बिंदु पर आकर निराला अपना संयम नहीं खोते और यह कहीं भी नहीं कहते थे कि प्रांतीय भाषाओं को महत्व नहीं मिलना चाहिए। उनका कहना था कि प्रांतीय भाषाओं को अंग्रेजी के स्थान पर छात्रों को सिखायें और इसका ध्यान रखें कि अंग्रेजी के दबाव में कहीं प्रान्तीय भाषाएँ खतरे में न पड़ जाय। लेकिन राष्ट्र भाषा भी एक राष्ट्र की नितांत आवश्यकता है और इसे राष्ट्र भाषा का गौरव देने में अब विलम्ब करना नहीं चाहिए। इस मुद्दे पर वे किसी भी व्यक्ति से भिड़ने को तैयार हो जाते थे - यहाँ तक कि अपने सर्वप्रिय आधुनिक कवि रवींद्र से भी!

उन दिनों रवींद्रनाथ ठाकुर जी मद्रास गये और अपने भाषण में उन्होंने कहा कि राष्ट्र भाषा की आवश्कता उतनी नहीं है, जितनी प्रान्तीय भाषाओं की प्रगति की। निराला ने इस भाषण का विरोध किया था और तीखे शब्दों में कहा था कि हिन्दी भाषा के प्रति विश्वकवि के विचार देखकर बड़ा दुःख हो रहा है। उन्होंने लिखा कि ''आरंभ से ही इस ओर हमारे बंगाली भाइयों की उदासीनता प्रकट होती रही है, यद्यपि उनमें भी कुछ ऐसे नेता अवश्य हुए हैं, और हैं, जो हिन्दी की राष्ट्र भाषा बनने की योग्यता स्वीकार कर चुके हैं, और इस ओर प्रयत्नशील भी रहे हैं। बंगालियों को बंगाल तथा बंगला-भाषा से विशेष प्रेम है, और अपने प्रांत तथा अपनी मातृभाषा से प्रेम होना सर्वथा स्तुत्य भी है, परंतु यह प्रेम इतना संकुचित न होना चाहिए, जो दूसरे प्रांत तथा दूसरी भाषा का उत्कर्ष देखकर बुद्धि को भ्रष्ट कर दे। जहाँ-जहाँ और जब-जब मौका मिला है, बंगालियों ने हिन्दी को नीचे ढ़केलनी की कोशिश की है। यह

हिन्दी का गौरव है कि इतना होने पर भी उसकी प्रधानता और लोकप्रियता में व्याघात नहीं पहुँचा। हम समझते हैं, यदि बंगला को राष्ट्रभाषा का पद सुशोभित करने का मौका मिला होता, तो कविवर रवींद्रनाथ कदापि राष्ट्रभाषा के महत्व से इनकार न करते। क्या वह समझते हैं कि ऐसी भाषा की आवश्कता ही नहीं, जिसमें एक मदरासी भाई एक पंजाबी से बात कर सके? यदि ऐसी भाषा न होती, तो वह किस प्रकार मदरासी विद्यार्थियों पर अपने विचार प्रकट करते। क्या अंगरेजी में विचार प्रकट करते समय हमारे कवींद्र जी इस बात को भूल गये कि वह न तो अपनी प्रांतीय भाषा बंगला में बोल रहे हैं, और न श्रोताओं की प्रांतीय भाषा तमिल इत्यादि में। फिर क्यों उन्होंने इस अनावश्यक और लचर विचार को अपने मुख से निकाला कि राष्ट्र भाषा का प्रश्न महत्वपूर्ण नहीं है। हमारे चित्त में उनके लिए बड़ा आदर है। उन्होंने संसार भर में भारत का मुख उज्वल किया है, इसमें संदेह नहीं। परंतु इसी कारण से, इतने बड़े आदमी के मुँह से ऐसी थोथी बात सुनकर बड़ा आश्चर्य और दुःख होता है।''[77]

स्पष्ट है कि निराला राष्ट्र भाषा के रूप में हिन्दी का निराकरण करनेवालों से एवं हिन्दी साहित्य का अवमूल्यन करनेवालों से बहुत असंतुष्ट हैं और वे अपने शब्द-प्रहारों से उनकी तीखी आलोचना कर देते हैं। हिन्दी साहित्य के गौरव को लेकर निराला की आलोचना का लक्ष्य बननेवालों में महात्मा गाँधी जी और जवाहर लाल नेहरू तक हैं। लेकिन निराला यह स्वीकार करते थे कि साहित्य की भाषा अलग है और बोल-चाल की तथा शिक्षा की भाषा अलग है। एक तरफ राष्ट्र को ऐसी राष्ट्र भाषा की आवश्यकता है जिसमें राष्ट्र के साधारण जनों को शिक्षा अपनी भाषा में मिल सके तो दूसरी तरफ देश में इसकी चर्चा चल पड़ी कि कौन सा साहित्य महान है- हिन्दी का या बंगला का ! निराला भी कई बार इस विवाद में पड़ जाते हैं और ऐसे संदर्भों एक आलोचक के रूप में निराला की सीमाएँ स्पष्ट होती हैं।

निराला राष्ट्रभाषा के रूप में हिन्दी को ही बिठाना इसलिए चाहते थे कि हिन्दी प्रदेश की जनता इस राष्ट्र में सबसे पिछडी हुई है और इन प्रदेशों के साधारण मनुष्यों के लिए अंग्रेजी के माध्यम से उच्च शिक्षा पाकर अच्छा जीवन बिताना लगभग असंभव है। निराला मानते थे कि अंग्रेजी सिर्फ उन्हीं लोगों तक सीमित हैं जो राजाओं और जमींदारों के बेटे हैं। अपढ़ गँवारू हिन्दी के अलावा कुछ नहीं जानता, अतः उसे शिक्षा हिन्दी में ही मिले। लेकिन

प्रांतीय भाषाओं को वे इस संदर्भ में महत्वहीन नहीं मानते। वे बहुत चाहते थे कि देश में एक ऐसा विश्वविद्यालाय हो, जिसमें हिन्दी माध्यम से पढ़ाई हो। मात्र साहित्य ही नहीं- विज्ञान, तकनीक, दर्शन आदि सभी विषयों की शिक्षा हिन्दी में दी जाए। वे लिखते हैं ''इस विश्वविद्यालय के लिए सोची हुई सबसे महत्वपूर्ण बात यह है कि यहाँ केवल साहित्य की ही नहीं, किंतु व्यावसायिक, यांत्रिक तथा कलात्मिका शिक्षा भी हिन्दी द्वारा दी जायेगी। हिन्दी के माध्यम से इंजीनियरिंग तथा डॉक्टरी की शिक्षा की व्यवस्था करने पर यह विश्वविद्यालय भारत में अद्वितीय होगा, इसमें संदेह नहीं। इस तरह राष्ट्र भाषा को बहुत बड़ा महत्व प्राप्त होगा ..... राष्ट्र की गुत्थियाँ जो अभी तक नहीं सुलझीं, जो प्रश्न उठ-उठकर रह गये हैं, इस विश्वविद्यालय के कार्य से वे अड़चनें दूर हो जायेंगी, उनका उचित उत्तर प्राप्त होगा।''[78]

स्पष्ट है कि निराला के साहित्यिक और साहित्येतर आलोचना, स्फुट निबंधों एवं संपादकीय टिप्पणियों में राष्ट्रीय जागरण से प्रभावित उनकी क्रान्तिकारी राष्ट्रीय चेतना का परिचय मिलता है। निराला की राष्ट्रीय चेतना संबंधी विचारधारा का महत्व यह है कि वह यथार्थ के धरातल पर राष्ट्र की स्वतंत्रता एवं प्रगति की कामना करती है। उन्होंने अपने इस गद्य साहित्य में अंग्रेजों के साम्राज्यवाद की तह में जाकर उसकी आर्थिक शोषण संबंधी नीति का सही विश्लेषण प्रस्तुत किया था और अंग्रेजों की सहायता करनेवाली सामंतवादी शक्तियों का विरोध किया था। उन्होंने नारी को राष्ट्रीय शक्ति का आधार माना था और उसकी उन्नति की कामना व्यक्त की थी। भारत के राष्ट्रीय एकता पर बल देते हुए उसकी सांस्कृतिक भव्यता का परिचय साहित्य के माध्यम से देने का प्रयास किया था। उन्होंने हिन्दू और मुसलमानों के बीच उठे विवादों को भी साहित्य के माध्यम से सुलझाने का स्तुत्य प्रयास किया था। इतना ही उन्होंने राष्ट्रीय प्रयोजनों की दृष्टि से एक राष्ट्र भाषा की नितांत आवश्यकता भी अपनी इन रचनाओं में महसूस की तथा हिन्दी को राष्ट्र भाषा बनाने पर ज़ोर दिया। उन्होंने इसके लिए आवश्यक तर्क भी प्रस्तुत किया था कि हिन्दी को ही राष्ट्र भाषा क्यों बनाया जाय।

निराला के उपन्यास साहित्य, कहानी-साहित्य एवं आलोचनात्मक साहित्य के विश्लेषण से विदित होता है कि निराला के गद्य में भी राष्ट्रीय जागरण की अभिव्यक्ति हुई, जो कल्याणकारी राष्ट्र की कामना करती है।

संदर्भ-सूची

1. निराला रचनावली भाग-3 सं. नंदकिशोर नवल, भूमिका, पृ.12
2. निराला की साहित्य साधना भाग-2, डॉ.रामविलास शर्मा, पृ.476
3. निराला रचनावली भाग-4, सं. नंदकिशोर नवल, 'कुल्ली भाट' की भूमिका, पृ.22
4. निराला रचनावली भाग-4, सं. नंदकिशोर नवल, 'चोटी की पकड़' की भूमिका, पृ.120
5. निराला रचनावली भाग-4, सं. नंदकिशोर नवल, पृ.12
6. निराला रचनावली, सं.डॉ.नंदकिशोर नवल, भाग-3, पृ.12
7. निराला रचनावली भाग-4, सं. नंदकिशोर नवल, पृ.13
8. निराला की साहित्य-साधना भाग-1, डॉ.रामविलास शर्मा, पृ.195
9. निराला रचनावली भाग-3, सं. नंदकिशोर नवल, 'चोटी की पकड़' पृ.125-126
10. निराला रचनावली भाग-3, सं. नंदकिशोर नवल, 'अलका' पृ.137
11. निराला रचनावली भाग-3, सं. नंदकिशोर नवल, 'अलका' पृ.141
12. निराला रचनावली भाग-4, सं. नंदकिशोर नवल, 'राजासाहब को ठेंगा दिखाया' पृ.141
13. निराला रचनावली भाग-3, सं. नंदकिशोर नवल, 'अप्सरा' पृ.21
14. निराला रचनावली भाग-4, सं. नंदकिशोर नवल, 'चमेली' पृ.253
15. निराला रचनावली भाग-3, सं. नंदकिशोर नवल, 'अप्सरा' पृ.59
16. निराला रचनावली भाग-3, सं. नंदकिशोर नवल, 'अलका' पृ.143
17. निराला रचनावली भाग-3, सं. नंदकिशोर नवल, 'अलका' पृ.160
18. निराला रचनावली भाग-3, सं. नंदकिशोर नवल, 'अलका' पृ.163
19. निराला रचनावली भाग-4, सं. नंदकिशोर नवल, 'चतुरी चमार' पृ.367
20. निराला रचनावली भाग-4, सं. नंदकिशोर नवल, 'श्रीमती गजानन्द शास्त्रिणी' पृ.401
21. निराला रचनावली भाग-4, सं. नंदकिशोर नवल, 'श्रीमती गजानन्द शास्त्रिणी' पृ.402
22. निराला की साहित्य-साधना भाग-2, डॉ.रामविलास शर्मा, पृ.20
23. निराला रचनावली भाग-4, सं. नंदकिशोर नवल, 'दो दाने' पृ.413-414
24. निराला रचनावली भाग-4, सं. नंदकिशोर नवल, 'दो दाने' पृ.414
25. निराला रचनावली भाग-4, सं. नंदकिशोर नवल, 'दो दाने' पृ.416
26. निराला रचनावली भाग-3, सं. नंदकिशोर नवल, 'अलका' पृ.166
27. निराला रचनावली भाग-3, सं. नंदकिशोर नवल, 'अलका' पृ.157
28. निराला रचनावली भाग-4, सं. नंदकिशोर नवल, 'श्रीमती गजानन्द शास्त्रिणी' पृ.409
29. निराला रचनावली भाग-4, सं. नंदकिशोर नवल, 'देवी' पृ.358

30. निराला रचनावली भाग-4, सं. नंदकिशोर नवल, 'कला की रूपरेखा' पृ.389
31. निराला रचनावली भाग-4, सं. नंदकिशोर नवल, 'चतुरी चमार' पृ.369
32. निराला रचनावली भाग-3, सं. नंदकिशोर नवल, 'प्रभावती' पृ.256-257
33. निराला की साहित्य साधना भाग-2, डॉ.रामविलास शर्मा, पृ.20
34. निराला रचनावली भाग-3, सं. नंदकिशोर नवल, 'अलका' पृ.147
35. निराला रचनावली भाग-3, सं. नंदकिशोर नवल, 'अलका' पृ.151-152
36. निराला रचनावली भाग-3, सं. नंदकिशोर नवल, 'अलका' पृ.152
37. निराला रचनावली भाग-3, सं. नंदकिशोर नवल, 'अलका' पृ.153
38. निराला, डॉ.रामविलास शर्मा, पृ.144
39. निराला की साहित्य साधना भाग-1, डॉ.रामविलास शर्मा, पृ.88
40. निराला का गद्य, डॉ.सूर्यप्रसाद दीक्षित, पृ.90
41. हिन्दी आलोचना, विश्वनाथ त्रिपाठी पृ.92
42. निराला रचनावली भाग-5, सं. नंदकिशोर नवल, पृ.187
43. हिन्दी आलोचना, विश्वनाथ त्रिपाठी, पृ.93
44. निराला रचनावली भाग-5, सं. नंदकिशोर नवल, पृ.170
45. निराला रचनावली भाग-1, सं. नंदकिशोर नवल, 'परिमल' की भूमिका, पृ.425
46. प्रबंध प्रतिमा, निराला, पृ.193
47. निराला रचनावली भाग-5, सं. नंदकिशोर नवल, पृ.23
48. निराला रचनावली भाग-6, सं. नंदकिशोर नवल, पृ.123-124
49. निराला रचनावली भाग-5, सं. नंदकिशोर नवल, 'सामाजिक पराधीनता' पृ.147
50. निराला रचनावली भाग-5, सं. नंदकिशोर नवल, पृ.445-446
51. निराला रचनावली भाग-5, सं. नंदकिशोर नवल, पृ.374
52. निराला की साहित्य साधना, भाग-2, डॉ.रामविलास शर्मा, पृ.16
53. निराला रचनावली भाग-5, सं. नंदकिशोर नवल, 'रवींद्र-कविता-कानन', पृ.29
54. निराला रचनावली भाग-5, सं. नंदकिशोर नवल, 'रवींद्र-कविता-कानन', पृ.57
55. निराला रचनावली भाग-5, सं. नंदकिशोर नवल, 'रवींद्र-कविता-कानन', पृ.60
56. निराला रचनावली भाग-5, सं. नंदकिशोर नवल, 'साहित्य की समतल भूमि' पृ.170-71
57. निराला रचनावली भाग-5, सं. नंदकिशोर नवल, 'मुसलमान और हिन्दू कवियों में विचार-साम्य' पृ.333
58. निराला रचनावली भाग-5, सं. नंदकिशोर नवल, 'मुसलमान और हिन्दू कवियों में विचार-साम्य', पृ.334

59. निराला रचनावली भाग-5, सं. नंदकिशोर नवल, 'हिन्दी कविता-साहित्य की प्रगति' पृ.217
60. निराला रचनावली भाग-5, सं. नंदकिशोर नवल, 'हिन्दी कविता-साहित्य की प्रगति' पृ.219
61. निराला रचनावली भाग-5, सं. नंदकिशोर नवल, 'हमारे साहित्य का ध्येय' पृ.376-377
62. निराला की साहित्य साधना भाग-2, डॉ.रामविलास शर्मा, भूमिका, पृ.3
63. निराला रचनावली भाग-6, सं. नंदकिशोर नवल, पृ.123-124
64. निराला रचनावली भाग-6, सं. नंदकिशोर नवल, 'इंग्लैण्ड और भारत का संबंध', पृ.284
65. निराला रचनावली भाग-6, सं. नंदकिशोर नवल, पृ.374-375
66. निराला रचनावली भाग-6, सं. नंदकिशोर नवल, पृ.290
67. निराला रचनावली भाग-6, सं. नंदकिशोर नवल, पृ.303
68. निराला रचनावली भाग-6, सं. नंदकिशोर नवल, पृ.256
69. निराला रचनावली भाग-6, सं. नंदकिशोर नवल, पृ.325-326
70. निराला रचनावली भाग-6, सं. नंदकिशोर नवल, पृ.379
71. निराला रचनावली भाग-6, सं. नंदकिशोर नवल, पृ.380
72. निराला रचनावली भाग-6, सं. नंदकिशोर नवल, पृ.377
73. निराला की साहित्य साधना भाग-2, डॉ.रामविलास शर्मा, पृ.21
74. निराला की साहित्य साधना भाग-2, डॉ.रामविलास शर्मा, पृ.23
75. निराला रचनावली भाग-6, सं.डॉ.नंदकिशोर नवल, 'भाषा और राष्ट्र', पृ.263
76. निराला रचनावली भाग-6, सं.डॉ.नंदकिशोर नवल, पृ.263
77. निराला रचनावली भाग-6, सं.डॉ.नंदकिशोर नवल, 'कवींद्र रवींद्र और राष्ट्रभाषा', पृ.474
78. निराला रचनावली भाग-6, सं.डॉ.नंदकिशोर नवल, 'इंदौर का हिन्दी विश्वविद्यालय' पृ.486-487

षष्ठ अध्याय

सूर्यकांत त्रिपाठी निराला के साहित्य में राष्ट्रीय जागरण का स्वरूप

षष्ठ अध्याय
सूर्यकांत त्रिपाठी निराला के साहित्य में राष्ट्रीय जागरण का स्वरूप

राष्ट्र वह जन समुदाय है जो एक ही देश में बसता हो और एक ही शासन में रहते हुए एकताबद्ध हो। राष्ट्र केवल सीमाओं के समुच्चय का नाम नहीं है। भौगोलिक, राजनैतिक एवं सांस्कृतिक एकता से युक्त जनसमुदाय ही राष्ट्र कहलाता है। उस राष्ट्र के प्रति भावनात्मक मनोनुभूति ही राष्ट्रीयता का रूप धारण करती है। राष्ट्रीयता की संकल्पना वैज्ञानिक परीक्षण के आधार पर उत्पन्न सिद्धांत की जगह, भावोद्वेलित प्रबल मानसिक अनुभूति से ही निर्मित होती है। इसके अंतर्गत कुछ ऐसे तत्त्व शामिल होते हैं जो किसी जनसमुदाय में राष्ट्रीयता का निर्माण करते हैं। इन तत्त्वों को राष्ट्रीयता के नियामक तत्त्व कहा जाता है। निश्चित भूभाग, संस्कृति, इतिहास-बोध, धर्म, भाषा और साहित्य, आर्थिक स्थिति एवं राजनैतिक स्थिति - ये ही वे नियामक तत्त्व हैं जिनके बल पर राष्ट्रीयता निर्मित होती है। किसी भी राष्ट्र के लिए निश्चित भूभाग का होना आवश्यक है। राष्ट्रीयता एक वैयक्तिक भावना न होकर सामूहिक चेतना है जो एक निश्चित भूभाग की जनता से संबंधित है। भौगोलिक सीमाओं के ही कारण किसी भी राष्ट्र का नक्शा बनता है। किसी भूभाग से संबद्ध होने की गौरवपूर्ण भावना ही राष्ट्रीयता के निर्माण में अहम् भूमिका निभाती है। इसके अलावा संस्कृति भी राष्ट्रीयता का नियामक तत्त्व है। किसी राष्ट्र की जनता के रहन-सहन, आहार-विहार, वेश-भूषा आदि के साथ-साथ संगीत, साहित्य, शिल्प, स्थापत्य-कला आदि संस्कृति के ही प्रतिफलित रूप हैं। जनसमुदाय के बीच इन सबके माध्यम से राष्ट्रीयता का प्रसार होता है। सच्चा राष्ट्र कवि या राष्ट्र लेखक वही होगा जो अपने राष्ट्र की प्रत्येक संस्कृति को अपने में समेट लेता हो तथा सभी संप्रदायों में उपस्थित देशगत ऐक्य को मुखर बनाता हो।

संस्कृति के साथ-साथ इतिहास-बोध के आधार पर भी राष्ट्रीयता का निर्माण होता है क्योंकि जनता अपने राष्ट्र के इतिहास से परिचित होकर अपने गौरवशाली अतीत के साथ-साथ अपने सामाजिक-आर्थिक और राजनैतिक हित को समझ सकती है। राष्ट्रीयता के निर्माण में धर्म की भूमिका भी महत्त्वपूर्ण है। धर्मावेग के कारण जनता में एकता का सूत्रपात होता है। यही एकता राष्ट्रीयता का रूप धारण करती है। इनके अलावा आर्थिक स्थितियाँ भी

राष्ट्रीयता के निर्माण में नियामक तत्त्व होती हैं। किसी जनसमुदाय की भाषा और उसका साहित्य भी राष्ट्रीयता के प्रसार में महत्त्वपूर्ण सिद्ध होते हैं, क्योंकि एक ही भाषा बोलनेवाले लोगों के मध्य एकता का भाव जल्दी पैदा होता है और उस एकता के प्रसार में साहित्य की भी अहम् भूमिका होती है। राजनैतिक स्थिति भी राष्ट्रीयता के नियामक तत्त्वों में से एक है, क्योंकि किसी राष्ट्र का शासक वही होता है जो राजनैतिक दृष्टि से उस राष्ट्र पर अपना प्रभुत्व स्थापित करता है। राजनैतिक सत्ता के कारण ही जनता एक राष्ट्र के रूप में पहचानी जाती है।

भारत के संदर्भ में राष्ट्रीयता की अवधारणा बहुमुखी एवं संक्लिष्ट है। वर्तमान राष्ट्रीयता की संकल्पना प्राचीन भारत की संकल्पना से कुछ भिन्न है। इसका कारण है किसी भी राष्ट्रीयता के देश-काल सापेक्ष होने की अनिवार्य स्थिति। प्राचीन और मध्यकालीन भारत में राष्ट्रीयता का आधार संस्कृति था, क्योंकि भारत उस समय राजनैतिक रूप से खण्डित था। फिर भी सांस्कृतिक दृष्टि से वह एक राष्ट्र था। आधुनिक युग में भारत की राष्ट्रीयता इससे कुछ भिन्न है। वर्तमान समय में राष्ट्रीयता को राजनैतिक परिस्थितियों के साथ जोड़कर देखते हैं। राष्ट्र की इस तरह की आधुनिक अवधारणा का आरंभ फ्राँस की राज्य क्रांति के समय से माना जाता है। आधुनिक युग में राष्ट्रीयता के विकास में अंग्रेज़ों की दमन-नीति और आर्थिक शोषण जहाँ एक ओर योग दे रहे थे, वहाँ दूसरी ओर उनके साथ-साथ यातायात के साधन, सांस्कृतिक सुधारवादी आंदोलन, प्रेस और साहित्य की भी महत्त्वपूर्ण भूमिका थी।

आधुनिक भारत के इतिहास के निर्माण में राष्ट्रीय जागरण की भूमिका महत्त्वपूर्ण है। भारत में व्यापार-हेतु यूरोपीय जातियों का आगमन हुआ था। समूचे भारत पर ब्रिटिश राज्य की स्थापना हुई थी। अपनी स्वार्थ-सिद्धि के लिए अंग्रेज़ों के द्वारा भारत में दमनकाण्ड चलाया गया था। फलस्वरूप सामाजिक-आर्थिक-धार्मिक-सांस्कृतिक एवं राजनैतिक क्षेत्रों में भारत पराधीन बन गया था। उसी समय यूरोप से आयी उदार-स्वातंत्र्य-विचारधारा से भारत के बुद्धिजीवी वर्ग का परिचय हुआ था। इसके फलस्वरूप राष्ट्र की पराधीनता को दूर करने के लिए विविध प्रयास किए गए थे। भारत का स्वतंत्रता-संग्राम इन्हीं ऐतिहासिक घटना-सूत्रों से जुड़ी हुई एक ऐतिहासिक प्रक्रिया है। भारत के राष्ट्रीय जागरण के विविध पहलुओं का संबंध इस प्रक्रिया के विभिन्न घटना-सूत्रों से है। ध्यातव्य है कि ये सारी घटनाएँ एक दिन या एक

साल में घटित नहीं हुईं। सन् 1757 ई. प्लासी युद्ध की विजय के बाद भारत में ब्रिटिश शासन का आरंभ हुआ था, तो राष्ट्रीय जागरण की प्रथम शंख-ध्वनि सन् 1857 ई. में अनुगूँजित हुई।

राष्ट्रीय जागरण एक ऐसे आंदोलन का नाम है जिसमें एक काल विशेष में उभरे हुए एक दूसरे से जुड़े हुए कई स्तरों के आंदोलन दिखाई देते हैं। इसलिए राष्ट्रीय जागरण एक सामुदायिक चेतना का प्रतीक बन गया था, जो समूचे राष्ट्र को सदियों की निष्क्रियता से जगाने के उद्देश्य से चल पड़ा था। इसका परम लक्ष्य समस्त क्षेत्रों में राष्ट्र की पराधीनता को दूर करना था। आधुनिक भारत में इस राष्ट्रीय जागरण के आविर्भाव का प्रत्यक्ष कारण भारत पर ब्रिटिश साम्राज्यवाद का आर्थिक शोषण कहा जा सकता है। इस देश की असीम संपत्ति से आकृष्ट होकर व्यापार के लिए भारत में पदार्पण करनेवाले अंग्रेज़ लोगों ने यहाँ की सामाजिक एवं राजनैतिक परिस्थितियों से फायदा उठाकर अपना साम्राज्य स्थापित किया और भारत को अपने सुविशाल साम्राज्य का सबसे लाभदायी उपनिवेश बना डाला। अंग्रेजों के शासन में भारत कई तरह से लूटा गया। लेकिन मुख्यतः उनकी हृदयहीन आर्थिक नीति के कारण देश में भुखमरी, गरीबी तथा बेचैनी बढ़ने लगीं। इस बेचैनी के साथ-साथ चुपके से अंग्रेजों के विरुद्ध असंतुष्टि की भावना भी पनपने लगी। अंग्रेजों ने अपना शासन चलाने के लिए इस देश में अंग्रेजी भाषा को प्रमुख स्थान दिया। फलस्वरूप इस देश में ऐसे बुद्धिजीवियों का उन्मेष हुआ जिन्होंने अंग्रेजी की खिड़की से झांककर विश्व में घटित होनेवाली अनेक ऐतिहासिक घटनाओं से संपर्क स्थापित किया था एवं अनेक मानवतावादी उदार विचारों से परिचय प्राप्त किया था। ऐसे वर्ग के कारण देश में सांस्कृतिक धरातल पर अद्‌भुत चेतना का प्रसार होने लगा और राष्ट्र की वर्तमान स्थिति को सुधारने के लिए प्रयत्न होने लगे। लगभग इसी समय अंग्रेजों ने अपने शोषण को और तेज बनाने के उद्देश्य से देश में रेल-तार-डाक की व्यवस्था भी कर दी जिसके फलस्वरूप सारा राष्ट्र एक सूत्र में बंधता गया। इन्हीं परिणामों की पृष्ठभूमि में आधुनिक भारत में राष्ट्रीय जागरण का विकास हुआ। अंग्रेज़ों की आर्थिक नीति के विरोध में कहीं-कहीं देश में छिट-पुट आंदोलन हुआ करते थे लेकिन सन् 1857 ई. के महान विद्रोह को राष्ट्रीय जागरण का पहला कदम कहा जा सकता है। यह विद्रोह सफल नहीं हो सका। लेकिन इसकी सबसे बड़ी विशेषता है - अंग्रेजों के विरुद्ध

भारतीय जनता के असंतोष का प्रकटीकरण। यद्यपि यह महान विद्रोह सामंतवादी राजा-महाराजाओं के द्वारा ही प्रारंभ हुआ तथापि जनसाधारण की सारी अशांति एवं बेचैनी को बहिर्गत होने का अवसर इसीसे प्राप्त हुआ था। भारत को पराये शासन से मुक्त करने का पहला प्रयास यह महान विद्रोह ही था। सन् 1857 ई. का विद्रोह विफल हुआ सही, लेकिन भारतीय जनता में स्वतंत्रता के बीज के पनपने में इस महान संग्राम का योगदान अविस्मरणीय है। जनता इस महान् विद्रोह को प्रथम स्वतंत्रता संग्राम का नाम देकर इससे निरंतर प्रेरणा ग्रहण करती है। अंग्रेज़ों की दमन-नीति के शिकार हुए ज़मींदारों, राजाओं एवं नवाबों ने इस जन-क्रांति का नेतृत्व किया था। राष्ट्रीय जागरण के प्रेरक तत्त्वों में महान् सांस्कृतिक नेताओं का अमूल्य योगदान रहा। तब तक अलग-अलग आंदोलनों के रूप में चल रहे जनांदलों को सन् 1885 ई. में भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस की स्थापना से सही नेतृत्व मिला जिससे मुक्ति-आंदोलन को सही दिशा प्राप्त हुई।

राष्ट्रीय जागरण का प्रसार देश भर में होने के लिए प्रेस एवं साहित्य ने भी अभूतपूर्व काम किया। वैज्ञानिक प्रगति के कारण छापेखानों का आगमन राष्ट्रीय जागरण के लिए और हितकर सिद्ध हुआ। अब तक कई कारणों से अलग रह गये भारतीय आपस में जुड़ने लगे और इसी समय कुछ महानुभावों ने जनता को अपने उपदेशों के माध्यम से राष्ट्रीय स्तर पर एक किया। इन महानुभावों का कार्यक्षेत्र यद्यपि राजनीति नहीं था तथापि इन्होंने अपने प्रतापी व्यक्तित्व एवं वक्तव्यों के द्वारा प्रसुप्त भारतीय आत्मशक्ति को जगाया था। ऐसे सांस्कृतिक नेताओं में राजा राम मोहनराय का नाम सर्वप्रथम लिया जाता है। रामकृष्ण परमहंस, स्वामी विवेकानंद, स्वामी दयानंद सरस्वती, केशवचंद्र सेन, श्रीमति एनीबेसेंट इत्यादि के कारण आधुनिक भारत की सांस्कृतिक राष्ट्रीयता अत्यंत गौरवशाली सिद्ध हुई तथा राष्ट्रीय जागरण के प्रसार में इन सबका योगदान अविस्मरणीय है। राजनैतिक स्तर पर भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के नेतृत्व में स्वाधीनता आंदोलन ने ज़ोर पकड़ा। नरमदल-गरमदल जैसे कई अध्यायों के बाद, लाल-बाल-पाल जैसे अगणित महान स्वतंत्रता-योद्धाओं का कुशल नेतृत्व पाने के बाद स्वाधीनता आंदोलन ने गांधी-युग में प्रवेश किया तथा अनेक वर्षों के अथक प्रयास के बाद अंग्रेजों का शासन हटकर राष्ट्र राजनैतिक रूप से स्वतंत्र हुआ। राष्ट्रीय जागरण का उद्भव जिस प्रत्यक्ष कारण से हुआ था - अंग्रेजों के उस दमनकारी शासन का अंत हो गया और राष्ट्रीय जागरण का एक प्रमुख लक्ष्य सन् 1947 ई. में भारत की स्वाधीनता के रूप में प्राप्त हुआ।

आधुनिक हिन्दी साहित्य के महान कवि एवं लेखक सूर्यकान्त त्रिपाठी निराला का युग राष्ट्रीय जागरण के शिखर का युग है। निराला हिन्दी के जागरूक एवं संवेदनशील कलाकार थे। ऐसे व्यक्ति की साहित्य-साधना राष्ट्र के इतने महत्वपूर्ण संदर्भ को नज़रअंदाज करती हुई चली जायेगी, इसकी कल्पना भी नहीं की जा सकती। निराला आरंभ से ही स्वाधीनता का मानो मूर्तिमान व्यक्ति रहे थे। वे हर क्षेत्र में मनुष्य की मुक्ति की कामना करनेवाले साहित्यकार थे। अतः निराला के संपूर्ण साहित्य में राष्ट्रीय जागरण के विविध पहलुओं की सफल अभिव्यक्ति हुई। उनके साहित्य की विशेषता यह है कि उन्होंने अपने साहित्य के द्वारा राष्ट्रीय जागरण की अभिव्यक्ति ही नहीं की, बल्कि राष्ट्र का जागरण के विकास की दिशा में मार्गदर्शन भी किया।

निराला का साहित्यिक सृजन-काल राष्ट्रीय जागरण का शिखर समय था। निराला का काव्य-सृजन आधुनिक हिन्दी साहित्य की प्रमुख काव्य-धारा छायावाद-युग से प्रारंभ होता है। आरंभ से भी निराला ने अपनी कविता को राष्ट्र और राष्ट्र की जनता से कभी दूर नहीं रखा। उन्होंने अपनी काव्य-साधना का आरंभ मातृभूमि की वंदना से किया। निराला बंगाल में रहते थे और बंगाल उस समय भारत में राष्ट्रीय जागरण का प्रसार-केन्द्र था। इसलिए निराला पर रवीन्द्रनाथ टैगोर, बंकिम चंद्र चटर्जी और द्विजेन्द्रलाल रॉय जैसे महान् साहित्यकारों का प्रभाव पड़ा। उनकी साहित्यिक चेतना राष्ट्रीय मुक्ति-आंदोलन से बराबर जुड़ती आयी। राष्ट्र-प्रेम उनकी कविताओं का अपरिहार्य तत्व है। अपने राष्ट्र के प्रति ममता, अपने राष्ट्र-जनों की सर्वांगीण मुक्ति की कामना, भारत के अतीत के प्रति अनुराग की भावना निराला की कविता में मुख्य रूप से दिखाई देती हैं। उन्होंने भारत की शक्ति का परिचय सामान्य जनों को फिर से दिया और उनमें पुनः प्राचीन भारतीय दर्शन की कर्म की ओर प्रेरित करने वाली प्रवृत्तिपरक मनोवृत्ति का संचार कराया। उनकी कविता में वर्तमान भारत की दुर्दशा पर चिंता अभिव्यक्त हुई और उन्होंने साम्राज्यवाद एवं सामंतवाद का विरोध किया। उन्होंने 'जन्मभूमि', 'भारति जय विजय करे', 'जागो जीवन धनिके' आदि अपनी कविताओं में भारतमाता की भावावेशमयी वंदना की। उन्होंने परिवर्तनशील परिस्थितियों में लिखी 'राजे ने अपनी रखवाली की', 'झींगुर डटकर बोला' जैसी कविताओं में राष्ट्रीय मूल्यों के विरुद्ध काम करनेवाली शक्तियों पर अचूक शब्द-प्रहार किया। उनकी ऐसी कविताओं में सामंतवाद के खिलाफ़ ग्रामीण जनता का

संघर्ष अभिव्यक्त होता है। इन कविताओं की सृजन-प्रक्रिया में काम करनेवाली चेतना राष्ट्रीय चेतना ही है।

निराला मानते थे कि ग्रामीण जनता की मुक्ति अंग्रेजों के साथ-साथ, सामंतवाद के प्रतिनिधियों-ज़मींदारों से लड़ने में ही निहित है। निराला अपने समय में राजनैतिक नेताओं और पूँजीपतियों का गठबंधन देखकर, अपनी कविता के माध्यम से उनका विरोध करते थे। निराला मात्र राजनैतिक मुक्ति पर ही ध्यान नहीं देते थे। उनकी काव्य-दृष्टि देश की सामाजिक एवं आर्थिक मुक्ति को भी साथ लेकर चलती है। उनकी 'तुलसीदास' शीर्षक कविता राष्ट्रीय जागरण की महान सांस्कृतिक अभिव्यक्ति है तो 'भिक्षुक', 'विधवा', 'तोड़ती पत्थर' जैसी कविताएँ राष्ट्रीय जागरण के सामाजिक एवं आर्थिक पक्षों का प्रतिनिधित्व करती हैं। नारी-मुक्ति की अभिलाषा राष्ट्रीय जागरण का एक मुख्य पहलू है जिसकी अभिव्यक्ति निराला की 'तोड़ो तोड़ो कारा' जैसी प्रतिनिधि कविताओं में हुई है। निराला आरंभ से लेकर अंत तक राष्ट्र में होनेवाली महान् सामाजिक, राजनैतिक एवं सांस्कृतिक घटनाओं से परिचित होकर राष्ट्र-प्रयोजनों की दृष्टि से साहित्य-सर्जना करते थे। इस प्रकार राष्ट्रीय जागरण का ओजपूर्ण स्वर पूरी ईमानदारी और यथार्थता से निराला के काव्य में आदि से अंत तक प्रतिध्वनित हुआ।

निराला-काव्य का राष्ट्रवादी स्वर आम देशभक्ति-कविताओं से बिलकुल अलग है। निराला की राष्ट्रीय चेतना की मौलिकता यह है कि वे गोरों को आम जनता के लिए जितना घातक मानते हैं, उससे भी अधिक अंग्रेज़ों द्वारा पोषित सामंत वर्ग के प्रतिनिधि को। इसलिए उनकी कविताओं में सामंतवाद का विरोध मिलता है। निराला के काव्य में भारत के राष्ट्रीय जीवन की वास्तविकता की अभिव्यक्ति हुई। उन्होंने अपनी कविताओं में निगूढ़ शब्द-चित्रों, प्रतीकों तथा बिंबों के माध्यम से राष्ट्रीय जागरण की अभिव्यक्ति की। यह अभिव्यक्ति सपाट और सीधी शैली में रचित उस समय की देशभक्ति पूर्ण कविताओं से बिलकुल भिन्न थी क्योंकि उसमें समाज सुधारवादी आंदोलन की भी महत्त्वपूर्ण भूमिका दिखायी देती है।

निराला मात्र काव्य में ही नहीं, गद्य में भी पूरी निबद्धता के साथ राष्ट्र से जुड़ते हैं। उनके उपन्यासों तथा कहानियों में राष्ट्रीय जागरण के विभिन्न पहलुओं की अभिव्यक्ति मिलती है। राष्ट्र से संबंधित निराला के कई विचार अनेक राजनैतिक विद्वानों के विचारों से भी

व्यापक दिखाई देते हैं। निराला ने अपने कथा-साहित्य में राष्ट्र की तत्कालीन स्थिति का चित्रण करते हुए अंग्रेजी सरकार के कुकृत्यों का यथार्थ चित्रण किया है। राष्ट्रीय जागरण को प्रेरित करने वाले सामंतवाद के अत्याचारों का गहरा चित्रण निराला की रचनाओं में हुआ है। निराला के कथा-साहित्य के पात्र स्वदेशी आंदोलन से बराबर जुड़ते हैं और गाँवों में जाकर सामान्य जनता को शिक्षित बनाते हैं। उन्होंने अपने कथा-साहित्य में सामाजिक अन्याय, सामंतवादी उत्पीड़न, राजा-जमींदारों का सामान्य जनता पर अत्याचार, गाँवों का आर्थिक शोषण, नारी का उत्पीड़न, अतीत के अवशेषों से मुक्ति न पानेवाले जनमानस जैसी राष्ट्रीय समस्याओं का विस्तार से विवेचन किया और उनका समाधान खोजने का प्रयास भी किया। उनके कथा-साहित्य के पात्र अंग्रेजों के साथ और उनके पिट्ठुओं के साथ निरंतर जूझते हैं। निराला राष्ट्रीय चेतना को गाँवों में सामान्य जनता तक संप्रेषित करते हैं और उन्हें शिक्षित बनाने की कोशिश करते हैं। विशेषकर उनके कथा-साहित्य के किसान एवं मेहनतकश वर्ग से संबंधित पात्र सामंतवाद का डटकर विरोध करते हैं और अंततः विजय प्राप्त करते हैं। यदि अंग्रेजी साम्राज्यवाद का आधार देशी सामंतवाद है तो उसे तोड़ना साहित्यिक योद्धा निराला का परमलक्ष्य था। निराला के कथा-साहित्य में यही संदेश दिया गया है कि राजनैतिक मुक्ति और सामाजिक मुक्ति अलग-अलग नहीं हैं। उनकी दृष्टि में सामाजिक कुप्रथाओं को दूर करने से ही राजनैतिक मुक्ति प्राप्त हो सकती है। इन सामाजिक कुप्रथाओं को कैसे दूर किया जाय, इसको भी निराला ने स्पष्ट करने का प्रयास किया। निराला के अनुसार सामाजिक कुरीतियों के निवारण के लिए गाँवों में जाकर सामान्य जनता को शिक्षित बनाना है, उनके साथ किये जाने वाले अत्याचारों तथा आर्थिक शोषण के मूलभूत कारणों से उन्हें परिचित कराना है। निराला के अनुसार सामाजिक एवं सांस्कृतिक दासता की स्थिति में प्राप्त की जानेवाली राजनैतिक मुक्ति देश के लिए घातक सिद्ध होगी।

निराला ने भारत की सारी समस्याओं के अंतःसंबंधों पर बारीक़ी से विचार करते हुए संभावित सामाजिक आचरण का पथ-प्रदर्शन किया। उनके आलोचनात्मक साहित्य में राष्ट्रीय जागरण से संबंधित चिंतन और मुक्त रूप में पाया जाता है। उन्होंने अपनी आलोचना के अतिरिक्त 'सुधा' पत्रिका में काम करते समय अनेक संपादकीय टिप्पणियाँ भी लिखीं, जो राष्ट्रीय जागरण और राष्ट्र प्रयोजनों की दृष्टि से अत्यंत महत्त्वपूर्ण हैं। राष्ट्र से संबंधित

निराला के विचारों का परिचय उनकी टिप्पणियों में मिलता है। वे मानते हैं कि भारत हमेशा सांस्कृतिक रूप से एक रहा, इतना ही नहीं निराला यह कभी स्वीकार नहीं करते कि भारत को राष्ट्रीयता का पाठ पढ़ानेवाले अंग्रेज़ होंगे। वे इस बात का विरोध करते हैं कि भारत कभी एक राष्ट्र नहीं रहा और इस राष्ट्र के अनेक प्रांतों को एक शासन के अधीन लाने का श्रेय अंग्रेज़ों को जाना चाहिए। इसके अलावा निराला ने अपने आलोचना-साहित्य में हिन्दू तथा मुसलमानों के सांप्रदायिक वैषम्य को शांत करने का प्रयास किया। निराला ने हिन्दू और मुसलमानों से संबंधित उच्च कोटि के साहित्य एवं दर्शन की मूलभूत एकता को दर्शाया। निराला का यह प्रयास सामाजिक और राजनैतिक दृष्टि से ही नहीं धार्मिक दृष्टि से भी भारतीय जनता में राष्ट्रीय एकता स्थापित करने का प्रयास है। वे अपनी आलोचना में साहित्य को राष्ट्र से जोड़ते हैं, राष्ट्र के महिमान्वित साहित्यकारों की समीक्षा करते हैं और राष्ट्र की गौरवान्वित सांस्कृतिक परंपराओं से साधारण जन को संबद्ध करने का प्रयास करते हैं। 'सुधा' की संपादकीय टिप्पणियों में उन्होंने तत्कालीन स्वाधीनता-संग्राम के उद्विग्नभरे क्षणों को शब्दबद्ध करके देशवासियों का उत्साह बढ़ाया था। उन्होंने सत्याग्रह आंदोलन और अनशन के सूत्र देनेवाले महात्मा गांधी की प्रशंसा की। उन्होंने स्वाधीनता आंदोलन में नारियों की सक्रिय भूमिका पर हर्ष प्रकट किया और राष्ट्र की अनगिनत अशिक्षित महिलाओं से अपील की कि वे पढ़-लिखकर साक्षर बनें, क्योंकि वे राष्ट्र की माताएँ हैं। उन दिनों इस विषय पर जोरों की चर्चा चलती थी हिन्दी को राष्ट्र भाषा की प्रतिष्ठा मिलनी चाहिए या नहीं। निराला ने राष्ट्रीय प्रयोजनों को दृष्टि में रखकर हिन्दी का समर्थन किया और प्रान्तीय भाषाओं के महत्व पर भी प्रकाश डाला। निराला की राष्ट्रीय चेतना भारतमाता के गुण गाकर अपनी मातृभूमि की वंदना करने तक या अंग्रेज़ों पर कई प्रकार से शब्द-प्रहार करने तक सीमित नहीं है। वे यथार्थ की दृष्टि से राष्ट्र की समस्याओं की तह में पहुँचते हैं और अपनी सीमाओं के तहत उन समस्याओं का समाधान भी आचरणयोग्य ढ़ंग से पेश करने का प्रयास करते हैं। निराला के उक्त प्रयास का प्रतिफलन जितना उनके गद्य में हुआ- उनकी कविता में उतना नहीं हुआ। अतः उनका गद्य साहित्य राष्ट्रीय जागरण के संदर्भ में अत्यंत महत्वपूर्ण साहित्य कहा जा सकता है।

निराला की राष्ट्रीय चेतना उन राष्ट्र-प्रेमियों की भावनात्मक देशभक्ति से नितांत भिन्न

है, जो सिर्फ़ भावनात्मक स्तर पर राष्ट्र-प्रेम का प्रचार किया करते थे। इसके विपरीत निराला की राष्ट्रीय चेतना, राष्ट्रीय जागरण के लिए आवश्यक उन सभी सामाजिक, आर्थिक, राजनैतिक और धार्मिक बिन्दुओं को पहचानती है और राष्ट्र-मुक्ति की कामना करती है। निराला की दृष्टि में राष्ट्र की मुक्ति का अर्थ है राष्ट्र की आम जनता की मुक्ति। क्योंकि निराला विश्वास करते थे कि स्वतंत्रता की जरूरत इन्हीं लोगों के लिए ज्यादा है - कुर्सी के लिए घात लगाये बैठी राजनैतिक शक्तियों के लिए नहीं। निराला यह भी जानते हैं कि यदि जनता में आमूल परिवर्तन नहीं होगा- तो गोरे प्रभु की जगह काले प्रभु बैठेंगे, देश की सर्वांगीण मुक्ति तब भी संभव नहीं होगी। निराला की दृष्टि में अंग्रेजों को भगाकर हासिल की गयी मात्र राजनैतिक मुक्ति देश के लिए अभीष्ट नहीं है। इसकी जगह निराला सामाजिक मुक्ति सहित राजनैतिक मुक्ति की कामना करते हैं। इस प्रकार कहा जा सकता है कि निराला का साहित्य राष्ट्रीय जागरण के सच्चे लक्ष्यों से नाभिनालबद्ध होकर चलता है।

भारत की स्वतंत्रता के लिए जो आज़ादी की लड़ाई लड़ी गयी, वह स्वतंत्रता अंग्रेजों के निष्कासन से प्राप्त हो गयी। भारत स्वतंत्र राष्ट्र बन गया। बदली हुई परिस्थितियों में भी राष्ट्रीय जागरण की दृष्टि से निराला की प्रासंगिकता का मूल्यांकन करना ज़रूरी है। आज भारत-राष्ट्रवासियों को निराला के साहित्य से क्या ग्रहण करना चाहिए? यह प्रश्न इस संदर्भ में अत्यंत महत्वपूर्ण है। वास्तव में निराला की प्रासंगिकता उनकी भविष्य-दृष्टि में अंतर्निहित है। उन्होंने अपने समय में अपनी आँखों से देखा था और महसूस किया था कि भारत वैयक्तिक रूप से महान लोगों का देश है मगर सामूहिक रूप से जैसाकि निराला ने कहा 'अमार्जित जनसमूहों का देश' है। ये अमार्जित मनुष्य भेड़-समूह के समान हैं - मुट्ठीभर अक्लमंद लोग अपनी स्वार्थ-सिद्धि के लिए इन्हें कहीं भी ले जा सकते हैं। अतः इन लोगों को शिक्षित करने में ही राष्ट्र की सबसे बड़ी भलाई है। निराला के अनुसार शिक्षा ही भारत की सामान्य जनता को अपनी सामाजिक पतनावस्था का बोध करा सकती है। उन्होंने स्पष्ट किया कि शिक्षा ही जनता के आर्थिक स्वावलंबन का आधार बन सकती है और मात्र शिक्षा ही उन्हें सांस्कृतिक मुक्ति दिला सकती है। इसलिए उनके साहित्य में हर चेतनशील पात्र शहरों की राजनैतिक सभाओं में भाषण नहीं झाड़ता, प्रत्युत गाँवों में जाता है, साधारण जनता को शिक्षा दिलाकर उन्हें विवेकशील बनाने की कोशिश करता है। स्वयं निराला ने भी अपने जीवन में यह काम

किया था। निराला की प्रासंगिकता इस तथ्य में निहित है कि उन्होंने राष्ट्र की हर समस्या का समाधान, यहाँ तक कि राष्ट्र की स्वतंत्रता को भी शिक्षा-प्रसार के द्वारा और तद्वारा जनसमुदाय में उत्पन्न होनेवाली विवेकशीलता के द्वारा ही प्राप्त करना चाहा।

निराला ने उस समय बताया था कि स्वतंत्रता संग्राम में विशेषकर राजनैतिक चुनाव में कुछ गिरे हुए लोगों का आगमन हो रहा है, भविष्य में इन लोगों से सावधान रहें। आज भारत की स्वतंत्रता प्राप्ति के साठ वर्ष समाप्त होने के उपलक्ष्य में यदि हम सब अपने राष्ट्र के राजनैतिक प्रस्थान एवं सार्वजनिक चुनावों की तरफ ईमानदारी से देखें तो हृदयभेदी सत्य ही सामने आएँगे। निराला इस स्थिति से बहुत पहले ही वाकिफ़ थे। महात्मा गाँधी के नाम पर, राजनीति के नाम पर कैसे-कैसे मक्कार लोग जनों को ठगते फिरते हैं, जाति-दंभ में चूर लोग समाज के निम्न वर्गों को गोरों की तरह कैसे देखते हैं इसकी सूचना निराला ने दी थी। निराला की प्रासंगिकता इसमें निहित है कि निराला ने स्वातंत्र्योत्तर भारत में जिन ख़तरों की सूचना दी, ऐसे ख़तरों से आज देश गुज़र रहा है।

निराला के साहित्य में ऐसे कई तथ्य मिलते हैं जिन्हें आजकल के भारतवासियों में अपने आप को राष्ट्र-प्रेमी माननेवालों को अवश्य स्वीकार करना चाहिए। राष्ट्रीय जागरण के जिन लक्ष्यों का स्पष्टीकरण पहले किया गया था, उनके अनुसार इस राष्ट्र की पराधीनता पूरी तरह समाप्त नहीं हुई है। सामाजिक उत्पीड़न एवं आर्थिक दासता प्रकारांतर से स्वतंत्र भारत में भी मौज़ूद हैं। इसके अलावा भारत भूमण्डलीकरण के दौर में आज कई प्रकार की अन्य दासताओं से भी परिचित हो रहा है। भविष्यद्रष्टा साहित्यकार के रूप में निराला ने जिस जागृत समाज की कल्पना की, उसमें अमार्जित जनों को मार्जित करना होगा, अर्थात् शिक्षा के बल पर भारत के सामाजिक वर्गों में जागरण पैदा करना होगा। उन्हें जनतांत्रिक प्रक्रिया में जागृत होकर भाग लेना चाहिए और स्वार्थी राजनैतिक नेताओं का तिरस्कार करना चाहिए। देश के सरकारी तंत्र में फैली घूसखोरी एवं भ्रष्टाचार का उन्मूलन करना होगा। स्वार्थी लोगों से भरपूर इस समाज में परोपकार तथा त्याग का महत्व फैलाना होगा। निरंतर विद्वेषों से जलते भारतीय समाज को समरसता का पाठ पढ़ाना होगा। सांस्कृतिक रूप से भयानक ढ़ंग से प्रदूषित होने वाले इस राष्ट्र के जनों को उनकी अपनी विशिष्ट सांस्कृतिक उच्चता का स्मरण दिलाना होगा। आज के वैश्वीकरण एवं निजीकरण की आँधी ने समस्त राष्ट्रों की

अस्मिता को ही खतरे में डाल दिया है। धीरे-धीरे आर्थिक रूप से विकासशील एवं अविकसित सभी राष्ट्र राजनैतिक रूप से स्वतंत्र होकर भी मानसिक, सांस्कृतिक एवं आर्थिक रूप से धनाढ्य देशों के गुलाम बनने की स्थिति को प्राप्त हो रहे हैं। इसलिए भारत में भी आज की परिस्थितियों में एक और राष्ट्रीय जागरण की नितांत आवश्यकता है।

निराला ने जिस वैकल्पिक समाज की कल्पना की, उसे प्राप्त करने में कई बाधाएँ और अड़चनें आ सकती हैं और अनेक समस्याओं का सामना करना पड़ सकता है। निराला के साहित्य में निहित जागरण की चेतना, समस्त विरोधी तत्त्वों से लड़ने की प्रेरणा देती हैं और अपराजेय मानसिकता तथा राष्ट्र-प्रेम को जनता के मन में भरती है। निराला का साहित्य अन्याय से निरंतर जूझने का संदेश देता है, जीवन में आनेवाली समस्त कठिन परिस्थितियों का मानसिक बल से सामना करने की सलाह देता है और जीवन के कठोर क्षणों में अंतर को वज्रकठोर बनाने की शिक्षा देता है। निराला का साहित्य यह घोषणा करता है कि 'भय ही पराधीनता है और निर्भयता ही मुक्ति है'। अतः आधुनिक भारत को विश्व में सर्वप्रथम स्थान प्राप्त कराने के लिए प्रयत्नशील सभी कर्मण्य जन को निराला का साहित्य सतत् स्फूर्ति प्रदान करता है।

संदर्भ व सहायक ग्रंथ-सूची

आधार ग्रंथ

1.	निराला रचनावली, भाग-1 कविताएँ (1920-1938)	संपादक नन्दकिशोर नवल	राजकमल प्रकाशन पैपरबैक सं. (द्वितीय) नयी दिल्ली, 1998.
2.	निराला रचनावली, भाग-2 कविताएँ (1939-1949) और (1950-1961)	संपादक नन्दकिशोर नवल	राजकमल प्रकाशन पैपरबैक सं. (द्वितीय) नयी दिल्ली, 1998.
3.	निराला रचनावली, भाग-3 उपन्यास	संपादक नन्दकिशोर नवल	राजकमल प्रकाशन पैपरबैक सं. (द्वितीय) नयी दिल्ली, 1998.
4.	निराला रचनावली, भाग-4 उपन्यास तथा कहानियाँ	संपादक नन्दकिशोर नवल	राजकमल प्रकाशन पैपरबैक सं. (द्वितीय) नयी दिल्ली, 1998.
5.	निराला रचनावली, भाग-5 आलोचना	संपादक नन्दकिशोर नवल	राजकमल प्रकाशन पैपरबैक सं. (द्वितीय) नयी दिल्ली, 1998.
6.	निराला रचनावली, भाग-6 विविध विषय	संपादक नन्दकिशोर नवल	राजकमल प्रकाशन पैपरबैक सं. (द्वितीय) नयी दिल्ली, 1998.
7.	निराला रचनावली, भाग-7 बालोपयोगी साहित्य	संपादक नन्दकिशोर नवल	राजकमल प्रकाशन पैपरबैक सं. (द्वितीय) नयी दिल्ली, 1998.
8.	निराला रचनावली, भाग-8 पुरा कथा एवं पत्र	संपादक नन्दकिशोर नवल	राजकमल प्रकाशन पैपरबैक सं. (द्वितीय) नयी दिल्ली, 1998.

सहायक ग्रंथ-सूची

1.	आधुनिकता और राष्ट्रीयता	डॉ. राजमल बोरा	नमिता प्रकाशन औरंगाबाद, महाराष्ट्र प्र.सं.1973
2.	आधुनिक भारत	बिपनचन्द्र	एन.सी.ई.आर.टी., दिल्ली, प्र.सं.1990
3.	आधुनिक हिन्दी कविता की मुख्य प्रवृत्तियाँ	डॉ. नगेंद्र	गौतम बुक डिपो दिल्ली, प्र.सं.1951
4.	ऊर्वशी	रामधारी सिंह दिनकर	उदयाचल प्रकाशन पटना, ग्यारहवाँ संस्करण, 1992
5.	कला, साहित्य और समीक्षा	डॉ. भगीरथ मिश्र	भारती साहित्य मंदिर दिल्ली, प्र.सं.1963
6.	कविता के नये प्रतिमान	नामवर सिंह	राजकमल प्रकाशन नयी दिल्ली पाँचवा संस्करण, 2000.
7.	काव्य के अंग	डॉ.भगीरथ मिश्र डा. सत्यदेव चौधरू	एन.सी.ई.आर.टी. प्र.सं.1990
8.	काव्य के रूप	आचार्य गुलाबराय	प्रतिभा प्रकाशन दिल्ली, द्वि.सं.1950
9.	छायावाद	नामवरसिंह	राजकमल प्रकाशन नयी दिल्ली, प्रथम पैपरबैक संस्करण, 1993
10.	नई कविता और अस्तितववाद	डॉ.रामविलास शर्मा	राजकमल प्रकाशन दिल्ली, प्र.सं.1978
11.	निराला और उनकी सरोज स्मृति	प्रो. सुरेश अग्रवाल	अशोक प्रकाशन दिल्ली, प्र.सं.1998
12.	निराला की साहित्य साधना (भाग -1, 2 & 3)	डॉ. रामविलास शर्मा	राजकमल प्रकाशन नयी दिल्ली, तृ.सं.1990 आवृत्ति-2002

13.	निराला : आत्महन्ता आस्था	दूधनाथ सिंह	लोकभारती प्रकाशन इलाहाबाद पाँचवा संस्करण- 2000
14.	निराला और उनका तुलसीदास		हिन्दी साहित्य संसार दिल्ली
15.	निराला-काव्य का अध्ययन	भगीरथ मिश्र	राधाकृष्ण प्रकाशन दिल्ली, प्र.सं.1967
16.	निराला का गद्य साहित्य	डॉ.निर्मल जिन्दल	दिल्ली आर्य बुक डिपो दिल्ली, प्र.सं.1971
17.	निराला का गद्य	डॉ.सूर्यप्रसाद दीक्षित	राधाकृष्ण प्रकाशन दिल्ली, सं.1971
18.	निराला	डॉ.रामविलास शर्मा,	राधाकृष्ण प्रकाशन दिल्ली, तृ.सं.1971
19.	निराला का काव्य : विविध संदर्भ	संपादक डॉ.मीरा श्रीवास्तव एवं अन्य	हिन्दी परिषद् प्रकाशन इलाहाबाद, प्र.सं.2001
20.	निराला की दो लंबी कविताएँ	डॉ.हरिचरण शर्मा	मलिक एण्ड कम्पनी जयपुर, प्र.सं.2004
21.	निराला के काव्य का राजनीतिक संदर्भ	डॉ.संध्या सिंह	वाणी प्रकाशन दिल्ली, प्र.सं.1971
22.	निराला : एक आलोचनात्मक अध्ययन	संपादक डॉ.उषा यादव और डॉ. राजकिशोर सिंह	प्रकाशन केंद्र लखनऊ, प्र.सं.1999
23.	पाश्चात्य काव्यशास्त्र	देवेन्द्रनाथ शर्मा	मयूर पैपरबैक्स नौएडा, पाँ.सं.1998
24.	भारत का बृहत् इतिहास -3	रमेशचंद्र मजुमदार, रायचौधरी, दत्त	मैकमिलन इण्डिया प्रा लि. नयी दिल्ली, तृ.सं.
25.	भारत में अंग्रेजी राज और मार्क्सवाद (खण्ड एक और दो)	डॉ.रामविलास शर्मा	राजकमल प्रकाशन दिल्ली, प्र.सं.1982
26.	महाप्राण निराला	गंगाप्रसाद पाण्डेय,	लोकभारती प्रकाशन इलाहाबाद, द्वि.सं.1968

27.	रचनाकार सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला'	संपादक डॉ. अशोक तिवारी, डॉ. गंगा सहाय 'प्रेमी' एवं अन्य	हरीश विश्वविद्यालय प्रकाशन, आगरा प्र.सं.1997
28.	राष्ट्रीय आंदोलन का इतिहास	मन्मथनाथ गुप्त	दुर्गा प्रिंटिंग वर्क्स आगरा, द्वि.सं.1982
29.	वेदोद्यान के चुने हुए फूल	आचार्य प्रियव्रत वेदवाचस्पति	गोविन्दराम हासानन्द प्रकाशन दिल्ली, प्र.सं.1991
30.	शतपथ ब्राह्मण		अच्युत ग्रंथमाला कार्यालय, वाराणसी प्र.सं.1994
31.	संस्कृति के चार अध्याय	रामधारी सिंह दिनकर	राजपाल एण्ड सन्ज़ दिल्ली, द्वि.सं.1956
32.	सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला'	ये.पे. चेलिशेव	राजकमल प्रकाशन दिल्ली, प्र.सं.1988
33.	स्वतंत्रता संग्राम : बिपनचंद्र	अमलेश त्रिपाठी वरुण दे	नेशनल बुक ट्रस्ट इण्डिया दिल्ली, प्र.सं.1972
34.	स्वतंत्रता संग्राम का इतिहास	मदनलाल शर्मा	बिशनचन्द एण्ड सन्ज़ दिल्ली, प्र.सं.1989
35.	हिन्दी साहित्य का इतिहास	डॉ. नगेंद्र	मयूर पैपरबैक्स, नौएडा सत्ताईसवां पुनर्मुद्रित संस्करण, 2000
36.	हिन्दी आलोचना	विश्वनाथ त्रिपाठी	राजकमल प्रकाशन चौ.सं. नयी दिल्ली
37.	हिन्दी आलोचना के आधर-स्तंभ	संपादक रामेश्वर खण्डेलवाल सुरेशचंद्र गुप्त	लोकभारती प्रकाशन इलाहाबाद प्र.सं.1981
38.	हिन्दी साहित्य का इतिहास	आचार्य रामचन्द्र शुक्ल	नागरी प्रचारिणी सभा वाराणसी, 38वाँ पुनर्मुद्रित सं.2057 वि.,

39.	हिन्दी गद्य - साहित्य	शिवदानसिंह चौहान विजय चौहान	राजकमल प्रकाशन दिल्ली, प्र.सं.1962
40.	हिन्दी नवजागरण और संस्कृति	शंभनाथ	आनंद प्रकाशन कोलकाता प्र.सं. 2004
41.	हिन्दी और तेलुगु काव्य में राष्ट्रीय चेतना	डॉ. एन.वी.एस.प्रसाद	दक्षिणांचलीय साहित्य समिति, हैदराबाद प्र.सं.1993
42.	हिन्दी साहित्य कोश - भाग-1	संपादक धीरेंद्र वर्मा एवं अन्य	ज्ञानमण्डल लिमिटेड वाराणसी, तृ.सं.1985

अप्रकाशित शोध-ग्रंथ

1. भारतीय नवजागरण के संदर्भ में हिन्दी और बंगला साहित्य, चंद्रा मुखर्जी, हैदराबाद विश्वविद्यालय, एम.फिल्, 1995
2. राजनैतिक उपन्यासों की अवधारणा और महाभोज, ए.एस.वी. पद्मा रानी हैदराबाद विश्वविद्यालय, एम.फिल्, 1997
3. हिन्दी और तेलुगु के राष्ट्रीय गीत : एक तुलनात्मक अध्ययन, शेक महबूब बाषा हैदराबाद विश्वविद्यालय, एम.फिल्, 1999

कोश ग्रंथ

1. नालन्दा विशाल शब्दसागर, सं.नवल जी, आदीश बुक डिपो, नयी दिल्ली, संस्करण : 2000
2. संक्षिप्त हिन्दी शब्दसागर, सं. रामचंद्र वर्मा, काशी नागरी प्रचारिणी सभा, वाराणसी, संस्करण : 1933,
3. हिन्दी कोश : सं. डॉ.चावलि सूर्यनारायण मूर्ति, बाल सरस्वती बुक डिपो, कर्नूलु, संस्करण : 1968,

पत्र-पत्रिकाएँ

1. आलोचना, सम्पा. डॉ.नामवर सिंह, अंक 86, 93,
2. बहुवचन : अंक 2, जनवरी-मार्च 2000
3. वर्तमान साहित्य : जुलाई 2007
4. इण्डिया टुडे (तेलुगु), सम्पा. अरुण पुरी, 22-4-2008

अंग्रेज़ी ग्रंथ

1. New Websters Dictionary, Surjeet Publications, Delhi.
2. International Encyclopedia of the social sciences, Volume II
3. Collier's Encyclopedia, volume 19, Mc.millon Educational company, U.S.A. 1982,
4. Collier's Encyclopedia of Social sciences, volume 20, P.F. Collier & sons publishing co. U.S.A. 1959,
5. The New Encyclopedia Britannica, volume-9, 15th Edition, 1994 U.S.A.
6. The Encyclopedia Britannica, volume-23. 17th Edition, 1997
7. Modern India : Bipin chandra, N.C.E.R.T., New Delhi, 1990
8. History of freedom movement in India (All volumes) Tara chand, New Delhi, 1971.

तेलुगु ग्रंथ

1.	आंध्रप्रदेशलो गांधीजी	श्री कोडाली आंजनेयुले	तेलुगु अकादमी, 1978
2.	बंगारु कथलु	संकलन - वाकाटि पाण्डुरंगाराव, वेदगिरि राम्बाबु	साहित्य अकादमी दिल्ली, प्र.सं.2001
3.	भारतमु	उषश्री पुराणपण्डा	तिरुमल तिरुपति देवस्थानमुलु प्र.सं.1992
4.	भारत स्वातंत्र्योद्यम चरित्र, भाग-3	आचार्य मामिडिपूडि वेंकट रंगय्या,	जीवन पब्लिशर्स सिकंदराबाद द्वि.सं. 2004
5.	भारतीय साहित्य निर्मातलु-निराला	हिन्दी मूल- श्री परमानंद श्रीवास्तव अनुवाद - माचिरेड्डी	साहित्य अकादमी नयी दिल्ली प्रथम संस्करण 2001
6.	वचन रचन-तत्वान्वेषण	आचार्य चेकूरि रामाराव	श्रीरत्ना पब्लिशर्स राजमण्ड्री, प्र.सं.2002
7.	विश्व दर्शनमु	श्री नण्डूरि राममोहन राव	नवोदया प्रकाशन विजयवाड़ा प्र.सं.1988
8.	विशालांध्र तेलुगु कथा	संकलन प्रो.केतु विश्वनाथ रेड्डी तथा सिंगमनेनि नारायण	विशालांध्र प्रकाशन हैदराबाद प्र.सं.2002